निवेदन ।

पाठकवृन्द इस पुस्तक की सरलता-भाषा की सरलता एवं मधुरता और विषयों की अधिकता के कारण जिन महानुभाव पाठकों एवं प्रसिद्ध पत्र सरस्वती आदि के सुयोग्य संपादकों ने पत्रों द्वारा मेरी इस पुस्तक की जो मुक्तकण्ठ से प्रशंसा कर मेरे परिश्रम को सफल किया है उन सज्जनों का हार्दिक धन्यवाद देता हुआ आज आपके सम्मुख महर्षि जीवन का तृतीय एडीशन लेकर आता हूं आशा है कि आप पूर्व की भांति अपने कुटुम्ब एवं गृह में पुत्र पुत्रियों और महिलाओं को महर्षि के पवित्र जीवन का पाठ करा उन के हृदयों में उत्तम उत्तम गुणों का प्रवेश कराने का यत्न कर यश के भागी बनेंगे।

साहित्य सेवकः-

चिम्मनलाल वैश्य

पेन्शनरपाठक—तिलहर

* ओ३म् *

विषय सूची ।

भ्रमण वृत्तान्त ।

पंजाब की यात्रा।

राजपूताने में धर्मोपदेश ।

ओ३म्

विशेष प्रार्थना और धन्यवाद ।

———:*:०:*:———

प्रिय सज्जन पुरुषो ! मेरी ऐसी बुद्धि, और विद्या और ब्रह्मचर्य्य कहां जो मैं बाल ब्रह्मचारी, सच्चे देश हितैषी, पूर्ण विद्वान्, योगीराज दिग्विजयी महर्षि श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र लिख सकता, परन्तु कई एक वर्षों से मेरा चित्त उपरोक्त जीवन के लिखने में लगा हुआ था वह आज परमेश्वर की दया और कई एक सज्जन महाशयों की कृपा दृष्टि से मेरा यह मनोरथ पूर्ण हो गया जिस को मैं लेकर आप के समीप आता हूं स्वीकार कीजिये और जो कुछ भूल चूक हो मुझको अल्प बुद्धि समझ क्षमा कीजिये ।

मैं इस स्थान पर **परमेश्वर** को धन्यवाद देने के पश्चात् **श्रीमान् पण्डित लेखरामजी आर्य्य पथिक** का धन्यवाद देता हूं जिन्होंने ऋषि के जीवन-चरित्र लिखते हुये अपने प्राणों का वलिदान कर दिया उसी से मैंने इस जीवन को उद्धृत किया है। इस हेतु उस सच्चे वीर पुरुष का चित्र भी आपके अवलोकनार्थ भेंट करता हूं जिसको देख उनकी विद्या, साहस और वैदिक धर्म पर पूर्ण प्रेम आदि गुणों का स्मरण कर गुणों को लीजिये ।

इसके पीछे श्रीमान् बाबू आत्मारामजी मास्टर और श्रीमान् लाला राधा-कृष्ण जी महिता कि जिनके लेखों से मुझको सहायता मिली है। तथा—

श्रीमान् पंडित रघुवरदयाल जी शर्म्मा, बाबू तोताराम मुख्तार बिसौली ज़िला बदायूं, श्रीमान् पंडित मूलचन्द जी और श्रीयुत पंडित रामेश्वर दयाल को विशेष धन्यवाद देता हूं जिन्होंने इस अनुवाद के करने में मेरी बहुत सहायता की, तदनन्तर श्रीमान् पंडित वंशीधरजी पाठक और श्रीमान् पण्डित देवीदत्त जी को भी धन्यवाद देता हूं जिनकी दया अनुग्रह का यह फल है, हे परमात्मन् ! आप इन सब उपरोक्त महाशयों को चिर-आयु कीजिये। जिन से देश का उपकार हो ।

पाठकवृन्द ! इस पुस्तक की सरलता, भाषा की सरलता एवं मधुरता और समस्त प्रकाशित अन्य जीवनों से इस जीवन में विषयों की अधिकता के कारण जिन महानुभाव पाठकों एवं प्रसिद्ध पत्र "सरस्वती" आदि के सुयोग्य संपादकों ने पत्रों द्वारा मेरी इस पुस्तक की मुक्तकंठ से प्रशन्सा कर मेरे परिश्रम को सफल किया है उन सज्जनों का भी हार्दिक धन्यवाद देता हुआ आज आपके

सन्मुख महर्षि जीवन का तृतीय एडीशन लेकर आता हूं आशा है कि आप पूर्व की भांति अपने कुटुम्ब एवं गृह में पुत्र पुत्रियों और महिलाओं को महर्षि के पवित्र जीवन का पाठ करा उनके हृदयों को वलिष्ठ बनाकर भारत संतान को दुःखों से बचा सुख के यथार्थ दर्शन कराइये ।

हे जगत्पालक अन्तर्यामी परमेश्वर ! हम सब आपके पुत्र हैं हमको ज्ञान चक्षु दीजिये जिससे हम सत्यासत्य के जानने में समर्थ हों और अपने अपार बल में से किंचित बल भी प्रदान कीजिये जिससे हम निर्बल आत्मा सबल हो कर धर्म मार्ग में किसी प्राणी से भयभीत न होकर आपकी आज्ञाओं का पालन करते हुये सुख और आनन्द से आयु व्यतीत करें प्रभु ! यही प्रार्थना है स्वीकार कीजिये स्वीकार कीजिये ।

हिन्दी साहित्य सेवक

चिम्मनलाल वैश्य

पेन्शनरपाठक ।

ओ३म्

न हि सत्यात् परम्बलम्।

A Martyr to Truth.

श्रीमान् पण्डित लेखरामजी आर्य्य मुसाफ़िर।

जन्म संवत्
१६१५ वि०

मृत्यु संवत्
१६५४ वि०

Anglo-Oriental Press, Lucknow.

ओ३म्

भूमिका।

ओ३म् सहना ववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्य्यं करवाव है॥ तेजस्विना वधीतमस्तु। माविद्विषा वहे॥ ओ३म शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ १॥

हे सर्व शक्तिमान्! हे ईश्वर! आप की कृपा और सहाय से हम लोग एक दूसरे की रक्षा करें और हम सब लोग परम प्रीति से मिल के सब से उत्तम ऐश्वर्य अर्थात् चक्रवर्ति राज्य आदि सामग्री से आनन्द को आप के अनुग्रह से सदा भोगें। हे कृपानिधे! आप के सहाय से हम लोग एक दूसरे के सामर्थ्य को पुरुषार्थ से सदा बढ़ाते रहें। हे प्रकाशमय! हे सर्व विद्या के देने वाले परमेश्वर! आप के सामर्थ्य से ही हम लोगों का पढ़ा और पढ़ाया सब संसार में प्रकाश को प्राप्त हो और हमारी विद्या सदा बढ़ती रहे। हे प्रीति के उत्पादक! आप ऐसी कृपा कीजिये जिस से हम लोग परस्पर विरोध कभी न करें किन्तु एक दूसरे के मित्रहोके सदा बर्तें। हे भगवान्! आप की करुणा से हम लोगों के तीनों ताप एक (आध्यात्मिक) जो ज्वरादि रोगों से शरीर में पीड़ा होती है। दूसरा (आधिभौतिक) जो दूसरे प्राणियों से होता है और तीसरा (आधिदैविक) जो मन और इन्द्रियों से विकार अशुद्धि और चंचलता से क्लेश होता है इन तीनों तापों को आप शान्त अर्थात् निवारण कर दीजिये जिस से हम लोग सुख से इस जीवन को यथावत् व्यतीत करते हुए सब मनुष्यों का उपकार करें।

---

* ओ३म् *

संसार में शान्ति प्राप्त करने का

एक मात्र उपाय।

प्रिय भ्रातृ गणों! एक अर्ब ९६ करोड़ ८ लाख ५२ हजार ९ सौ ९६ वर्ष व्यतीत हुए कि परमात्मा ने इस अद्भुत और अपार सृष्टि को इस कल्प में सृजा। जिस में अनेकान् उन स्त्री और पुरुषों को जिन के कर्म आदि सृष्टि में उत्पन्न होने योग्य थे युवावस्था में सरस्वती और दृषद्वती नदियों के बीच की भूमि जिस को वर्तमान समय में तिब्बत कहते हैं, उत्पन्न किया। जब मनुष्यों की विशेष वृद्धि हुई और इस भूमि में न समा सके तब वह अनेक स्थलों में फैल गये। परमेश्वरीय नियम इस बात को भी बतलाते हैं कि संसार में कोई भी पदार्थ चाहे वह कितना ही मनुष्यों की दृष्टि में तुच्छ हो निरर्थक नहीं बनाया। इस पर जब विचार दृष्टि से देखा जाता है तो प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि जिस पदार्थ को मूर्ख जन तुच्छ समझ कर कार्य में नहीं लाते उसी से पदार्थ विद्या के जानने वाले विद्वान् अनेकान् आश्चर्यजनक पदार्थ बना धन संग्रह कर कीर्ति प्राप्त करते हैं। क्या आप नहीं जानते कि मूर्खजन जल को प्यास शान्त करने और अग्नि से रोटी बनाने के अतिरिक्त किसी कार्य का साधन नहीं जानते परन्तु विद्वान् पुरुषों ने उन में अनेकान् गुणों को जान कर अनेक आश्चर्यदायक यन्त्र निर्माण किये, जिनसे संसारी जनों को नाना भांति के लाभ होरहे हैं। इसी प्रकार यदि हम प्रत्येक परमेश्वरीय पदार्थ को ज्ञान दृष्टि से देखें तो हम को ज्ञात होगा कि उन में अनेकान् गुण भरे हुए हैं और वह किसी विशेष कार्य की पूर्ति के लिये बनाये गये हैं जिन को हम जान कर बहुत प्रकार के सुख प्राप्त कर सक्ते हैं। प्यारे मित्रो! जब तुच्छ से तुच्छ पदार्थ भी कोई विशेष उद्देश्य रखता है तो यह स्वयं प्रश्न उत्पन्न होता है कि मनुष्य का मुख्य उद्देश्य क्या है? मनुष्य ही सम्पूर्ण सृष्टि में सर्व श्रेष्ठ माना गया है और वही इन्द्रिय विशिष्ट है।

इसी में विचार-शक्ति है। यही ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यही सम्पूर्ण जगत् के पदार्थों को काम में लाता है। इससे प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि मनुष्य का मुख्य उद्देश्य भी इन सम्पूर्ण पदार्थों से सर्व श्रेष्ठ ही होगा जिसका जानना मनुष्य मात्र के लिये अति आवश्यक है।

इस प्रश्न का उत्तर अनेक मनुष्य अनेकान् प्रकार से देते हैं। कोई कहता है कि मनुष्य का मुख्य उद्देश्य धन संचय करना है क्योंकि सर्व सुख धन ही से मिलते हैं, कोई २ स्त्री सुख को मनुष्य का मुख्य उद्देश्य समझते हैं क्यों कि रूप रसादिक इन्द्रियों के सुखकारक पांचों विषय एक स्त्री ही में एकत्रित हैं, इसी प्रकार बहुधा जन सन्तान और कीर्ति आदि को अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य समझकर उसकी प्राप्ति के अर्थ लगे रहते हैं, परंतु वास्तव में जिस भांति कामांध पुरुष काम की इच्छा पूर्ति के समान कोई अन्य सुख न समझ, उसी की प्राप्ति में लगा रहता है परन्तु जब उसकी इन्द्रियां शिथिल होजाती हैं तब उसको प्रतीत होता है कि वास्तव में यह इष्ट सुख नहीं था इस कारण जो कुछ मैंने अज्ञानता से कार्य्य किया वह व्यर्थ ही नहीं किन्तु वह दुःख का हेतु हुआ और उसके दुःखों से दुःखित होकर वह आयु पर्यन्त रुदन करता रहता है। इसी भांति अज्ञानी जन धन, सन्तान आदि को अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य समझ उसकी प्राप्ति के लिये अनेकान् कष्टों को सहन करता रहता है! अन्त को दुःख के अथाह समुद्र में गोते खाता हुआ लालसारूपी तरंगों द्वारा तृष्णा रूपी नदी में बहता हुआ अपने अमूल्य जीवन को समाप्त कर देता है। तो क्या यह उपरोक्त बातें मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश हो सकती हैं कदापि नहीं, कदापि नहीं, क्योंकि मनुष्य का मुख्य उद्देश वही हो सकता है जिसको प्राप्तकर अन्य किसी पदार्थ की इच्छा न रहे परन्तु शोक कि अज्ञानी पुरुष का ज्ञान शून्य होने के कारण उसके मर्म को नहीं जानते। हाँ, जिन पुरुषों ने ब्रह्मचर्य्य आश्रम में रह वेदादि विद्याओं को पढ़ ज्ञान से इन्द्रियों को निर्मल किया है वह कदापि उपरोक्त पदार्थों को मनुष्य जीवन का उद्देश्य नहीं समझते। देखिये महर्षि कपिल ने सांख्य दर्शन में कहा है, कि:—

त्रिविध दुःखात्यन्त निवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः

अर्थात् संसार में आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक तीन प्रकार के दुःख होते हैं-आध्यात्मिक वह दुःख हैं जो शरीरान्त में उत्पन्न हों जैसे ईर्षा, द्वेष, लोभ, मोह, क्लेश और रोगादि-आधिभौतिक वह दुःख होते हैं जो अन्य प्राणियों के संसर्ग से उत्पन्न होते हैं जैसे सर्प के काटने वा सिंह के मारने आदि से और आधिदैविक वह दुःख कहलाते हैं जो दैवी शक्तियों से उत्पन्न होते हैं जैसे अग्नि के लगने, ओले के गिरने आदि से। इन तीनों प्रकार के दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति का नाम मुक्ति है और इसी को प्राप्त करना **मनुष्य का उद्देश्य है।**

सज्जन पुरुषो! संसार के सम्पूर्ण मनुष्य दुःख से छूटने और सुख की प्राप्ति का सदा उद्योग करते हैं परन्तु उस मुक्ति सुख के प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं क्योंकि वह सुख सुगमता से नहीं मिलता अर्थात् उसका मिलना

कठिनाई से होता है इस पर तुर्रा यह है जो सामग्री मनुष्य को दी है उसके कारण वह और भी कठिन प्रतीत होता है सच मुच मनुष्य की दशा उस बटोही के समान है जो एक ऊंचे पहाड़ के शिखर पर चढ़ना चाहता है और उसके रथ, घोड़े इत्यादि समस्त सामग्री भी उसी प्रकार की है कि यदि रीत्यानुसार उनसे यथावत् कार्य्य ले तो वह उसको इष्ट स्थान पर आनन्द पूर्वक पहुंचा देती हैं और यदि उसमें तनिक भी असावधानता हो तो उसको अभीष्ट स्थान पर पहुंचनेके पलटे तत्काल उसको ऊंचे शिखर से गिराकर नष्ट भ्रष्ट कर देती हैं।

अब यहां मनुष्य रूपी शरीर रथ के समान, इन्द्रिय उसके घोड़े के तुल्य और मन सारथी है। जीवात्मा ऐसे अनुपम रथ में बैठकर अति ऊंचे शिखर अर्थात् मोक्ष सुख को प्राप्त करना चाहता है परन्तु मन अज्ञान के वशीभूत हो शारीरिक और मानसिक रोगों में फंसा जीवात्मा को मुक्ति सुख प्राप्त नहीं होने देता और कर्मानुकूल आवागमनरूपी चक्र में घुमाता रहता है जिस के कारण जीव को अनेकान् योनियों में जाना पड़ता है। शारीरिक और मानसिक व्याधियों के विषय में (अनेकान् ऋषियों ने उन की अच्छे प्रकार व्याख्या की है जिन के पाठ से इन दोनों व्याधियों के रोगों की प्रबलता प्रकट होती है) मैं यहां सन्क्षेप से वर्णन करता हूं परन्तु आप को यह जान लेना भी आवश्यक है कि शारीरिक व्याधियों से मानसिक रोग अति प्रबल और दुःख-दाई हैं, देखिये-शरीर में वात पित्त और कफके द्वारा अनेकान् व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं जिन से नाना प्रकार के क्लेश, उठाने पड़ते हैं इस के अतिरिक्त रज, तम, सत यह तीन गुण हैं जिन में से जब रजोगुण की वृद्धि होती है तो लोभ कर्मों में प्रवृत्ति अशांति और स्पृहा अर्थात् वस्तुओं में ममता और तमोगुण की प्रबलता में विवेक का नाश. अनुद्यम, प्रमाद और आवश्यक करने योग्य कर्मों में भूल उत्पन्न हो जाती है जैसा कि गीता अध्याय १४ श्लोक १२ व १३ में लिखा है।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ! ॥ १२ ॥
अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ १३ ॥

इस के अनन्तर शरीर की बाल, युवा और वृद्ध तीन अवस्थायें होती हैं जिन में बाल्यावस्था विवेक रहित होती है और जब युवावस्था का उदय होता है तब जिस भांति सूर्य्य के उदय होने पर सूर्य्यमुखी पुष्प खिल अपनी पखुरियों को पसारता है उसी प्रकार तरुणावस्था में मनुष्य को नाना प्रकार की इच्छायें उत्पन्न हो जाती हैं तथा कामरूपी पिशाच उस को स्त्री पर मोहित

कर देता है जिस से उस की दशा अग्नि कुंड में गिरे हुए मनुष्य के समान हो जाती है जिस से वह अनेकान् प्रकार के कष्ट भोगता है क्योंकि युवारूपी रात्रि को देख कर लोभ मोह और अहंकार आत्मज्ञानरूपी धन को चुरा ले जाता है इस पर एक और भी अचम्भा होता है कि जिस प्रकार बिजली का प्रकाश होकर मिट जाता है और समुद्र में तरंगें उठ कर विला जाती हैं उसी भांति युवावस्था भी होकर शीघ्र मिट जाती है और वृद्धावस्था आजाती है जिस से शरीर कृश हो जाता है रोग दिन रात्रि घेरे रहते हैं और क्रोध बढ़ जाता है तृष्णा की अग्नि प्रबल हो जाती है चारों ओर से दुःखों की घटायें घेर लेती हैं तिस पर कुटुंबी जन उस को ऐसे त्याग देते हैं जिस भांति पक्के फल को वृक्ष। अब आप मानसिक व्याधियों को सुनिये मनुष्य शरीर में दश इन्द्रियां हैं जिन में पांच कर्म इन्द्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रिय और ग्यारहवां मन है उन में से एक २ इन्द्रिय अपने विषय में लगी हुई मनुष्य का नाश मार देती है न कि सब। तिसपर तुर्रा यह कि आंखों को स्वरूप, कानों को प्रिय वाक्य, नाक को गंध, जिह्वा को मधुर रस और त्वचा को स्पर्श प्रिय है और यह सब विषय परमात्मा ने सम्पूर्ण सृष्टि में उत्पन्न किये हैं।

जिसमें अज्ञानी मन फंस जाता है जो बड़ा चन्चल और इन्द्रियों का प्रेरक है जिसके विषय में गीता में कहा है कि इसका वायु के समान रोकना अति दुस्कर है क्योंकि यह सर्वदा विषय के गिरद में उड़ता रहता है अर्थात् जिस प्रकार मोर का पंख पवन के लगने से नहीं ठहरता उसी भांति यह मन भी सदैव स्थिर नहीं रहता और जिस भांति श्वान द्वार २ पर भटकता फिरता है उसी प्रकार यह भी पदार्थों के प्राप्त करने के लिये चलायमान रहता है। और जिस प्रकार थम्भे से बंधा हुआ बानर कभी भी स्थित होकर नहीं बैठता उसी के सदृश मन वासनारूपी खम्भे के सहारे लगा हुआ कदापि स्थित होकर नहीं बैठता जिस भांति समुद्र में प्रचन्ड वायु के वेग से तरंगें उठकर उसके तटस्थ वृक्षों से टकरा कर उनको बहा ले जाती हैं इसी प्रकार यह तृष्णा की तरंग वैराग्य, विचार, धैर्य और सन्तोष को बहा आत्मानन्द से दूर ले जाती है। इस के उपरांत मनरूपी एक समुद्र है जिसमें वासना रूपी अथाह जल भरा है उसमें छल के मगर किलोलें करते हैं जब जीव उसके समीप जाता है तब भोग रूपी मगर उसको काट खाता है जिसके कारण तृष्णारूपी विष फैल जाता है फिर सहस्रों मनुष्य मरते चले जाते हैं इसके सिवाय मन कभी २ त्यागी बनकर बैठ रहता है परंतु फिर जब भोग को देखता है तब वह ऐसा गिरता जैसा कि आकाश में उड़ता हुआ गिद्ध पक्षी मांस की लोथ को देख तुरन्त गिर उसको ले फिर उड़ जाता है सच तो यह है जिस भांति निर्बुद्धि सारथी अपने कुचाली घोड़ों को कुचाल से रोकने की सामर्थ्य न रख कर सम्पूर्ण रथादि को विध्वंस करा

देता है उसी प्रकार ठीक विकारी मन इन्द्रियों को विकारी बना अपना अनुगामी कर मनुष्य जीवन के मुख्य उद्देश का नाश मार देता है ।

पाठक गण इस लेख के पढ़ने से यह जान गये होंगे कि मुक्ति का प्राप्त करना असम्भव और कथन मात्र है ।

परन्तु वास्तव में यह दशा नहीं जैसे अज्ञानी वैद्य कि जिसने वैद्यकशास्त्र को नहीं विचारा छोटे से छोटे रोगों को भी निवारण करना कठिन और असम्भव जानता है ऐसेही यह पुरुष जो दुःख और सुख के उत्पन्न होने के स्थान को नहीं जानते वह उन दुःखों से छूटना असम्भव कहते हैं । परन्तु जो उन के कारणों को जानते हैं वह अवश्य दूरकर सकते हैं । दृष्टान्त केलिये आप देखिये कि जो जन कृषि विद्या में प्रवीण हैं वह उसके उत्पन्न होने वाले रोगों के कारणों को प्रथम ही से जानते हैं जिससे वह उन कारणों को उत्पन्न होने नहीं देते अर्थात् रोगों के कारणों का नाश करते रहते हैं जिससे यह रोग होने ही नहीं पाते जिसके कारण वह उन रोगों के दुःखों से बचे रहतेहैं यदि किसी असावधानी से कोई रोग उत्पन्न भी हो जावे तत्काल उसको उचित उपाय से इस प्रकार से दूर करते हैं जिससे उनको कुछ भी कष्ट नहीं उठाना पड़ता । परन्तु जो कृषिविद्या को नहीं जानते वह उसमें उत्पन्न होने वाले रोगों के कारणों को भी नहीं जानते जिससे उन रोगों को निवारण नहीं कर सकते उसका प्रतिफल यह होता है कि उसमें नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं और अज्ञान वश उनका उचित उपाय न कर विपरीत कार्य करने से वह रोग और भी प्रबल हो जाते हैं जिससे वह अनेक प्रकार के कष्टों को उठाते हैं इसीप्रकार जो शारीरिक और मानसिक दुःखों के कारणों को न जान कर उनके दूर करने का विपरीत कार्य करते हैं वह अनेकों प्रकार के दुःखों में फंसकर बहु भांति के कष्टों को सहन कर सुख के स्वप्न में भी दर्शन नहीं करते ।

बहुधा हमारे भाई दुःख की अत्यन्त निवृत्ति अन्न और औषधि आदि प्राकृतिक पदार्थों से मानते हैं परन्तु यह ठीक नहीं क्योंकि सांख्य दर्शन अ० १ सूत्र २ में महर्षि कपिल महाराज कहते हैं कि—

न दृष्टान्तत्सिद्ध निंवृत्तेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात् ।

दृश्य पदार्थों अर्थात् औषध्यादि द्वारा दुःख का अत्यन्त अभाव हो जाना सम्भव नहीं क्योंकि जिस पदार्थ के संयोग से दुःख दूर होता है । उसके वियोग से वह दुःख फिर उपस्थित हो जाता है जैसे अग्नि के निकट बैठने या कपड़े के संसर्ग से शीत दूर हो जाता है और अग्नि और कपड़े के पृथक् होने से फिर वही शीत उपस्थित हो जाताहै अतएव दृश्य पदार्थ दुःख की औषधिनहीं।

इस लिये सब से प्रथम दुःख उत्पन्न का कारण विचार फिर उसका ठीक उपाय करने से ही पूर्ण सुख की प्राप्ति हो सकती है-इस विषय में महर्षि पातं-

जलि जी कहते हैं कि सम्पूर्ण दुःखों के उत्पन्न का स्थान अविद्या है जैसा कि—

अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ।

इसी अविद्या के कारण मनुष्यों ने अपने मन में अनित्य संसार को नित्य निश्चय कर लिया है—इसी प्रकार जिन स्त्रियों से सदा अपवित्र वस्तु निकला करती है उनको सुन्दर मान भोग विलास के योग्य ठहरा लिया है यही मनुष्यों को नाना प्रकार की चाहना और विषयों में फंसाती है जिसके पूर्ण करने में बुद्धिहीन मनुष्य सच्ची प्रसन्नता और आनन्द का प्राप्त करना समझते हैं जिसके कारण दुःख के समुद्र में गोता खाते रहते हैं और आत्मा के हित का कुछ विचार नहीं करते क्योंकि वह इन्द्रियों के भोग से परे कोई सुख नहीं समझते और न इस संसार से परे कोई संसार मानते हैं जैसा कि महर्षि पातंजलि ने योगदर्शन में कहा है—

अनित्याशुचि दुःखानात्मसुनित्य शुचि सुखात्मख्यातिरविद्या

इसी कारण तो मनुष्यों ने धन स्त्री आदि जो दुःख देने वाले हैं सुख का कारण समझ रक्खा है। वास्तव में लक्ष्मी देखने मात्र ही सुन्दर है और जब घर आती है तो सम्पूर्ण सद्गुणों का नाश कर देती है और जिस प्रकार विष की लता देखने मात्र सुन्दर और खाते ही मार डालती है उसी प्रकार लक्ष्मी के प्राप्त होने से आत्मा पदका नाश हो जाता है। जिस प्रकार दीपक प्रज्वलित होने की दशा में प्रकाश मालूम होता है और जब दीपक बुझ जाता है तब प्रकाश का अभाव हो जाता है और उस का विकार काजल रह जाता है उसी प्रकार जब लक्ष्मी प्राप्त होती है तब बड़े २ भोग भुगवाती है फिर उस से तृष्णारूपी काजल उत्पन्न होजाता है और लक्ष्मी तो अस्थिर है नाश हो जाती है, नो तृष्णारूपी काजल रह जाता है जिस से कभी शांति प्राप्त नहीं होती और जन्म जन्म जन्मान्तर में दुःख उठाने पड़ते हैं जिस प्रकार खड्ग की धारा देखने में सुन्दर होती है परन्तु स्पर्श करते ही नाश कर देती है इसी भांति लक्ष्मी स्त्री आदि पदार्थ अविद्या ही के कारण उत्तम भासते हैं जो लुभाने वाले हैं इसी लिये ऋषियों का सिद्धान्त था कि वह लोग सदा दुःखी हैं जो अविद्या की उपासना करते हैं—जैसा कि—

अन्धंतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।

इसी हेतु सांख्य दर्शन अ० ३ सूत्र २३ में कहा है कि ज्ञानान्मुक्तिः अर्थात् ज्ञान ही द्वारा मुक्ति होती है।

क्योंकि महर्षि कपिल ने कहा है कि तत्व ज्ञान से मिथ्या ज्ञान का नाश हो जाता है और फिर उससे राग व द्वेष आदि दोषों का नाश हो जाता है और दोषों के नाश से प्रवृति का नाश और उसके नाश होने से कर्म बंद हो जाते हैं

जिस के न होने से जन्म मरण नहीं होता और जन्म मरण न होने से दुःख का नाश हो जाता है जैसा कि:—

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानाना मुत्तरोत्तरापायेतदन्तरा भावादपवर्गः।

जिस मनुष्य को ज्ञान उत्पन्न हो जाता है वह शान्तिवान और निर्लेप होता है जिस से संसार का भावाभाव रूप स्पर्श नहीं करता जैसे आकाश में सूर्य उदय होने से सब जगत् की क्रिया होती हैं और उसके छिप जाने पर जगत् की क्रिया भी लीन हो जाती है परन्तु जिस प्रकार जगत् की क्रिया के होने और न होने में आकाश ज्यों का त्यों बना रहता है उसी भांति ज्ञानवान सदा निर्लेप रहता है। क्योंकि ज्ञान द्वारा उस को ज्ञात हो जाता है कि कौन वस्तु सुखदायक और कौन दुःखदायक है—जिस प्रकार से शारीरिक रोग द्रव्य और युक्ति दोनों का आश्रय ले औषधियों का प्रयोग करने से शान्त हो जाते हैं और मानसिक रोग ज्ञान (आत्मज्ञान) विज्ञान (श्रुतिज्ञान) धैर्य (संतोष) स्मृति (धर्म शास्त्र) और समाधि (सांसारिक विषय वासनाओं से चित्त का आकर्षण) से शान्त हो जाते हैं जैसा कि चरक सूत्र स्थान अ० १ में कहा है।

प्रशाम्यत्यौषधैः पूर्वो द्रव्ययुक्ति व्यापाश्रयैः।
मानसोज्ञान विज्ञान धैर्यस्मृत समाधिभिः॥

प्रिय पाठक गणों! अनेकान् पुस्तकों का पढ़ना ज्ञान नहीं है न यह ज्ञान है कि किसी मनुष्य में इतनी प्रबल कथन शक्ति है कि वह प्रत्येक मनुष्य को जो उसके सन्मुख आता है परास्त कर देता है वास्तव में ज्ञानी वह है जिस के सिद्धान्त पवित्र हों तथा जो नियम पूर्वक सदा उत्तम कार्यों को करता हो। क्योंकि धार्मिक कार्यों के करने ही से मन और इन्द्रियों में कोई विकार उत्पन्न नहीं होने पाता वरन् उन की शक्ति बढ़ जाती है जिस के कारण वह पदार्थों के यथार्थ ज्ञान कराने में सहायक होती हैं।

इस ज्ञान के प्राप्त होने के लिये ऋषियों ने वेदानुकूल मनुष्य मात्र को उपदेश देकर बतलाया कि ईश्वर सर्वज्ञ है जो सर्वव्यापक, सर्व समार्थ्यवाला और सत्यदर्शी है वह सब जीवों के सब कर्मों को जानता है उसी के अनुकूल सब को यथोचित फल देता है जो ज्ञान के नेत्रों से जाना जाता है और योग समाधिस्थ पुरुषों को उसका साक्षात् बोध होता है, वह परमात्मा जन्म मरण आदि क्लेशों से रहित है जो ३३ व्यवहारिक देवों का भी देव है उस की स्तुति प्रार्थना और उपासना सब को करना योग्य है वह बिना पैरों के चलता है बिना हाथ के सब कुछ करता है जीभ बिना रसों के स्वादों को चखता है नेत्र बिना सर्वत्र देखता है वह कभी अवतार नहीं लेता समुद्र के भीतर पहाड़ों की

कंदराओंमें उस की आज्ञा का उल्लंघन करने वाला दंड पाता है यह सूर्य, चांद और सम्पूर्ण तारे उसी ही की करतूत है वह नित्य है जो सदा एक रस रहता है, जीव उस की आज्ञा पालन करने से मुक्ति को पाता है और उस की आज्ञा का भंडार वेद है उस के ही पठन पाठन और विचार से सांसारिक और पारलौकिक ज्ञान की प्राप्ति होती है, और उन्हीं के अनुकूल ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास यह चार आश्रम और ब्राह्मण, क्षत्री वैश्य और शूद्र चार वर्ण हैं, प्रथम सब को यथावत् ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर गुरुकुलों में रह कर गुरु और गुरुपत्नियों की सेवा कर वेदादि विद्याओं को, पढ़, गुण, कर्म और स्वभाव को मिलाकर स्वयम्बर की रीति से विवाह करना उचित है फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर ऋतुगामी होकर सन्तानों को उत्पन्न करना अभीष्ट है यही आश्रम संसार का आधार है सम्पूर्ण जीव जन्तुओं का स्थान है इसी को श्रेष्ठ आश्रम कहते हैं इस के सुधार से जगत् का उद्धार होता है। स्त्री गृह की लक्ष्मी है, उस का आदर सत्कार करना धर्म है और स्त्री का पति ही देवता है यह स्वर्ग को पहुंचाता है इस लिये स्त्री का परम धर्म यही है कि पति की सदा सेवा करती रहे यही उसका तीर्थ और उन के लिये व्रत है। गृहस्थ का आनंद पति पत्नियों के सच्चे प्रेम पर निर्भर है उन्हीं घरोंमें लक्ष्मी, सुख, सम्पति ठहरती है जहां दोनों में प्रेम होता है दोनों को समान अधिकार हैं इस लिये दोनों मिलकर इस आश्रम के धर्मों को पालन करते रहें, पंच कर्मों के करने में सदा ध्यान बनाये रहें। जल और मिट्टी से शरीर शुद्ध होता है मन सत्य से पवित्र रहता है, सब शुद्धियों में द्रव्य शुद्धि सर्वोपरि है, इस लिये अन्य के द्रव्य को मिट्टी के ढेले के समान जान सदा त्यागने वाला ही शुद्धी के आनंद को पाता है।

काम से बचो क्योंकि जिस प्रकार धूम से अग्नि और मल से दर्पण, उल्व से गर्भस्थ बालक आच्छादित रहता है उसी भांति काम से ज्ञान छिप जाता है। इसके उपरान्त जो कुछ परिश्रम करने पर मिले उसी में संतोष करो क्यों कि जो आनन्द अमृत पान करने और त्रिलोकी के राज्य मिलने से नहीं होता जो आनन्द सन्तोषवान को प्राप्त होता है। वास्तव में इच्छारूपी रात्रि है जो हृदयरूपी कमल को सकुचा देती है फिर जब सन्तोषरूपी सूर्य का उदय होता है तब इच्छारूपी रात्रि का अभाव हो जाता है फिर सुख ही सुख दृष्टि आता है। शीत उष्णादि क्लेशों का सहन करो मन को रोक प्राकृत पदार्थों पर मोहित न हो, सदा अहिंसा धर्म का पालन करो, कभी मिथ्या न बोलो, सत्य को धारण करो क्योंकि धर्म की जड़ सत्य है। यम और नियम के पालन का सदा ध्यान बनाये रहो। बड़ों की सेवा और अतिथि सत्कार में लगे रहो नित्य प्रति चिरकाल तक शरीर में बल देनेवाले पथ्य भोजनों का सेवन करो और मांस मदिरा आदि हानिकारक पदार्थों को विषवत् त्यागो देश काल

इसी प्रकार के उपदेश करते हुए वेदों से घृणा कराने के लिये लिख मारा कि तीन पुरुष वेदों के बनाने वाले हैं भांड़ धूर्त और निशाचर। देखा कि:-

त्रयोवेदस्य कर्त्तारो भांड धूर्त निशाचराः।

इस के अनन्तर स्वार्थी मनुष्यों ने वेदों के अर्थ भी अपने स्वार्थ साधन के कर दिये जैसा कि यज्ञ के समय में यजमान की स्त्री घोड़े से समागम करे इत्यादि। कि जिन को सुन कर लोगों की, वेद पढ़ने और उन के सुनने की भी अश्रद्धा हो गई जिस से वेदों का मान्य लोगों के हृदय से उठ गया फिर क्या था फिर तो खूब विषयानन्द में मग्न होकर अच्छे प्रकार वाममार्ग का प्रचार करने में लग गये और बहुत काल तक उस का प्रचंड प्रवाह चलता रहा जिस से देश की अत्यन्त दुर्दशा हो गई जिस को देख बुद्धदेव जी के हृदय में धर्म की उमंग उठी और उनका दयावान मन इस को न सह सका अतः उन्हों ने उपदेश करना आरम्भ किया और प्रबल युक्तियों से वाम-मार्ग का ऐसा खंडन किया जिससे उनको बड़ी सफलता हुई।

परन्तु उन्हों ने अपने उपदेश को वेद के आश्रय नहीं किया तथा ईश्वर का नाम तक न लिया केवल इन्द्रिय दमन और मन को पवित्र रखने, और अहिंसक होने के विषय में उपदेश देते रहे इसी कारण उनके स्वर्गवास होने के पीछे उन के शिष्यों ने उनको नास्तिक समझ नास्तिकता का उपदेश दिया जिसके कारण समस्त देश में नास्तिकता फैल गई।

इसी बीच स्वामी शङ्कराचार्य जी ने उपदेश देना आरम्भ किया और ईश्वर को अनादि जगत् का कर्त्ता ठहरा जगत् और जीव को मिथ्या बतला उन को परास्त कर दिया और जैन मत को दबा दिया, परन्तु इस मायावाद की युक्ति ने स्वयं सब को ब्रह्म बना दिया जिसके कारण सत्कर्मों के करने की आवश्य-कता ही न रही मनुष्य आलसी बन गये, फिर राजा भोज के समय में कालि-दास इत्यादि की विषय रस कविता फैलने लगी और आर्य सन्तान विषया-सक्ति वाले तथा ललित ग्रन्थों पर झुकने लग गई।

जिसको देख स्वार्थी ब्राह्मणों ने मीठी कविता में भागवत आदि अठारह पुराण रच भारत को पुराणोंकी टकसाल बना वाममार्गको फिर से जगा दिया और ऐसे २ सिद्धान्त वर्णन किये जो वेदों के विपरीत और बुद्धि बिगाड़ने वाले थे फिर क्या तो भारत में फूट का बाजार गर्म हो गया कोई इधर को खेंचता है तो कोई उधर को। कोई देवी के गुण गाता है तो कोई शिव की महिमा वर्णन करता है यह रोला यहां तक मचा कि एक दूसरे का मुंह देखना पाप समझने लग गये। फिर परस्पर मिलना विचार करना कैसा। प्रत्येक के धर्म-चिन्ह पृथक् नियत हो गये जिसका प्रतिफल यह हुआ कि द्वेष की अग्नि गृह २ नगर २ देश २ में प्रज्वलित हो गई एकता का नाम भी न रहा जो उन्नति का सबसे बढ़िया साधन था।

पाठकवृन्द ! क्या कहें, क्या लिखें, क्या सुनावें, इन वेद विरुद्ध पुराणों की शिक्षाओं ने भारत सन्तान को धर्म-मार्ग से पृथक् कर तथा सम्पूर्ण देशों में प्रसिद्ध इस भारत के मुकुट को गिरा और वेदोक्त शिक्षाओं से विमुख कर ऋषि सन्तानों को घोर नरक में डाल दिया। देखिये वेदों में न्यून से न्यून पुत्रों को २५ और पुत्रियों को १५ वर्ष ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण कर गुरुकुल में विद्या पढ़ा गुण, कर्म स्वभाव के अनुसार स्वयम्वर की रीति से विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की आज्ञा थी जिस से यह श्रेष्ठ आश्रम उत्तमता से पूरा हो और सन्तानें बलवान, निरोग, प्रेम, भक्ति साहस आदि गुणों से परिपूर्ण हों वहां पुराणों ने अष्टवर्ष का उपदेश देकर बिना गुण, कर्म, स्वभाव के विवाह करने का उपदेश किया जिससे ब्रह्मचर्य और विद्या अर्थात् शारीरिक और आत्मिक दोनों बलों का नाश होगया और सन्तानें निर्बुद्धि, कुमार्गी साहस हीन उत्पन्न होने लग गईं। माता पिता में प्रेम नहीं, स्त्री पुरुष में द्वेष उत्पन्न हो गया अर्थात् जहां पूर्व काल में गृहस्थाश्रम सुख और आनन्दों का केन्द्र समझा जाता था वहां अब रौरव नरक बन गया क्योंकि वहां अब प्रतिदिन ईर्षा, द्वेष, लोभ और मोह के प्रचंड वेग ऐसा रोला मचाये रहते हैं जिसका कुछ पारावार नहीं इसके उपरान्त वेदों में मांस खाने और नशे पीने का निषेध है परन्तु पुराणों में उनके खान पान की आज्ञायें मिलती हैं जिसके प्रभाव से भारतवासी उनका अच्छे प्रकार सेवन करने लग गये जिससे उनकी बुद्धि भी और भी भ्रष्ट होगई और अहिंसा धर्म का नाम ही रहगया, मनुष्यों के हृदय कठोर होगये दया के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते।

घृत और दुग्धादि पदार्थों का अभाव होने के कारण यज्ञ भी उत्तम रीतियों से नहीं होते जिससे उत्तम वृष्टि समय पर नहीं होती इस हेतु पदार्थों के गुणों में बहुत अन्तर पड़गया जिसका प्रभाव यह होता जाताहै कि मनुष्यों के शरीर और बुद्धि घटती जाती है। और नित्य प्रति दुर्भिक्ष पड़ते रहते हैं। जिस के कारण सहस्रों प्रजा भूख के मारे यमपुर कोचली जाती है हजारों ईसाइयों के पन्जे में फंसते हैं, रोगों की इतनी बहुतायता हो गई है कि जिस से पीड़ित होकर प्रजा में त्राह त्राह पड़ी रहती है। वेदों में सत्य बोलने, पर द्रव्य को न ग्रहण करने, धर्म पूर्वक धन कमाने और स्व स्त्री के साथ ऋतुगामी हो कर सन्तान उत्पन्न करने आदि को व्रत बतलाया है। परन्तु पुराणों में भूखे रहने अथवा बिना अन्न जल के दिन रात व्यतीत करने को व्रत बतलाया है जिनके महात्म्य भी पृथक् २ लिखे हैं उन में यहां तक लिख दिया है कि इन साधनों से स्वर्ग धाम की प्राप्ति होती है जिसके कारण हमारे भाई और बहिन प्रतिदिन किसी न किसी व्रत में लगी रहती हैं परन्तु उपरोक्त सत्य व्रतों के पालन की कुछ आवश्यकता ही नहीं रही इसी कारण समस्त भारत में असत्य का राज्य हो रहा है। मनुष्य यहां तक अधोगति को पहुंच गये कि प्रत्येक को

यही कहते पाते हैं कि सत्य व्यवहारों से तो रोटी नहीं मिलती जिसके कारण सम्पूर्ण देश से विश्वास उठ गया मनुष्यों के चित्त को धन ने खैंच लिया जिसके कारण धन ही कर्म, और धर्म होगया जहां जाइये तहां धन हरण का स्वांग दृष्टि आता है बड़ेर पण्डित साधू इत्यादि भी धर्म को तुच्छ समझ धन पर मरते हैं।

जहां वेदों में नियम, यम इत्यादि के पालन योगाभ्यास से मुक्ति मिलना बतलाया है वहां पुराणों ने किसी कथा के सुनने वा किसी विशेष स्थान पर जाने वा शिवादि के दर्शन करने वा जल चढ़ाने वा दान देने से ही मुक्ति प्राप्त होना लिख दिया फिर धर्म की क्या चिन्ता ?

वेदों ने स्त्रियों को समस्त विद्या पढ़ने का अधिकार और पति सेवा करना ही परम धर्म बताया है वहां पुराणों में स्त्री को शूद्र बनाकर विद्या से विमुख कर नाना भांति के तीर्थों के दर्शन, गंगा आदि के स्नान, एकादशी इत्यादिक के व्रतों से मुक्ति का मिलना बतला दिया जिस के कारण स्त्री को पति सेवा की चिन्ता ही नहीं फिर आज्ञा मानना कैसा। बेचारी रात दिन तुलसी शालिग्राम आदि कथा और गुरुजी की चरण सेवा में लगी रहती है जिस के कारण गृहस्थाश्रम दुःख का समुद्र बन रहा है।

वेदों में गुण कर्म और स्वभाव से ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र नियत किये थे पुराणों ने जन्म से वर्णों को बता दिया जिस के कारण ऊंच वर्ण तो अभिमान में डूब गये और विद्या आदि शुभ गुणों के धारण करने की उन को आवश्यकता ही न रही। रहे नीच वर्ण उनको पढ़ाने और पढ़ने की आज्ञा ही नहीं फिर क्या सारा भारत सत कर्म और सत विद्या से शून्य हो गया।

वेदों में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ के पश्चात् क्रम से वानप्रस्थ और संन्यास धारण कर संसार में उपदेश करने की आज्ञा है अथवा पूर्ण वैराग्य होजाने पर ब्रह्मचर्य से ही संन्यास धारण करने का उपदेश है, परन्तु पुराण शिक्षा का यह फल हो रहा है कि बिना आश्रमों को पूर्ण किये १० वा १५ वर्ष की आयु में कपड़े रंग मूड़ मुड़ा चीमटा हाथ में ले बाबाजी बन देश के सुधार करने के स्थान में नाना भांति से देश का नाश मार रहे हैं। सच्चे गुरुओं का अभाव हो गया नाम मात्र के गुरु रह गये जो गले में कंठी बांध दक्षिणा लेना ही धर्म समझते हैं। इधर स्त्रियों को भी चेली बना तन मन और धन अर्पण करा आनन्द उठाते हैं। वेदों में व्यावहारिक ३३ देव हैं, उनमें भी केवल एक सर्वशक्तिमान परमेश्वर देव की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करने की आज्ञा है। परन्तु पुराणों में ईश्वर को साकार बतला कर उन के अवतारों और नाना देवों की मूर्तियों की पूजा कह कर पशुओं और वृक्षादि के पूजने का उपदेश है जिस के कारण मनुष्य ईश्वर की सच्ची महिमा और उपासना को छोड़ प्रकृति की पूजा में लग गये जिस के कारण अनेकान् दुःखों को भोग रहे हैं देखिये यजुर्वेद अ० ४० मं० ६ में कहा है—

अन्धन्तमः प्रविशन्तियेसम्भूतिमुपासते । ततोभूय इवतेय उसम्भूत्या ७ रताः ॥

अर्थात् अंधकार रूपी कुण्ड में वही लोग गिरते हैं जो परमाणुओं की पूजा को ही सृष्टि का आदि मूल कारण समझ कर करते हैं और उन से बढ़कर परम अंधकार रूपी कुण्ड में वह पड़ते हैं जो परमाणुओं से बने हुए पदार्थों को परमेश्वर समझ कर उन की पूजा करते हैं जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में मनुष्य आनन्द पूर्वक अपना कार्य्य करते और निर्भय होकर रहते हैं परन्तु जब सूर्य अस्त हो जाता है तो मनुष्यों को अपने कार्य्यों की पूर्तियों के लिये सहस्रों दीपक जलाने पड़ते हैं तिस पर भी आनन्द पूर्वक कार्य्य नहीं कर सकते क्योंकि दीपकों का प्रकाश थोड़ी दूर तक ही होता है अन्यत्र अंधकार ही अंधकार दृष्टि आता है । इस कारण जब उन को उन दीपकों से शांति नहीं होती तो उनके दोषों के दूर करने का यत्न और बड़े परिश्रम के पीछे झाड़ फानूस और लैम्प आदि तय्यार करते हैं, परन्तु फिर भी उनको पूर्ण शांति नहीं होती क्योंकि इन उपरोक्त झाड़ फानूस और लैम्पादि से भी तो अन्धकार का सर्वनाश नहीं होता । इस के अतिरिक्त चिरागों और लैम्पों में जहां तक सूर्य का अंश है वह सुखदाई व प्रकाश स्वरूप है, अन्य अनेक प्रकार से रोगकारक वस्तु उन से उत्पन्न होकर दुःखदाई हैं । ठीक इसी प्रकार वेदरूपी सूर्य के छिप जाने पर अविद्या अंधकार से दुःखित होकर अनेकान् पुरुषों ने मतमतान्तर रूपी चिरागों को मनुष्यों के सुख देने के लिये जलाया जिस से अच्छे प्रकार ज्ञात हुआ कि जहां तक इन में वेदों का अंश था वहीं तक वह मनुष्यों की आत्मा को शांति दे सकते हैं अन्यथा वह अनेकान् विघ्न उत्पन्न करते हैं इस प्रकार जब मनुष्यों की इन कई सहस्र मतमतान्तरों से भी शांति न हुई और प्रत्येकके ऊपर मनुष्यों को चलाने पर और नये प्रकार के विघ्न उतपन्न हुये तब मनुष्यगण और शोकसागर में डूबनेलगे जिस प्रकार मृग वैशाख जेष्ठ की तीव्र धूपमें अपने अज्ञान के कारण वालू को जल समझ अपनी प्यास शान्ति के अर्थ बड़ी दूर से प्रसन्न होकर भागता है और समीप पहुंच ने पर जब जल नहीं मिलता तो फिर दूसरे वालूके ढेर कोजल समझ उसकी ओर दौड़कर जाता है पर जब उसको वहां भी जल की प्राप्तिनहीं होती तो अन्यत्र अनेक ढेरों पर दौड़ २ कर जाता है परन्तु उसकी प्यास जब कहीं भी शांत नहीं होती तब वह निरास हो कर साहस हीन हो गिरपड़ता और शिथिल हो कर बैठ जाता है ।

इसी प्रकार जब मनुष्य आत्मिक शांति के लिये इन मतमतान्तरों में गये और फिर कहीं भी उनकी आत्मा को शांति न हुई तो फिर थकित होकर बैठ रहे और ब्रह्म को प्राप्त करने का उद्योग ही छोड़ दिया ।

इस निर्बल दशा में मुसलमानों ने आक्रमण किया जहां फूट का बाजार गर्म

छोड़ता था। हिन्द को अपने आधीन कर आर्य्य सन्तान को अपना सेवक बना लिया और उन का धन दौलत छीन सहस्रों को मरवा डाला, सहस्रों ने दीन इसलाम स्वीकार किया हजारों ने मुसलमान बनना अस्वीकार किया जिस के कारण उनके सिर तलवार से काट दिये गये, धार्मिक पुस्तकों को जलवा दिया गया अर्थात् इस भांति आर्य्य सन्तान धर्म कर्म को तिलांजली दे राजा से प्रजा बन गई इसी बीच ईसाइयों ने आकर उपदेश करना आरम्भ किया फिर तो धर्म का रूप कुछ और ही होगया और प्रभु ईसामसीह के गुण गाने लग गये।

प्यारे सज्जन पुरुषों! यह भी ईश्वरीय नियम है कि अत्यंत अंधकार के पीछे प्रकाश और दुःख के पश्चात् सुख आता है, उसी के अनुकूल जब भारत सन्तान दुःख भोगते २ अपार दुःखों में फंस गई तब परमेश्वर ने अपने अनुग्रह से ऋषिदयानन्द को भेजा कि जिसने ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण कर वेदों के ज्ञान से प्रकाशित हो अपने विद्या गुरु **श्री १०८ स्वामी विरजानंद सरस्वती** की आज्ञा सिर पर धर भारत की दुर्दशा को देख उसने भ्रमण कर वैदिक धर्म का उपदेश करना आरम्भ किया और पच्चीस वर्ष लगातार परिश्रमकर वेदरूपी सूर्य का प्रकाश कर सारे संसार की आत्माओं को शांति मिलने का एक मात्र उपाय बतला दिया जिस के कारण अब समस्त भूगोल में वेदों की महिमा फैलती जाती है।

जिससे आशा होती है कि थोड़े काल में सम्पूर्ण आत्मायें आत्मिक बल प्राप्त कर शांति लाभ कर पूर्ण सुख को प्राप्त करें अब प्रत्येक मनुष्य को यह सुनने की उत्कंठा अवश्य उत्पन्न हो गई होगी कि उक्त महात्मा कौन थे और उन्होंने किस प्रकार विद्या और योग की प्राप्ति कर **भारत देश में** किस भांति वैदिक धर्म का प्रचार किया जिसके कारण उनको क्या २ कठिनाइयां उठानी पड़ीं, इन सब बातों के जानने के लिये ही इस पुस्तक के लिखने का मुख्य अभिप्राय है। आशा है कि आप ध्यान पूर्वक इस का पाठ कर मुझ को कृतार्थ करेंगे और उक्त महात्मा के सच्चे विचारों को पूर्ण करने के अर्थ तन-मन-धनसे सहायता कर आप भी कृतकृत्य होंगे। ओ३म् शुभम्।

आप का सच्चा शुभ चिंतक—

चिम्मनलाल वैश्य,

तिलहर [शाहजहांपुर]

ओ३म्

न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदन्न धीराः ।

The founder of the Arya Samaj.

महर्षि श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती ।

जन्म संवत्
१८८१ वि०

मृत्यु संवत्
१९४० वि०

GLO-ORIENTAL PRESS, LUCKNOW.

श्री १०८ महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का

जीवन-चरित्र ।

पद्य पुष्पांजलिः

यदीयं प्रकाशेन सूर्यादिलोकाः, प्रकाशं लभन्ते निजालोक शून्याः। तमीशं समाश्रित्य सौख्याब्धि मग्नं, भजेतं दयानन्दमीड्यं मुनीशम् ॥ १ ॥

भावार्थ—अपने प्रकाश से रहित सूर्यादिलोक जिस के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं उस प्रसिद्ध ईश्वर का आश्रय करके जो सुख के समुद्र में मग्न हुए ऐसे स्तुति योग्य मुनीश दयानन्दजी को हम सेवन करते हैं ॥ १ ॥

निराकारभूतेश भक्ति प्रसक्तं, प्रसक्तं स्वदेशोन्नतौ सर्वभावै। रनासक्तबुद्धिं च लोकैषणायां, भजेतं दयानन्द मीड्यं मुनीशम् ॥ २ ॥

भावार्थ—निराकार परमात्मा की भक्ति में जो लगे हुये थे, तथा सब तरह से जो निज देश की उन्नति में तत्पर थे, जिनकी बुद्धि लोकों (शिष्यादिकों) की इच्छा वाली न थी, उन स्वामी० ॥ २ ॥

कृतायेन कामादि शत्रु प्रहाणिः, धृतायेन शुद्धात्मिका वेद वाणी। धुतायेन मोहादि मालिन्यबुद्धिः। भजेतं० ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिन्हों ने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, और मानरूपी ६ शत्रुओं को नष्ट कर शुद्ध वेदवाणी को धारण किया। जिन्होंने लोगों की मोहादि से उत्पन्न मलिन बुद्धि को हटा दिया, उन स्वामी० ॥ ३ ॥

अहोयस्य नाम्न्येव काचिद्विचित्रा, पवित्राच शक्तिः स्थितायज्जनोऽयम्। स्मरन्नेव दुर्भावरीतिंधुनोति। भजेतं० ॥ ४ ॥

भावार्थ—अहो ! जिनके नाम में ही एक अलौकिक आश्चर्यरूप और पवित्र शक्ति रक्खी हुई है, जिसको स्मरण करते ही मनुष्य अपने (मन के) खोटे भावों को नष्ट करते हैं, उन स्वामी ॥ ४ ॥

यदग्रे स्थिता नैवतृष्णापिशाची, तदग्रे कुतःस्यादविद्या प्रभावः। रजोयेनधूतं गुरोर्नीरजस्काद् । भजेतं० ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिसके सन्मुख तृष्णारूपिणी पिशाची खड़ी ही नहीं रही, उसके सन्मुख उसकी सहचारिणी अविद्या क्योंकर रह सकती थी। जिसने रजोगुण शून्य (विरजानन्द) गुरु से, अपने रजोगुण (और तमोगुण) को नष्ट किया, उस स्वा० ॥ ५ ॥

तथा द्वादशात्मप्रभाभिः समस्तं, तथा यस्य विज्ञानभाभिर्निरस्तम् । जगत्या महामोहजालंतमिस्त्रं । भजेतं० ॥ ६ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य्य की किरणों से सन्सार में अन्धकार दूर होता है वैसे जिस की विज्ञान रूपी किरणों से महामोह समूह रूप अन्धकार दूर हुआ, उस स्वामी० ॥ ६ ॥

यथा निर्मले दर्पणे भातिसूर्यप्रकाशस्तथाभाति नैर्मल्ययुक्ते। जनानांत्र चित्ते यदीया सुवित्तर्भजेतं० ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे निर्मल शीशे में सूर्य का प्रकाश (अधिक) प्रकाशित होता है वैसे ही जिसका ज्ञान रूपी प्रकाश लोगों के निर्मल चित्त में प्रकाशित होता है, उन स्वामी० ॥ ७ ॥

यदीयःप्रयत्नःपरेभ्योहिताय ऽभवद् यस्य कीर्तिश्च सर्वत्र देशे । यदीया मनीषा विशुद्धा च योगैर्भजेतं० ॥ ८ ॥

भावार्थ—जिनका सब प्रयत्न दूसरों के कल्याण के लिये था और जिनकी कीर्ति सब देशों में थी। जिन्होंने चित्त की वृत्तियों को रोककर अपने मन को शुद्ध बनाया, उन स्वामी० ॥ ८ ॥

विचारे रतोयः श्रुतीनांस्वधर्मे ऽनुरक्तस्तथाऽऽसीद्यती शान्तवर्यः । कलौयोऽद्वितीयोऽभवद् वेदशास्त्रे, भजेतं० ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो यतीश्वरों में श्रेष्ठ, वेदों के विचार में रत, अपने धर्म में प्रेमी और जो इस कलियुग में वेदशास्त्र में अद्वितीय विद्वान् था उन स्वामी० ॥ ९ ॥

यदीयानुकम्पाम्बुपूतान्तरात्माऽभवद्दुष्टलोकोऽपिशिष्टेषु

मुख्याः । कृतायेन न व्यर्थता स्वस्यनाम्नो, भजेतं० ॥ १० ॥

भावार्थ—जिसके अनुग्रहरूपी जल से पवित्र हुआ है मन जिसका ऐसा जो पूर्व दुष्ट मनुष्य था वह भी श्रेष्ठों में मुख्य बन गया, और जिसने अपने मन को सार्थक अर्थात् दया से आनन्द है जिसको ऐसा बनाया उस स्वामी० ॥ १० ॥

सदासत्यवाचा यथोधर्मराजंस्वकीयेनवीर्येण यो भीष्मदेवम्।
स्मृतेरध्वनिप्रापयद्योगिवर्यो । भजेतं । ११

भावार्थ—जिस योगीराजने सर्वदा सत्यभाषण से युधिष्ठिर को और अपने बल से भीष्मदेव को याद कराया, उस स्वामी० ॥ ११ ॥

यथाऽऽच्छन्नपृष्ठे सुकाचे विशन्ति तथाऽऽच्छन्नपृष्ठेहृदि
प्रादुरासन् । सुवीर्येणभावाः समस्ताहि यस्य भजेतं० ॥ १२ ॥

भावार्थ—जैसे, ढंकी हुई है पीठ जिसकी ऐसे कांच में सब पदार्थ प्रविष्ट होते हैं वैसे (बालब्रह्मचारी होने से) श्रेष्ठ वीर्य से ढके हुए जिसके हृदयरूपी कांच में सब पदार्थ प्रविष्ट थे, उस स्वामी० ॥ १२ ॥

विपक्षस्तदीयस्तपःपुञ्जवन्हौपतंगत्वमापेतिकेनो विदन्ति ।
भवेयोऽनुरक्तो भवेयो विरक्तो । भजेतं० ॥ १३ ॥

भावार्थ—यह कौन नहीं जानते कि उसके शत्रुगण उसकी तपः पुञ्जरूपी अग्नि में पतंग भाव को प्राप्त हुए, जो (परोपकार दृष्टि से संसार में रत और वास्तव में संसार से जो विरक्त था, उस स्वामी० ॥ १३ ॥

सदैव स्वदेशोन्नतिद्रुप्रपुष्ट्यै चकारातियत्नं जलैस्वोपदेशैः
इमेतस्यवृक्षस्यसर्वेसमाजः सुपुष्पाणिलोकेविराजंतुनित्यम् १४।

भावार्थ—जिसने अपने देश की उन्नतिरूपी वृक्ष की पुष्टि केलिये अपने उपदेशरूपी जलों से सदाही अत्यन्त यत्न किया था, उसी वृक्ष के पुष्परूपी ये (आर्य्य) समाज संसार में सर्वदा प्रकाशित होते रहैं ॥ १४ ॥

स्फुरन्तो देवानां परिषदि गुणा यस्य गुरवो ।
नयस्यैका बुधीं जनित दुरितख्याति रविवै ॥
क्षमायां क्ष्मेवासौ हिमगिरिरिवालं धृति गुणेऽ ।
वतीर्णो वर्णाग्ये कृति वरदयानन्द मुनिराट् ॥ १ ॥

भावार्थ—जिनके श्रेष्ठ गुण विद्वानों की सभा में प्रकाशित हैं जिनकी एक

भी दुर्बुद्धि कारण अधर्म की प्रसिद्ध नहीं है, जो क्षमा में पृथिवी के समान, धैर्य्य गुण में हिमालय के समान यह मुनिराज सुकृतियों में श्रेष्ठ महात्मा दयानंद ब्राह्मणवर्ण में उत्पन्न हुए ॥ १ ॥

हिमाद्रेः सत्सा नुप्रथपरि चलन् योग सरणिं ।
परिज्ञास्यन् प्राप्तोयति कुलज गंगा गिरि मुनिम् ॥
ऋषिस्तस्माद्योगं विधि वदुपगम्याप्त मनसा ।
जयत्प्राणांदेवः सजयति दयानन्द मुनिराट् ॥ ३ ॥

भावार्थ—पुनः जो हिमालय पर्वत के अच्छे उच्च शिखरों पर भ्रमण करते हुए योग मार्ग की विधि जानने को संन्यासी कुलोत्पन्न गङ्गागिरि साधु को प्राप्त हो उस महात्मा से योग विद्या सीख सम्पूर्ण मन से प्राणायाम, साधन में प्रवीण हुए यह श्रीदयानन्द मुनिराज सर्वोत्कर्ष से विराजमान हुए ॥ ३ ॥

कियत्कालं वेदाभ्यसन सुचिशीलः समभवत् ।
कियन्नीत्वा शास्त्राभ्यसनइह दिग्दर्शन मतिः ॥
जगद्दृष्ट्वा मोहावतमितितदुद्धार करणे ।
कृतो योगो योभूत सजयति दयानन्द मुनिराट् ॥४॥

भावार्थ—जिस महात्मा ने कुछ समय वेदाभ्यास में पवित्र शीलता से और कुछ समय शास्त्रों के अभ्यास में विचार बुद्धि से व्यतीत कर संसार को मोह से ढका हुआ देख उसके उद्धार करने में उद्योग किया यह महात्मा दयानन्द सरस्वती सर्वोत्कर्ष से विजयी हैं ॥ ४ ॥

समुन्मीलद्भास्वत्प्रभ विभुसहोदार तिलको ।
दया वार्द्धि वेदार्थ मननगुरुदघाटितनयः ॥
श्रुति व्याख्यानार्थं सुरपुर इवोत्तीर्ण इवयो ।
विरुद्धार्थं हास्यन् सजयति दयानंद मुनिराट् ॥ ५ ॥

भाषा—जो उदय को प्राप्त सूर्य्य के समान प्रभायुक्त, समर्थ, महाउदारजनों में तिलकरूप दयासागर वेदार्थ के मनन से दृढ़ और गम्भीरार्थ नीति को प्राप्त किया वेद व्याख्या करने को सुरपुरी से उतरे हुए देव गुरु के समान, और वेदों के विरुद्धार्थ को त्याग किया सो श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी विजयी हैं ॥ ५ ॥

नचक्रेयः स्वान्तं क्वचिदपि परस्यापं करणे ।
सदैवास्ते ब्राह्मेसमय इहयो योग विधितः ॥
शुभासीनः साक्षाद्विधिरिव सुलोकादवगतो ।
लघूकर्तुं पापं सजयति दयानन्द मुनिराट् ॥ ६ ॥

भाषा—जिन उक्त महात्मा ने पराये अपकार में मन कभी न किया और योग से ब्राह्म मुहूर्त में सर्वकाल शुभासन पर बैठ कर सत्यलोक से आये हुए साक्षात् ब्रह्माजी के समान पाप दूर करने को थे सो मुनिराज दयानन्द सरस्वती जी विजयी हैं ॥ ६ ॥

न पक्षी कस्यापि प्रिय मधुरवाण्या विशदयन् ।
श्रुतीनां मन्त्रार्थान् विलसति सभास्वग्र्यधिषणः ॥
न यस्याग्रे कश्चिद्विवदितुमिहेशस्समभवत् ।
समुद्धर्ताऽज्ञानात् सजयति दयानन्द मुनिराट् ॥ ७ ॥

भाषा—जो किसी के पक्षपाती न हुए जो अपनी प्रिय मधुर वाणी से वेदों के मन्त्रार्थों को वर्णन करते हुए सभाओं में प्रशंसनीय बुद्धि थे, जिन के अभिमुख कोई भी विद्वान् विवाद करने को न समर्थ हुआ इससे स्वामी दयानन्द सरस्वती विजयी हुए ॥ ७ ॥

गुरुर्यस्यख्यातः प्रथित मधुपुर्य्यास्थिति करः ।
सुनिष्णातो ब्रह्मण्यथ गहन शब्दार्णव विधौ ॥
महाभाग्यः प्रज्ञानयन इतिनाम्ने डितयशाः ।
यति स्वामी मान्यो जयति विरजानन्द मुनिराट् ॥ ८ ॥

भाषा—जिन महात्मा के गुरुवर्य्य प्रसिद्ध मथुरा पुरी में स्थित शब्द ब्रह्म और परब्रह्म में पारंगम (प्रज्ञानेत्र) इस अन्वर्थ नाम से प्रसिद्ध यश, महाभाग्यशाली, राजमान्य, यतियों के प्रभु, स्वामी विरजानन्द सरस्वती विजय को प्राप्त हुए ॥ ८ ॥

प्रकाशं सत्यार्थस्य कथमधुना वैदिक गिरा ।
मितीत्थं सञ्चिन्त्याखिलनिगम सत्यार्थ मननम् ॥
विधायार्य्यं व्रातान्वय हित करो वीवदद्ल ।

मृतार्थाविर्भावं सजयति दयानंद मुनिराट् ॥ ६ ॥

भाषा—जिन महात्मा ने वेद के सत्य वाक्यों का सत्यार्थ प्रकाश किस प्रकार हो यह ध्यान कर सब वेदों का सत्यार्थ मनन कर सम्पूर्ण आर्य्य समूह कुल के हितकारी सत्यार्थ प्रकाश नामक पुस्तक को रचा सो मुनिराज दयानंद सरस्वती विजयी हैं ॥ ६ ॥

ओ३म्

महर्षि जीवन ।

(बाल्यावस्था)

"सप्तमंवन्तरके अष्टाविंशकलियुगमें
चार सहस्र नो सो चोवीस वर्ष वीतेपर ।
जन्म भयो स्वामी दयानन्द महाराजजी को
देश की भलाई जिन कीन्ही मन चीतेपर ॥
करके पाखण्ड खंड वेद और संस्कृत कर
दियो प्रचार नित वल के सुभीते पर ।
बालब्रह्मचारी और योगी रहे जन्म हीते .
भारत को उन्नति पै चढ़ायो नित जीतेपर ॥"

प्रिय पाठकगण ! आपका जन्म संवत १८८१ विक्रमी में काठियावाड़ प्रांत के गुजरात देश अन्तर गत धरांधरा नामक राज्य की सीमा पर मच्छुकाण्टा नदी के किनारे मोर्वी नाम नगर में हुआ जिनके जन्मका नाम **मूलशङ्कर** था और उन के पिता **अम्बाशंकर** औदीच्य ब्राह्मण प्रतिष्ठित जमींदार और जमादार थे ।

उस समय में जमींदार का पद ऐसा ही माना जाता था, जैसा कि एतद्देश में तहसीलदारी का पद । अतएव उन के अधिकार में कतिपय सैनिक भी रहते जो उनकी आज्ञानुसार राजकीय धन (सर्कारी मालगुजारी) प्राप्त करने में सहायक होते थे । इस के उपरान्त उन के कुल में लेन देन का व्यवहार भी बहुत काल से चला आता था । इस कारण यह अपने समय को बड़े आनन्द से व्यतीत करते थे । मूलशङ्करको पांचवर्ष की अवस्था में देवनागरी पढ़ाने का आरम्भ कराया गया और उसी समय से कुल रीति के अनुसार माता-पिता आदि ने टीका सहित स्तोत्र, मन्त्र, और श्लोक पाठ कराने आरम्भ कर दिये आठ वर्ष की अवस्था अर्थात् सम्वत् १८८८ में यज्ञोपवीत करा गायत्री,

सन्ध्या और उपासना की रीति सिखाई गई। पिता सामवेदी ब्राह्मण होने पर शैवमत के अनुयायी थे, इस लिये वह चाहते थे कि वह भी सब प्रकार से शिव की उपासना करावें जिसकी पूर्ति के लिये उन्होंने बचपन से ही उन के हृदय में शिव मत के संस्कार डालने आरम्भ कर दिये। अर्थात् प्रथम रुद्री पढ़ा, शुक्ल यजुर्वेद संहिता का पाठ कराकर प्रदोषादि व्रत और पार्थिव पूजन करने का उपदेश करते थे। इस के कारण वह दशवें वर्ष की अवस्था में साधारण रीति से प्रतिमा पूजन करने लग गये लेकिन पिताजी की यह पूर्ण इच्छा थी, कि वह पूर्णतया शिवरात्रि का व्रत और जागरण कर पूर्ण शैव बन जावें। परन्तु माताजी बालक समझ उपवासादि के करने को मना करतीं और कहती थीं कि अभी यह इस प्रकार व्रतादि करने के योग्य नहीं है। इसी कारण उनके माता पिता में भी परस्पर वाद-विवाद हो जाया करता था। पिता इन को व्याकरण भी पढ़ाया करते थे, इसके अतिरिक्त और वह मंदिरों में दर्शनार्थ और मित्रों से मिलने के लिये जाते तो उनको साथ ले जाते तथा शिवपुराण की कथा भी अपने समीप बिठा कर सुनाया करते और सर्वदा यही शिक्षा देते रहते कि शिव की उपासना सब से श्रेष्ठ है। इतने में उनकी अवस्था १४ वर्ष की होगई और सम्वत् १८९४ विक्रमी में उन्होंने यजुर्वेद संहिता कण्ठ करली और कुछ अन्य वेदों को भी पढ़ लिया। इसी वर्ष पिता ने शिवरात्रि के व्रत करने की आज्ञा दी परन्तु वह उद्यत न हुए। तब उन्होंने व्रत माहात्म्य की कथा सुनाई जो उनको अत्यंत प्रिय लगी जिस से उन्होंने उपवास करने का निश्चय कर लिया, परन्तु उन का अभ्यास प्रातःकाल कुछ भोजन करने का था। इस लिये उनकी माता ने उनको मना किया और पिता से भी कहा कि यदि यह व्रत का साधन करेगा तो बीमार हो जावेगा। पिता ने उनकी माता के कहने का कुछ भी ध्यान न देकर व्रत रखने की पूर्ण आज्ञा दे, माघवदी १४ अर्थात् पूजन के दिन उसके रखने के नियम समझाकर कहा कि आज रात्रि को जागरण करना नहीं तो व्रत नष्ट हो जावेगा। मोरवी नगर में शिव का मंदिर बस्ती से बाहर है वहां ही नगर निवासी रात्रि के समय आकर पूजा पाठ किया करते थे। इस कारण शिवरात्रि के दिन स्वामी जी पिता सहित उस मंदिर में गये जहां अन्य पुरुष भी पूजा पाठ में लग रहे थे। स्वामी जी भी उस सम्पूर्ण कर्म को ध्यान पूर्वक देखते रहे यहां तक कि रात्रि के प्रथम पहर की पूजा समाप्त हुई। और ज्यों त्यों कर बहुधा लोगों ने द्वितीय पहर की पूजा को भी समाप्त किया। आधी रात के पश्चात्, लोग ऊंघने लगे और धीरे २ सब सो गये स्वामी जी के पिता को सब से प्रथम निद्रा ने घेर लिया। इस दशा को देख मंदिर के पुजारी भी बाहर आकर सो रहे, परन्तु स्वामी जी इस विचार से न सोये कि वह सुन चुके थे कि सोने से व्रत निष्फल हो जाता है। इस लिये आंखों पर पानी के छींटे मार २

जागते रहे जब रात अधिक व्यतीत होगई और मंदिर के सब पुरुष चुप चाप सो गये, तब एक चूहा मंदिर के बिल से निकल कर महादेव की पिंडी के चारों ओर चढ़ी सामग्री को खाने लगा। उस समय उपरोक्त कौतुक को देख उन के हृदय में नाना भांति के प्रश्न होने लगे। वह मन में कहते थे कि मैंने जिस महादेव की कथा सुनी है। सच मुच यह वही महादेव है या और कोई क्योंकि कथा में तो यह वर्णन हुआ था, कि वह मनुष्य के समान शरीर धारी देवता है। जो हाथ में त्रिशूल रखता और डमरू बजाता किसी को वर और किसी को श्राप देता तथा कैलाश का स्वामी है, तो क्या यह पिंडी महादेव अर्थात् जगत् के स्वामी की हो सकी है जिस के सिर पर चूहे दौड़े २ फिरते और सबे पूजा की सामग्री को खाये जाते हैं। महादेव जी तो बड़े २ प्रचंड मनुष्यों को मार भागते हैं तो क्या वह एक तुच्छ चूहे को भी भगाने की सामर्थ्य नहीं रखते। फिर भला वह परमेश्वर क्योंकर हो सके और हमारी रक्षा कैसे कर सक्ते हैं। प्रिय पाठक गणों! भारत वर्ष में इस रात्रि को अन-गणित पुरुष प्रेम भाव से वर पाने के लिये जागरण कर शिवलिंग के पूजन में तत्पर होते हैं, परन्तु उस शिव अर्थात् जगत् के कल्याण करने वाले परमेश्वर ने किसी को आज तक वर नहीं दिया और वह देता भी तो किस प्रकार, क्या कोई वर पाने का पात्र उस रात्रि को जागरण करता और उस जगत् पिता से वर पाकर संसार की भलाई करने के लिये उद्यत होता है नहीं-२ हां सम्वत् १८९४ में एक मनुष्य ने वर पाने के लिये जागरण किया शिव ने उसको वर दिया कि देख "इस आर्यावर्त देश के मनुष्य मेरे नाम की निंदा कर रहे हैं, मेरे गुण, कर्म, स्वभाव को न जान, पत्थर का लिंग खड़ा कर मेरे स्थान पर उसकी पूजा करते हैं ऐ मूलशंकर तुम उठो विद्या पढ़, वेदों को अच्छे प्रकार विचार, ज्ञान से प्रज्वलित हो कर मनुष्य मात्र को उपदेश कर दो कि परमेश्वर की उस शक्ति को जिस से वह संसार का पालन करता है शिव कहते हैं और उस के वही जन भक्त हो सक्ते हैं जो संसार की भलाई करने के अर्थ अपने आराम और धन को न्योछावर करते हैं, न कि एक विशेष रात्रि को जागरण कर पत्थर की मूर्ति पर चावलादि चढ़ा कर" यह शब्द चमड़े की जिव्हा से नहीं कहे गये और न मूलशङ्कर ने यह शब्द अपने कानों से सुने परन्तु इस में संदेह नहीं कि इन ज्ञान स्वरूप शब्दों ने स्वामी दयानन्द जी के चित्त पर अपूर्व प्रभाव किया जिससे उन्होंने इस प्रकृति की बनी हुई शिव मूर्ति को छोड़ वेदों का अभ्यास कर उस स्थल को विशेषरूप से देखा जहां उस ज्योतिस्वरूप निराकार के गुणों का वर्णन है।

प्रिय सज्जन पुरुषों! यह रात्रि क्या थी मानों भारत की काया पलटने के लिये एक अपूर्व औषधि थी, जिसका महर्षि स्वामी दयानन्द जी सद्वैद्य द्वारा ऋषि सन्तान की अधोगति देख उसके निवारणार्थ परमेश्वर ने उनके

मन में उसका प्रादुर्भाव किया जिसको वह बहुत देर तक न रोक सके और उन्होंने शीघ्र पिताजी को जगा निडर और संकोच रहित होकर उनसे प्रार्थना की कि आप सत्योपदेश से मेरी शंकाओं को निवृत्त कीजिये। प्रथम बतलाइये कि यह महादेव जो इस मंदिर में हैं वह उसी महादेव के समतुल्य हैं जिसको पुराणों में ब्रह्म कहते हैं, पिताजी इस प्रश्न को सुन लाल आंखकर बोले कि यह बात तू क्यों पूछता है, स्वामीजी ने कहा इस मूर्ति पर जो मंदिर में स्थापित हैं चूहे दौड़ते हैं जिन्होंने पूजा की सब सामग्री को नष्ट और भ्रष्ट कर दिया। परन्तु मैंने कथा में जिस महादेव का वृत्तान्त सुना वह तो चैतन्य है भला वह अपने ऊपर चूहों को क्यों दौड़ने देगा यह तो सिर तक नहीं हिलाता और न वह अपनी रक्षा आप कर सका है तो फिर इस जड़ मूर्ति के द्वारा उस चेतन सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का मिलना क्योंकर सम्भव है, इस लिये मैं आप से पूछता हूं। तब पिता ने कहा कि जो कैलाश पर्वत पर महादेव रहते हैं उसकी मूर्ति बना आवाहन कर उस में महादेवजी की भावना मान पूजते हैं। जिस से कैलाशस्थ महादेव ऐसे प्रसन्न होजाते हैं, मानों वह स्वयं ही उपस्थित हैं। परन्तु कलियुग आजाने से उसके साक्षात् दर्शन नहीं होते। मूर्ति तो देवता की है, तेरे स्वभाव में तर्कना करने का बुरा अभ्यास पड़गया है। पिता के इस उपदेश से पुत्र की कुछ भी शान्ति न हुई वरन् और भी अशान्ति होगई और उनके मन में अच्छे प्रकार से निश्चय होगया, कि पाषाण पूजा सर्वथा व्यर्थ है। इस लिये उन्होंने अपने मन में दृढ़ सङ्कल्प कर लिया कि जब तक मैं उसको प्रत्यक्ष न देखलूंगा तब तक कदापि उसकी पूजा न करूंगा। थोड़ी देर के पश्चात् जब उन को भूख ने सताया तब उन्होंने पिता से प्रार्थना की। जिन्हों ने सिपाहियों के साथ जाने की आज्ञा दी और कहा कि तुम घर में जाकर भोजन न करना। स्वामी जी ने घर जाकर माता से कहा कि मुझ को भूख लगी है यह सुन उन्हों ने उत्तर दिया कि बेटा मैंने तो प्रथमही कहा था कि तुझ से उपवास न होगा परन्तु तूने हठ से न माना, ले अब मिठाई खाले परन्तु भोजन करने का वृत्तान्त पिता से न कहना—नहीं तो वह अप्रसन्न होकर तुझ को मारेंगे। स्वामी जी मिठाई खाकर रात्रि के एक बजे सोरहे प्रातः आठ बजे उठे उधर पिताजी मन्दिर से आकर किसी प्रकार रात्रि के भोजन का वृत्तान्त जान उनसे बहुत अप्रसन्न हुए। उस समय उन्हों ने स्पष्ट रूप से पिताजी से कहा कि जिस महादेव का वृत्तान्त कथा में सुना था वह महादेव मन्दिर में नहीं था इस लिये मैं उसकी पूजा नहीं कर सका। यथार्थ में इस रात्रि के विचित्र कौतुक ने उनके हृदय में पाषाण पूजन में अश्रद्धा करदी जिस से वह आयु पर्य्यन्त उस मिथ्या लीला का पूर्ण रूप से खण्डन करते रहे, इस के पश्चात् अपने चाचा से भी कहा करते कि अध्ययन के कारण मुझ से उपवास और पूजा नहीं होसकी, तब चाचा और माता जी ने पिताजी को समझा बुझाकर शान्त करदिया।

इस झगड़े से निवृत्त होकर उनहोंने एक पण्डित जी से निघण्टु, निरुक्त, पूर्वमीमांसा तथा कर्मकाण्ड के पुस्तक सयत्न पढ़ने का आरम्भ करदिया। जिस से उनका सारा समय विद्याध्ययनमें व्यतीत होने लगा, इसके दो वर्षके पश्चात् सर्व व्यापक परमेश्वर ने उनके चित्त पर एक अपूर्व आदर्श का प्रभाव डाला अर्थात् सम्वत् १८६६ में जब कि स्वामी जी की अवस्था १६ वर्ष की थी एक दिन उनके कुटुम्ब के मनुष्य स्वामी जी सहित किसी मित्र के यहां कथिकों के नाच देखने के लिये गये थे अचानक घर से एक सेवक ने आकर कहा कि स्वामी जी की छोटी बहन जिसकी अवस्था १४ वर्ष की है उसको विशूचिका अर्थात् हैजा हो गया है। जिसको सुनतेही सब मनुष्य तुरन्त गृह को लौट आये और अच्छे प्रकार औषधि कराने में प्रवृत्त हुए परन्तु कुछ लाभ न हुआ और चार ही घण्टे में उस का शरीरपात होगया जिस से सब कुटुम्बी दुःखी हो विलाप करने लगे परन्तु स्वामी जी उसके बिछौने के पास दीवारके सहारे खड़े हुए मृत्यु के क्लेश को अपनी आंखों से देख रहे थे। क्यों कि उनहोंने जन्म से लेकर इस समय तक मनुष्य को मरते हुए कभी नहीं देखा था इस लिये उनके मन को अत्यन्त क्लेश हुआ और इस भयानक दृश्य ने उनकी बुद्धको चकित करदिया। वह अपने हृदय में सोचने लगे कि इसी प्रकार सारे मनुष्य मृत्यु के कलेवर होंगे उसी भांति मैं भी मृत्यु की फांस में फसूंगा अर्थात् जितने जीव इस संसार में आये हैं उनमें से एक भी न बचेगा इस से कुछ ऐसा उपाय करना चाहिये जिस से जन्म मरण रूपी दुःख से छुट यह जीव मुक्ति को प्राप्त हो। इस अचानक मृत्यु के कौतुक ने उनके चित्त में वैराग्य उत्पन्न कर दिया जिस से उनके नेत्रों में एक भी आंसू न आया। परन्तु दूसरी ओर सब कुटुम्बी चिल्ला २ कर रोरहे थे इस लिये माता और पिता ने निंदा करं उनको पाषाण हृदय कहा। अन्त को इसी विचार के कारण उनका चित्त संसारके विषयों से नितान्त हट गया और मोक्ष सुख के प्राप्त करने के साधनों में निमग्न रहने लगा। स्वामी जी ने इस मनोवृत्ति (मन के भेद) को किसी अन्य पुरुष पर प्रकट न किया। उसी वर्ष में उनके चाचा को जो(बड़े विद्वान् और योग्य पुरुष तथा स्वामी जी पर बड़ाप्रेम रखते थे) भाग्य वश विशूचिका ने आघेरा जब वह बिस्तर पर लेटे हुये थे। तब उन्हों ने स्वामी जी को पास बुलाया। लोग उनकी नाड़ी देख रहे थे परन्तु चाचाजी उन को देख २ कर आंसुओं की धारा बहारहे थे। इस विचित्र दशा को देखकर स्वामी दयानन्द की आंखों से भी आंसुओं की धारा बहने लगी यहां तक रोते २ उनकी आंखें फूलगई और उनके चित्तपर चाचाजी की मृत्यु ने पूर्णवैराग्य उत्पन्न कर दिया। परन्तु उन्होंने इस विचार को अपने माता पिता पर प्रकट न कर अपने मित्र और योग्य पण्डितों से पूछना आरम्भ कर दिया कि जन्म मरण के प्रवाह रूपी दुःख से बच अमर होने का उपाय क्या है? तब उन सज्जन पुरुषों ने इस की परम औषधि योगाभ्यास को बतलाया, जिस से

स्वामी जी का विचार धीरे २ घर से बाहर निलकजाने का बढ़ता गया क्योंकि यह उन को अच्छे प्रकार से निश्चय होगया कि इस असार संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है कि जिस को स्थिरता हो। यह सब समाचार स्वामी जी के मित्रों ने उन के माता पिता पर प्रकट कर दिये जिस से उनको अत्यन्त चिन्ता हुई। तब उन्होंने यह विचार किया कि अब उनका विवाह शीघ्र कर गृहस्थी के बन्धन में डाल देना चाहिये जिस से उस का चित्त वैराग्य से हट सांसारी पदार्थों में आसक्त होजावे, जब यह व्यवस्था स्वामी दयानन्दजी को ज्ञात हुई कि मेरी २० वर्ष की अवस्था पूरी होते ही विवाह हो जायगा तब उन्हों ने अपने माता पिता से मित्रों द्वारा प्रार्थना कराई जिसको सुन पिता जी ने अपने विचार को एक वर्ष के लिये परिवर्त्तन कर दिया। इस के उपरान्त स्वामी दयानन्द ने अपने पिता से कहा कि आप कृपाकर मुझ को काशी पढ़ने के लिये भेज दीजिये जहां जाकर मैं व्याकरण आदि शास्त्रों को पढ़ आऊं। इस पर माता पिता और कुटुम्ब के मनुष्यों ने कहा कि हम काशी को कभी न भेजेंगे जो कुछ पढ़ना हो सो यहां ही पढ़लो और जितना तुम ने पढ़ लिया है वह क्या थोड़ा है विवाह के दिन थोड़े रहे हैं आगामी वर्ष में विवाह अवश्य होजावेगा क्योंकि लड़की वाला नहीं मानता अतः तुमको अधिक पढ़ाना भी स्वीकृत नहीं है। इस पर माता जी ने कहा कि मैं अच्छे प्रकार से जानती हूं कि विशेष पढ़े लोग विवाह करना अनुचित समझते हैं। इसके पश्चात् काशी चले जाने पर विवाह में विघ्न पड़जावेगा। स्वामी जी ने कई बार माता और पिता से काशी जाने और बिना विद्वान् हुए विवाह करने पर आग्रह किया, जिस से माता ने विपरीत हो कर कहा कि हम शीघ्र विवाह कर देंगी। स्वामी जी ने इस समय उनके सन्मुख रहकर आग्रह करने में कार्य्य की हानि समझ चुप हो उनके सन्मुख से हट गये, परन्तु उनका चित्त घर रहने से उचाट होगया जिसको पिता जी ने देख उनसे जमींदारी के कार्य्य करने के लिये कहा परन्तु उन्हों ने अस्वीकार किया। थोड़े दिनों के पश्चात् स्वामी जी ने फिर अपने पिता जी से कहा कि यदि आप मुझको काशी भेजना स्वीकृत नहीं करते तो आप यहां से तीन कोस पर एक गांव में "जहां अपनी जाति के एक वृद्ध विद्वान् रहते हैं वहां अपनी जमींदारी भी है" भेज दीजिये। तो मैं उनसे पढ़ाकरूं जिसको उन्हों ने स्वीकार कर लिया और वह कुछ दिवस तक वहां पढ़ते रहे, एक दिन विद्याध्ययन करते समय वार्तालाप में अकस्मात् उनके मुंह से यह निकल गया कि मुझको विवाह करने से बड़ी घृणा है, उनके आचारी जीने यह समाचार पिताजी को पहुंचा दिये। जिन्हों ने उनको तत्काल वहां से बुला लिया और विवाह की कार्यवाही आरम्भ करदी, जब घर में विवाह के सामान होने लगे तो उनको पूर्ण निश्चय होगया कि अब यहां बिना विवाह हुए बचना कठिन है इससे छुटकारा पाने का यही

उपाय है कि घर को छोड़ किसी अन्य स्थान को चल दूं परन्तु जब वह इस विषय में अपने मित्रादिकों से सम्मति लेते तो सान्सारिक सुखों के अभिलाषी सर्वजन बलपूर्वक यही कहते थे कि विवाह करना आवश्यक है। स्वामी जी के मन में पूर्ण वैराग्य की लहरें उठ रही थीं. वह ब्रह्मचर्य आश्रम के यथावत् समाप्त करने की चिन्ता में लग रहे थे, परन्तु उन अल्प आशायों को यह कब ज्ञात होसकता था कि यह शुद्धात्मा गृहस्थ जालमें न फंस पूर्ण ब्रह्मचारी बन सन्सार के सुधार की एक मात्र योग्यता रखती है। जो बिना विवाह किये ही पूर्ण हो सकती है, क्योंकि बिना नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के पूर्ण विद्या और बल कभी नहीं हो सकता और बिना इसके सन्सार की काया पलटना और मुक्ति प्राप्त करना असम्भव है। देखिये जब से इस देश से ब्रह्मचर्य धारण कर गुरुकुल में शिक्षा पाने की परिपाटी जाती रही तभी से भारत का भारत होगया, इसलिये महर्षि स्वामी दयानन्द कब गृहस्थाश्रम रूपी बेड़ी के बन्धन में फंस उस महान् कार्य के विनाश करने को उद्यत होते क्योंकि वह वेदानुकूल ब्रह्मचर्य आश्रम को यथावत् पूर्णकर भारत में उसका प्रचार करना अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते थे. निदान स्वामी जी ने जीवन पर्यन्त विवाह के बखेड़े से बचने के लिये यह उपाय ढूढ़कर ग्रीष्म ऋतु के ज्येष्ठ मास में एक दिन सायंकाल के समय बिना कहे चुपचाप अपने प्रिय माता पिता को सदा के लिये त्याग चल दिये। और उस रात्रि को घर से आठ मीलपर एक गांव के और पास रहकर निर्वाह किया। वहां से एक पहर रात रहे उठ दूसरे दिन प्रसिद्ध मार्ग को छोड़ पगडण्डी की राह से सायंकाल तक २० कोस चल एक ग्राम में हनुमान के मन्दिर में जा आराम किया। पगडण्डी छोड़कर चलने का यह प्रयोजन था, कि मार्ग में आने जाने वाले बटोही जन जान न लें. (यह चतुरता उनके बड़े काम आई, क्योंकि उन्होंने उस स्थान पर पहुंच कर एक राज्य कर्मचारी के द्वारा तीसरे दिन सुना कि यहां मूलशङ्कर नामी लड़के को ढूंढने केलिये सवार और पैदल मनुष्य आये थे) यहां से आगे चलकर एक विचित्र कौतुक भीख मांगने वाले वैरागियों ने उनके साथ किया अर्थात् उन्हों ने स्वामी जी से कहा कि पक्का वैराग्य जब ही होगा जब तुम अपने पास की सब वस्तुयें पुण्य कर दोगे, उन ठगों ने मार्ग में एक मूर्ति स्थापित करली थी, उस पर तीनों अंगूठियां और अन्यवस्तु जो स्वामीजी के पासथीं चढ़वालीं। यहांसे चलकर अहमदाबाद मोरवी रेलवे लायन पर (जो सूलि नाम स्टेशनसे चारकोस सायले नामग्राम है, जहां उन दिनों में लाला भगत के स्थानपर बहुतसे साधू इकट्ठे थे)पहुंचे। जहां एक ब्रह्मचारी ने उनको नैष्ठिक ब्रह्मचारी की दीक्षा दे, शुद्धचेतन ब्रह्मचारी नाम रख, काषाय वस्त्र पहना, एक तूम्बा हाथ में दे, अपने थोक में सम्मिलित कर लिया। यहां उन्हों ने योग साधने का अभ्यास करना आरम्भ करदिया एकदिन एक वृक्षके नीचे बैठे योगाभ्यास कर रहे थे, कि इतने में पक्षियोंके

शब्द सुन भूतका भय खा वहां से उठ अपने साथियों में जाकर मिल गये, वहां से इस नये रूप में कोटकांगड़ा (जो गुजरात देशमें अहमदाबाद के निकट एक छोटी सी रियासत है। जहां उस समय बहुधा वैरागी फकीर थे जिनके फंदमें कहीं की रानी भी फँसी हुई थी) पहुंचे उन सब वैरागियों ने स्वामी के काषाय वस्त्र देख हास्यकर उनको अपने फंदे में फांसने के लिये प्रबल उपाय किये। परन्तु वह उनकी चाल में तो न आये तौ भी उन के कहने से रेशमी किनारे की जो धोतियां उन के पास थीं फेंकदीं। और अपने पास से तीन रुपये की श्वेत धोतियां लेलीं। फिर तीन मास के पीछे सिद्धपूर के मेलेमें पूर्ण योगी के मिल जाने की आशा पर गये। जहां मार्ग में उन के गांव के समीप का रहने वाला एक वैरागी,जो उन के पिता को सम्यक् प्रकार से जानता था मिला, एक दूसरे को देख दोनों की आंखों से अश्रुपात होने लगा। फिर स्वामी जी ने अपना सब पूर्व वृत्तान्त सुनाया जिस को सुन प्रथम तो वह हंसा फिर उस ने घर से निकल आने पर धिक्कारा। तब स्वामी जी इस से पृथक् होकर सिद्धपूर के मेले में पहुंच नीलकण्ठ महादेव के स्थान पर जहां प्रथम ही से बहुत से दंडी स्वामी, और ब्रह्मचारी ठहरे हुए थे उतरे और उस मेले में जो २ विद्वान्, योगी आये थे, उन सब के दर्शन और वार्तालाप से लाभ उठाते रहे। इधर उस वैरागी ने जो सिद्धपूरके मार्ग में मिला था सम्पूर्ण वृत्तान्त लिखकर उन के पिता जी के पास भेज दिया और उस में यह भी लिख दिया कि इस समय वह सिद्धपूर के मेले में उपस्थित है यह सुन तत्काल पिता जी चार सिपाहियों समेत सिद्धपूर में पहुंच उनको ढूंढने लगे एक दिन प्रातः महादेव के मंदिर में जाकर पकड़ लिया, और साधू भेष में देखकर वह ऐसे क्रोधित हुए कि स्वामी जी उनकी ओर न देख सके। उन्होंने क्रोध में आकर जो कुछ उन के मन में आया कहकर उन को धिक्कारा कि तूने सदैव के लिये हमारे कुल को दूषित कर दिया और कलंक लगाने वाला उत्पन्न हुआ। स्वामी जी पिता के ऐसे वचन सुन भयभीत हो अपने स्थान से उठ पिता के चरणों पर गिर कर कहने लगे कि मैं धूर्त लोगों के बहकाने के कारण घर से निकल आया जिस से अब मैं अत्यन्त दुखी हो रहा हूँ अब आप क्रोधित न हो शान्त होकर मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये। यहां से मैं घर आने को ही था अच्छा हुआ तब तक आप भी आगये। मैं आप के साथ चलने को उद्यत हूं इस पर भी पिताजी का कोप शांत न हुआ और झपट कर स्वामी जी के कुर्ते की धज्जियां उड़ादीं, तूंबा छीन कर पृथ्वी पर मार, सैकड़ों प्रकार के दुर्वचन कह नवीन श्वेत वस्त्र धारण करा कर, जहां ठहरे थे वहां लाकर कहा कि तू क्या अपनी माता की हत्या कराना चाहता है इस पर स्वामी जी ने कहा कि मैं अब आप के साथ चलूंगा। तिस पर भी उन्होंने विश्वास न कर, उन के साथ सिपाही कर उन को प्रेरणा कर दी कि इस

उन के माता पिता उनको सारस्वतादि संस्कृत पुस्तक पढ़ाते रहे। १२ वें वर्ष के आरम्भ में माता पिता का देहान्त हो जाने पर भाग्यवश उन को अपने ज्येष्ठ भ्राता की शरण में आना पड़ा। किसी ने सत्य कहा है कष्ट अकेला नहीं आता जहां उन को अपने माता-पिता के स्वर्गधाम पहुंचने का शोक था वहां उन के भ्राता और भ्रातृ पत्नी का वर्ताव भी सन्तोष जनक नहीं था। वैदिक शिक्षानुसार ऐसे समय में भ्राता तथा भ्रातृ पत्नी का यह धर्म था कि वह उनका लालन पालन सम्यक् रीति से करते। परन्तु शोक कि वे इस के विपरीति उन से अपशब्द और कटुवाक्यों से बर्ताव क्रिया करते थे। जिसके कारण उनका चित्त संसार से उपराम होगया। अतएव वह घर को छोड़ ३ वर्ष तक अनेकान् कष्ट भोगते और वनके मार्ग में भ्रमण करते हुए **ऋषिकेश** पहुंचे जहां पर उन्हों ने ३ वर्ष तक गङ्गा में खड़े होकर गायत्री का उत्तम रीति से जप कर मन और अन्तःकरण रूपी चक्षु में ज्ञानरूपी अञ्जन लगाकर प्रकाशित किया। इस के पश्चात् भी ऋषीकेश के निर्जन वन में तप करते रहे। थोड़े दिनों के पश्चात् एक रात्रि में आप को स्वप्न हुआ कि "जो तुम को होना था वह होगया अब तुम यहां से चले आओ" तब वह १८ वर्ष की आयु में हरिद्वार आये जहां स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती जी से संन्यास ग्रहण किया। जिन्होंने उनका नाम **विरजानन्द सरस्वती** रक्खा इसके पश्चात् वह कुछ काल तक हरिद्वार में रहकर एक ब्राह्मण से विद्या पढ़ते रहे और बड़े २ उत्तम श्लोक बनाने लगे इस के पीछे स्वयं विद्यार्थियों को विद्या पढ़ाना आरम्भ कर दिया। फिर वहां से चल **कनखल** में निवास कर, सिद्धान्त कौमुदी को आप विचारा और विद्यार्थियों को भी पढ़ाते रहे। फिर वहां से प्रस्थान कर गङ्गा के किनारे २ **काशी** नगर में पहुंच, और एक वर्ष से अधिक निवासकर, मनोरमा-शेखर न्याय, मीमांसा और वेदान्त के ग्रन्थों को पढ़ा जिस के प्रभाव से वहां वह **प्रज्ञाचक्षु** स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए फिर बाईस वर्ष की आयु में यहां से चल **गया** को गये मार्ग में उन को चोरों ने लूटना चाहा परन्तु एक सर्दार साहबकी सहायतासे बचगये फिर उस सर्दारने स्वामी जी का पांच दिन तक अच्छे प्रकार अतिथि सत्कार किया और छटे दिन स्वामी जी यहां से चल गया जी में पहुँचे जहां उन्होंने बहुत दिनों तक रहकर वेदान्त ग्रन्थों को पढ़ा फिर कलकत्ते होते हुए **सोरों** पधारे और वहां कुछ काल तक विश्राम किया। उन्हीं दिनों में वहां महाराजा **विजयसिंह** अलवराधीश गङ्गा स्नान के लिये आए हुए थे। एक दिन महाराज अलवर स्नान कर रहे थे, और स्वामी जी गङ्गा में खड़े हुए बड़ी मधुर वाणी से शङ्कराचार्य्य के विष्णु स्तोत्र का पाठ कर रहे थे। जिसको महाराज सुनते ही मोहित होगये और स्तोत्र के समाप्त होने पर उन्हों ने स्वामी जी से अलवर चलने के लिये प्रार्थना

अपने एक मित्र दक्षिणी विद्वान ब्राह्मण के द्वारा चिद्राश्रम स्वामी जी से प्रार्थना कराई जिन्हों ने नवयुवक होने के कारण संन्यास देने का सर्वदा निषेध किया। तिसपर भी स्वामी जी का यह विचार परिवर्तन नहीं हुआ और यह डेढ़ वर्ष तक नर्मदा के किनारे २ भ्रमण करतेरहे इस बीच २४ वर्ष की आयु के पश्चात् चाणोदर बस्ती से २ मील पर जंगल में एक दक्षिणी विद्वान दंडी संन्यासी और एक ब्रह्मचारीजी के ठहरने के समाचार सुन, पूर्वोक्त मित्र के साथ वहां पहुँच उन विद्वान् महात्माओं से बूझदिया से कई एक विषयों में वार्तालाप कर जान लिया कि यह दोनों महात्मा इस विद्या में अत्यंत प्रवीण हैं। इस लिये उन्होंने अपने मित्र द्वारा उपरोक्त महात्माओं में से पूर्ण विद्या निधान, योगी, स्वामी पूर्णानंद जी से प्रार्थना कराई कि यह ब्रह्मचारी जो मेरे साथ हैं, अत्यन्त सुशील है और ब्रह्म विद्या के पढ़ने की अत्यंत कामना रखता है परन्तु भोजन स्वयम् बनाने के कारण अच्छे प्रकार नहीं पढ़सकता इसलिये आप संन्यास की दीक्षा दे दीजि यह सुन और स्वामीजी को देखकर उनका जी हट गया इसपर स्वामीजी के मित्र ने अत्यंत आग्रह से प्रार्थना की इस पर इन्हों ने कहा कि मैं महाराष्ट्र संन्यासी हूं किसी गुजराती संन्यासी से दीक्षा दिलाइये तब उन्हों ने फिर निवेदन किया कि दक्षिणी गौड़ों को भी संन्यास देते हैं जोकि पंच द्राविड़से बाहर हैं। यह ब्रह्मचारी तो गुजराती हैं जिनकी पञ्च द्राविड़ों में गणना है इस प्रकार वार्तालाप के पश्चात् उक्त स्वामी ने ब्रह्मचारी मूलशंकर को संन्यास देना स्वीकार किया तीसरे दिन स्वामीजी को विधि पूर्वक संन्यास की दीक्षा देकर उनका नाम **स्वामी दयानन्द सरस्वती** रखदिया। वह थोड़े दिनों तक उनके पासब्रह्म विद्या संबंधी पुस्तकें पढ़ते रहे फिर वह दन्डी स्वामी द्वारका पुरी की ओर चले गये पर यह वहीं स्थित रहे। सम्वत् १९०८ में जब उन्हों ने यह सुना कि व्यास आश्रम में स्वामी योगानन्द नामी विद्वान् रहते हैं जो योगविद्या में अति प्रवीण हैं वहां पहुंच योगविद्या सम्बन्धी कुछ पुस्तकें पढ़ छिनाड़े गये और वहां कृष्ण शास्त्री चित पावन दक्षिणी ब्राह्मण से व्याकरण का अभ्यास कर, चाणोद कल्याणी में आकर ठहरे जहां राजगुरु से वेदों का अध्ययन करने लगे थोड़े दिनों के पश्चात् ज्वालानन्दपुरी और शिवानन्द गिरि नामक दो योगियों से भेंट हुई जिन के साथ योग का साधन और योग शास्त्र में चर्चा करते रहे। फिर कुछ दिनों के पश्चात् वह दोनों योगी पुरुष तो अहमदाबाद को चले गये और स्वामीजी को आज्ञा दे गये कि तुम एक महीने के पश्चात् हमारे पास दूधेश्वर महादेव पर आना तब हम तुमको योगविद्या की सूक्ष्म बातें और उसकी सम्पूर्ण रीति का अच्छे प्रकार बोध करा देंगे स्वामी जी महाराज अपनी प्रतिज्ञानुसार एक मास के पश्चात् अहमदाबाद को गये और दोनों योगी महात्माओं से जाकर मिले जिन्हों ने अपने कथनानुसार योग विषयक बातों से स्वामी जी को अच्छे प्रकार सन्तुष्ट किया अर्थात् उन्हीं महा-

त्माओं के अनुग्रह से उनको पूर्ण योग विद्या और उसके साधन में कुशलता हो गई जिस के लिये स्वामी जी महाराज उनका अत्यन्त धन्यवाद देते थे। इस के अनन्तर जब उनको यह समाचार मिला कि राजपूताने के आबू पहाड़ की चोटियोंपर बड़े २ योगीराज निवास करते हैं झट वहां पहुंच उसकी चोटियों पर भवानीगिरि आदि प्रसिद्ध राजयोगियों से मिले। स्वामी जी का कथन है कि "यह योगी पहिले दोनों योगियों से अधिक विद्वान् और योग विद्या में दक्ष थे अतः उनसे भी योग साधन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातें प्राप्त कीं" इस प्रकार सम्वत् १९११ विक्रमी तक अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए विद्या और योग प्राप्त करते सम्वत् १९१२ तदनुसार ११ अप्रैल सन् १८५५ ई० ३० वर्ष की अवस्था में प्रथम बार हरिद्वार कुम्भ के मेले में सम्मिलित हुए और जब तक मेला रहा चन्डी पहाड़ के जंगल में योगाभ्यास करते रहे मेला समाप्त होनेपर ऋषीकेश में पहुंच महात्मा संन्यासियों और योगियों से मिल सत्संग और योग साधन में लगे रहे इसके उपरान्त कुछ दिनों वहां स्वयं ही टिके जहां उन को एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु मिले फिर सब मिलकर टिहरी पहुंचे जहां विद्वान् साधू और राज पंडितों से मिले, उन पण्डितों में से एक पंडित ने स्वामी जी का निमन्त्रण किया जो नियत समय पर एक मनुष्य के साथ ब्रह्मचारी समेत उसके स्थान को पधारे वहां जाकर देखा कि एक पंडित मांस काटकर बना रहा है, जिसको देख स्वामी जी को बड़ी घृणा उत्पन्न हुई। परन्तु ज्योंही आगे को बढ़े त्यों ही यह देखा कि बहुधा ब्राह्मण मांस बना रहे हैं जिनके पास हड्डियों के ढेर लगे हुये हैं। उस गृह के स्वामी ने स्वामी जी से कहा कि आप प्रसन्नता पूर्वक पधारिये इस के उत्तर में उन्हों ने कहा कि आप अपना कर्त्तव्य किये जाइये मेरे लिये इतना कष्ट सहन करने की आवश्यकता नहीं। यह कह तत्काल वहां से लौट आये इतने में एक ब्राह्मण ने उनसे आकर कहा कि आज विशेष कर आप ही के अर्थ मांसादि उत्तम भोजन बनाये गये हैं। स्वामी जी ने कहा कि यह सब वृथा है मेरे भोजन केवल फलादि हैं मांस भक्षण करना तो पृथक् रहा मुझको तो उसके देखने से ही घृणा उत्पन्न होती है। यदि आपको हमारा निमन्त्रण करना ही है तो कुछ अन्न और फलादि वस्तुयें भिजवा दीजिये हमारा ब्रह्मचारी यहां भोजन बना लेगा यह सुन पंडित जी लज्जित हो अपने घर चले गये। कुछ समय के पीछे उक्त पण्डित जी ने अपने मत अर्थात् तन्त्र ग्रन्थों की बड़ी प्रशंसा की तब उन्होंने तन्त्र ग्रन्थों के देखने की अभिलाषा प्रकट की क्योंकि इससे प्रथम उन्होंने तन्त्र ग्रन्थों को नहीं देखा था। देखते २ उनकी दृष्टि अत्यन्त अश्लील विषयों पर पड़ी जिनको पढ़ते ही उनका जी कांपने लगा क्योंकि उसमें लिखा था कि माता, भगिनी, बेटी, चूड़ही और चमारी इत्यादि नीच स्त्रियों से समागम करना और उनको नग्न कर पूजन करना, शराब पीना, मांस मछली आदि का खाना यही पांच

से हो सके आप दंडीजी महाराज से क्षमा मांग उनको प्रसन्न करें सेठजी ने उक्त महात्मा के समीप जाकर उन से प्रार्थना की कि आप पांच सौ रुपये के स्थान पर हजार रुपये लेकर अपराध क्षमा कर दीजिये उसके उत्तर में दंडीजी ने कहा कि यह आप का भ्रम है मनुष्य इसमें कुछ नहीं करसका यदि हमारी ओर से कुछ खटका है तो हम हजार रुपया अपने पास से देने को उपस्थित हैं कि जिस से लक्ष्मण शास्त्री बच जावे परन्तु शास्त्री जी दूसरे दिन ही परलोक गमन कर गये।

सम्वत् १६१८ के आरम्भ आगरे में एक दर्बार हुआ जिस में सम्पूर्ण भारत के राजे सुशोभित हुए थे उस समय महाराज रामसिंह जयपुराधीश ने स्वामी जी को बुलाया था और उनके शुभागमन के लिये स्वयं महाराजा द्वार पर आये और उनको भीतर लेजाकर उच्चासन पर बिठा आप नीचे बैठ दंडी जी महाराज से इस प्रकार प्रार्थना की कि आप मुझको व्याकरण पढ़ावें स्वामी जी ने उत्तर दिया यदि आप प्रतिदिन तीन घंटे की प्रतिज्ञा करें तो मैं पढ़ासक्ता हूं अन्यथा नहीं महाराजाने अष्टाध्यायी इत्यादि कठिन पुस्तकों के पढ़नेको स्वीकार न कर प्रार्थना की यदि आप इन्हीं पुस्तकों के अनुकूल कोई सरल पुस्तक अपनी बनाई हुई पढ़ावें तो मैं पढ़ सक्ता हूं। चलते समय महाराज ने २००) रुपये और एक दुशाला स्वामी जी के भेंट किया परन्तु उन्हों ने उस समय स्वीकृत न किया और कहा कि आप अपने यहां सार्वभौमिक सभा कराइये जिस में तुम्हारा २ लक्ष रुपया व्यय होगा उस समय मैं सब विद्वानों को शास्त्रार्थ द्वारा निश्चय करा दूंगा कि अष्टाध्यायी, महाभाष्य ही व्याकरण के मुख्य ग्रन्थ हैं तथा कौमुदी, मनोरमादि, मनुष्य कृत, न्यायमुक्तावली, भागवतादि पुराण व रघुवंशादि काव्य वेदांत में पंचदशी इत्यादि नवीन साम्प्रदायिक जितने ग्रन्थ हैं वे सब अशुद्ध हैं इस से भारत का बड़ाही उपकार और उद्धार होगा और आप को विजय पत्र मिल जावेगा तथा भारतादि देशों में आप का नाम प्रसिद्ध हो जावेगा नोचेत आप सरीखे मनुष्यों का जन्म भी पशु पक्षी इत्यादि कीभांति निष्फल ही होगा। यह सुन महाराज ने कुछ प्रण किया था परन्तु उन्हों ने उसको पूर्ण नहीं किया। राजा साहिब ने अपने राज्य में पहुँच कर उपरोक्त सब द्रव्य दंडीजी महाराज के पास भिजवा दिया और ३०) रुपये माहवार प्रति दिन के व्ययार्थ नियत कर दिये इसी भांति एक और अन्य राजा ने ७॥) रुपये मासिक देने का प्रण किया था। जिस से वह अपना निर्वाह आनन्द से करते थे। आप के भोजन बहुत ही सादे थे कभी २ दूध और फल खाकर रहते थे, दूध में सौंफ को औटाकर पिया करते थे। एक बार संखिया को नमक समझ कर खागये और जब विष चढ़ा तो धीरे २ चार घड़े पानी डलवाये जिस से बच गये। मथुरा नगर में स्वामी जी महाराज विद्या गुणों के कारण ऐसे प्रसिद्ध थे कि जो कोई उस के अवलोकन को वहां

पहुंचे कि जहां से कुछ झोंपड़ियां दृष्टिगोचर हुई। पूछने से ज्ञात हुआ कि यह मार्ग ऊखीमठ को जाता है वह उसी ओर को चलदिये वहां पहुंच रात्रि व्यतीत कर प्रातः गुप्त काशी को लौट आये। परन्तु उनके मन में ऊखीमठ के देखने की इच्छा फिर भी बनी रही। इस लिये उसकी पूर्ति के लिये फिर उसी ओर को गये और सम्यक् प्रकार से देखा तो सम्पूर्ण गुफा पाखंडी साधुओं से भरी हुई मिली। उस मठ के महन्त ने स्वामी जी को अति चतुर, हृष्ट-पुष्ट और योग्य देखकर लाखों रुपये और गद्दी के स्वामी हो जाने का लालच देकर कहा कि तुम मेरे चेले होजाओ। यह सुन महर्षि ने स्पष्ट उत्तर दिया कि "यदि मुझको धनादिक सांसारिक पदार्थों की इच्छा होती तो मैं अपने पिता आदि के वैभव को जो इस से कहीं अधिक था क्यों छोड़कर आता, इसके उपरांत उन्हों ने यह भी कहा कि जिस मुख्य प्रयोजन के लिये मैंने सम्पूर्ण सांसारिक सुखों और ऐश्वर्य पर लात मार तृणवत् त्याग माता पिता के स्नेह को तोड़ा है वह आप के पास मिलता दृष्टि नहीं आता" तब उस महन्त ने स्वामी जी से पूछा कि वह कौनसा प्रयोजन है जिसके लिये आप इतना कष्ट उठा रहे हो। उन्हों ने उसके उत्तर में कहा कि मैं सत्य योग विद्या और मोक्ष जो बिना आत्मिक शुद्ध सत्याचरण के प्राप्त नहीं होती खोज में हूं। यह सुन महन्त जी ने कहा कि आप का संकल्प अति सराहनीय है, कृपा कर कुछ दिन हमारे निकट और ठहरिये। परन्तु वहां उन को आत्मिक उन्नति का कोई साधन प्रतीत न हुआ, इस लिये वह दूसरे दिन जोशी मठ को चल दिये। जहां उनको योग्य योगियों, पंडितों, पुजारियों और साधुओं के दर्शन हुए और उन से योग विषयक वार्तालाप में नूतन २ बातें ज्ञात हुईं। फिर वहां से प्रस्थान कर बद्रीनारायण पहुंचे। वहां के मंदिर के महन्त रावल जी से कई दिनों तक वेदों और दर्शनों पर अधिकता से वादानुवाद हुआ और उससे यह भी ज्ञात हुआ कि इस समय आस पास कोई पूर्ण विद्वान् और सत्य योगी नहीं है जिसका उनको बड़ा शोक हुआ परन्तु उन से यह भी ज्ञात पड़ा कि बहुधा ऐसे योगी यहां दर्शनों के लिये आया करते हैं। इस लिये उन्हों ने यह एक संकल्प कर लिया कि यहां के पहाड़ों पर फिर कर योगियों को ढूंढूं। इस लिये वह एक दिन प्रातःकाल सूर्य्य के उदय होते ही पुनः पर्वत के किनारे चलते २ अलखनन्दा नदी के तट पर पहुंच वहां से नदी के स्रोत की ओर चल दिये जहां के पर्वत, टीले, मार्ग बर्फ से आच्छादित थे और अत्यन्त बर्फ जमी थी इस लिये नदी के स्रोत तक पहुंचने में बहुत क्लेश उठाना पड़ा इस पर आगे जाने का मार्ग भी प्रतीत न हुआ और वहां थोड़े ही काल में शीत के अधिक पड़ने की सम्भावना थी उस के बचाने के लिये वस्त्र भी उन के पास अधिक न थे इन सब बातों के अतिरिक्त क्षुधा प्यास भी अत्यन्त दुःखित कर रही थी जिस की शान्ति के लिये नदी में से जो दश हाथ चौड़ी

और एक हाथ गहरी बर्फ के टुकड़ों से भरी हुई थी एक टुकड़ा उठा कर खाया परन्तु उससे कुछ भी न हुआ और नदी के पार जाने का विचार कर उस में चलदिये जिससे पैर घायल होगये रक्त आने लगा और ठण्ढ के मारे वह सुन्न पड़ गये इस लिये तत्काल पैरों में लगे हुए घाव न जान पड़े और मूर्छा सी आने लगी परन्तु अब उनको यह ध्यानआया कि यदि मैं कहीं इसी स्थानपर बैठ गया तो फिर उठना दुःसाध्य हो जायगा इस लिये बड़े साहस और उद्योग के साथ सहस्त्रों आपत्तियों को झेलते और सहन करते जैसे तैसे नदीके पार पहुंचे उस समय उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय अर्थात् अधमरे के समान होगई थी तौ भी उन्होंने अपने शरीरके ऊपरी भागको नग्नकर अपने सम्पूर्ण वस्त्रोंको जो वह पहिलेथे कटि से पैरों तक लपेट लिये परन्तु आगे चलनेकी सामर्थ्य न रहीऔर मनमें किसीअन्य पुरुष की सहायता मिलने की इच्छा उत्पन्न होगई जहां उसकी प्राप्ति की कोई आशा प्रतीत न होती थी परन्तु ईश्वरीय सामर्थ्य का कौन अनुभव कर सका है। अन्त को जब उन्हों ने एक बार चारों ओर दृष्टि की तो सन्मुख दो पहाड़ी मनुष्य आते हुए दृष्टिगोचर हुए, जिन्हों ने स्वामी जी को प्रणाम कर घर जाने के लिये बुलाया। औरकहा कि आओ हम तुमको यहां भोजन भी देवेंगे जब उन्हों ने उनके संपूर्ण समाचार और क्लेशों को अच्छे प्रकार जाना तो उन्हों ने उनको सिद्धपथ नामी तीर्थ पर पहुंचाने की प्रतिज्ञा की। स्वामीजी ने उनकी इस दयादृष्टि का धन्यवाद देकर कहा कि महाराज शोक है कि मैं यह सब आप की अनुग्रह युक्त बातें स्वीकार नहीं करसक्ता क्योंकि मैं इस समय चलने के लिये सर्वथा असमर्थ हूं। तिस पर भी उन्हों ने उनको बलपूर्वक साथ चलने के लिये कहा तबउन्हों ने स्पष्टरूप से जाने को अस्वीकार किया। तिसपर वह दोनों पहाड़ी मनुष्य आगे को चल दिये और थोड़ी देर में पहाड़ों की ओट में होगये। इधर थोड़े काल के पश्चात् जब स्वामी जी को शान्ति हुई तो वह आगे चलकर बसुधा नामी तीर्थ में ठहर, उस के आसपास ग्रामों में होते हुये उसी दिन सायङ्काल के आठ बजे बद्रीनारायण में वापिस आये। जहां के महन्त रावलजी स्वामीजी के इतने दिनों तक गुप्त रहने के कारण अत्यन्त चिन्ता युक्त हो रहे थे जब वह सन्ध्या के समय पहुंच गये तब उन्हों ने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्योंका त्यों कह सुनाया फिर थोड़ा सा भोजन कर सो रहे। प्रातः स्वामी जी रावलजी से आज्ञा ले रामपुर की ओर चल दिये मार्ग में सायङ्काल को एक योगी के समीप ठहर कर रात्रि व्यतीत की। स्वामी जी महाराज वर्णन करते हैं कि वह बड़ा बुद्धिमान् तपस्वी था जो वर्तमान् समय के ऋषियों और साधुओं में एक उत्तम कक्षा का अप्रसिद्ध ऋषि होने का महत्व रखता था। मतसम्बन्धी विषयों पर बहुत देरतक उनसे वार्तालाप होती रही जिस के कारण वह अपने कर्तव्य पालनमें प्रथम से भी अधिक साहसी बन दूसरे दिन प्रातः आगेको चल जङ्गलों और पहाड़ियोंको लांघतेहुयेचिलकिया

घाटी को उतर. रामपुर में रामगिरी नामी साधू के पास आ ठहरे। जो बाह्य तथा आभ्यन्तर शुद्ध आचरणों के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध थे जिनके स्वभाव में यह अत्यन्त विचित्रता थी कि वह रात्रि को शयन न कर बिना किसी अन्य पुरुष के होते हुए भी अपने आप गम्भीर शब्दों में बातें कर व्यतीत करते थे। और सुनने वालों को यह प्रतीत होता था कि वह किसी अन्य पुरुष से बातें कर रहे हैं। जब यह अपूर्व दृश्य स्वामी जी के कर्णगोचर हुआ तब रात्रि को उठ कर देखा तो वहां उन के समीप कोई अन्य पुरुष न था। जिस को देख स्वामी जी अत्यन्त चकित हुए और उस के चेलों से पूछा तो यही उत्तर मिला कि इन का ऐसाही स्वभाव है। अन्त को स्वामी जी ने उन महात्मा योगिराज से एकान्त में वार्तालाप किया तो प्रत्यक्ष निश्चय होगया कि यह जो कुछ कर रहे हैं यह पूरी योगविद्या का फल नहीं है। वरन् पूर्णता में अभी न्यूनता है। स्वामी जी वहां से चल काशी पुर होते हुए द्रोणसागर पहुंचे जहां उन्हों ने शरद ऋतु व्यतीत की। इस स्थान पर एक बार उन के मन में यह लहर उत्पन्न हुई कि हिमालय पहाड़ पर पहुंच शरीर को त्याग कर देना चाहिये। परन्तु बहुत विचार करने के पीछे यह सम्मति स्थिर होगई कि मर जाना कोई पुरुषार्थ नहीं है परन् ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् शरीर का त्यागना उचित है। इस लिये वह वहां से चल कर मुरादाबाद, सम्भल, गढ़मुक्तेश्वर होते हुए गङ्गा के किनारे जा पहुंचे। उस समय उन के पास अन्य पुस्तकों के अतिरिक्त शिवसिंधु, हठप्रदीपिका और योगबीज और केशरांना सहूत संस्कृत में वैद्यक व चीरा फाड़ की भी कुछ पुस्तकें थीं जिन में नाड़ी चक्र आदि का वर्णन विस्तार पूर्वक था जिन को वह बहुधा देखा करते थे इन का लेख इस प्रकार का था कि जिन को कंठस्थ करना बड़ाही कठिन था इसके अतिरिक्त इनके प्रामाणिक होने में भी स्वामी जी को शङ्का थी जिस के निवारणार्थ कोई अवसर हस्तगत नहीं हुआ था। एक दिन अचानक गङ्गा के किनारे एक शव बहता हुआ देखकर, स्वामी जी ने वैद्यक शास्त्र सम्बन्धी उपरोक्त विषयों की परीक्षा का सुअवसर जान, अपनी सब वस्तु वहीं तट रख, वस्त्रों को ऊपर समेट, नदी में घुस, उस शव को किनारे ला एक तीक्ष्ण चाकू से उस को काट, दिल को निकाल, सन्मुख रख किताब से उस का मिलान करने लगे। फिर शिर और ग्रीवा के भागों को चीरकर देखा तो किताब के लेख को अत्यंत विपरीत पाया इस लिये उन पुस्तकों को मिथ्या समझ टुकड़े टुकड़े कर लाश समेत उन्हें नदी में डुबो दिया। इस कार्य्य से विदित होता है कि स्वामी जी में सत्यविद्या की प्राप्ति के खोज की कितनी प्रबल शक्ति थी। बहुधा मनुष्य तो मुर्दे को छूनाही बुरा समझते हैं परन्तु यह संन्यासी इसके विपरीत चीर-फाड़ कर पुस्तक से जांच करना कर्तव्य समझते थे. सत्य तो यह है कि इसी छानबीन के उत्तम स्वभाव ने उनको महान् पुरुष बना दिया निदान इसप्रकार

गङ्गा के किनारे किनारे विचरते हुए सम्वत् १९१२ के अन्त में फर्रुखाबाद पहुंचे। सम्वत् १९१३ में प्रथम स्वामी जी ने कानपुर, और इलाहाबाद के बीच के कई एक नगरों का अवलोकन किया फिर मिरजापुर, के समीप धनारस में कुछ दिन रहने के पीछे विन्ध्याचल अशोची के मन्दिर में एक मास तक रह फिर वरना और गङ्गा के संगम पर उस गुफा में ठहरे जो सचगन्द सरस्वती के अधिकार में थी। जहां कई एक शास्त्रियों से भेट हुई और वहां १२ दिन रह कर चाण्डालगढ़ में पहुंच दुर्गाकुण्ड के मन्दिर में ठहरे। जहां रात्रि दिन योगविद्या के पढ़ने और उसके अभ्यास करने में लगे रहे। वहां उनको भंग पीने का पुरा स्वभाव पड़ गया था जिससे वह प्रायः बेसुध हो जाया करते थे। एक दिन उन्हों ने चांडालगढ़ के समीपस्थ ग्राम के एक शिवालय में जा रात्रि व्यतीत की। जहां भंग की तरंग में उन्हों ने स्वप्न में महादेव और पार्वती को उनके विषय में बातें करते हुए सुना। पार्वती कहती थीं कि दयानन्द सरस्वती का विवाह हो जाय तो अच्छा है। परन्तु महादेव उसकी विरुद्ध विजया की तरंग और सकेत कर कह रहे थे, जब स्वामी जी जगे और स्वप्न का विचार किया तो मनमें बड़ा क्लेश हुआ। उस समय अति वर्षा होरही थी स्वामी जी मन्दिर के बड़े द्वार के सम्मुखवाले कमरे में आराम कररहे थे तथा जहां नन्दीगण की मूर्ति बनी हुई थी उसकी पीठ पर उन्हों ने अपने वस्त्र और पुस्तकें रख अपने स्वप्न के विषय में विचार करने लगे। परन्तु अचानक उस मूर्ति के भीतर की ओर दृष्टि गई तो एक मनुष्य उसमें छिपा हुआ बैठा दिखलाई दिया। ज्योंही उसकी ओर हाथ बढ़ाया त्योंही वह भयके कारण छलांग मारकर ग्राम की ओर भाग गया। तब स्वामी जी उस मूर्ति के उदर में घुस रात्रि भर वहीं शयन करते रहे। प्रातः एक वृद्ध स्त्री ने आकर उस नन्दी का पूजन कर गुड़ दही चढ़ाया स्वामी जी को भूख लग रही थी इसलिये प्रसन्नता पूर्वक उन्हों ने उसको खालिया। दही खट्टा था इस लिये भङ्ग का नशा तुरन्त उतर गया फिर उन्होंने उसी दिन से सर्वदा केलिये भङ्ग का पीना छोड़ दिया। फिर वैस सम्वत् १९१४ सन् १८५७ का स्वामी जी वहां से नर्मदा नदी के स्रोत की ओर चलते चलते एक घन वन में पहुंचे जिसके मध्य की झाड़ियों में टूटी फूटी झोपड़ियां अनेक स्थलों पर बनी हुई थीं उनमें से एक झोपड़ी पर कुछ काल ठहर और दूध पी आगे को चल दिये अनुमान डेढ़ मील चलकर उसी प्रकार के सघन वन में फिर पहुंचे जहां से आगे जाने के लिये कोई बड़ा मार्ग दृष्टि न आता था तथा जहां बेरियों के बड़े २ वृक्ष और बांस लम्बे २ जमी थी उसी वन में एक काले रीछ से सामना हुआ वह घातक जीव बड़ी भयङ्करता से घोर शब्द करता हुआ पीछे के पैरों से खड़ा हो उनके भक्षण के लिये मुख खोल दौड़ा। स्वामी जी ने चुपचाप खड़े रह धीरे धीरे अपने दंडे को उसकी ओर उठाया जिससे वह भयभीत हो भयंकर शब्द करता हुआ भाग गया। जिस

की चिंघाड़ और भयानक शब्दों को सुन दूर झोपड़ियों के निवासी सोंटा और कुत्तों को ले सहायता के लिये दौड़ आये और कहा कि आप अब आगे न जाइये क्योंकि इन पहाड़ी वनों में हाथी, सिंह, भालू, इत्यादि प्राणघातक जीव रहते हैं उन से सामना करना होगा। इस लिये आप हमारे साथ चलें यह सुन स्वामी जी ने कहा कि आप सब मेरी चिन्ता न करो इस पर उन्हों ने उनको एक लम्बा सा सोंटा दिया जिसको उन्हों ने उसी स्थान में फेंक आप आगे को चल दिये इतने में सूर्य्य अस्त होगया परन्तु किसी प्रकार के कोई चिन्ह बस्ती होने के दृष्टिगोचर न हुए हां मार्ग में ऐसे बहुत से वृक्ष दीख पड़े जिनको मस्त हाथियों ने जड़ से उखाड़ फेंक दिया था। आगे चल कर एक बड़ा भयानक घना जंगल मिला जिस में कांटेदार बेरियों के वृक्ष बहुतायत से थे, जिनके मध्य में होकर दम में पहुंचना अत्यन्त दुस्तर था, तिस पर भी वह बल बल में पेट के बल और घुटनाओं के सहारे शनैः२ निकले। जिससे उनके वस्त्र सब फट गये और शरीर घायल होगया। इतने में और भी अंधेरा छागया और अन्धकार के अतिरिक्त कुछ दृष्टि न आने लगा तिस पर भी उनका विचार ज्यों का त्यों दृढ़ बना रहा चलते २ एक ऐसे भयानक स्थान में पहुंच गये कि जिसके चारों तरफ ऊंची २ पहाड़ियां थीं। ज्योंही आगे को चले त्योंही दृष्टि उठाकर देखा तो झोपड़ियों और कुटियों के छिद्रों से कुछ टिमटिमाता हुआ प्रकाश दिखलाई दिया जिससे आगे को चलने में सुगमता होगई और थोड़ी दूर चलकर एक स्वच्छ जलवाली नदी के तट पर बकरियां चरती हुई दीख पड़ीं वहां ही एक बड़े वृक्ष के नीचे एक बड़ी झोंपड़ी के ऊपर चढ़कर सारी रात व्यतीत की। प्रातः उठकर ज्योंही अपने घायल हाथ, पैर और छड़ी को धोकर उपासना, प्रार्थना करने बैठे ही थे त्योंही किसी वनचर जन्तु की गरज जो टमटम कीसी थी सुनाई पड़ी थोड़ी देर के पीछे एक बड़ी गाड़ी जिसमें बहुत स्त्री, पुरुष और बालक बैठे हुए थे, जिनके साथ बहुत सी गायें और बकरियां थीं जो किसी मत सम्बन्धी रीति को पूर्ण करने के लिये आरहे थे स्वामी जी को एक नवीन पुरुष जान, सब उनके चारों ओर एकत्र होगये। उनमें से एक वृद्ध ने पूछा-कि आप कहां से आये हैं। इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि "हम बनारस से आये हैं और नर्मदा के स्रोत की ओर जाते हैं"। यह सुन वह सब चले गये और स्वामीजी पूर्ववत् उपासना में तत्पर होगये। इनके जाने के आध घंटे पीछे एक सर्दार दो पहाड़ी मनुष्यों सहित स्वामी जी को बुलाने के लिये आया। परन्तु वह न गये, तब उस सर्दार ने अपने दो सेवकों को उनके पास छोड़कर कहा कि तुम दोनों आग जलाकर रात भर इन की रक्षा करना। और भोजन के लिये स्वामी जी की इच्छानुसार दूध लाकर दे गया, जिस में से उन्हों ने थोड़ा सा दूध पीकर रात्रि को अच्छे प्रकार आराम किया प्रातःकाल उठकर सन्ध्या उपासना से निवृत्त हो आगे चल नियत स्थान पर पहुँचे। निदान

स्वामी जी महाराज नर्मदा के किनारे ३ तीन वर्ष भ्रमण कर, अनेक महात्माओं और विद्वानों के सत्संग का लाभ उठा, पुनः नर्मदा के स्रोत से लौटकर पूर्ण विद्या प्राप्ति के लिये मथुरा को पधारे।

:o:

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पूर्ण विद्या प्राप्त करने के लिये मथुरा में पधारने का संक्षेप वृत्तान्त।

:o:

प्यारे पाठकगणों! जब स्वामी जी महाराज नर्मदा नदी के किनारे भ्रमण कर रहे थे उन्हीं दिनों में उन को यह समाचार मिला था कि मथुरा में प्रज्ञाचक्षु नामी एक दण्डी महात्मा रहते हैं जो व्याकरण में अद्वितीय विद्वान् हैं। और उनकी इच्छा पूर्ण विद्या प्राप्त करने के अर्थ आरम्भ ही से उत्तेजित हो रही थी इस लिये विद्या प्राप्ति की अभिलाषा में बुंदेलखण्ड होते हुए यम-द्वितीया के दिन सम्वत् १९१७ विक्रमी को मथुरा में आये। जहां प्रथम कुब्जा-कूप पर निवास कर, लक्ष्मीनारायन के मन्दिर में ठहरे। उस समय वह रुद्राक्ष की माला एवं कोपीन धारी हृदय पर अचरा और शिर पर मुड़ासा बांधते और पुस्तक तथा पहाड़ी लुकट हाथ में रखते थे। मार्ग की थकावट के कारण शरीर निर्बल होरहा था और हिन्दी भाषी अच्छी भांति नहीं बोल सकते थे। उपरोक्त स्थान पर पहुंच उन्होंने स्वामी विरजानन्द प्रज्ञाचक्षु के पास जाने का विचार किया।

:o:

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के परम गुरु श्री स्वामी विरजानन्द जी का जीवन चरित्र।

:o:

इस महात्मा का जन्म सम्वत् १८५४ में पञ्जाब देश के गंगापुर ग्राम में व्यास नदी के किनारे पर महाराजा रणजीतसिंह जी के राज्य में एक नारायण दत्त नामी सारस्वत ब्राह्मण भरद्वाज गोत्री शारद जाति के यहां पर हुआ था। जब विरजानन्द जी की आयु ४॥ वा ५ वर्ष की थी तब उनको विस्फोटक का रोग हुआ जिस के कारण उन के नेत्र नष्ट होगये। ११ वर्ष की आयु तक

उन के माता पिता उनको सारस्वतादि संस्कृत पुस्तक पढ़ाते रहे। १२ वें वर्ष के प्रारम्भ में माता पिता का देहान्त हो जाने पर भाग्यवश उन को अपने ज्येष्ठ भ्राता की शरण में आना पड़ा। किसी ने सत्य कहा है कष्ट अकेला नहीं आता जहां उन को अपने माता-पिता के स्वर्गधाम पहुंचने का शोक था वहां उन के भ्राता और भ्रातृ पत्नी का बर्ताव भी सन्तोष जनक नहीं था। वैदिक शिक्षानुसार ऐसे समय में भ्राता तथा भ्रातृ पत्नी का यह धर्म था कि वह उनका लालन पालन सम्यक् रीति से करते। परन्तु शोक कि वे इस के विपरीति उन से अपशब्द और कटुवाक्यों से बर्ताव किया करते थे। जिसके कारण उनका चित्त संसार से उपराम होगया। अतएव वह घर को छोड़ २ वर्ष तक अनेकान् कष्ट भोगते और वनके मार्ग में भ्रमण करते हुए ऋषिकेश पहुंचे जहां पर उन्हों ने ३ वर्ष तक गङ्गा में खड़े होकर गायत्री का उत्तम रीति से जप कर मन और अन्तःकरण रूपी चक्षु में ज्ञानरूपी अञ्जन लगाकर प्रकाशित किया। इस के पश्चात् भी ऋषीकेश के निर्जन वन में तप करते रहे। थोड़े दिनों के पश्चात् एक रात्रि में आप को स्वप्न हुआ कि "जो तुम को होना था वह होगया अब तुम यहां से चले जाओ" तब वह १८ वर्ष की आयु में हरिद्वार आये जहां स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती जी से संन्यास ग्रहण किया। जिन्होंने उनका नाम विरजानन्द सरस्वती रक्खा इसके पश्चात् वह कुछ काल तक हरिद्वार में रहकर एक ब्राह्मण से विद्या पढ़ते रहे और बड़े २ उत्तम श्लोक बनाने लगे इस के पीछे स्वयं विद्यार्थियों को विद्या पढ़ाना आरम्भ कर दिया। फिर वहां से चल कनखल में निवास कर, सिद्धान्त कौमुदी को आप विचारा और विद्यार्थियों को भी पढ़ाते रहे। फिर यहां से प्रस्थान कर गङ्गा के किनारे २ काशी नगर में पहुंच, और एक वर्ष से अधिक निवासकर, मनोरमा-शेखर न्याय, मीमांसा और वेदान्त के ग्रन्थों को पढ़ा जिस के प्रभाव से वहां वह प्रज्ञाचक्षु स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए फिर बाईस वर्ष की आयु में यहां से चल गया को गये मार्ग में उन को चोरों ने लूटना चाहा परन्तु एक सर्दार साहबकी सहायतासे बचगये फिर उस सर्दारने स्वामी जी का पांच दिन तक अच्छे प्रकार अतिथि सत्कार किया और छटे दिन स्वामी जी वहां से चल गया जी में पहुँचे जहां उन्होंने बहुत दिनों तक रहकर वेदान्त ग्रन्थों को पढ़ा फिर कलकत्ते होते हुए सोरों पधारे और वहां कुछ काल तक विश्राम किया। उन्हीं दिनों में वहां महाराजा विजयसिंह अलवराधीश गङ्गा स्नान के लिये आए हुए थे। एक दिन महाराज अलवर स्नान कर रहे थे, और स्वामी जी गङ्गा में खड़े हुए बड़ी मधुर वाणी से शङ्कराचार्य्य के विष्णु स्तोत्र का पाठ कर रहे थे। जिसको महाराज सुनते ही मोहित होगये और स्तोत्र के समाप्त होने पर उन्हों ने स्वामी जी से अलवर चलने के लिये प्रार्थना

की। परन्तु स्वामी जी ने स्वीकार न किया। फिर महाराजा ने स्वामी जी के स्थान पर आकर अनेक प्रकार से निवेदन किया उस समय पर भी उन्हों ने न माना। अन्त को महाराजा ने उन से विद्या पढ़ने की अभिलाषा प्रकट की और कहा कि यदि आप अलवर पधारें तो मैं प्रतिदिन ३ घंटे पढ़ा करूंगा और जिस दिन मैं शिक्षा के निमित्त आप के पास न आऊं तो आप अपनी इच्छानुसार जहां चाहें वहां से चले जावें। इस प्रतिज्ञा पर स्वामी जी ने अलवर जाना स्वीकार कर लिया। वहां पहुँच तीन वर्ष राजा साहिब को शिक्षा देते रहे। जिन की सचाई और धैर्य्य को देख सब राजकीय प्रतिष्ठित पुरुष और राजा साहिब स्वामी जी की प्रतिष्ठा आदर सत्कार करते थे। जिस से पशुधा स्वार्थीजनों के हृदय जल रहे थे और वह रात दिन इसी ताक में रहते थे कि किसी प्रकार से महाराज की दृष्टि गिरादें। परन्तु उक्त महात्मा इन सब का किञ्चित् ध्यान न करते थे। राज्य की ओर से उक्त महात्मा की प्रत्येक प्रकार से सेवा होती रही अचानक महाराजा एक दिन नृत्य में मग्न होजाने के कारण नियत समय पर पठनपाठन के लिये स्वामी जी के पास नहीं गये। वह उन की वाट देखते रहे अन्त को समय व्यतीत होने पर महाराजा साहिब स्वामी जी के निकट गये तब स्वामी जी ने अपनी बहुत अप्रसन्नता प्रकट कर कहा कि "आप ने अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ा परन्तु मैं अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं करना चाहता इस लिये मैं अब यहां नहीं रहूंगा" महाराजा ने बहुत कुछ विनती की और अपराध की क्षमा चाही परन्तु उन्हों ने एक न मानी और एक दिन अपनी सम्पूर्ण पुस्तकादि सामग्री छोड़ चुप आप वहां से चल भरतपुर पहुँचे। जहां राजा साहिब के यहां ६ मास तक निवास किया जिस समय वहां से मुड़सान को पधारे तो महाराजा बलवन्तसिंह जी ने ४००) रुपये और एक दुशाला उन की भेंट किया। मुड़सान में राजा टीकमसिंह जी के यहां कुछ दिन रह, सोरों में पहुँच, ऐसे बीमार होगये कि किसी को भी उनके जीने की आशा न रही थी। परमेश्वरकी दया से आरोग्य हो, सम्वत् १८९३ में मथुरा पहुँच, एक मन्दिर में ठहर विद्या पढ़ाने लगे। थोड़े दिन पीछे वहां सदा निवास करने का विचार कर एक मकान किराये पर ले पूर्ण रीति से विद्या पढ़ाने का आरम्भ कर दिया। जहां कुछ काल व्यतीत होने पर विष्णु सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य्य रङ्गाचार्य्य महाराज मथुरा में पधारे। उसी समय उनके गुरु कृष्ण शास्त्री भी वहां सुशोभित हुये। कृष्ण शास्त्री और स्वामी जी के विद्यार्थियों में "अजाद्युक्तिः" में कौन समास है वर्तालाप होगया। स्वामी विरजानन्द के शिष्य षष्ठी तत्पुरुष और कृष्ण शास्त्री जी के विद्यार्थी सप्तमी तत्पुरुष बताते थे। दोनों के शिष्यों ने आकर अपने २ गुरुओं से कहा तब दोनों ने अपने अपने विद्यार्थियों की पुष्टि की इस पर कृष्ण शास्त्री और स्वामी जी में शास्त्रार्थ की ठहरी। सेठ राधाकृष्ण

जी मध्यस्थ नियत हुए दो ए सौ रुपये की पैज हुई सेठजी ने सौ रुपये अपने पास से डालकर-५००) रुपये कर दिये। शास्त्रार्थ की धूम सम्पूर्ण नगर में फैलगई, नियत समय पर मनुष्यगण प्रसन्नता पूर्वक आने लगे। दोनों के विद्यार्थी प्रथम से पहुंच गये—स्वामी जी ने अपने शिष्यों से कहदिया था कि जब कृष्णा शास्त्री जी आजावें तब मुझको लेचलना। शास्त्री जी स्वयं तो न आये और सेठ जी ने दोनों के शिष्यों में शास्त्रार्थ करा यह प्रसिद्ध कर दिया कि विरजानन्द सरस्वती हार गये। मनुष्य आश्चर्य में होरहे थे कि दोनों में शास्त्रार्थ तो हुआ ही नहीं फिर क्यों कर हार जीत होगई। इस पर स्वामी विरजानन्द जी मिस्टर अलकजैन्डर साहिब कलेक्टर मथुरा के समीप गये और कहा कि हमारा और कृष्णा शास्त्री का शास्त्रार्थ करा दीजिये या सेठजी से ५००) रुपये हमको दिला दीजिये। इसके उत्तर में साहिब बहादुर ने कहा कि "आप इस बात को जानते हैं कि सेठ साहूकार है हजारों रुपये व्यय करसक्ता है इससे उनके साथ अब शास्त्रार्थ आदि करना अच्छा नहीं" इतने में सेठ जी ने मथुरा, आगरा, और काशी इत्यादि के पण्डितों को धन देकर इस विषय पर हस्ताक्षर करा लिये कि कृष्णा शास्त्री जीत गये। जब स्वामी जी ने मथुरा निवासी पण्डितों से इस विषय में कहा तो उन्हों ने कहा कि जय तो आप की हुई परन्तु हम उन की विजय पर हस्ताक्षर कर चुके हैं। अतएव अब हम कुछ नहीं कर सकते। इस से स्वामी जी को पूर्ण निश्चय होगया कि भारत में आत्मघात करनेवाले और धन से धर्म को बेचनेवाले पण्डित रहगये हैं। इसके न्याय के लिये आप आगरे भी गये जहां उन को वही उपरोक्त उत्तर मिला। अंत को मथुरा आकर उन्हों ने ऋषि ग्रन्थों का विचार और खोज करना आरम्भ करदिया। क्योंकि बिना इस के किसी प्रकार से सत्य की जय नहीं हो सकती। स्वामी जी इस धुनि में लग रहे थे कि अचानक एक दिन प्रातः एक दक्षिणी ब्राह्मण को अष्टाध्यायी का पाठ करते हुए सुना जो प्रति दिन नियम पूर्वक पाठ किया करता था। जब इस पाठ की ध्वनि स्वामी विरजानन्द धर्मप्रय जिज्ञासु आत्मा के कान में पहुंची तो वह समाधिस्थ होकर महर्षि पाणिनि के अनमोल सूत्रों को समाप्ति पर्यन्त सुनते रहे। फिर उस पाठ को अच्छे प्रकार विचारा इस से उनको ज्ञात हुआ कि यही ग्रन्थ ऋषि कृति है जो पांच सहस्र वर्ष से चला आता है और जिस सूत्र ने पहिले पहल उनको शास्त्रार्थ के निमित्त सत्य साक्षी दी वह सूत्र "कर्तृकर्मणोःकृतिः" था इसके पश्चात् उनको कौमुदी मनोरमा आदि मनुष्यकृति ग्रन्थों से बड़ी घृणा उत्पन्न होगई इस लिये उनका पढ़ाना छोड़ अपनी पाठशाला में ऋषि कृति ग्रन्थों के पढ़ाने का आरम्भ कर दिया इस कार्य के ६ मास पीछे कृष्णा शास्त्री जी के शिष्य लक्ष्मण शास्त्री बीमार होगये और उनके जीवन की आशा न रही उस समय उनके चित्त में यह ध्यान आया कि अब दंडी स्वामी के श्राप का कारण है इस लिये उन्होंने सेठ राधाकृष्ण जी से कहला भेजा कि जिस प्रकार

से हो सके आप दंडीजी महाराज से क्षमा मांग उनको प्रसन्न करें सेठजी ने उक्त महात्मा के समीप जाकर उन से प्रार्थना की कि आप पांच सौ रुपये के स्थान पर हजार रुपये लेकर अपराध क्षमा कर दीजिये उसके उत्तर में दंडीजी ने कहा कि यह आप का ध्यान है मनुष्य इसमें कुछ नहीं करसक्ता यदि हमारी ओर से कुछ खटका है तो हम हजार रुपया अपने पास से देने को उपस्थित हैं कि जिस से लक्ष्मण शास्त्री बच जावें परन्तु शास्त्री जी दूसरे दिन ही परलोक गमन कर गये।

सम्वत् १६१८ के आरम्भ आगरे में एक दर्बार हुआ जिस में सम्पूर्ण भारत के राजे सुशोभित हुए थे उस समय महाराज रामसिंह जयपुराधीश ने स्वामी जी को बुलाया था और उनके शुभागमन के लिये स्वयं महाराजा द्वार पर आयें और उनको भीतर लेजाकर उच्चासन पर बिठा आप नीचे बैठ दंडी जी महाराज से इस प्रकार प्रार्थना की कि आप मुझको व्याकरण पढ़ावें स्वामी जी ने उत्तर दिया यदि आप प्रतिदिन तीन घंटे की प्रतिज्ञा करें तो मैं पढ़ासक्ता हूं अन्यथा नहीं महाराजाने अष्टाध्यायी इत्यादि कठिन पुस्तकों के पढ़नेको स्वीकार न कर प्रार्थना की यदि आप इन्हीं पुस्तकों के अनुकूल कोई सरल पुस्तक अपनी बनाई हुई पढ़ावें तो मैं पढ़ सक्ता हूं। चलते समय महाराज ने २८०) रुपये और एक दुशाला स्वामी जी के भेंट किया परन्तु उन्हों ने उस समय स्वीकृत न किया और कहा कि आप अपने यहां सार्वभौमिक सभा कराइये जिस में तुम्हारा ३ लक्ष रुपया व्यय होगा उस समय में सब विद्वानों को शास्त्रार्थ द्वारा निश्चय करा दूंगा कि अष्टाध्यायी, महाभाष्य ही व्याकरण के मुख्य ग्रन्थ हैं तथा कौमुदी, मनोरमादि, मनुष्य कृत, न्यायमुक्तावली, भागवतादि पुराण व रघुवंशादि काव्य वेदांत में पंचदशी इत्यादि नवीन साम्प्रदायिक जितने ग्रन्थ हैं वे सब अशुद्ध हैं इस से भारत का बड़ाही उपकार और उद्धार होगा और आप को विजय पत्र मिल जावेगा तथा भारतादि देशों में आप का नाम प्रसिद्ध हो जावेगा नोचेत आप सरीखे मनुष्यों का जन्म भी पशु पक्षी इत्यादि कीभांति निष्फल ही होगा। यह सुन महाराज ने कुछ प्रण किया था परन्तु उन्हों ने उसको पूर्ण नहीं किया। राजा साहिब ने अपने राज्य में पहुंच कर उपरोक्त सब द्रव्य दंडीजी महाराज के पास भिजवा दिया और ३०) रुपये माहवार प्रति दिन के व्ययार्थ नियत कर दिये इसी भांति एक और अन्य राजा ने ७॥) रुपये मासिक देने का प्रण किया था। जिस से वह अपना निर्वाह आनन्द से करते थे। आप के भोजन बहुत ही सादे थे कभी २ दूध और फल खाकर रहते थे, दूध में सौंफ को औटाकर पिया करते थे। एक बार संखिया को नमक समझ कर खागये और जब विष चढ़ा तो धीरे २ चार घड़े पानी डलवाये जिस से बच गये। मथुरा नगर में स्वामी जी महाराज विद्या गुणों के कारण ऐसे प्रसिद्ध थे कि जो कोई उन के अवलोकन को वहां

जाता तो वह आप के भी दर्शन करने को अवश्य पहुंचता। एक बार शाही घराने का एक नवयुवक इंगलिस्तान से मथुरा देखने के लिये आया तब उसने समस्त नगरस्थ पण्डितों को बुलाया उस में दंडी महाराज भी थे। उस समय किसी बड़े अंग्रेज ने एक वेद मन्त्र पढ़ा उसको अशुद्ध पढ़ते सुन दंडी जी ने कहा कि इस को किसने वेद पढ़ने का अधिकार दिया है। इस समालोचना को सुन साहिब भारतवासियों की भांति क्रोधित नहीं हुये वरन् साहिब बहादुर ने इनके साहस की प्रशन्सा की। मथुरापुरी मूर्तिपूजा की केन्द्र थी अतः स्वामी विरजानन्द सदा पुराणों और प्रतिमा का खंडन करते रहते और अपने शिष्यों को पुत्रों के समान पढ़ाते तथा उनके शुभाचरण की ओर विशेष ध्यान दिया करते थे। एक बार मिस्टर पेटर साहिब कलेक्टर स्वामी जी से मिलने गए उस समय उक्त साहिब ने कहा कि आप मेरे योग्य कोई कार्य्य बतलाइए इस के उत्तर में कहा कि आप जितनी कौमुदी की पुस्तकें हैं उन सबको उठवाकर यमुना में फिकवा दीजिये क्योंकि भारत के नाश मारने की यही जड़ है।

पाठकगणों पर विदित हो कि स्वामी विरजानन्द सरस्वती महाराज को पुराणादि मानुषी ग्रन्थों से बड़ी घृणा थी इसी कारण वह कौमुदी और पुराणादि अनार्ष ग्रन्थों के कर्ताओं को बड़ी तुच्छ दृष्टि से देखते थे और ऐसी ही शिक्षा अपने शिष्यों को करते रहते थे और कहा करते थे कि इनके भ्रमजालों ने मनुष्यों को पुरुषार्थ हीन करदिया वह वेदों को स्वतः प्रमाण मानते थे। इन की बुद्धि बड़ी तीव्र थी जिन कठिन विषयों को काशी के पण्डित समाधान करने में सकुचते थे उनको दण्डी जी महाराज क्षण मात्र में समझा दिया करते थे इनकी स्मर्ण शक्ति अपूर्व थी उनका मस्तक एक आर्य्य पुस्तकालय का काम देता था, जब उनको अच्छे प्रकार विदित होगया कि भारत के राजा महाराज हमारे कार्य्य को नहीं कर सकते। तो उन्हों ने अपने उद्योग ही पर भरोसा कर एक ऐसे विशाल बुद्धि विद्यार्थी की खोजमें रहने लगेजो पूर्ण विद्या प्राप्त कर उनके सिद्धान्त को सारे सन्सार में फैलाकर भारतवर्ष का उद्धार करे, इन्हीं दिनों में अचानक एक दिन स्वामी दयानन्द जी ने महर्षि स्वामी विरजानन्द जी के स्थान पर जा द्वार को खटखटाया तब ऊपर से विरजानन्द जीने कहा कि कौन है? उत्तर—एक सन्यासी. प्रश्न—विरजानन्द जी—क्या नाम है? उत्तर—दयानन्द सरस्वती. प्रश्न—विरजानन्द जी—कुछ व्याकरण पढ़ा है? उत्तर—दयानन्द जी—सारस्वतादि व्याकरण की पुस्तकें पढ़ा हूं।

दण्डी जी ने द्वार खुलवा दिया पास पहुंचने पर प्रज्ञाचक्षु जी ने स्वामी जी की परीक्षा लेकर कहा कि मनुष्यकृत और ऋषीकृत ग्रन्थों में बड़ा भेद है। देखो जो ग्रन्थ तुमने पढ़ा है वह अनुभूति स्वरूपाचार्य ने किसी शास्त्रार्थ में बुढ़ापे के कारण पुंसु के स्थान में पुंक्षु इस अशुद्ध शब्द के निकल जाने और पण्डितों के आक्षेप करने पर क्रोधित होकर बनाया परन्तु पुंक्ष अशुद्ध

प्रत्येक विद्यार्थी एवं गृहस्थी को ब्रह्मचर्य और कर्त्तव्यपालादियों के करने का उपदेश करते थे। आप कभी किसी से हंसी और ठट्ठा न करते यदि कोई अन्य पुरुष विषय की बातें करता तो आप उस को धुत्कार देते। सच तो यह है कि तरुणावस्था के समय स्वतंत्रता की दशा में इन्हीं महर्षि का काम था कि काम के प्रचण्ड वेगों को रोक ऊर्ध्वरेता और पूर्ण त्यागी हो संसार की काया पलटने के लिये बिजली की शक्ति से भी अधिक कार्य कर दिखलाया। विद्यार्थी दशा में दण्डी जी ने स्वामी जी को कई बार दंड दिया और पाठशाला से भी पृथक कर दिया परन्तु उन्होंने बारम्बार अपने अपराधों को क्षमा करा २ कर गुरुजी को प्रसन्न रक्खा। एक बार गुरुजी ने उन के लाठी मारी तब स्वामी जी ने प्रार्थना की कि आप मुझे मारा न करें क्योंकि मेरा शरीर अति कठोर है आपके कोमल हाथों को मेरे शरीर से अधिक व्यथा पहुंचती है। इस मार की लाठी का चिन्ह स्वामी जी के जन्म पर्यन्त बना रहा जिस को देख २ कर स्वामी जी गुरुजी के उपकारों को स्मरण किया करते थे।

जब स्वामी दयानन्द सरस्वती जी विद्या प्राप्त कर चुके और वहां से चलने का विचार किया तो प्राचीन रीति के अनुसार आध सेर लौंग महर्षि स्वामी विरजानन्द को भेंट कर वहां से चलने की प्रार्थना की उस समय स्वामी विरजानन्द जी ने बड़ी प्रसन्नता के साथ आशीर्वाद देकर उनसे विद्या समाप्ति की सफलता की गुरु दक्षिणा मांगी स्वामी जी ने कहा कि मेरे पास कुछ भी नहीं है जो मैं आप की भेंट करूं। इस पर महर्षि ने कहा क्या, मैं तुझ से ऐसी वस्तु मांगूंगा जो तेरे पास न हो. इस उत्तर से निरुत्तर हो स्वामीजी ने निवेदन किया कि जो कुछ मेरी सामर्थ्य है उसके भेंट करने के लिए मैं उपस्थित हूं इस बात को सुन दण्डी स्वामी ने कहा कि "शास्त्रों का उद्धार, मत-मतान्तरों की अविद्या को मिटा, संसार में वैदिक-धर्म का प्रचार कर देश का उपकार करो" (प्यारे मित्रो ! यह एक साधारण आज्ञा न थी. यद्यपि शब्द थोड़े प्रतीत होते हैं परन्तु इसके गूढ़ अभिप्राय को तत्वदर्शी महात्मा विरजानन्द की शुद्ध आत्मा ही जानती थी) स्वामी दयानन्द हर्ष पूर्वक इस को स्वीकार कर, अब इस की पूर्ति का विचार करते हैं तो उनको यह कार्य अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। क्योंकि जब कोई राजा अन्य राजा के बहुत छोटे से भाग के मनुष्यों की आत्मा पर नहीं वरन् शरीर पर ही राज्य करना चाहता है तो उसके पूर्ण करने के लिए हजारों मनुष्य की सेना को उद्यत कर, सहस्रों मुद्राओं को धूल में मिला, अनेकानेक प्रयत्न के पीछे, बहुधा मनुष्यों के रक्त बहाने के पश्चात् उन पर शासन करता है, तिसपर भी राजा और प्रजा की आत्मा को शान्ति नहीं होती। परन्तु यह संन्यासी केवल लंगोटामात्र जिसके पास न धन है न मनुष्यों सेना, तिस पर भी अपने गुरु से प्रतिज्ञा करता है, कि

"मैं सारे सन्सार के मनुष्य शरीर परही नहीं वरन् उनकी आत्माओं को वेद-रूपी सूर्य्य के प्रकाश से प्रकाशित कर शान्त करूंगा।" यह प्रतिज्ञा भी साधारण न थी वरन् स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के उच्चभाव और परोपकार को प्रकट करती थी। यह सम्भव था कि कोई साधारण संन्यासी इस उपरोक्त प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए निश्चय करता कि वर्तमान समय के काशी, मथुरा, प्रयाग आदि तीर्थों में से किसी एक स्थान पर आसन जमा, वहां पर आने जाने वाले यात्रियों से लाखों का धन अपनी भेट चढ़वाकर, किंचित् उपदेश भी देता रहता। परन्तु स्वामी दयानन्द को कभी भी इस कार्यवाही से शान्ति नहीं हो सकती थी। और क्या स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे महान् पुरुष "ऐसे घोर समय में जब कि भारतरूपी पृथ्वी पर नाना प्रकार के मतमतान्तररूपी बादलों की घन घोर घटा अँधियारी के कारण नक्कचढ़-रूपी पुजारी और पण्डे महन्त और बैरागी तनाधीश बने इतस्ततः मंदिरों में धर्मोपदेश के विरुद्ध अपना स्वार्थनाद सुना रहे थे" भी इन्हीं के अनुयायी बन अपनी इस प्रतिज्ञा की सन्तोष जनक पूर्ति समझते! अतएव उन्हों ने यही उचित समझा कि मैं भारत के मुख्य २ नगरों और ग्रामों में भ्रमण कर वहां के सोते हुए मनुष्यों को वैदिक ध्वनि सुना कर जगाऊंगा। इस लिये यह महर्षि ऐसा पवित्र विचार रखते हुए उसकी पूर्ति के लिये वैशाख सम्वत् १,६२० में मथुरा से आगरे को पधारे।

:o:

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का भ्रमण-वृत्तांत

आगरा।

स्वामी जी आगरे पहुँच यमुना तट पर लाला रूपराम जी की वाटिका में "जहाँ उन्हीं दिनों में कैलाश नामी संन्यासी जो राजसी रीति से रहते थे" आकर ठहरे। जिन से बहुधा मनुष्य मिलने को आया करते थे, वहां गीता के एक वेदान्त विषयक श्लोक पर कुछ विवाद होगया, जिस को कैलाश महाराज ने सर्व साधारण के समझाने के लिये यत्न किया परन्तु उन सब को शान्ति न हुई। तब रूपलाल के बेटे की प्रार्थना करने पर स्वामी जी ने इस प्रकार समझाया कि जिस को सुन सब के सब प्रसन्न हो गये। उस समय कैलाश पर्वत जी ने भी उनकी विद्वता की बड़ी प्रशंसा की। एक दिन पण्डित सुन्दरलाल इत्यादि ने स्वामी जी महाराज से प्रश्न किया कि आपने जो इतना परिश्रम कर संस्कृत विद्या पढ़ी है उस से आप क्या करेंगे। क्योंकि इन दिनों संस्कृत मृतक विद्या अर्थात् Dead language होती जाती है। इस के उत्तर में स्वामीजी ने कहा कि हमने अपना परलोक सुधारने और अन्यों की सहायता करने के लिये इस विद्या को पढ़ा है। इस पर कई मनुष्यों ने अष्टाध्यायी

पढ़ना आरम्भ करदिया थोड़ेही काल में स्वामीजी के आगमन की चर्चा फैलने के कारण बहुधा मनुष्य आने जाने लगे। उन में से एक वेदान्तीने पञ्चदशीकी कथा सुनने की इच्छा की इस पर स्वामी जी ने कहा कि मैं ऋषि कृत ग्रन्थ मानता और बांचता हूं मनुष्य कृत नहीं। तब सब ने कहा कि यह पुस्तक शंकराचार्य्य के शिष्य विद्यारण्य स्वामी की बनाई हुई है अनार्ष नहीं है। स्वामी जी ने विशेष आग्रह न करके कथा का आरम्भ कर दिया, पढ़ते २ एक स्थान पर ऐसा पाठ आया कि कभी २ ईश्वर को भी भ्रम हो जाता है। इस परस्वामी जी ने कहा कि जिस को भ्रम हुआ वह ईश्वर कहां रहा? क्योंकि ईश्वर निर्भ्रान्त है इस लिये यह ग्रन्थ मनुष्य कृत है और अनार्ष ग्रन्थों के पढ़ने के लिये गुरुजी की आज्ञा नहीं है इस लिये उस का पढ़ना त्याग प्रति दिन रात्रि को गीता पढ़ना आरम्भ कर दिया। स्वामी जी के उपदेश से लाला रूपलाल ने तीस हज़ार संध्या छपवाकर बिना मूल्य वितीर्ण की थीं। यहां से यथावसर स्वामी जी पत्र द्वारा और स्वयम् जाकर स्वामी विरजानन्द जी से अपने संशय निवृत्त करते रहे। स्वामी जी ने आगरे में कई मनुष्यों को योग सिखलाने का आरम्भ किया था परन्तु वहां से चलते समय यह समझाकर "कि तुम सब गृहस्थ हो इस कारण नियमपूर्वक न रह सकोगे तो रोग उत्पन्न होकर नाना प्रकार के दुःख होंगे" छुड़ा दिया था। एक दिन पैर में कुछ फुन्सियां होने के कारण यमुना घाटपर जा न्यौली क्रिया को किया, जिस को नर्मदा के किनारे एक कनफटा योगी से बड़े परिश्रम से सीखा था। यहां दो वर्ष रहनेके पश्चात् वेदों के देखने की अभिलाषा में कार्तिक वदी प्रतिपदा सम्वत् १६२१ को चल धौलपुर होते हुए आबू पहाड़ के मार्ग से २४ जनवरी को ग्वालियर में बापू आपड जनरल के गङ्गा मंदिर में जाकर ठहरे। उन्हीं दिनों वहां के जीवाजी राव सेंधिया काशी, पूना, सितारा, अहमदाबाद और नासिक इत्यादि नगरों से बड़े २ योग्य भागवत के बांचने वाले अनुमान चार सौ पण्डितों को बुला उन की कथा बिठलाने की कार्य्यवाही में लग रहे थे। जिन के लिये तीन मंडप उत्तम प्रकार से सजाये गये, इधर स्वामी जी के पधारने के समाचार लश्कर में फैल गये और बहुधा मनुष्य और विशेष कर पण्डितगण उन के दर्शनों के लिये आने लगे। जो स्वामी जी के सिंह नादवत संस्कृत धारा प्रवाह और श्रीमद्भागवत इत्यादि के खण्डन को सुन चले जाते। स्वामी जी को वहां आये हुए शास्त्रियों से विचार करने की बड़ी अभिलाषा थी परन्तु वह सब उनकी प्रार्थना करने पर भी विचार के लिये उद्यत न हुए। जब महाराजा सेंधिया को भागवत के खण्डनके समाचार मिले तो उन्होंने पण्डित विष्णु दीक्षित को स्वामी जी के पास भेज कर भागवत के सप्ताह का महात्म पुछवाया। उस के उत्तर में उन्होंने कहा कि दुःख व क्लेश उठाने के उपरान्त कोई फल नहीं, चाहे करके देख लो। इस उत्तर को उक्त

पण्डित के द्वारा सुन महाराजा ने हंसकर कहा कि वह बड़े सामर्थ्यवान् हैं चाहें सो करें, अब तो हम सब प्रबन्ध कर चुके हैं। इसके पश्चात् स्वामी जी ने नाथू पण्डा के द्वारा यह भी कहला भेजा कि गायत्री का पुरश्चरण होना चाहिये। उसको श्रीमान् ने यह कहकर टाल दिया कि अब सब प्रबन्ध होगया है विचार परिवर्तन नहीं होसका। निदान ४ फरवरीसे १२ फरवरी तक बड़ी धूमधाम से कथा हुई और बड़ा उत्सव रहा परन्तु ज्योंही गोविन्द बाबा की कथा समाप्त हुई। त्योंही उसी रात्रि को महारानी को पांच मास का गर्भपात होगया, जिससे राजा और रानी को अत्यन्त क्लेश हुआ। ५ फरवरी को हरी बाबा की कथा समाप्त हुई, उसी रात्रि को रावजी साहिब के घर में मृत्यु हो गई। इतने में यहां विसूचिका रोग उत्पन्न होगया, जिससे बड़ी घबराहट मचगई। २० अप्रैल को उक्त रोग से छोटे महाराज का शरीरपात होगया, जिनकी दीर्घायु के लिये यह सब उत्सव रचा गया था। जिस से राजा और प्रजा को अत्यन्त क्लेश हुआ उधर लश्कर में मरी पड़ी, जिससे वहां भी हाहाकार मच गया उस समय अनेकानेक पुरुष पक्षपात को त्याग स्वामी जी के कथन की प्रशंसा कर कहते थे कि यह सब आपत्ति महात्मा के सत्य वचनों के निरादर करने से प्राप्त हुई है यथार्थ में भागवत का महात्म्य कुछ नहीं स्वामी जी का ही कथन सत्य है। स्वामी जी यहां से चलकर करौली राज्य में पहुंचे। जहां के पण्डितों से किंचित् शास्त्रार्थ हुआ और राजा साहब से भी धर्म-विषयों पर वार्तालाप होता रहा। इस के उपरान्त स्वामी जी वहां से चल कर जैपुर में राजकुमार नंदराम मोदी के बाग में उतरे। स्वामी गोपालानंद परमहंस बाड़े निवासी ने कुछ प्रश्न जीव और ब्रह्म के विषय में पत्र द्वारा स्वामी जी के पास भेजे थे, जिसका उत्तर उन्हों ने बड़ी योग्यता के साथ लिखकर उनके पास भेज दिया। जिसको उक्त महात्मा पढ़कर ऐसे प्रसन्न हुए कि निज बाग के निवास को त्याग स्वामीजी के समीप आठहरे और प्रति दिन प्रश्नोत्तरसे अपने चित्त की शान्ति करते रहे। इसके पश्चात् श्रवणनाथ जी के शिष्य लक्ष्मणनाथ साधु के साथ चिदानंद जी के मंदिर में स्वामी जी का किसी विषय पर सम्भाषण हुआ जिस से उनका चित्त इनकी महती योग्यता को देख अति प्रसन्न हुआ और उन्होंने स्वामी जी से निवेदन किया कि महाराज आप कृपा करके इसी मंदिर में हमारे पास आजाइये और सम्प्रदायी लोगों के शास्त्रार्थ में हमको सहायता दीजिये। तब स्वामी जी ने कहा कि यदि शास्त्रार्थ में मुझको भी सम्मिलित किया जावेगा तो मैं भी अपनी सम्मति के अनुकूल कथन करूंगा। यह कह अपने निवास स्थान को चले गये इसके पीछे स्वामी जी ने कुछ व्याकरण सम्बन्धी प्रश्न लिखकर, जैपुर की पाठशाला के पण्डितों के पास भेजे। पण्डित महाशयों ने उनके उत्तर में अनेक प्रकार के असम्बद्ध शब्द लिख भेजे। जिसमें स्वामीजी ने आठ प्रकार के दोष निकाल कर

पुनः पत्र भेजा, जिस को देखकर सम्पूर्ण पण्डितों को बड़ा क्षोभ हुआ। और उस पत्र का कुछ उत्तर न दे सब पण्डित एकत्र होकर व्यास बख्शीराम के समीप गये और कहा कि स्वामी दयानन्द सरस्वती को अपने महलों में बुला हमारा शास्त्रार्थ करा दीजिये। तब उक्त व्यासजी ने राजराजेश्वर के मंदिर में सब को एकत्रित कर शास्त्रार्थ कराया। प्रथम जैपुर निवासी पण्डितों की ओर से एक मुखिया पण्डित ने कल्म शब्द की व्याख्या की जिस का स्वामीजी ने अच्छे प्रकार खण्डन किया, जिसको सुन पण्डितगण चुप होगये, हां उन के शिरोमणि एक मैथिल ओझा ने कहा कि यह अर्थ कहां पर लिखा है? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि यह मेरा सारा कथन महाभाष्य के अनुकूल है। तब ओझाजी ने कहा कि महाभाष्य की व्याकरण में गणना नहीं है। स्वामी जी ने शोक के साथ कहा कि यदि आप का यही मन्तव्य है तो लिखकर हस्ताक्षर कर दीजिये। यह सुन ओझाजी मौन होगये। फिर व्यास जी के संकेत से चुन्नालाल ने स्वामी जी से कहा कि महाराज अब इस विषय को समाप्त कीजिये क्योंकि अतिकाल होगया है और आप को बाहर जाना है। स्वामी जी ने कहा कि झटपट हस्ताक्षर करा दीजिये परन्तु वहां कौन सुनता है सब उठकर चल दिये। स्वामी जी भी यह कहते हुए कि ऐसे पुरुषों को पण्डित नहीं कहना चाहिये जो निरुत्तर होने पर उठकर भागे जाते हैं। इस शास्त्रार्थ के समाचार ओसवाल वैश्यों के गुरु यती जी ने सुन स्वामी जी से वार्तालाप करने की इच्छा प्रकट की। जिसको उन्हों ने हर्ष पूर्वक स्वीकार कर लिया। परन्तु शोक है यती जी महाराज पर कि जिन्हों ने अपने दो चार के प्रश्नों का यथावत् उत्तर पाने पर भी स्वामी दयानन्द जी के १६ प्रश्नों में से किसी का उत्तर नहीं दिया। इसके उपरान्त इन्हीं दिनों में किसी मुकद्दमे के कारण ठाकुर हीरासिंह गांव भिवासी गढ़ा आये हुये थे जो स्वामी जी से पूरा परिचय रखते और मूर्तिपूजा के विरोधी थे, उनकी अचरोल के जागीरदार ठाकुर रंजीतसिंह से भेंट हुई जो राधाकृष्ण के उपासक थे। ठाकुर हीरासिंह ने उक्त ठाकुर साहब के मन्तव्यों का खण्डन किया और वह उनकी शिक्षानुसार स्वामी जी के पास गये और उनके सदुपदेशों को सुन ऐसे प्रसन्न हुए कि स्वामी जी को अपने यहां चार मास निवास करा कर, मनुस्मृति, छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषद् की कथा सुनते रहे। इनका कथन ऐसा रोचक और प्रभावशाली था कि जिसको सुनकर बहुधा मनुष्य चकित होजाते थे, आपके उपदेशों के प्रभाव से हीरालालजी कायस्थ कामदार ठाकुर साहिब ने मदिरा और मांस खाना पीना बिलकुल छोड़ दिया। यहां पर आपने एक पत्र भागवत के खण्डन में छपवाया जिसमें लिखा था कि परमात्मा कृष्ण पर जो कलङ्क लगाये गये हैं वह सब मिथ्या हैं। स्वामी जी यहां निराकार परमात्मा को शिव के नाम से बतलाया करते थे न कि पार्वती के पति को। इन्हीं दिनों में महाराजा रामसिंह

जैपुराधीश वैष्णवों और शैवों का शास्त्रार्थ करा रहे थे। अर्थात् शिवलिङ्ग का स्थापन करना और अन्य मूर्तियों की पूजा न करना उनका मन्तव्य था। इसके मुख्य प्रबन्धक व्यास बख्शीराम और उनके भाई धनीरामव्यास थे जोकि स्वामी दयानन्द के जयपुर के बड़े २ पण्डितों से शास्त्रार्थ करने और पराजय की योग्यता से भली भांति परिचित थे, इसलिये उन्हों ने अन्तःकरण में विचार किया कि यदि स्वामी दयानन्द सरस्वती हमारे पक्ष में होजायें तो फिर किसी प्रकार की शङ्का नहीं, ऐसा विचार कर वह स्वामी जी के पास गये और अपने प्रयोजन की बातें कर राजा रामसिंह जी की सम्मति से स्वामी जी को बुलाया और वह आकर राजराजेश्वरी के मन्दिर में पधारे, परन्तु वहां जाकर उन्होंने मूर्ति को नमस्कार नहीं किया जिसको बख्शीराम व्यास ने भी जाना और अन्य किसी मनुष्य ने भी उक्त सरदार ने कहा कि यह तो प्रत्येक प्रकार की मूर्ति को उखाड़ना चाहते हैं, इस लिये व्यास जी ने राजा साहब से भेंट नहीं होने दी। स्वामी जी ने वैष्णव मत का खण्डनकर शैव मत को स्थापित किया, जिसको राजा साहब ने भी स्वीकार किया। इस से इसकी अधिक उन्नति हुई, जिधर देखो उधर रुद्राक्ष की माला ही माला दृष्टि आने लगी। स्वामी जी चार मास यहां रहकर, बगरू में दो दिन ठहर कर, दूदू पधारे। जहां के ठाकुर इन्द्रसिंह जी धर्मोपदेश सुन वेदानुयायी बनगये। स्वामी जी यहां से चल कृष्णगढ़ और अजमेर होते हुए १२ व १३ मार्च सन् १८६६ को पुष्कर पहुंच, वहां के प्रसिद्ध ब्रह्म मन्दिर में ठहरे। यहां पर स्वामी जी ने अनेकान् प्रमाण और प्रबल युक्तियों से मूर्तिपूजा और चक्राङ्कित का खण्डन करना आरम्भ कर दिया जिसको सुन वहां के मनुष्यों ने प्रसिद्ध विद्वान् बैकुण्ठशास्त्री को शास्त्रार्थ के लिये जो पुष्कर की अगस्त नामक गुफा में रहते थे उद्यत किया। परन्तु यह कब हो सकता था कि वह एक ऋषि के सामने अपने असत्य पक्ष को सिद्ध कर सकें निदान वह न आये।

परन्तु स्वामी जी को कब शान्ति थी क्योंकि मोती की पहिचान जौहरी ही जानता है स्वामी जी यह समझ कर कि यदि मैं शास्त्री जी को समझा लूंगा तो फिर इन मनुष्यों पर भी अच्छा प्रभाव होगा तीन चार सौ मनुष्यों के सहित गुफा पर पहुंचे जहां प्रथम भागवत पर शास्त्रार्थ होना आरम्भ हुआ और शास्त्री जीने भागवत का मण्डन करते हुये कहा कि "विद्यावतांभागवतेपरीक्षा" स्वामीजीनेउत्तरदियाकि "विद्यावतांभागवतेऽपरीक्षा" इसके अनन्तर स्वामी जी ने भागवत का खण्डन कर अच्छे प्रकार बतला दिया कि बोपदेव की बनाई हुई है जो बंगाल देश का पण्डित था व्यास कृत नहीं, इस पर शास्त्री जी न कह सके और अन्त को शाब्दिक विवाद पर उतर पड़े जो कभी भी समाप्त नहीं हो सकता, तौ भी इस वर्तालाप का शास्त्री जी पर बड़ा प्रभाव हुआ क्योंकि अन्त को उन्हों ने स्वामी जी को विद्या और बुद्धि

की बड़ी प्रशंसा की और उनको अपने विद्यागुरु अघोरी जी के पास ले गये जो बड़े विद्वान् और प्रसिद्ध पण्डित थे जिनसे वैदिकधर्म विषय पर संस्कृत में वार्तालाप हुआ जिन्होंने प्रसन्न होकर सर्व साधारण में कह दिया कि स्वामी जी का कथन बहुत ठीक है किसी को भी हठ न करना चाहिये। यहां पर स्वामी जी के उपदेश का प्रभाव अच्छा हुआ सहस्रों मनुष्यों ने कंठी उतार, मूर्तिपूजा को छोड़, सच्चिदानन्द परमेश्वर के जप करने का आरंभ कर दिया और इसी स्थान पर स्वामी जी ने रामानुज सम्प्रदायियों का खन्डन करते हुए कहा था कि-'अतप्ततनुःस्वर्गंगच्छति' का यह अर्थ नहीं है कि शरीर को धातु की मुद्रा से दग्ध करने में स्वर्ग मिलता है वरन् यह है कि व्रत, तप, नियम से शरीर को तपा और मनको विषयों से रोक उपाधि में लगाने से सुख प्राप्त होता है।

स्वामी जी यहां से ३० मई सन् १८६६ ई० को अजमेर पधारे जहां भागवत को भड़वा मन्दिरों को अड्डा, मालाओं को गले का भार, बतलाते थे वहां पहुंचते ही नगर के मार्गों में विज्ञापन लगवा दिये कि जिस किसी को मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करना हो हमारे साथ करले परन्तु कोई सन्मुख न आया बहुधा मनुष्यों ने लिखकर प्रश्न भेजे जिनका स्वामी जी ने यथोचित उत्तर देदिया उन में एक प्रश्न यह भी था कि संन्यासी को किसी ग्राम में तीन दिन से अधिक न ठहरना चाहिये जिसके उत्तर में उन्हों ने लिखा था कि जहां अंधकार अधिक फैला हुआ हो वहां उपदेश के अर्थ अधिक ठहरना चाहिये इनके उपदेश और शिक्षा से यहां बहुधा मनुष्यों ने कन्ठी उतारकर रखदी थीं और सादूर के ठाकुर साहिब स्वामी जी के शिष्य हुए इसी स्थान पर दो तरुण तपस्वी जो सन्स्कृत के विद्वान् थे स्वामी जी से मिलने को आये जो बहुत देर तक सन्स्कृत में सम्भाषण करते रहे अन्त को स्वामी जी ने उनसे यह भी कहा कि अभी आपने अहंकार नहीं जीता, इस पर उन तपस्वियों ने क्षमा मांगी और "नमोनारायण" कहकर चले गये। इनही दिनों में यहां रामसनेहियों के बड़े महन्त आये थे उनसे स्वामी जी ने शास्त्रार्थ करने के लिये कहला भेजा परन्तु वह न डटे तब स्वामी जी ने एक पत्र संस्कृत में राम राम और भागवत पर कुछ प्रश्न लिख कर भेजे, जिसको देख वह दूसरे दिवस ही चल दिये। कि मैं कल उत्तर दूंगा प्रातः आप ही वहां से चले गये, हां एक दिन पण्डित हरिश्चन्द्र के गुरुभाई दिल्ली निवासी से कुछ वार्तालाप हुआ था जिसमें स्वामी जी ने अपने पक्ष में मनुस्मृति और उपनिषदों के प्रमाण दिये जिससे वह बहुत प्रसन्न हुये और स्वामी जी का बड़ा ही सन्मान किया। जैन मत के अनुयायी भी वहीं आते जाते और चर्चा करते रहते जिनमें से अच्छूलाल जैनी ने तीन दिन वादानुवाद के पश्चात् अन्त को कह दिया कि आप का कथन ठीक है इसके अनन्तर इस नगर के पादरी ग्रे राबिन्सन और शलवर्जन साहिब से

सभ्यता पूर्वक ईश्वर, जीव, सृष्टि-क्रम और विषय पर चर्चा होती रही जिनके उत्तर स्वामी जी ने बड़ी योग्यता और उत्तमता से दिये चौथे दिन स्वामी जी ने ईसा के ईश्वर होने और मरकर जीवित होकर आकाश पर चढ़ जाने के विषय पर प्रश्न किये पर किसी ने योग्य उत्तर न दिया इस धर्म चर्चा में दो तीन सौ के अनुमान मनुष्य एकत्र हो आया करते थे। एक दिन स्वामी जी पादरी राबिन्सन साहिब से मिलने गये तब आप ने प्रश्न किया कि ब्रह्मा का अपनी पुत्री के साथ भोग करना सत्य है? स्वामी जी ने कहा इस नाम का कोई अन्य पुरुष होगा महर्षि ब्रह्मा ऐसे न थे इस पर पादरी साहिब ने प्रसन्न हो कर एक पत्र इस प्रकार लिखकर स्वामी जी को दिया "कि यह प्रसिद्ध वेदों के जानने वाले विद्वान् हैं, हमने अपनी आयु में ऐसा संस्कृत का विद्वान् नहीं देखा ऐसे पुरुषों का मिलना संसार में दुर्लभ है इस लिये जो पुरुष इन से मिले वह प्रतिष्ठा पूर्वक मिले, जो इन से मिलेंगे उनको बहुत लाभ होगा" स्वामी जी महाराज एक बार डेविड साहब बहादुर डिप्टी कमिश्नर से मिले और उन से कहा कि राजा प्रजा का पति है और प्रजा पुत्र के समान होती है इस लिये जब पुत्र कोई दुष्ट कार्य करने लगे तो माता-पिता का धर्म है कि उसकी रक्षा करे, देखिये भारत देश में नाना प्रकार के मतमतान्तरों के लोग आप की प्रजा को बहु प्रकार से लूट रहे हैं इसका प्रबन्ध करना आपका परम कर्तव्य है, साहब बहादुर ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया कि यह मत सम्बंधी बातें हैं इस में सरकार हस्ताक्षेप नहीं कर सकती, कर्नल ब्रुक साहब बहादुर एजेन्ट गवर्नर जनरल को गेरुये कपड़े वालों से बहुत चिढ़ थी एक दिन साहब बहादुर स्वामी जी के पास गये और उनसे मिले, स्वामी जी ने गौरक्षा के लाभ गोकरुणानिधि के अनुसार समझाये जिस को साहब बहादुर ने स्वीकार कर कहा कि इस में मेरा अधिकार नहीं है मैं आप को एक पत्र लिखे देता हूं। जिस किसी को दिखलाओगे वह आप से अच्छे प्रकार से मिलेगा उस समय स्वामी जी के महाराजा जैपुर से भेंट न होने की भी चर्चा थी इस पर उक्त एजेन्ट साहब बहादुर ने महाराजा रामसिंह जैपुर को लिखा कि शोक का स्थान है कि आप ने ऐसे उत्तम वेदवक्ता पुरुष के साथ वार्तालाप नहीं किया इस चिट्ठी को देखकर महाराजा ने बड़ा पश्चात्ताप किया और ठाकुर रंजीतसिंह अचरोल को बुलाकर कहा कि उन स्वामी जी से जो आप के बाग में ठहरे थे मैं मिला चाहता हूं पहिली बार मुझ को परिचय न था अब फिर बुलाइये इस के उत्तर में उक्त ठाकुर साहब ने कहा कि इस समय वह पुष्कर में हैं वहां से लौटते समय यहां अवश्य ही पधारेंगे तब मैं आप को सूचित करूंगा।

स्वामी जी महाराज पण्डित विरोधचन्द्र और शिवनारायण जी के साथ कृष्णगढ़ गये और शुभसागर के किनारे उतरे वहां पण्डित कृष्णवल्लभ जोशी तथा लाला महेशदास वैश्य ओसवाल (जो संस्कृत के विद्वान् और मार्ई

जी के दीवान थे) स्वामी जी महाराज से बड़ा प्रेम और प्रीति रखते थे वहां के राजा जी वल्लभ कुल के सेवक थे, स्वामी जी महाराज ने आते ही पूर्ण रूप से खण्डन करने का आरम्भ कर दिया, जिस से वहां भी विरोधी जन विरोध करने पर उद्यत हो गये राजा पृथीसिंह जी के कहने पर ठाकुर गोपाल सिंह तीस चालीस मनुष्यों और छः सात राज पण्डितों सहित वहां पहुंचे और कहा कि वल्लभ मत सनातन है हम सीधे मार्ग पर हैं स्वामी जी ने इस प्रकार खण्डन किया कि राजपण्डित मौन हो गये हां जब शास्त्रार्थ न कर सके तो शस्त्रार्थ पर उतारू हुए इतने में पण्डित वृद्धिचन्द्र की जाति के तीस चालीस आदमी आगये इनको देख वह चुपचाप सटक गये स्वामीजी यहां से पांचवें दिन टूटू में पधारे और तीन दिन महलों में उपदेश कर किशनगढ़ में आये और वहां

एक रात्रि ठहर कर जैपुर में ठाकुर साहब अचरौल के बाग में निवास कर पूर्व की भांति उपदेश करना आरम्भ कर दिया, ठाकुर रंजीतसिंह जी ने अपने पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार जैपुराधीश को सूचित किया उन्हों ने व्यास बख्शीराम को भेज निवेदन करांया कि आप महलों में पधारें श्रीमान् को आप के दर्शनों की अभिलाषा है स्वामी जी ने व्यासजी से कहा कि मेरी इच्छा महलों में जाने की नहीं है यदि महाराज को कुछ सम्भाषण करना हो तो किसी समय कुछ काल के लिये यहां ही चले आवें, महाराज ने यह सुन कर ठाकुर रंजीतसिंहजी से कहा कि आप इस कार्य को कीजिये तब उक्त ठाकुर साहब अनेक प्रतिष्ठित पुरुषों को साथ लेकर स्वामी जी के पास गये और सविनय निवेदन कर स्वामी जी को साथ लेकर भोज मन्दिर में सुशोभित हुए, वहां सब राजपंडित भी उपस्थित थे दैवयोग से महाराजा किसी कार्य वश अन्तः पुर में चले गये और देर तक आने की आशा न रख सम्पूर्ण मनुष्य अपने २ स्थान को चले गये, स्वामी जी भी अपने निवासस्थान को लौट आये फिर इसके पीछे महाराजा ने स्वामी जी के पधारने के लिये बहुत यत्न किए परन्तु स्वामी जी महलों में न गये । ८ अक्टूबर सन् १८६६ ई० तक जयपुर में रहकर हरिद्वार के लिये विचार कर चल दिये, कार्तिक बदी ६ सम्वत् १९२३ तदनुसार १ नवम्बर सन् १८६६ ई० को आगरा के समीप पहुंचे वहां उन्हीं दिनों में अर्थात् १९ नवम्बर तक एक शाही दरबार होने वाला था जिस की बड़ी धूम धाम मच रही थी इस लिये स्वामी जी ने आगरे में ठहर कर धर्म का प्रचार किया और एक सात, आठ पृष्ठ का ट्रैक्ट भागवत के खंडन और वैष्णवों के विरुद्ध संस्कृत और भाषा में पण्डित ज्वालाप्रसाद भार्गव के प्रेस में छपवाकर कई हजार प्रतियां आगरे के दर्बार में बांट दीं और कई हजार प्रतियां हरिद्वार में वितीर्ण करने के लिये अपने पास रखलीं । स्वामी जी यहां से चल कर मथुरा पहुंचे और अपने गुरू श्री १०८ दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी को दो अशर्फी और एक थान मलमल का भेंटकर दर्शन किये यह महा-

राज की अन्तिम भेंट थी स्वामी जी ने अनेक सन्देहों को निवृत्त कर पद्धतिओं के विषय में अपने विचारों को प्रकट किया और अपना बनाया हुआ ट्रैक्ट सुनाया जिस को सुन गुरु जी अति प्रसन्न हुए पुनः स्वामी जी ने हरिद्वार के कुम्भ पर स्वधर्म प्रचारणार्थ जाने की आज्ञा मांगी उन्हों ने प्रसन्नता पूर्वक जाने को कहा और अशीर्वाद दिया स्वामीजी वहां कुछ दिन रहकर विद्येश्वरानन्द और शंकरानन्द सहित मेरठ पहुंच कर देवी के मन्दिर में ठहर पण्डित गंगाराम जी रईस से मिले जिन्हों ने कहा कि कामदेव सब भ्रष्ट करता है इस पर स्वामी जी ने कहा कि जो कोई नियम-पूर्वक रहता है उसका कामदेव मन्द हो जाता है और जब वह चढ़ आता है तब नहीं उतरता, इसकी विधि यह है कि मनुष्य एक स्थान पर रहे, नाचादि में न जावे, न स्त्रियों की ओर देखे, प्रणव का जप करता रहे जब अधिक आलस्य हो तब रात को सो जावे फिर उठकर भजन करने में लग जाये प्रातःकाल उठ शौचादि से निवृत्त हो पांच दाने मालकंगुनी के खा लिया करे, सदा बुरी बातों के सुनने और देखने से बचता रहे, इसके उपरान्त कभी चित्त में बुरी बातों का स्मरण न करे, वरन् सदा ईश्वर के ध्यान में लगा रहे। वहां से चलकर १२ मार्च सन् १८६६ को हरिद्वार पहुंचे।

प्रथम कुम्भ हरिद्वार पर स्वामी जी का पधारना और धर्मोपदेश करना।

पाठकों पर विदित हो कि इस स्थान के दृश्य को अवलोकन कर परमात्मा की अपार लीला का भान होता है। कौन ऐसा पुरुष है जो उस दृश्य को देख कर चकित न हो। जहां के दो पहाड़ियों के बीच में गङ्गा का स्वच्छ जल अपनी निर्मलता को दिखला कर मनुष्यों के चित्त को प्रफुल्लित करता है। वहां सरकारी नहर ने उसको अपूर्व अद्भुतता का दृश्य बना दिया है। ज्योंही वैदिक धर्म के सतोपदेश रूपी सूर्य्य का प्रकाश मन्द होने लगा त्योंही स्वार्थी जनों ने अपने साधन के अनेक ढंग निकाल इसकी सप्तपुरियों में गणना कर बड़े २ महात्म लिख दिये। उसी के अनुसार गङ्गा स्नान सर्वोपरि तीर्थ होगया उसमें भी प्रायः बारह वर्ष के कुम्भ पर हरिद्वार की पौड़ियों के स्नान का अधिक महात्म बन गया। जिसके लिये इस मेले में सहस्रों वरन् लाखों मनुष्य अनेक मतमतान्तरों के विद्वान् प्रतिनिधि इकट्ठे होने लगे। वही वैशाख संवत् १९२४ का कुम्भ का मेला था। इस समय हरिद्वार क्या था मानों शैव, शाक्त, वैष्णव, राधापन्थी, कबीर, नानक इत्यादि के उपरान्त गिरी, पुरी, भारथी, अरण्यी, पर्वत, आश्रमी, सरस्वती, सागर और तीर्थ आदि नाम के संन्यासियों, उदासियों, रामसनेहियों, वाममार्गियों, अहंब्रह्मास्मि और निर्मले इत्यादि

मतमतान्तरों का समूह था। इस लिये उस बालब्रह्मचारी ने उपदेश का केन्द्र समझ और भारत में वैदिक धर्म के प्रचार का उत्तम अवसर जान परमेश्वर का पूर्ण विश्वास रख भारत के जाल को जड़ से उखाड़ने के लिये सिंहनाद की भांति वेदों के प्रचार का आरम्भ कर दिया। यह इन्हीं की सामर्थ्य थी कि पौराणिकों के मुख्य तीर्थ (जिस में बड़े २ राजे महाराजे, रणवीर सिंह, जम्मू, कश्मीर और संस्कृत के विद्वानों के महापूज्य, काशी के महाविद्वान्, पौराणिकों के गुरु और प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती आदि विद्यमान थे) में पाखण्ड खण्डनी झण्डा खड़ाकर कुम्भ के दिन कपोल कल्पित मतों का खण्डन करना आरम्भ कर दिया। जिसको सुन बहुधा जन अपने तर्कों का यथार्थ उत्तर पा प्रसन्न हो चले जाते और अनेकान् पुरुष यह कहते थे कि हाय! अंधेर क्या करें अंग्रेजी राज्य है नहीं तो सिर मार देते। यह कलियुग का प्रताप है। स्वामी विशुद्धानन्द संन्यासी यजु० अ० ३१ मं० ११ का [ब्राह्मणो मुख मासीद्बाहू राजन्यः कृतः ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यांशूद्रो अजायत] यह अर्थ करते थे कि ब्राह्मण परमात्मा के मुख से और क्षत्री भुजाओं से और वैश्य जङ्घाओं से और शूद्र पैरों से उत्पन्न हुए हैं। स्वामी दयानन्द जी ने इस असत्य अर्थ को सुन कर अच्छे प्रकार श्रोताओं का ध्यान इस ओर आकर्षण कर, कहा कि यदि यही अर्थ ठीक है तो पापी भी उसी मुख से उत्पन्न हुए हैं। इस लिये यह अर्थ संगत नहीं, वरन् इसका सत्य अर्थ यह है कि ब्राह्मण वर्णों में मुख है, क्षत्री भुजा, वैश्य जङ्घा और शूद्र पैरवत् हैं, इसको सुन कर पौराणिक लोग स्वामी जी को नास्तिक अर्थात् वेदों का खण्डन करनेवाला कहते। परन्तु स्वामी जी प्रतिक्षण धर्मोपदेश में लगे रहते थे। सन्त अमीरसिंह निर्मले और बस्तीराम, स्वामी रतनगिरी आदि विद्वान् (जो प्रतिदिन धर्म चर्चा में सम्मिलित होते थे) स्वामी जी की विद्या की प्रशंसा करते। स्वामी दयानन्द जो संस्कृत के पूर्ण विद्वान् और योग्य पुरुष थे स्वामी जी के निकट शङ्का समाधान को जाया करते, तथा उन के वेदों के अपूर्व अर्थ सुन उनके अनुयायी हो गये। इसके उपरान्त हजारों मनुष्यों का समूह उपदेश के समय होता था, स्वामी विशुद्धानन्द और गुसाइयों में परस्पर झगड़ा होगया। गुसाइयोंने स्वामी विशुद्धानन्द पर नालिशकर दी वह लोग स्वामी दयानन्द जी के पास आये और निवेदन किया कि आप हमको सहायता दें तब उक्त महात्मा ने स्पष्ट कहदिया कि हम किसी के पक्षपाती नहीं केवल सत्य के मानने वाले हैं।

मान्यवरो! सच तो यह है कि महर्षि स्वामी दयानन्द निर्भय होकर अपने सत्य मन्तव्यों द्वारा पौराणिकों को मूर्ति पूजा, भागवत, तीर्थ अवतार, व्रत, नवीन सम्प्रदायियों का पूर्णरूप से खंडन और सहस्रों वर्षों के कपोल कल्पित

मिथ्या विश्वास को मनुष्यों के हृदयों से दूर कर यही सिंहनाद सुनाते थे कि इस मिथ्या जाल को छोड़कर वेदों के अमृतरूपी सतोपदेश को पानकर संसार का उद्धार करो। प्यारे पाठकगणों! महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने इस मेले में अपने सार वचनों से हिन्दुओं के पुराणरूपी मन्तव्यों की नीव को हिलादिया, हजारों वर्ष की मिथ्या पोपलीला के पूर्ण विश्वास को खोखला कर दिया। पाखंड खंडनी झंडा क्या था मानों भारतवर्ष के नाना मतमतान्तरों को उपदेश कररहा था कि मिथ्या जालों को छोड़कर परमात्मा की शरण आने के लिये ओं रूपी झंडे का सहारा लो।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को तीव्र वैराग्य का उत्पन्न होना।

हरिद्वार पहुंचने से पूर्व स्वामी जी ने पूर्ण रीति से निश्चय करलिया था कि सर्व प्रकार की मूर्तिपूजा, वाममार्ग, वैष्णवमत, चोलीमार्ग, बीजमार्ग अवतार, कण्ठी, तिलक छाप, माला, पुराण, उपपुराण, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म को तप्त करके दग्ध करना, गंगादि नदियों से पाप कटना, काशी आदि क्षेत्रों में मुक्ति का मिलना, नाम स्मरण और एकादशी आदि व्रतों से भवसागर पार उतरना महा मिथ्या है। परन्तु इस से पूर्व स्वामी जी महाराज को कोई ऐसा अवसर हस्तगत नहीं हुआ था जिस में भारतवर्ष की सम्पूर्ण सम्प्रदायों के मनुष्यों के आचरणों को देखा हो इस लिये यह कुम्भ उनको प्रथमही अवसर था जिस के देखने से उन को ज्ञात हुआ कि दस नाम के संन्यासी आपस में युद्ध करते, गुसाईं विवाह करके भगवे बाने को लजाते नामके त्यागी गृहस्थों के बाश धन मद्यपान, मांसाधारी, व्यभिचारी, अहम्ब्रह्मास्मि की लहर में फंस आनन्द उड़ा, सत्य का मार्ग त्याग स्वयम् परमात्मा बने हुए हैं निर्मले नाम ही के निर्मल क्योंकि सत्य धर्म की निर्मलता और उज्ज्वलता से कोसों दूर थे, उदासी घोड़ों (जिन पर सोने चांदी की झूलें पड़ीं) पर सवार हाथों में कंकन इत्यादि आभूषण पहिने सब प्रकार आनन्द के सामान लिये मस्त उपस्थित थे। वैरागियों में वैराग त्याग कहने मात्र परन्तु तम्बाकू, चर्स, भङ्ग, गांजा, वैरागिनियों में मस्त योगी गोरखनाथ के नाम को बदनाम करनेवाले कानों में सोने के कुण्डल डाले गद्दियों के महन्त बने हुए, धर्म कर्म को धता बतानेवाले, योग के पूरे शत्रु, मांस भक्षी, बच्चों के कान फाड़ने में चतुर, सेठ साहूकार बुद्धि विहीन गांठ के पोढ़े संड मुसंडों के चेले तन मन धन गुसाइयों और गुरुओं के अर्पण करनेवाले चापलोसी में अलित डरपोक साथियों की सङ्गत में दिन रात रहकर लोक व परलोक से निर्द्वन्द, अफीम के गोले खाने में चतुर, फकीरों की स्याही और गृहस्थों की सत्यानाशी, राजाओं की मूर्खों

से संगत, बुद्धिमानों से घृणा, विद्वानों का मौन धारण कर सत्य को छिपाना इत्यादि भयानक लीलाओं को देख स्वामी जी के मन में नाना प्रकार की तरङ्गें उठने लगीं और इन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से सम्पूर्ण मेले के चरित्रों को अनुभव किया तो प्रत्येक मूर्ति पूजनादि में डूबा हुआ देख उन के मन में तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुआ और आर्य्य सन्तान को ईसाई, मुसलमान होता सुन उस का ध्यायमान मन स्थिर न रहसका तथा उपरोक्त पौराणिक पुरुषों के अनुयायी न बन वारम्वार इस पर विचार किया कि देश की डामाडोल भँवर में पड़ी नौका को सहारा दे सका हूं कि नहीं, अन्त को उस की शुद्ध आत्मा में यही निश्चय हुआ कि रोग की औषधि न करना अधिक पाप है।

जिस प्रकार स्वामी विरजानन्द जी को अष्टाध्यायी के पाठ मात्र से निश्चय हुआ था कि केवल ऋषी ग्रन्थों ही द्वारा भारत का उद्धार हो सका है इसी प्रकार स्वामी जी को इन साम्प्रदायिक मनुष्यों के देखने से निश्चय होगया कि यह सम्प्रदायें भारत का उद्धार नहीं कर सकीं वरन् अधोगति पर ले जाने वाली हैं। यदि भारत का बेड़ा पार हो सका है तो केवल एक वेद के प्रचार द्वारा ही होना सम्भव है जो सुगम नहीं है। इस लिये उन्होंने गुरु आज्ञा पूर्ण करने के अर्थ सब सुखों को तिलांजुली दे भारत संतान के उद्धार के अर्थ अपने व्याख्यान की समाप्ति पर **ओ३म् सर्वं वै पूर्णं ॐ स्वाहा** कहकर अपना सब पदार्थ, पुस्तक, बर्तन पीताम्बरी धोतियां, रेशमी कपड़े, दुशाले, वा ऊनी कपड़े तथा नकदी सब कुछ बांट, महाभाष्य का पुस्तक ३५) एक थान मलमल का पण्डित दयाराम जी के द्वारा गुरू जी को भेज, आप ने लंगोट कस, नग्न हो, भस्म रमा, अवधूत बन, डेरा उखाड़, गंगा के किनारे २ यात्रा करदी। स्वामी जी के इस विचित्र वैराग ने बहुत से महात्मा और साधुओं के अंतःकरण में धर्म का अंकुर जमा दिया अर्थात् वह परस्पर एक दूसरे से कहते थे कि जो महात्मा दयानन्द जी कहते हैं वह सत्य है, यथार्थ में मूर्तिपूजा, पुराणों की शिक्षा और सम्प्रदायों के झगड़ों ने भारत का नाश मार दिया।

प्रथम स्वामी जी यहां से चल **ऋषीकेश** और वहां से पांच छः दिन में लौट कर हरिद्वार कनखल होते हुए **लंधौरा** पहुंचे। ३ दिन के क्षुधित होने पर ३ बैंगन मिले उन्हीं को खाकर मन को तृप्त किया, यहां से गढ़मुक्तेश्वर पहुंचे जहां १५ दिन रहे उस समय वह केवल संस्कृत ही बोलते थे रुड़की से २० कोस उरे मीरापुर में किसी पण्डित से दो दिन शास्त्रार्थ भी हुआ था। इन दिनों में जहां कोई स्थान मिलता वहीं सो रहते और ईश्वर के ध्यान में सदा मग्न रहते, इस आनन्द को वही पुरुष अनुभव कर सके हैं जिन्हों ने योग बल से अपनी इन्द्रियों को जीत परमात्मा के ध्यानरूपी आनन्द को प्राप्त कर लिया हो।

एक साथ ही अग्नि प्रज्वलित हो उठी अर्थात् इस यज्ञ में धर्मात्माओं के मृतक शरीर में धर्म की नवीन अग्नि प्रकाशित होगई और चारों ओर से ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य आ आकर संस्कार कराने लगे, इसके अनन्तर पौष के महीने में पण्डित हीरावल्लभ पर्वतीय शास्त्री स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को अनूपशहर से आये उस दिन दो सहस्र मनुष्यों के लगभग एकत्र थे। पण्डित हीरावल्लभ जी सभा के मध्य में सुन्दर सिंहासन पर बालमुकुन्द, गोमतीचक्र, सालिग्राम आदि की मूर्तियां रखकर यह प्रतिज्ञा कर बैठे थे कि स्वामी महाराज के हाथ से इनको भोजन कराके उठूंगा। ६ दिवस तक संस्कृत में धर्म-चर्चा होती रही, अन्त को सभा में उपस्थित जनों के सन्मुख पण्डितवर हीरावल्लभ शास्त्री ने प्रसन्न चित्त खड़े होकर श्रीमान् विद्वान् योगिराज श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज को संस्कृत में स्तुति प्रणाम कर, बड़े उच्चस्वर से सबको सुनाकर कहा कि स्वामी जी महाराज जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य और प्रमाणीक है। इसके पश्चात् सिंहासन पर रक्खी हुई मूर्तियां गङ्गा में डालदीं और वेद की पुस्तकों को उसी सिंहासन पर रक्खा। पुनः क्या था पोल खुल गई, मिथ्या हठधर्मी पुरुष उत्साह होकर अपने २ घर को चले गये। इसके पश्चात् अन्य मनुष्यों ने भी मूर्तियों को गंगा में डालना आरम्भ कर दिया, जिस के कारण बहुधा मन्दिर मूर्तियों से रहित होगये और उनके पुजारी और गंगापुत्रों ने बड़ा कोलाहल मचाया, बहुधा मनुष्य उनके घात में रहने लगे, स्वामी जी महाराज ८ फ़रवरी को यहां से चल रामघाट, सोरों इत्यादि नगरों में भ्रमण करते हुए ज्येष्ठवदी अमावस्या को तृतीयबार कर्णवास में आ उसी कुटिया में विराजमान हुए। जहां ज्येष्ठ सुदी १० को प्रति वर्ष गङ्गास्नान का मेला होता है जिस मेले में चारों ओर के बहुधा मनुष्य इकट्ठा होते हैं राव कर्णसिंह जो बड़गूजर रईस बरौली भी गंगास्नान को आये और (जो थोड़े दिन पहिले प्रसिद्ध वैष्णवों के गुरु रंगाचार्य जी के शिष्य हो दग्ध होचुके थे) स्वामी जी से मिलने गये इनका और इन के साथियों को चक्राङ्कित तिलक धारण किये हुए देख स्वामी जी हँसे और सत्कार पूर्वक बैठने की आज्ञा दी परन्तु उक्त ठाकुर साहब स्वामी जी के उपदेश को पहिले ही से सुनचुके थे अतः येनकेन प्रकार से बैठ कुछ थोड़ी सी सूरत बिगाड़ क्रोधित होकर कहा कि बाबा जी यह तुम्हारा गङ्गादि को न मानना अच्छा नहीं यदि हमारे सामने कुछ खण्डन मण्डन की वार्ता की तो बिगाड़ होगा। स्वामी जी इनके कटुवाक्यों को सहन कर, निर्भय हो बड़ी गम्भीरता और मधुरता से बोले कि यदि शस्त्रार्थ करना है तो जैपूर, जोधपूर के राजाओं के साथ जाकर लड़ो और यदि शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो अपने गुरु रङ्गाचार्य को बुलाओ हम शास्त्रार्थ के लिये उद्यत हैं। इतना कह धर्म का उपदेश करते हुए चक्राङ्कित मत का अच्छे प्रकार खण्डन किया इस पर राव साहिब ने क्रोध में आकर तलवार की मूठ पर हाथ रक्खा

परन्तु उन के साथी बलदेवसिंह पहिलवान् ने राव साहिब से यह कह कर कि मैं अभी ठीक करे देता हूं रोक दिया और उसने तुरन्त हाथ छोड़ा स्वामी जी ने उस के हाथ को पकड़कर झटका दिया वह पीछे जागिरा और ठाकुर कृष्णसिंह जी वहां उपस्थित थे जो बड़ी शूरवीरता से लट्ठ ले खड़े हो राव-साहिब से कहने लगे कि यदि अब तुम ने इन से कुछ भी कहा तो मारे लट्ठों के चूर कर दूंगा इतने में राव साहिब वहां से चले गये और स्वामी जी निम्न लिखित श्लोक पढ़ उपदेश करने लगे।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मोरक्षतिरक्षितः।

तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतोऽवधीत् ॥

प्यारे मित्रों! स्वामी जी के प्राणों के हरने का यह प्रथमही संयोगथा जिस को उस महात्मा ने सहनकर उनको क्षमा प्रदान की इस से तरुण पुरुषों को उपदेश लेना चाहिये परन्तु राव साहिब के क्रोध की इतने पर भी शान्ति न हुई और इस से उन के शरीर में अग्नि प्रज्वलित होती रही अन्त को क्वार की सर्दपूर्णिमा के दिन राव साहिब गङ्गा स्नान के लिये फ़िर कर्णवास आये और आते ही प्रथम बैरागियों से उन के शिर काटने की प्रार्थना की, परन्तु जब वह इसमहापापके करने पर उद्यत न हुए तो एक रात्रि को अपने सेवकों को तलवार देकर शिर काटने के लिये भेजा जब वह कुटिया पर पहुंचे और द्वार खोलकर देखा तो स्वामी जी बैठे हुए थे इस कारण भीतर जाने का साहस न हुआपरंतु स्वामी जी महाराज जान गये और कहा कि भाइयो चले आओ डरते क्यों हो यह सुनकर तीनों मनुष्य भाग गये, राव साहब कुटिया से थोड़े ही अन्तर पर खड़े हुए थे इस लिये उन्हों ने उन मनुष्यों को २ बार स्वामी जी के मारने के लिये भेजा परन्तु उन का साहस न हुआ अन्त को स्वामी जी ने कुटिया के द्वार पर खड़े होकर गम्भीर शब्द से पुकारा इतने में वह सब के सब भागगये स्वामी जी महाराज के पास कर्णवास के ठाकुरों ने दौलतसिंह ठाकुर को उन की सेवा आदि के लिये नियत कर दिया था जिसने उपरोक्त कार्यवाही को देख, वहां से भाग, ठाकुर कृष्णसिंह जी के पास जाकर सब वृत्तान्त कह सुनाया वह सुनते ही तीन चार आदमी ले वहां गये फिर गांव के बहुत से पुरुष वहां पहुंच गये जिन्हों ने राव साहिब को बुरा भला कहा। जब इस बात की सूचना राव साहिब के ससुर को हुई तब उन्हों ने उन से कहा कि यदि तुम अपना भला चाहते हो तो शीघ्र अपने घर को चले जाओ वरना यह ठाकुर तुम को मार डालेंगे। राव साहब तुरन्त घर को चले गये और घर पहुंच थोड़े दिनों में बीमार हो पागल हो गये और मदिरा मांस का सेवन करना आरम्भ कर दिया इस बीच पचास हज़ार का एक मुकद्दमा भी हार गये जिस से उनका जीवन बड़ी दुर्दशा में कटा। इधर ग्राम निवासियों ने

स्वामी जी से प्रार्थना की कि आप इस कुटिया पर न रहें तब उन्हों ने कहा कि "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः" अर्थात् इस जीवात्मा को न शस्त्र काट सकता है और न अग्नि भस्म कर सकती है अतएव हम को कोई मारने वाला नहीं। साधु लोग घरों और गढ़ों में घुसकर नहीं रहते। हमारा कोई मनुष्य रक्षक नहीं है वरन् सर्व व्यापक परमात्मा हमारे रक्षक हैं इस लिये तुम सब को धैर्य धारण करना आवश्यक है। उपरोक्त कथन से स्वामी जी महाराज की परमेश्वर में सच्ची भक्ति प्रकट होती है जिसके पूर्ण विश्वास पर वह सर्वत्र विचरते और निर्भय होकर सदोपदेश करते थे धन्य है ऐसे भक्त जन को। अब इस आक्रमण का वृत्तान्त राजघाट की ओर फैला। तब २० पच्चीस पठानी हथियार बांधे हुए दूसरे दिन स्वामी जी के पास पहुंचे उन से प्रार्थना की कि यदि आप आज्ञा देवें तो, उन पठानों को मजा देवें। चाहे हमारी नौकरी जाती रहे स्वामी जी ने उन सब को उपदेश देकर शान्त किया। इस स्थान पर रईस धर्मपूर ने जो बड़े मुसलमान थे स्वामी जी से आकर पूछा कि क्या हम किसी प्रकार शुद्ध हो सकते हैं इसके उत्तर में कहा कि हां वेशोक आचरण करने से तुम पवित्र हो सकते हो। सूर्य ग्रहण के समय सहस्रों मनुष्य जो गङ्गा स्नान को आये थे उनको अवतार निषेध और तीर्थ के मुख्य तत्व का भले प्रकार उपदेश किया उनमें से बहुधा लोगों ने पूछा कि ग्रहण का सूतक किस समय से मानना चाहिये और भोजन कब करना उचित है। स्वामी जी ने कहा कि सूतक पातक कुछ नहीं जब भूख लगे उसी समय भोजन करना चाहिये। स्वामी जी यहां से गंगा किनारे चलते चलते कासगंज पहुंचे जहां पण्डित सुन्दराम चक्रांकित मत फैलाना चाहते थे उन से लोगों ने कहा कि यदि आपके मत को स्वामी दयानन्द सत्य कह देंगे, तो हम सब तुम्हारी वार्ता को स्वीकार कर लेंगे। इस लिये सब मिलकर स्वामी जी के पास आये, पण्डित जी स्वामी जी की मूर्ति को देख पलायमान हो गये और पीछा करने पर भी न मिले। इस से उन सबको निश्चय होगया कि स्वामी जी का कथन ठीक है। फिर उन्हों ने चक्राङ्कित मत का नाम भी न लिया, यहां आठ दिन रहकर ताहरपूर पहुंचे और वहां से अनूपशहर होते हुए अहार गये जहां दो बजे उठ गंगा स्नान कर ७ बजे तक ध्यान में तल्लीन रहते, इसके पश्चात् उपदेश करते, वहां एक दिन एक मनुष्य ने उन्हें हाथ दिखलाया तब उन्हों ने कहा कि इस हाथ में हाड़, मास, चाम और रुधिर के अतिरिक्त कुछ नहीं है किसी दूसरे पुरुष ने जन्मपत्र लाकर उनसे पूछा तब स्वामी जी ने कहा कि (जन्म पत्र किमर्थं कर्म पत्र श्रेष्ठम्) जन्म पत्र से कर्म पत्र श्रेष्ठ है अर्थात् जन्मपत्र से कुछ प्रयोजन नहीं निकलता। इस लिये उत्तम २ कर्म कर उत्तम फलों को प्राप्त करो इसके अतिरिक्त गङ्गा स्नान करने वाले

र्थियों को मुर्दों के श्राद्ध का खण्डन और जीते माता-पिता आदि के श्राद्ध के मण्डन का उपदेश करते थे जिससे उनकी चर्चा और के पास ग्रामों में भी फैल गई स्वामी जी ने यहां से अनूपशहर में श्रावण से कार्तिक तक निवास किया। जहां रामलीला बड़ी धूम धाम से होता था। उसका खण्डन इस प्रकार से किया कि अगले वर्ष से रामलीला का जुलूस बन्द होगया। यहां के तहसील-दार मौलवी सैयदमुहम्मद भी स्वामी जी के पास आया करते थे एक दिन उन्हों ने कहा कि हमारे यहां मूर्तिपूजा नहीं है स्वामी जी ने कहा कि ताजिया-दारी भी बुतपरस्ती है जिसको सुन तहसीलदार साहब ने स्वीकार किया। इन्हीं दिनों में यहां के एक ब्राह्मण ने पान में स्वामी जी को विष दिया, जिस को उन्हों ने जल न्योली कर बाहर निकाल दिया परन्तु उपरोक्त तहसीलदार ने उसको कैद कर दिया जिस पर स्वामी जी ने तहसीलदार से कहा कि मैं संसार को कैद कराने के लिये नहीं आया परन्तु कैद से छुड़ाने के लिए आया हूं यदि वह अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता तो हम क्यों अपनी श्रेष्ठता को छोड़ें, तिसपर तहसीलदार ने ज़ामिन करके छुड़ा दिया। यहां पर दक्षिण स्वामी और मौज बाबा ने कई बार सूर्यपुरी को भेजकर प्रश्नों का उत्तर लिया परन्तु वह न समझे तब स्वामी जी ने कहा कि चीनी को रेत में डाल दो तो हाथ नहीं निकाल सकता परन्तु चींटी उसको निकाल लेती है। इसी प्रकार सूक्ष्म बातों को मोटी बुद्धिवाला नहीं जान सकता। इस स्थान पर जो मनुष्य महादेव और गंगा में जल चढ़ाते थे उन से यह कहते थे कि जल में जल और मूर्ति पर चढ़ाने से क्या लाभ इस से तो वृक्ष को जल दिया करो जिस से उसको तो लाभ हो। स्वामी जी यहां से बेलौन पधार, पांच दिन उपदेश कर सम्वत् १९२४ अगहन मास में रामघाट पहुंचे, जहां गङ्गा के किनारे पद्मासन लगाये ईश्वर के ध्यान में लवलीन हो रहे थे। जिस को क्षेमकरन भूतपूर्व ब्रह्मचारी सम्प्रति संन्यासी जी ने इन्द्र रामचन्द्र ब्राह्मण से सब वृत्तान्त कहा तब वह दोनों वहां गये और निकट पहुंच क्षेमकरन जी ने यह श्लोक पढ़ा— ध्यानाव-स्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः जिसको सुन स्वामी जी हंसे इस पर क्षेमकरन जी ने फिर कहा कि अब सायंकाल होगया और बहुत शीत पड़ने लगा है अब आप कृपा कर ऊपर चलें तदनन्तर स्वामी जी कर्णवास महादेव पर चले आये जहां पूर्व ही से पण्डित नन्दराम अतरौली निवासी और मथुरा के चार पांच पण्डितों से वार्तालाप होरहा था कोई कहता था कि भागवत में ऐसा और कोई कहता कि रामायण में ऐसा लिखा है। स्वामी जी किञ्चित् काल तक श्रवण करते रहे फिर कहा कि "भागवतं किञ्च वाल्मीकिः कथयति" अर्थात् वाल्मीकि और भागवतादि क्या कहते हैं इस प्रकार संस्कृत में बोलना आरम्भ किया, प्रथम तो वह पण्डित शास्त्रार्थ

को उद्यत हुए परन्तु अन्त को स्वामी जी के अद्भुत संस्कृत के भाषण को देख कर चुप हो अगले २ पृ० को चले गये। इस के पश्चात् बहुधा जन कृष्णेन्द्र सरस्वती जी के पास गये जो उस समय इसी नगर में रहते थे उनसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कहकर प्रार्थना की कि आप चलिये। उन्होंने स्वामी जी की विद्या और संस्कृत धारा प्रवाह और उन के खण्डन की प्रबल युक्तियों को सुन, न आना चाहा परन्तु उन सब ने न माना और साथ लेकर स्वामी जी के पास आये उन में से एक ने पूछा कि मैं महादेव पर जल चढ़ाऊं यह सुन स्वामी जी ने कहा कि यहां तो पत्थर है महादेव नहीं क्योंकि "महादेवः कैलाशे पर्वते" अर्थात् महादेव तो कैलाश पर बसते हैं। तब कृष्णेन्द्र ने कहा यहां महादेव नहीं हैं स्वामी जी ने कहा कि वह परमात्मा सर्वत्र है तब मन्दिर में आना व्यर्थ है फिर कृष्णेन्द्र सरस्वती जी ने यह श्लोक पढ़ा-यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ अर्थात् जब २ धर्म की हानि होती है तब २ परमेश्वर धर्म की रक्षा के अर्थ अवतार लेता है तब स्वामी जी ने कहा कि ईश्वर निराकार है वह अवतार धारण नहीं कर सका देह धारण करना जीव का धर्म है इस का उत्तर कुछ न दिया और घबड़ाकर वही गीता का श्लोक बारम्बार लोगों को सुनाने लगे अन्त को प्रकरण विरुद्ध हो गंधवती पृथ्वी और धूमवती अग्नि इस प्रकार के न्याय का विचार होने लगा पुनः कृष्णेन्द्र ने कहा कि लक्षण का भी लक्षण होता है स्वामी जी ने कहा कि लक्षण का लक्षण नहीं होता किन्तु लक्ष्य का लक्षण होता है चून का चून या चून अर्थात् आटे का आटा क्या होगा इस पर सब मनुष्य हँस पड़े तब कृष्णेन्द्र घबड़ाकर उठ खड़े हुए और सब लोग स्वामी जी की विजय कहने लगे इसी स्थान पर पण्डित बालमुकुन्द जी से विष्णुसहस्र के "शब्दार्थ का सा दुस्तर" इस श्लोक पर विवाद हुआ जिसमें स्वामीजी का पक्ष प्रबल रहा था जिसका प्रतिफल यह हुआकि खेमकरन ब्रह्मचारीने मूर्तिपूजा का परित्याग कर दिया और द्वितीयवार स्वामीजी यहां ४ दिन रहकर चलेगये थे उस समय नन्दकिशोर ब्रह्मचारी ने उनके सतोपदेश से अपने ठाकुरों को गङ्गा में प्रवाह करे दिया था स्वामी जी मार्गशीर्ष सम्वत् १९२५ को अतरौली पहुंचे वहां दस दिन तक सामान्य उपदेश करते रहे तथा पण्डित भैरों नाथ जी से "प्रतिमा हसन्ति" इस विषय पर विवाद हुआ था तृतीय वार स्वामी जी यहां सम्वत् १९३० या ३१ में आ एक रात्रि निवासकर अलीगढ़ को चले गये। ठाकुर मुकुन्द सिंह छलेसर निवासी ने सम्वत् १९२४ में स्वामी जी महाराज के कर्णवास में दर्शन किये और उनके उपदेश को सुन अपनी जमीदारी में से चामुण्डा महादेव, नगरसेन लांगूर, पथवारी और सय्यद आदि बीस तीस स्थानों की मूर्तियों को

जिन की वहां अच्छे प्रकार पूजा होती थी कालिन्द्री नदी में प्रवाह करा दिया था। जिस के कारण ६० गांव के चौहान अप्रसन्न हो उन को जाति बाहर करने के लिये उद्यत हुए थे परन्तु धर्माभिलाषी (कि जिन के चित्त में धर्म का बीज जमगया था) किञ्चित् डामाडोल न हुआ वरन प्रति दिन अधिक होता गया यहां तक कि द्वितीय वार ठाकुरसाहिब स्वामीजी के दर्शनार्थ सोरों पधारे। वहां कुछ दिन के सतसङ्ग से इनके मन में वैदिक धर्म का पूर्ण महत्व उत्पन्न होगया जिससे इनको पूर्णतयः अनुभव हो गया कि संसार का धारा प्रवाह धर्म से विमुख हो, जारहा है जिस का कारण अविद्या है जब तक सत्य विद्या का प्रचार न होगा कदापि सुख नहीं मिलसक्ता इसी लिये विद्या दान ही सर्वोपरि दान है यह निश्चयकर पाठशाला के नियत करने के लिये संम्वत् १९३० में स्वामी जी को लाये जहां के पण्डितों ने पूर्व ही से शास्त्रार्थ का प्रबंध कर लिया था अतः उन के आते ही पण्डित खंडामल आदि ने चार दिन तक अनेक विषयों पर वादानुवाद कर स्वामी जी के कथन को स्वीकार किया जिस का प्रभाव अच्छा हुआ। इस के अतिरिक्त बहुधा मुसलमान मौलवी, क़ाजी भी स्वामी जी से शास्त्रार्थ के लिये वहां आये जो अन्त को चुप होकर चले गये हां फ़ाजी इम्दादअली साहब ने जो सत्य प्रिय और पक्षपात से रहित थे। स्वामी जी की अनेक बातों में सम्मत हो प्रसन्नता प्रकट की। और पुनः तृतीय वार सम्वत् १९२७ में पधारे थे।

गढ़िया—स्वामी जी गङ्गा के किनारे विचरते, मनुष्यों को उपदेश देते और द्विजों को यज्ञोपवीत धारण कराते हुए चैत्रसम्वत् १९२५ को गढ़िया में आये। वहां नारायणदत्त आदि पण्डितों ने वाधाएका दीन से शास्त्रार्थ किया, और पराम्त हुए। जिस से सुनने वालों पर स्वामी जी की विद्या का अच्छा प्रभाव पड़ा अनुमान एक मास के पश्चात् अहेडड़ोसर के ठाकुरसाहिब चार पांच मनुष्यों सहित "जिन के पास तलवार आदि हथियार थे तथा इन्हीं ठाकुर साहिब के यहां महाराजा जैपूर का विवाह हुआ था. और जिन के माथे पर नीमा नन्दी सम्प्रदाय का तिलक लगा हुआ था" स्वामी जी के समीप आकर बैठ गये, उन्हों ने महाभारत का एक श्लोक पढ़ा उसका अच्छे प्रकार से खण्डन किया जिसको सुन वह अण्ड बण्ड कहने लगे और जब स्वामी जी किसी कारण उठ कुटिया की ओर चले तब ठाकुर साहब ने अपने मनुष्यों को आज्ञा दी कि इस को पकड़ो ज्योंही आगे को बढ़े त्योंही बल्देव गिरि गुसाई ने जो हृष्टपुष्ट थे दोनों को उठाकर धरमारा फिर वह सब भागे और गङ्गा की कीचड़ में फँस गये तब बहुधा मनुष्यों ने ठाकुर साहब को बहुत धिक्कारा और बहुत दुर्गति की। यथार्थ में यह ठाकुर स्वामी जी के मारने के लिये आये थे परन्तु परमात्मा जिसकी रक्षा करता है उसको कोई भी नहीं मार सका। यहां से स्वामी जी ने अनेकान् पुरुषों की प्रार्थना और गुसाई जी के

बारम्बार विनय करने पर सोरों पधार अकनागढ़ पर निवास किया जिन के उपदेश को सुन पण्डित नारायण चक्राङ्कित इन के शिष्य तथा चक्राङ्कित मत को छोड़, वैदिक धर्मानुयायी बने। जिस से समस्त सोरों में कोलाहल मच गया कि एक ऐसे पण्डित आये हैं जो सब मतों, पुराणों तथा पाषाण पूजा का खण्डन करते हैं जिस पर वहां के सम्पूर्ण पण्डितगण और प्रतिष्ठित महाशय स्वामी जी के पास आकर मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करने लगे, पण्डित भुमानीराम जो सब के मुखिया थे वो चार पांचही बातों में निरुत्तर हो गये। जिस का प्रभाव यह हुआ कि सब के सन्मुख पण्डित गोविंदराम चक्राङ्कित स्वामी जी के शिष्य हुए इस पर अन्य पण्डित कोलाहल मचाने लगे तब बलदेव गिरि गुसाईं ने रोका और कहा कि सभ्यता पूर्वक बात करना अच्छा है इस पर सोरों के अर्थ शिक्षित लोग स्वामी जी की ओर हो गये और चक्राङ्कितों से कहने लगे कि तुम शास्त्रार्थ करते हो कि बकवाद, इस पर सब चले गये।

पण्डित अंगदराम शास्त्री जी।

यह शास्त्री संस्कृत के पूर्ण विद्वान् व्याकरण के भूषण और न्याय में अद्वितीय सोरों के निकट पदविया ग्राम में सब के शिरोमणि गिने जाते थे। आप के समीप बहुत पण्डित संस्कृत के पठनार्थ आया करते तथा आप की विद्या के प्रभाव को सुन कोई शास्त्रार्थ का साहस न करता वरन् इन के नाम ही से मनुष्यों के रोमांच खड़े हो जाते थे। आप ने एक पत्र स्वामी जी के नाम कर्णवास को भेजा था जिस में उन्होंने अपनी प्रशंसा कर अन्त को लिखा था कि पाताल में शेष, स्वर्गलोक में बृहस्पति और पृथिवी पर अंगद साक्षात् विद्यमान हैं चतुर्थ कोई दृष्टि नहीं आता, जैसा कि:—

शेषः पाताललोके चास्ति स्वर्गलोकेच बृहस्पतिः।

पृथिव्यांगदः साक्षात् चतुर्थो नैव दृश्यते॥

स्वामी जी ने इस पत्र का उत्तर अच्छे प्रकार से दिया। जिसमें (अङ्गद) शब्द के आठ प्रकार से खण्डन करते हुए उसके अभिमान की भले प्रकार से दुर्गति की थी। यहां जब स्वामी जी पधारे और नारायण चक्राङ्कित जो स्वामी जी के शिष्य होचुके थे उपरोक्त पण्डित जी से "जो शालिग्राम का पूजन और भागवतादि पुराणों की कथा बांचते थे" आकर कहा कि श्री महाराज एक ऐसे स्वामी आये हैं कि जिनके सन्मुख किसी से बात नहीं निकलती आप चलिये। यह सुन उसी समय उसके साथ चल दिये क्योंकि वह अपने से अधिक किसी को भी विद्वान् नहीं समझते थे इसी कारण आते ही संस्कृत में मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करना आरम्भ कर दिया।

———:o:———

शास्त्री जी का शास्त्रार्थ ।

स्वामीजीने वेद और सद् शास्त्रों के प्रमाणों से मूर्तिपूजा का सम्यक् प्रकार से खण्डन किया और साथ ही भागवत पुराण के अनेक दोष दिखलाये जिन में से अन्त का दोष यह था कि-

> कथितो वंश विस्तरो भवता सोम सूर्ययोः ।
> राज्ञां चोभय वंशानां चरितं परमाद् भुतः ॥

यह भागवत के दशम स्कन्ध का प्रथम श्लोक है इस में स्वामी जी ने विस्तार शब्द अष्टाध्यायी के रीतानुसार सर्वथा विरुद्ध बतलाया जिसको श्रवण कर पण्डित अंगदराम जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुनश्च: शांत होने पर पण्डित जी ने शालिग्राम की मूर्ति जिसे वह पूजते थे उनके सन्मुख गंगा में डालदी और भागवत आदि पुराणों की कथाओं का बांचना छोड़ दिया इस पर पण्डित जी के सम्बन्धियों और गुसाई बलदेवगिरि ने अपनी सब मूर्तियां गंगा में समर्पित कर दीं। और अनेकान् लोगों ने यज्ञोपवीत धारण कर पञ्च-यज्ञों का करना आरम्भ कर दिया और नगर में बड़ा कोलाहल मच गया जिस से यहां स्वामी रंगाचार्य महाराज चक्राङ्कित वृन्दावन निवासी की कुछ दाल न गली जो प्रति वर्ष सहस्रों स्त्री, पुरुषों, बालक और बालिकाओं को दागते थे और पण्डित अंगदरामादि कई एक सदाशयों ने अष्टाध्यायी और मनुस्मृति का पढ़ना आरम्भ कर दिया।

पाठक गणों! जब पण्डित अंगदराम शास्त्री मूर्तिपूजक थे तो उन्हों ने कैलाश पर्वत नामी एक साधू के कहने से वाराह मन्दिर की प्रशन्सा में बहुत श्लोक बनाये थे परन्तु जब उन्हों ने वैदिक धर्म को ग्रहण किया तब उसके खण्डन में बहुत से श्लोक लिखे जिसको सुन स्वामी कैलाश पर्वत बहुत अप्रसन्न हुए। क्योंकि वह वाराह मन्दिर के स्वामी बन हजारों रुपये की प्राप्ति कर रहे थे। इस लिये उन्हों ने स्वामी जी के उपदेश के प्रभाव को रोकने के लिये संस्कृत में एक छोटी सी पुस्तक मुद्रित कराकर बांटी। इस पुस्तक में स्वामी जी के उपदेश और प्रचार का संक्षेप वृत्तान्त लिखकर अन्त को समस्त हिन्दूमात्र से निवेदन किया कि दयानन्द मत स्वीकार करने से प्रथम इस को देखलें नहीं तो फिर उनको नया मत छोड़ना पड़ेगा। प्यारे सज्जनों! नेत्र उठाकर देखिये कि कैलाश पर्वत स्वामी जी के सतोपदेश के प्रभाव को किस प्रकार से मनुष्यों के हृदयों से दूर करना चाहते थे। परन्तु क्या सूर्य पर धूल उड़ाने से उसका पूर्ण प्रकाश मन्द हो सकता है कदापि नहीं। ठीक उसी भांति इस पुस्तक से वैदिक धर्मकी घर २ में चर्चा होने लगी मनुष्य बेधड़क हो स्वामी जी की बातों पर पूर्ण विश्वास करने लगे। कैलाश पर्वत ने इस अग्नि को शान्त करने के लिये पण्डित जगन्नाथ शास्त्री को बरेली से बुलवाया जिन

का साहस शास्त्रार्थ करने का न हुआ तब उन्हों ने निम्न लिखित श्लोक उनके पास भेजा।

इतिहास पुराणानि धर्म शास्त्राणि श्रावयेत्।

इस का उत्तर स्वामी जी ने दिया कि यहां पर पुराण शब्द पुरानी सनातन के अर्थ में है अर्थात् सनातन इतिहास से अभिप्राय है किसी पुस्तक विशेष का नहीं। इसके उपरान्त चौबे रामदास पंथ ने बहुत ही नम्र होकर कहा कि जिन पुराणों को तुम प्राचीन बतलाते हो वह नवीन हैं। देखो ग्रन्थ संजीवनी में लिखा है कि इस समय दश पुराण हैं परन्तु अब देखो १८ होगये व्यास जी ने महाभारत में चार सहस्र श्लोक बनाये थे परन्तु राजा भोज के समय में दश सहस्र श्लोक और अब एक लाख श्लोकों से भी अधिक होगये हैं।* यह सुनकर लज्जित हो उलटे पैर बरेली को चले गये। एक दिन स्वामी जीने कैलाशपर्वत से कहाकि मैं (१) रामानुज (२) वल्लभाचार्य (३) मध्वाचार्य (४) माधवाचार्य। इन चारों का अच्छे प्रकार खण्डन करना चाहता हूं क्यों कि इनकी लीला में सैकड़ों मनुष्य फंस गए हैं और फंसते जाते हैं जिससे देश की अत्यन्त दुर्दशा हो रही है इसलिये आप को इस विषय में हमारी सहायता करनी चाहिये। इस को सुन कैलाश जी ने कहा कि यदि आप मूर्ति पूजा का खण्डन करना छोड़ दें कि जिस से सैकड़ों मनुष्यों की रोटी चल रही है और आप यह भी न कहें कि अठारह पुराण व्यास जी के बनाये हुए नहीं हैं स्वामी जी ने इस के विषय में कहा कि चाहे आप सहायता करें वा न करें परन्तु मैं आपकी बात को किसी प्रकार नहीं मानसका क्योंकि मैं संसार से इन मतमतान्तरों के झूठे झगड़ों को मेटना चाहता हूं और जिस की जड़ मूर्ति पूजा है जबतक इसको न उखाड़ा जायगा तबतक कभी संसार की भलाई नहीं हो सकी और इन बुराइयों के भंडार पुराण हैं जिस के कारण भारत का सत्यानाश होगया और इन्हीं के भ्रष्ट उपदेशों से सम्पूर्ण जगत् में दुर्गन्ध फैल रही है इस के उपरान्त मूर्तिपूजा की गंध और कहीं नहीं पाई जाती, फिर मैं क्योंकर आपके कथनानुसार कार्य कर सकता हूं। यह सुनकैलाश पर्वत चुप हो रहे और आगे कहने का साहस न हुआ परन्तु स्वामी दयानन्द अपने कार्य को प्रथम की अपेक्षा बड़ी प्रबलता से करने लगे। इन्हीं दिनों में पण्डित अङ्गदराम पौराणिक पीलीभीत निवासी ने आकर मूर्तिपूजा की धूम मचाई तब स्वामी जी ने पण्डित अङ्गदराम शास्त्री बदरिया निवासी को शास्त्रार्थ के लिये नियत कर दिया, जिन्हों ने नियमादि स्थिर कर शास्त्रार्थ के लिये बुलाया जो दो ही बातों में निरुत्तर हो पीलीभीत को चले गये। इस के थोड़े दिनों

* पुराणों की विचित्र बातें देखनी हों तो पुराण तत्व प्रकाश तीनों भागों को देखिए मूल्य २) डा० म० ॥=)

के पश्चात् एक नंगे साधु ने आकर जो थोड़ी सी संस्कृत पढ़ा था हल्ला मचा दिया कि हम शास्त्रों से मूर्तिपूजा सिद्ध करेंगे, यह सुन स्वामी जी ने उन नंगे बाबा को पत्र लिखा कि सब साधारण के सन्मुख शास्त्रार्थ के लिये हम उपस्थित हैं परन्तु साधु जी ने इस का कुछ उत्तर न दिया और बकते मारता रहा अन्त को सायंकाल के चार बजे गोरों से भरी गङ्गा की ओर चले गये, जब यह समाचार स्वामी जी को मिला तुरन्त बाबू सेवक के साथ उसी ओर गये और थोड़ी देर ही में उनको पकड़कर कहा कि तुम तो मूर्तिपूजा को शास्त्रों से सिद्ध करने का हल्ला मचा रहे थे अब क्यों भागे जाते हो अच्छा अब इसी स्थान पर अथवा लौटकर सर्व साधारण के सन्मुख शास्त्रार्थ करिये यह सुन वह साहस से शून्य हो, मौन धारण कर न बोले। तब स्वामी जी यह कह कर—"कि आगे को कभी ऐसा न करना सदा सत्यही भाषण करते रहना जो साधुओं का धर्म है" लौटे को लौट आये। यहां एक बार इन के सहपाठी पण्डित युगुलकिशोर जी मथुरा निवासी आये थे जिन्होंने मथुरा जाकर स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी से कहा कि स्वामी दयानन्द वर्तमान समय गोरों में हैं जहां वह कण्ठी, तिलक, पुराण और शालिग्राम आदि का खण्डन कर, अधर्म फैला रहे हैं इस पर तत्त्वदर्शी महात्मा ने कहा कि शालिग्राम क्या है, "शालीनांग्रामः शालिग्रामः" अर्थात् शाली धान के ढेर की पूजा निष्फल नहीं है तो क्या है। इस पर उन्हों ने कहा कि वह तो कण्ठी, तिलक का भी खण्डन करते हैं तब स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी ने कहा कि तुमही इस का प्रमाण दो। जब प्रमाण न देसके तब इस का बांधना मिथ्या जान गले में से तोड़कर फेंक दी। पाठक गण ! स्वयम् विचार करलें कि यह दशा पौराणिक धर्म के नामी पण्डितों की थी फिर भला सामान्य पण्डित इस का क्या उत्तर दे सकते थे। स्वामी जी यहां से नवराभि कुआर में एक दिन विना कहे शाहबाजपुर चले गये यहां के एक बैरागी ने उन के सतोपदेश से अप्रसन्न हो उपरोक्त गांव के नम्बरदार से स्वामी जी के मारने के लिये तलवार मांगी परन्तु उसने नहीं और आप स्वयं जाकर सब भेद कह दिया परमात्मा के ऊपर पूर्ण विश्वास रखनेवाले स्वामी जी ने इस पर किञ्चित् भी चिन्ता न की। तौ भी ठाकुर साहब ने अपने कई एक सेवकों को उनकी रक्षणार्थ भेज दिया। जिनके सतोपदेश से यहां के बड़े २ प्रतिष्ठित पुरुषों ने वैदिक-धर्म स्वीकार किया। इसी स्थान पर पण्डित चैनसुख आदि कासगंज निवासियों ने आ स्वामी जी के दर्शन कर उन को श्री १०८ स्वामी विरजानन्द सरस्वती दण्डी महाराज के क्वार बदी १२ सम्वत् १९२५ में स्वर्गवास होने के शोकमय समाचार सुनाये जिस को सुन

वह कुछ काल चुप हो सब से कहने लगे कि—आज विद्या का सूर्य अस्त होगया। इसके पश्चात् वह फिर धर्मवीरों के समान धर्मोपदेश करने लगे। वहां से चल गढ़ी ग्राम के ठाकुरों को वैदिक धर्म का उपदेश किया। जिन्हों ने मिथ्याचार को छोड़, सत्य सनातन धर्म को स्वीकार किया। जिसके कारण बहुधा वैरागी जो उनके यहां रहा करते थे उनके शत्रु हो गये और स्वामी जी के मारने का विचार किया। परन्तु स्वामी जी ककोड़े के मेले में पहुंच कर सत्योपदेश करने लगे, जिस से सम्पूर्ण मेले में धूम मच गई। कभी २ साहब कलक्टर बहादुर भी उपदेश में आते जो टोपी उतार कर स्वामी जी को सलाम करते थे। यहां एक मनुष्य ने स्वामी जी से पूछा था कि महाराज मूर्तिपूजा का खण्डन करने से आप को क्या लाभ, आप वृथा ही मनुष्यों को शत्रु बनाते हैं हमारी भांति प्रसन्नता पूर्वक उत्तम २ भोजनों का भोग लगाकर आराम कीजिये। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि हमें तो ब्रह्मानन्द में रहने और परमेश्वर की आज्ञापालन करने में आनन्द है वह अपना सा मुँह लेकर चला गया। पुनः वहां से मेला समाप्त होने पर चल दिये मार्ग में बाबा गोविन्द दास वैरागी जिन का झूठा सिखाना ही धर्म था। जो आठ दस विद्यार्थियों के सहित गङ्गा के किनारे गौमुखी में हाथ डाले (हर भजो सब छोड़ो धन्धा का) जप कर रहे थे। स्वामी जी ने बाबा से संस्कृत में वार्तालाप की जिस से बाबा के छक्के छूट गये और मौन धारण करली वहां से नरदौली में पहुंच गोसाईं रामपुरी को वेदानुयायी बनाते हुए फर्रुखाबाद में पधारे। जहां पादरी स्कौट साहब ने पाप के क्षमा होने के विषय में पूछा उन्हों ने कहा कि किया हुआ पाप बिना दंड भोगे क्षमा नहीं होता इसके उपरान्त यहां यह भी उपदेश किया कि बाल छेदन और चाटी जो शीतल पर्ण की क्रियां करती हैं, इन से बुद्धि मलीन होजाती है इस लिये गृह की वृद्धाओं को यह कार्य्य करना चाहिये। कृष्ण अष्टमी के दिन खीरा को चीर, उसमें शालिग्राम की बटिया रख, फिर निकाल कृष्ण का जन्म करते हैं तथा खीरे को देवकी का अवतार मान उसको खा भी जाते हैं और लज्जित नहीं होते। वहां से स्वामी जी कायमगंज पहुंचे और वैदिक धर्म का उपदेश करने लगे एक दिन जहां स्वामीजी बैठे थे उस से कुछ ऊपर किञ्चित् मूर्ख मनुष्य आकर बैठ गये इस पर सभ्य महाशयों ने उनको मना किया तब स्वामी जी ने कहा कि भाई पक्षी भी तो ऊपर बैठे हुए हैं आप इन सीधे साधे मनुष्य को उठने का कष्ट न दें और इनको भी आप पक्षीवत् समझलें इतना कह वह पूर्ववत् उपदेश करने लगे। तदनन्तर किसी दिन वहां के तहसीलदार लाला कृष्ण प्रसाद ने आकर स्वामी जी से पूछा कि श्रीमद्भागवत सत्य है या असत्य? स्वामी जी ने कहा कि असत्य है तब तहसीलदार साहब ने कहा कि आप ऐसा न कहें मेरा

मन दुखता है यह सुन स्वामी जी ने उत्तर दिया कि यदि आप का ऐसाहीमन है तो फिर आप ने निश्चय करने की क्यों ठानी देखिये सत्य सदा सत्य असत्य ही कहा जाता है. स्वामी जी यहां से फर्रुखाबाद की ओर चले गये।

फर्रुखाबाद ।

इस नगर में स्वामी जी प्रथम बार संवत् १९२४ में हरिद्वार की ओर से आये और विश्रान्त पर ठहरे। जहां लाला दुर्गाप्रसाद और लाला जगन्नाथ प्रसाद ने आकर उन से पूछा कि महाराज गंगा और सूर्य्यनारायण कैसे हैं? उत्तर में कहा कि जड़ पदार्थ हैं फिर तो तीन दिन के पीछे कहीं को चले गये द्वितीयबार पौष सम्वत् १९२५ में कायमगंज शमशाबाद होते हुए यहां पधारे। लाला जगन्नाथ प्रसाद रईस की विश्रांत पर ठहरे। उस समय केवल एक कोपीन अपने पास रखते थे। स्वामी जी के आने के समाचार संपूर्ण नगर में फैल गये अनेक पण्डित आते और बातचीत कर उनके सन्मुख यही कहते थे कि भगवान् आपका कथन सत्य है। बहुधा पण्डितों ने मनुस्मृति आदि का पढ़ना आरम्भ कर दिया। इधर स्वामी जी के धर्मोपदेश का सम्पूर्ण नगर में कोलाहल मच गया जिस के कारण सहस्त्रों पुरुष उनके उपदेश सुनने के लिये आने लगे जिनको वह मूर्ति पूजा, मृतक श्राद्ध इत्यादि कल्पित प्रपंचों का त्याग, परमात्मा निराकार की उपासना और जीवित माता पितादि के श्राद्ध करने की शिक्षा किया करते थे। जिस से मनुष्यों के हृदय में धर्म की अभिलाषा उत्पन्न हो गई। यहां एक मनुष्य ने स्वामी जी से त्रिकाल सन्ध्या के विषय में कहा था कि राजा कर्ण दोपहर की संध्या करके भोजन करते थे आप दो काल कहते हैं तब स्वामी जी ने कहा कि त्रिकाल संध्या ठीक नहीं देखो महाभारत से श्रीकृष्ण महाराज का दो काल संध्या करना प्रगट होता है इस लिये सदा दो काल संध्या करना चाहिये बिना इस कर्म के किये मनुष्य पतित होजाता है। इस पर चैत्र शुक्ला संवत् १९२६ को लाला जगन्नाथ प्रसादजी ने बड़े समारोह के साथ प्रायश्चित्त कराकर यज्ञोपवीत धारणकिया। फिर क्या था सम्पूर्ण नगर के गली कूचों में वैदिक ध्वनि गूंजने लगी और गंगाराम शास्त्री शास्त्रार्थ के लिये आये। परन्तु स्वामी जी की धारा प्रवाह संस्कृत को सुन शास्त्रार्थ का साहस न कर, घर को लौट गये। मुसलमानों में भी किसी की सामर्थ्य उन से शास्त्रार्थ की न हुई यह उन से कहा करते थे कि मुहम्मद साहिब अच्छे आदमी न थे देखो जब चोटी कटवाई तो दाढ़ी से क्या प्रयोजन? ऊंचे स्वर से बोलते हो या खुदा की इबादत करते हो। अन्त को नगरस्थ स्वार्थी पुरुषों ने मिलकर शास्त्रार्थ का दृढ़ विचार किया, इतने में पण्डित श्रीगोपाल ज़िला मेरठ निवासी भी यहां आगये। और पण्डित पीताम्बर दास को मध्यस्थ नियत कर, शास्त्रार्थ के लिये उद्यत हो एक दिन

सब लोग इकट्ठे होकर विश्रान्त पर स्वामी जी के पास गये और श्री पण्डित गोपाल जी से निम्न लिखित वार्ता हुई।

वार्तालाप।

प्रश्न—प्रथम पण्डित गोपल जी ने कहा कि हमने रात्रि में विचार किया कि मूर्तिपूजा सर्वत्र है फिर आप क्यों खण्डन करते हैं?

उत्तर—स्वामी जी ने कहा कि कहाँ लिखा है। तिस पर पण्डित गोपाल जी ने कहा कि मनु० अ० २ श्लोक १७६

देवताभ्यार्चनं चैव समिदाधान मेव च।

अर्थात् देवताओं का पूजन कर सायं प्रातः होम करे। और पूजन मूर्ति का ही होसका है अन्य का नहीं, अतएव मूर्ति पूजन की इस में विधि है—

उत्तर—स्वामी जी ने कहा कि व्युत्पत्ति द्वारा इस का अर्थ सुनो।

अर्च पूजायाम् इस धातु से अर्चन् शब्द बनता है जिस का अर्थ सत्कार का है सो यह होम और विद्वानों का अर्चन पूजन (सत्कार) से प्रयोजन है न कि मूर्तिपूजा से। इसपर थोड़ी देरतक शास्त्रार्थ होता रहा और पण्डित श्रीगोपाल जी जो यह विचार करे गये थे कि हम स्वामी जी को परास्त कर देंगे। सो यह बात न हुई और न मूर्ति पूजन का प्रतिपादन ही कर सके। वरन् स्वामी जी की विद्वता सम्पूर्ण नगर और उसके आस पास फैलगई। तब पण्डित श्रीगोपाल ने अपनी विजय का कोई उपाय न देख विचार किया कि काशी चलकर मूर्ति पूजा के मण्डन की व्यवस्था लाकर स्वामी दयानन्दजी को परास्त करूं तदर्थ वह काशी को गये और पण्डित शालिग्राम शास्त्री फर्रुखाबाद निवासी से "जो गवर्नमेन्ट कालिज अजमेर के प्रधान अध्यापक थे" जाकर कहा कि आप वहां के विद्वानों से मूर्तिपूजा के विषय पर व्यवस्था लिखवा दीजिये क्योंकि आप भी फर्रुखाबाद निवासी हैं वहां स्वामी दयानन्द जी ने मूर्ति खंडन आदि पर बड़ा कोलाहल मचा दिया है। उसपर उन्होंने कहा कि हम मूर्तिपूजन सिद्धके प्रमाण लिखा देंगे तब उनके गुरु पं० राजाराम शास्त्री ने कहा कि तुम क्यों परिश्रम करते हो, हमारे पास एक प्राचीन व्यवस्था है उसकी लिपि(नकल)कर भेज दो। इस पर शालिग्राम ने वह नकल कर दी जिस पर श्रीगोपाल जी ने बहुत सा धन व्यय करके काशी के पण्डितों से हस्ताक्षर करा लिये। फिर वह व्यवस्था लेकर सम्वत् १९२५ के अन्त में फर्रुखाबाद आये तो फूले अंग नहीं समाते थे और इन्हों ने ज्वालाप्रसाद कान्यकुब्ज ब्राह्मण डाक मुंशी को "जो शाक्त मत के अनुयायी तथा मदिरा पान करते थे" मिला कर उन सें २२ मई सन् १८६७ ई० शनीचर के दिन विज्ञापन लिखवा कर नगर में लगवा दिये कि हम और ज्वालाप्रसाद स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ करने के लिये उद्यत हैं। पण्डित गोपालराव हरी उक्त व्यवस्था की लिपि नरसिंह चौदस से एक

रात प्रथम ही श्रीगोपाल जी के पास जाकर लिख लाये थे। जिसको स्वामी
जी ने पढ़ और हंस कर कहा था कि मैंने काशी वालों की बुद्धिमत्ता जान ली
ऐसा ही वहां भी शास्त्रार्थ करेंगे। पुनः वैशाख सम्वत् १९२६ नरसिंह १४
मंगलवार २४ मई सन् १८६९ को उक्त पण्डित जी ने वहां धूमधाम से स्वामी
जी के समीप गंगा किनारे टोडा घाट के मैदान में उसका-काशीस्थ लिखित
विद्वानों की व्यवस्था को एक झंडा गाड़ कर उस में लटका दिया और झंडे
के ऊपर "धर्मव्यवस्थेयम्" यह लिख दिया, उस समय वहां सहस्रों मनुष्यों
का मेला लगा हुआ था। इस लिये उसने स्वामी जी के पास बार २ मनुष्यों
को भेजकर कहला भेजा कि अब आकर शास्त्रार्थ कर लीजिये। उस समय
स्वामी जी ने यही उत्तर दिया कि जिस को पुल्लिंग और स्त्रीलिंग का ही
ज्ञान नहीं वह क्या शास्त्रार्थ कर सकता है। हां झगड़ा करने का अच्छा अवसर
है इस लिये इस समय मेरे वहां जाने का क्या काम? तब श्री गोपाल जी ने
वहीं एक बांस गाड़कर सम्पूर्ण मनुष्यों से कहा कि इस पर जल चढ़ाओ वहां
क्या था कहने ही की देर थी सब के सब लोटे भर २ कर धड़ाधड़ जल चढ़ाने
लगे। उस समय स्वामीजी अपने स्थानसे कहते थे कि "सर्वेवसातिवर्त्तते"
कि एक श्रीगोपाल ने इन को सिद्धी कर दिया है उधर सम्पूर्ण नगरस्थ विद्वान्
पंडित स्वामी जी को बृहस्पति का अवतार और शुकदेव की मूर्ति कहते थे।
जब इस कोलाहल के समाचार साहिब कलेक्टर बहादुर को ज्ञात हुए तब
उन्हों ने कोतवाल शहर को भेजा जिन्हों ने जाकर सब वृत्तान्त जान श्री
गोपाल से पूछा तब वह बहुत घबड़ाये जिस को श्रीमान् लाला जगन्नाथ जी
ने शान्त कर दिया। एक दिन मुंशी ज्वालाप्रसाद मद्यपान कर अपने साथ
कुर्सी लेकर गये और उस पर बैठकर स्वामी जी से अंड बंड कहने लगे। उस
को अन्य मनुष्यों ने रोका। परन्तु जब उसने न माना। तब मन्नीलाल व
मदनमोहनलाल वैश्य और नन्दकिशोर ब्रह्मचारी "जो वर्तमान में चूना वाली
फर्म से प्रसिद्ध हैं" ने पकड़कर उसको दुष्टता का तत्क्षण दण्ड दिया। इस के
पश्चात् सुनने में आया कि मुंशी ज्वालाप्रसाद अपने समधी का बदला लेने के
लिये २० वा ३० मनुष्यों को लेकर वहां गये। जिस का समाचार सुन लाला
जगन्नाथप्रसाद साहब कई आदमियों को साथ लेकर तत्क्षण वहां पहुंचे। मार्ग
में ज्ञात हुआ कि वह अपने पकड़े जाने के भय के कारण उनके पहुंचने से प्रथम
ही भाग गये जिसका वृत्तान्त सेठ जी ने स्वामी जी से कह कर प्रार्थना की
कि आप बाहर के मकान को छोड़कर भीतर के मकान में रहा कीजिये तब
स्वामी जी ने कहा कि यहां तुम रक्षा करोगे फिर भला अन्यत्र कौन करेगा।
इस लिये परमात्मा सर्वत्र रक्षक है। आप कुछ चिन्ता न कीजिये। मेरे ऊपर
बहुधा ऐसी बातें हो चुकी हैं। देखो सोरों में लोगों ने विष देने और सोते
हुए को गंगा में डालने की सम्मति कर मेरे धोखे में एक फ़क़ीर को मारा है

सहित उठा गंगा में डाल दिया। जब यह चिल्लाया तब शब्द की परीक्षा कर निकाल लिया। एक वार गंगा के किनारे जब मैंने आचार्यों के मत का बहुत खंडन किया तब वहां के ठाकुर जो आचार्य मत के अनुयायी थे दशहरा को मेरे मारने के लिये आये। परन्तु जहां मैं बैठा था उसी पेड़ के नीचे पहाड़ी ब्रह्मचर्या भी आराम करने को उतरे थे। जब उन सब ने देखा कि वह सब के सब साधु के मारने के लिये आ रहे हैं। तब उन्हों ने अपने कुत्ते छोड़ दिये और आप लाठी लेकर खड़े हो गये जिस को देख वह सब के सब भाग गये।

प्रिय पाठकगणों! जब अंगोपारा की व्यवस्था का स्वामी जी की ओर से अच्छे प्रकार खण्डन हो गया। तब सेठ मन्नीलाल वैश्य फर्रुखाबाद ने अपने गुरु पण्डित पीताम्बरदास पर्वनी विद्वान् को काशी इस प्रयोजन के लिये भेजा कि वहां के समस्त विद्वानों से मिल कर इस बात का यथार्थ निर्णय कर आवें कि वेदों में मूर्ति पूजा है या नहीं? जब गुरु जी काशी से लौटकर आये तो उन्हों ने सेठ साहब से स्पष्ट कह दिया कि वेदों में मूर्ति पूजा नहीं है, यह केवल लोकाचार है। यह सुन सेठ जी ने अपने गुरु को साथ ले पन्द्रह दिन तक स्वामी जी के पास जा, अच्छे प्रकार शङ्का समाधान कर जिस स्थान पर शिवलिङ्ग स्थापन करना चाहते थे वहां उनकी आज्ञानुसार एक वैदिक पाठशाला खोल दी फिर तो अनेकान् पुरुषों ने वैदिक धर्म को स्वीकार कर लिया। यथार्थ में पण्डित पीताम्बरदास से योग्य पुरोहित ही यजमान का कल्याण कर सकते हैं। धन्य है पुरोहित जी को जिन्हों ने ऐसे धर्म संग्राम में निर्भय हो स्पष्ट कह सत्य धर्म की रक्षा की।

फर्रुखाबाद का दूसरा शास्त्रार्थ।

जब पंडित अंगोपारा पराहत होगये और उनकी वह व्यवस्था जो वह बड़े परिश्रम और द्रव्य व्यय कर, सत्य को हाथ से दे लाये थे कुछ काम न आई। तब लाला प्रेमदास और देवीदास प्रतिष्ठित रईस अरोड़ा वंश ने हलधर ओझा मैथिल ब्राह्मण को जिसे संस्कृत में लोग बड़ा विद्वान् पण्डित जानते थे कानपुर से बुलाया। इधर पौराणिकों ने यह भी प्रसिद्ध कर दिया था कि यदि कोई धनकी शर्त, हार जीत पर लगाने को उपस्थित हो तो शास्त्रार्थ कराया जावे इस पर धर्म जिज्ञासु स्वामी जी में अत्यन्त प्रेम और भक्ति करने वाले सेठ लाला जगन्नाथ दास जी ने ढाई हजार रुपया लाला प्रेमदास, देवीदास जी के पास भेज कहला भेजा कि यदि हार जीत पर ही आप शास्त्रार्थ कराते हैं तो मैं स्वामी जी की तरफ़ से ढाई हज़ार रुपया भेजता हूं और ढाई हज़ार आप मिलाकर किसी साहूकार के, यहां जमा करा दीजिये जो जीतेगा वह पांच हज़ार रुपये का स्वामी हो जावेगा। यह सुन लाला प्रेमदास, देवीदास जी ने घबड़ाकर कहला भेजा कि हमने, श्रीमान् पण्डित हलधर जी को द्रव्य

को हार जीत के लिये नहीं वरन् सत्य के निर्णयार्थ बुलाया है। निदान लाला प्रेमदास, देवीदास साहूकार ज्येष्ठ सुदी १० सम्वत १६२६ अर्थात् १६ जून सन् १८६९ को १५ पण्डित व प्रतिष्ठित पुरुषों के समेत पण्डित हलधर ओझा जी को साथ ले आठ बजे रात को स्वामी जी के स्थान पर पहुंचे तब श्रीहलधर महाराज ने स्वामी को प्रणाम किया स्वामी जी ने उत्तर में कहा—"अरे हलधर आनन्दो जातः"। श्रीहलधर जी ने कहा कि महाराज आनन्द है यह प्रथम निश्चय होगया था कि शास्त्रार्थ मूर्त्तिपूजा पर होगा। परन्तु मूर्त्तिपूजा का विषय आरम्भ होते ही बात सुरा पान पर आ पड़ी श्रीहलधर जी ने प्रमाण दिया "सौत्र मण्या सुरां पिबेत्" अर्थात् सौत्रमण्य यज्ञ में शराब पीनी चाहिये। तब स्वामीजी ने कहा कि सुराशब्द का अर्थ अच्छे प्रकार पकी रस, रूप औषधि का है शराब नहीं और शराब का अर्थ करने वालों का अच्छे प्रकार खण्डन कर कहा कि इस का अर्थ यह है कि सौत्र मण्य यज्ञ में सोम रस अर्थात् सोम वल्ली का रस पीये। इस के पीछे श्रीहलधर जी ने स्वामी जी से संन्यासियों के लक्षण पूछे। जिसका उन्होंने अच्छे प्रकार उत्तर दे श्रीहलधर से पूछा कि आप ब्राह्मण के लक्षण कहें—परन्तु वह न कह सके और संस्कृत में गड़बड़ करने लगे। तब स्वामी जी ने कहा कि हलधर—" भाषार्थावद भाषार्थावद " अर्थात् भाषा में बात करो। इस पर घबड़ाकर प्रकरण छोड़ बात करने लगे। तब स्वामी जी ने कहा " भो हलधर प्रकरणं विहाय मागच्छ" अर्थात् प्रकरण छोड़ मत जाओ उसी पर रहो। इस के उत्तर में श्रीहलधर ने कहा—"अहंतु प्रकरणं विहाय न गच्छामि परन्तु श्रीमतां पुनः पुनः प्रकरणमभिनयते तर्हि प्रकरण शब्दस्य कथंसिद्धि " अर्थात् मैं तो प्रकरण नहीं छोड़ता आप बार २ प्रकरण शब्द कहते हैं तो बतलाइये कि प्रकरण शब्द कैसे सिद्ध होता है।

तब स्वामी जी ने कहा—'प्रपूर्वात् कृञ्धातोर्ल्युट प्रत्यये कृतेसति प्रकरण शब्दस्य सिद्धिर्भवति'। अर्थात् प्र उपसर्ग पूर्वक डुकृञ्करणे धातु से ल्युट प्रत्यय करने पर प्रकरण शब्द सिद्ध होता है फिर हलधर ने पूछा कि—"धातु समर्थोभवति किंवाऽसमर्थो भवति" अर्थात् धातु समर्थ होता है अथवा असमर्थ।

स्वामी जी ने कहा कि—"समर्थः पदविधिः" इस पाणिनीय सूत्र से धातु समर्थ होता है।

ओझा जी ने कहा कि असमर्थ किसको कहते हैं स्वामी जी ने कहा "सापेक्षोऽसमर्थोभवति" अर्थात् अपेक्षा करनेवाला असमर्थ होता है यह महाभाष्य का वाक्य है हलधर ने कहा कि यह वाक्य महाभाष्य का नहीं

है तब श्री स्वामी जी ने पण्डित व्रजकिशोर जी से महाभाष्य मंगाकर अ० २ पाद १ में दिखा दिया।

अन्त में निरुत्तर हो ओझा जी ने कहा कि महाभाष्यकार भी पण्डित है मैं भी पण्डित हूं क्या हम उस से न्यून हैं। तब स्वामी जी ने कहा कि तुम भाष्यकार के बाल के तुल्य भी नहीं हो सकते यदि हो तो बतलाओ कि कलम की क्या संज्ञा है इस पर ओझा जी को उत्तर न आया तब स्वामी जी ने कहा देखो कि महाभाष्य में "अकथितंच" इस सूत्र पर कलम संज्ञा कर्म की है इस पर उपस्थित सुजनों को ओझा जी की विद्या का सम्यक् परिचय होगया। इस प्रकार व्यांकरण पर ही वाद होते २ रात्रि का एक बजगया तब अन्त में यह निश्चय हुआ कि "समर्थः पद विधिः" सूत्र की सर्वत्र प्रवृत्ति हो तो हलधर का पराजय अन्यथा स्वामी जी की पराजय स्वतः सिद्धि हो जायगी पश्चात् सर्वजन अपने २ गृह पर चलेगये, मार्ग में पण्डित जन आपस में कहते जाते थे कि स्वामी जी अत्यन्त हठ करते हैं इस सूत्र की सर्वत्र प्रवृत्ति नहीं होती श्रीमान् लाला जगन्नाथ और लाला मन्नीलाल जो स्वामी जी के परम हितैषी और उन की पूर्ण विद्या से अनभिज्ञ थे। प्रातःकाल जाकर रात्रि का सब समाचार कहकर स्वामी जी से कहा कि अब आप शास्त्रार्थ न करें क्यों कि पराजय से बड़ी अप्रतिष्ठा होगी यह सुनकर स्वामी जी ने क्रोध से कहा कि यदि तुम ओझा को न लाओगे तो गौहत्या के तुल्य पाप होगा और यह न आवेगा तो उस को भी वही पाप होगा। तब उन्होंने जान लिया कि स्वामी जी सचाई पर दृढ़ हैं, अन्त को द्वितीय दिवस आठ बजे सायंकाल सब पण्डितादि इकट्ठे होकर विश्रान्त पर गये। उस समय यह भी ज्ञात हुआ कि बहुधा लुच्चे गुंडे कोलाहल करना चाहते थे इस लिये अच्छे प्रकार कह दिया गया कि यदि कोई शास्त्रार्थ के समय में विना कार्य के बोलेगा वह सभा से उठाकर पृथक् कर दिया जायागा। जिन मनुष्यों पर शङ्का थी उन को उठाकर दूसरे स्थान पर बिठला दिया जिस पर पण्डित गौरीशङ्कर जी अप्रसन्न होकर चले गये और उसी दिन से स्वामी जी के विरुद्ध हो गाली प्रदान करने लगे, जब शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ तब स्वामी जी ने पण्डित व्रजकिशोर से कहा कि महाभाष्य ले आओ पुस्तक आने पर स्वामी जी ने "समर्थःपदविधः" इस सूत्र की व्याख्या दिखलाई जिस से प्रकट होगया कि उक्त सूत्र की सर्वत्र प्रवृत्ति है। यह देखकर पं० हलधर मूर्छित होगये। और सब मनुष्यों ने जान लिया कि स्वामी जी की जय और हलधर की पराजय हुई। जिस के कारण लाला प्रेमदास और देवीदास जी जिन्हों ने हलधर जी को बुलाया था मार्ग व्यय आदि कुछ भी न दिया और कहा कि हम ने तुम को स्वामी जी के परास्त करने के लिये बुलाया था तुम ने हमारा ही पराजय करा दिया। इस शास्त्रार्थ में लाला जगन्नाथ प्रसाद रईस फर्रुखाबाद रात्रि

के जागने और ओस में बैठने इत्यादि के कारण बीमार होगये सनातन धर्मियों ने कोलाहल मचा दिया कि यह हलधर के परास्त करने का कारण है अर्थात् हलधर ओझा ने इन पर प्रयोग कर दिया है परन्तु उस धर्मात्मा ने इस मिथ्या बात पर कुछ भी ध्यान न किया। फिर पर भी पण्डित हलधर जी सेठ जी के समीप आकर कह गये कि लोग मेरे ऊपर मिथ्या दोष लगाते हैं मैं ने कुछ नहीं किया। स्वामी जी छः मास रहने के पश्चात् वहां से सिंगीरामपुर में एक दो दिन निवास कर वहां के मनुष्यों की श्रद्धा सम्पादन करते तथा जलालाबाद होते हुए मई सन् ६९ ई० को कन्नौज पहुंच उपदेश करने लगे। जिन के पास वहां के बहुधा पण्डित आकर मूर्ति पूजा पर वार्तालाप करते थे। पण्डित गुलजारीलाल और पं० हरीशङ्कर उक्त विषय पर कई दिन तक वार्तालाप कर निरुत्तर होगये। जिन में से पण्डित हरीशङ्कर पर ऐसा प्रभाव हुआ कि वह स्पष्ट रूप से उनके अनुयायी होगये जिस से समस्त नगर में स्वामी जी की धूम मच गई। यहां से चल बिठूर हो कर अट्ठारपुर के सामवेदियों से भेंट करते कानपुर पहुंच विश्रान्त घाट पर विश्राम कर उपदेश करना आरम्भ कर दिया जिस से ईसाई मुसलमान के अतिरिक्त हिंदू सम्प्रदाइयों के सहस्त्रों मनुष्य उन के सतोपदेश सुनने के अर्थ आने लगे जिस के कारण उन के उपदेशों की चर्चा प्रत्येक गृह में रात दिन होने लगी और अनेकान् पुरुषों का चित्त मूर्तिपूजा से हट गया और पण्डित शिवराम शास्त्री जी ने अपने प्राचीन पुरुषाओं के पूजित पाषाण मूर्तियों से मसाला बांटने का काम लेना आरम्भ कर दिया। बहुधा मनुष्य यह कहते थे कि यदि यह महात्मा मूर्तिपूजा का खण्डन न करते तो साक्षात् ब्रह्मा का अवतार माने जाते. शोक है यह तो सबही का खण्डन करते हैं। इस लिये सब शत्रु होजाते हैं वरन् किसी एक मत का खण्डन करते तो यह उसका मटियामेट करदेते। जो मनुष्य शिव जी पर बेलपत्री चढ़ाकर उन के पास जाते और वह यथार्थ कह देते तो स्वामी जी उनसे कहा करते थे कि बटिया पर बेलपत्री चढ़ाने के स्थान में यदि ऊंट को डाल दिया करो तो ऊंट का आहार तो होजाया करे तुम्हारी इस रीति से पत्ते व्यर्थ जाते हैं और किसी कार्य की सिद्धि नहीं होती। इन्हीं दिनों में यहां एक साधु ने यह प्रसिद्ध कर दिया था कि स्वामी दयानन्द अंग्रेजों की ओर से लोगों को ईसाई करने के लिये यहां आये हुए हैं इस लिये किसी को उनके पास जाना न चाहिये नहीं तो वह धर्म से भ्रष्ट हो जावेगा बहुधा लोगों से यह कहकर कि तुम ने स्वामी जी के उपदेशों में अपने देवताओं की बड़ी निन्दा सुनी जिस का पाप तुम्हारे ऊपर चढ़ रहा है इसलिये तुम शीघ्र प्रायश्चित्त कराकर शुद्ध हो जाओ नहीं तो तुम्हारे ऊपर नाना प्रकार की आपत्तियां आवेंगी। एक दिन बीस पचीस

मनुष्य उन की बातों में आकर गंगा पर गये जहां साधू जी ने उनको स्नान कराकर गौ का गोबर खिला प्रायश्चित्त कर शुद्ध किया इस के पश्चात् इन्हीं साधू जी ने एक विज्ञापन द्वारा मनुष्यों को यह भी सूचित किया था कि जो ब्राह्मण उन के व्याख्यानों में सम्मिलित होगा वह पतित समझा जायेगा। परन्तु वैदिक धर्म के प्याले तब इन थोथे जालों में फंस सकते थे जिधर देखो उधर नगर भर में यही बातें सुनाई देने लगीं। एक दिन स्वामी जी ने व्याख्यान देते समय कहा था कि यों तो चक्रांकित लोग मांस भक्षण का निषेध करते हैं परन्तु विचार दृष्टि से देखिये तो यह पुरुष आप और अपने चेलों को नर अर्थात् मनुष्य के मांस का स्वाद चखाते हैं कौन नहीं जानता कि जब कोई मनुष्य इन का चेला होने जाता है तो उसके शरीर को तप्त मुद्रा से दाग फिर उस लोहे की मुद्रा को जिस में मनुष्य की जली चमड़ी मांस आदि लगा रहता है पानी में बुझा चरणामृत कर के पिलाते हैं और धर्म मार्ग बतलाते हैं। एक दिन एक मनुष्य ने स्वामी जी से पूछा कि मैं कौन कौन से कर्मों का साधन करूं कि जिस से मोक्ष प्राप्त हो स्वामी जी ने उससे कहा कि तुम प्रति दिन पंचयज्ञ कर विद्यार्थियों को विद्या पढ़ाया करो परन्तु पाषाण पूजा कदापि न किया करो यह सुन वह ब्राह्मण चौंककर कहने लगा कि हा महाराज यह आप क्या कहते हैं इस का पूजन तो बहुत काल से चला आता है तब स्वामी जी ने कहा कि बहुत काल से चोरी आदि दुष्कर्म चले आते हैं क्या वह भी माननीय हैं नहीं इस लिये सदा सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में प्रतिक्षण उद्यत रहना चाहिये यही मनुष्यों का सर्वोपरि धर्म है स्वामी जी ने एक दिन पण्डित गुरुनारायण से जिन्हों ने एक मेम को घर में डाल लिया था कहा कि आप ने यह क्या भ्रष्ट कार्य कर रक्खा है। जिस को सुन लज्जित हो उन्हों ने नीचा सिर कर लिया। पाठक गणों! स्वामी जी के प्रभावशाली वैदिक व्याख्यानों ने समस्त नगर में धूम मचादी जिधर जाइये उधर ही रौला मचा हुआ था। पौराणिकों के सर्दार ब्राह्मण गण, अपनी प्रतिष्ठा और सैकड़ों का धन जाता हुआ देख कर चिंता ग्रसित हो रहे थे इतने में एक दिन स्वामी जी ने पं० गुरुप्रसाद शुक्ल व प्रयागनारायण तिवाड़ी से जो स्वामीजी के पास बहुधा आया करते थे जिन्हों ने कैलाश और बैकुण्ठ नामी दो बड़े मन्दिर बनवाये थे कहा कि आप ने सहस्रों रुपये, मंदिर इत्यादि के बनवाने में व्यर्थ व्यय कर दिये जिन से संसारी पुरुषों को हानि के अतिरिक्त कुछ भी लाभ नहीं होता आप इतने रुपये से कोई देशोपकारी कार्य करते तो उस से देश का बड़ा उपकार होता। "इस उत्तम शिक्षा को स्वर्णमयी अक्षरों से हृदय रूपी पत्रिका पर लिख बारम्बार विचार कर पंडितगणों को महर्षि स्वामी दयानन्द का कोटानकोट धन्यवाद देना चाहिये था"। परन्तु इस के विरुद्ध अविद्या से ग्रसित दोनों महाशयों ने मन में अत्यन्त अप्रसन्न होकर यह विचार किया

कि जिस प्रकार हो सके उक्त स्वामी को नीचा दिखलाया जाये। उधर हलधर ओझा जी जो फर्रुखाबाद के शास्त्रार्थ में परास्त होकर खार खाये हुए स्वगृह पर स्थिर थे, यह सुन फूले अंग नहीं समाये। इधर पौराणिक पण्डितों ने जो जले भुने बैठे थे अपने यजमानों को धन की सहायता देने के लिये उत्तेजित किया फिर क्या था चहुं ओर कोलाहल होने लगा इस पर स्वामी जी ने निम्न लिखित विज्ञापन दिया जिस ने सम्पूर्ण सनातनियों के हृदयों को और भी चौकन्ना कर दिया।

---:o:---

विज्ञापन।

कल्याण हो ऋग्-यजु साम-अथर्व इन चारों वेदों में कर्मोपासना ज्ञान कांड का निश्चय है सन्ध्योपासन प्रभृति अश्वमेध पर्यंत कर्मकांड, यम से ले कर समाधि पर्यन्त उपासना कांड और निष्कर्म से लेकर परब्रह्म के साक्षात्कार पर्यन्त ज्ञान कांड जानना चाहिये। पंचम आयुर्वेद है अर्थात् चिकित्सा शास्त्र जिस के चरक तथा सुश्रुत यह दो प्राचीन ग्रन्थ हैं, छठा धनुर्वेद है इस में शस्त्रास्त्र विद्या है, सप्तम गंधर्व वेद है इस में रागविद्या है, अष्टम अर्थ वेद इस में शिल्प विद्या है।

उक्त चारों वेदों के क्रमानुसार से यह चार उपवेद हैं। नवम शिक्षा जिसमें वर्णोच्चारण की प्रथा है, दशम कल्प इसमें वेद मंत्रों के अनुष्ठान की विधि है, एकादश व्याकरण उस में शब्दार्थ और उनके परस्पर सम्बंध का निश्चय है जिसके माननीय पुस्तक अष्टाध्यायी और महाभाष्य हैं उनको सत्य जानना चाहिये। १३ छन्द इसमें गायत्री आदि छन्दों के लक्षण हैं। १४ ज्योतिष इसमें भूत भविष्य और वर्तमान का ज्ञान है, यह षट् वेदांग हैं और यही १४ विद्या हैं। पंद्रहवें उपनिषद् अर्थात् ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूक, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्यवृहदारण्यक, श्वेताश्वेत और कैवल्य यह बारह उपनिषद् हैं इनमें ब्रह्म विद्या है सोलहवां शारीरिक सूत्र इसमें उपनिषदों के मंत्रों की व्याख्या है।

सत्रहवां कात्यायनादि सूत्र—इस में जन्म से लेकर मृत्यु के दाह संस्कार तक की व्याख्या है।

अठारहवां योगभाष्य—इस में उपासना और ज्ञान के साधन हैं।

उन्नीसवां वाक् वाक्या—इस एक ग्रन्थ में वेदों के अनुकूल तर्क विद्या है।

बीसवां मनुस्मृति—इस में वर्णाश्रम और वर्णसंकरों के धर्म की व्याख्या है।

इक्कीसवां महाभारत—इस में सुजनों और दुष्ट मनुष्यों के लक्षण हैं।

इन २१ शास्त्रों को सत्य जानों परन्तु इन शास्त्रों में भी जहां कहीं व्याकरण और वेद शिष्टाचार के विरुद्ध जो वचन हों उन सब को असत्य जानना। इसके उपरान्त मिथ्या कथन को गप्प कहते हैं इसलिये जिसमें आठ गप्प हों उसको गप्पाष्टक। इसी भांति जिस में आठ सत्य हों उस को सत्याष्टक कहते हैं।

आठ गप्पों का वर्णन।

(१) मनुष्यकृत ब्रह्म वैवर्तादि जो पौराणिक ग्रन्थ हैं (२) देव बुद्धि से पाषाणादि की पूजना (३) शैव, शाक्त, गाणपत्य और वैष्णव आदि सम्प्रदाय (४) तंत्र ग्रन्थों से प्रतिपादित वाममार्ग (५) विजयादि मादक द्रव्यों का सेवन (६) पर स्त्री गमन (७) चोरी करना (८) छल, अभिमान, मिथ्या भाषण यह आठ गप्पें हैं इन को छोड़ देना योग्य है।

आठ सत्यों का वर्णन।

(१) ईश्वर और ऋषि प्रणीत ऋग्वेदादि २१ शास्त्र।

(२) ब्रह्मचर्य्याश्रम में गुरु की सेवा तथा निज स्वधर्मानुष्ठान पूर्वक वेदों का पठन पाठन।

(३) वेदोक्त वर्णाश्रमानुकूल निजधर्म संध्यावन्दन अग्निहोत्रका अनुष्ठान।

(४) शास्त्राज्ञानुसार विवाह करना, पंचमहायज्ञ विधि का अनुष्ठान, ऋतुकाल में निज स्त्री से संभोग, श्रुति, स्मृति की आज्ञानुसार आचार, व्यवहार रखना।

(५) इस में शम, दम, तपश्चरण, यम, प्रवृत्ति, समाधि पर्य्यन्त उपासना और सत्संग पूर्वक वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण करना।

(६) विचार, विवेक, वैराग्य पराविद्या का अभ्यास संन्यास ग्रहण करके सब कर्मों के फलों की इच्छा न करना।

(७) ज्ञान, विज्ञान से समस्त, अर्थ, मृत्यु, जन्म, हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, संग, द्वेष के त्यागने का अनुष्ठान।

(८) अविद्या अस्मिता, रागद्वेष, अभिनिवेश, तम, रज, सत, सब क्लेशों से निवृत्त हो पञ्च महाभूतों से अतीत होकर मोक्ष स्वरूप और आनन्द को प्राप्त होना यह आठ सत्याष्टक हैं इन को ग्रहण करना चाहिये। इति॥

ह० दयानन्द सरस्वती.

इस विज्ञापन के बटतेही सम्पूर्ण नगर में एक प्रकार की अग्नि प्रज्वलित होगई। अन्त को पण्डित प्रयागनारायण तथा गुरुप्रसाद शुक्ल ने विठूर निवासी लक्ष्मण शास्त्री और हलधर ओझा को जो पूर्व ही से विद्यमान थे शास्त्रार्थ के लिये उद्यत किया, यद्यपि अब तक बहुत से शास्त्रार्थ मूर्तिपूजा पर हुए थे परन्तु यह सब से बढ़ कर था इसका वृत्तान्त निम्न लिखित है।

शास्त्रार्थ।

यह शास्त्रार्थ भैरोंघाट के नीचे ३० जोलाई सन् ५६ को अनुमान बीस पचीस सहस्र मनुष्यों की उपस्थिति में हुआ जिसमें समस्त प्रतिष्ठित पुरुषों के अतिरिक्त सदरआला, मुंसिफ, वकील, तथा डब्ल्यू थेन साहब बहादुर असिस्टेंट कलेक्टर कानपूर भी विराजमान थे साहब बहादुर संस्कृत के विद्वान् थे अत-

एव इस शास्त्रार्थ के मध्यस्थ किये गये वाद-विवाद इस प्रकार आरम्भ हुआ।

प्रथम हलधर ओझाजी—ने यह कहा कि आपने जो विज्ञापन दिया है उस में व्याकरण की अनेक अशुद्धियां हैं।

स्वामी जी—यह बातें पाठशाला के विद्यार्थियों की हैं ऐसे शास्त्रार्थ पाठशालाओं में हुआ करते हैं आज यह विषय छेड़ो जिसके लिये हजारों मनुष्य यहां एकत्रित हुए हैं व्याकरण के विषय में मेरे पास कल आना मैं समझा दूंगा इस पर-

ओझाजी—ने प्रश्न किया कि आप महाभारत को मानते हैं।

स्वामीजी—ने कहा कि हां मानता हूं।

ओझाजी—ने एक श्लोक महाभारत का पढ़ा जिस का यह प्रयोजन था कि एक भील ने द्रोणाचार्य की मूर्ति बना और सन्मुख रख धनुष विद्या सीखी थी।

स्वामीजी—मैं तो यह कहता हूं कि कहीं प्रतिमा पूजन की आज्ञा बताओ। इस में तो आज्ञा नहीं पाई जाती। परन्तु इस से तो यह प्रकट होता है कि एक भील ने ऐसा किया बहुधा जैसा अज्ञानी पुरुष अयुक्त किया करते हैं यह कोई ऋषि मुनि न था उस को किसी ने ऐसी शिक्षा दी थी, यदि यह बात कहो कि उस को ऐसा करने से धनुष विद्या आगई तो उस का कारण द्रोणाचार्य की मूर्ति न थी किन्तु अभ्यास का फल था जैसा कि वर्तमान समय में चांदमारी के द्वारा अङ्गरेज लोग सीखते हैं परन्तु वह कोई मूर्ति नहीं रखते इसको सुन ओझाजी ने किंचित् काल चुप रह फिर दूसरा प्रश्न किया।

ओझाजी—वेदों में प्रतिमा पूजन की आज्ञा नहीं है तो निषेध कहां है?

स्वामीजी—जैसे स्वामी ने सेवक को आज्ञा दी कि तू पश्चिम को चला जा तो इस से अपने आपही तीनों शेष दिशाओं का निषेध होगया अब उसका यह पूछना कि उत्तर, दक्षिण, पूर्व को न जाऊं व्यर्थ है अतएव जो वेद ने उचित जाना प्रतिपादन किया शेष निषेध है। इस के अनन्तर मिस्टर थेन साहब असिस्टेन्ट कलेक्टर को शंका हुई कि स्वामी जी कुछ पढ़े हैं या यौंही शास्त्रार्थ करते हैं इसकी परीक्षा के लिये एक पत्र जो हलधर ओझा के पास था स्वामी जी के पास रख दिया जिस को पढ़कर उन्हों ने सुना दिया इस पर साहब बहादुर ने स्वामी जी से प्रश्न किया।

थेन साहब—आप किस को मानते हैं?

स्वामी जी—एकईश्वर को।

यह सुनकर उक्त साहब अपनी छड़ी और टोपी उठाकर चल दिये और कहा ठीक बात है सलाम। उनके उठते ही सब के सब उठ कोलाहल मचाते गङ्गा जी की जै बोलते, पैसे लुटाते हुये चलदिये, यह सब कार्यवाही परलोकवासी लाला प्रयागनारायण तिवारी की थी इस से मूर्तिपूजकों ने समझा कि हमारी जय होगई। दूसरे दिन लाला गुरुप्रसाद को जो उनके किरायेदार थे दबाकर अखबार शोलयतूर ३ अगस्त में छपवा दिया कि स्वामी दयानन्द जी पण्डित हलधर ओझा और लक्ष्मण शास्त्री से मूर्तिपूजा खण्डन के शास्त्रार्थ में हारगये। प्यारे पाठक गणों! इस मिथ्या विजय से चाहे मूर्तिपूजक प्रसन्न हुए हों परन्तु सत्य छुपाये पर नहीं छुपता अर्थात् सहस्रों मनुष्य जिन के सन्मुख यह शास्त्रार्थ हुआ था उनकी आंखों में कौन धूल डाल सका था कि जिन्हों ने हलधर ओझा और लक्ष्मण शास्त्री को अपने आप यह देखा हो कि स्वामी दयानन्द के सन्मुख मूर्तिपूजा का मण्डन न कर सके भला फिर उनके हृदय क्योंकर चलायमान होते। सच तो यह है कि बहुधा धर्मात्मा सज्जन पुरुषों ने शालिग्राम और शिवलिङ्ग की मूर्तियों को उठा २ कर गङ्गा में फेंकना आरम्भ कर दिया जिस से नगर में कोहराम मच गया अन्त को ओझा जी ने निम्नलिखित विज्ञापन देकर अपने मन की शान्ति की।

———:०:———

विज्ञापन

संस्कृत विज्ञापन का सारांश।

जो कि दयानन्द सरस्वती मत के अनुसार बहुधा ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य आदि अपना कुछ धर्म छोड़कर देवताओं की मूर्तियों को गङ्गा में प्रवाह कर देते हैं यह बात अनुचित है इस लिये यह विज्ञापन दिया जाता है कि जो लोग उनके मत को स्वीकार करें उनको चाहिये कि वह कृपा पूर्वक उन मूर्तियों को महाराज गुरुप्रसाद व श्रीमहाराज प्रयागनारायण तिवारी जी के मन्दिर में पहुंचा दिया करें यदि उन को पहुंचाने का अवकाश न हो तो हमें सूचना कर दें कि हम आप उठा लिया करेंगे उनके बहाने में बहुत पाप है।

द० ओझा हलधर.

किसी ने सच कहा है—जादू वह जो सर पै चढ़ के बोले। क्या लुत्फ जो गैर परदा खोले।

इस विज्ञापन के देने के पश्चात् २० अगस्त सन् १८६६ई० को उसकी पुष्टि में शोलयतूर कानपुर ने निम्न लिखित सम्पादकीय टिप्पणी में प्रकाश किया कि संन्यासी की सङ्गति से कई हिन्दू मूर्तियों को नदी में प्रवाहने लगे ओझा जी ने विज्ञापन दिया है कि वेद शास्त्र में ऐसा करना अयोग्य कहा है जिसे

नदी में मूर्तियां बहाना स्वीकृत हो वह हमारे पास भेजदें नदी में बहाकर पाप न ले।

जब ओझा जी के सहायकों ने इस प्रकार मिथ्या लेख समाचार पत्र में प्रकाशित कर दिया कि ओझाजी जीतगये और स्वामीजी हार गये तो स्वामी जी के अनुयायियों को बहुत अनुचित प्रतीत हुआ इस लिये उन्हों ने झूंठकी पोल खोलने के लिये मिस्टर डब्ल्यू थेन साहब असिस्टेन्ट कलेक्टर से प्रार्थना की तब साहाब बहादुर ने उनको प्रशंसा पत्र दिया जिस का उन्हों ने विज्ञापन छपवाकर सत्य के विजय को प्रकट कर दिया अर्थात् पौराणिक पण्डितों से मूर्तिपूजा वेदानुकूल सिद्ध न हुई।

मिस्टर डब्ल्यू थेन साहब बहादुर का पत्र।

Gentlemen! At the time in question. I decided in favour of Swami Dayanand Saraswati Faqir, and I believe his arguments are in accordance with the Vedas. I think he won the day. If you wish it, I will give you my reasons for my decision in a few days.

(Sd.) THANES.

अनुवाद।

सभ्यगणो! शास्त्रार्थ के समय मैं ने स्वामी दयानन्द सरस्वती के पक्ष में फैसला दिया था मुझको विश्वास है कि उन की युक्तियां वेदानुकूल थीं मेरी सम्मति में उस दिन उन्होंने विजय पाई यदि तुम मेरे फैसले के कारणों को जानना चाहो तो मैं उन को थोड़े काल पश्चात् बतलाऊंगा।

द० डब्ल्यू थेन साहब।

पौराणिक धर्म अर्थात् मूर्तिपूजा का केन्द्र बनारस नगर में महर्षि स्वामी दयानन्द का पँधारना और धर्मान्दोलन।

बनारस—यह नगर भारतवर्ष में बहुत काल से विद्या और धर्म के केन्द्र के अतिरिक्त तीर्थ स्थान माना जाता है, इस के उपरान्त पौराणिक धर्म की शिक्षा का शिवालय है, यहां की धर्म व्यवस्था सर्वोपरि मानी जाती, यहां के विद्योपार्जन करने वाले पण्डित अन्य स्थानों के पण्डितों से शिरोमणि गिने जाते हैं। इस के अतिरिक्त काशी के कङ्कर शिव शङ्कर मानेजाते, स्वयं महादेव को काशी का स्वामी व राजा और सूंड़वाले गणेश को नगर का कोतवाल और भैरों को उस का इष्ट कल्पित कर रक्खा है। यहां के पण्डितों को भी

अपनी विद्या का बड़ा अभिमान है, धर्म की महिमा अपार समझ लाखों नर नारी अपने निज गृह और जन्म भूमि को त्याग यहां निवास कर प्राण त्याग करते हैं अनेकान् जन काशी करवट में अपने प्राणों को देकर मन की इच्छा पूर्ण करते हैं। सच तो यह है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती को अपने गुरु महाराज की आज्ञा पूर्ण करने की तन-मन से लालसा लगरही थी। जिस के लिये वह लंगोट बांधे प्रति दिन देशाटन करते फिरते थे जब उनको अच्छे प्रकार निश्चय होगया था कि जब तक पोप लीला के गढ़ काशी को परास्त न किया जायगा तब तक इन छोटे २ नगरों के शास्त्रार्थ और उपदेश से कार्य्य पूर्ण न होगा। वरन् काशी के विजय होने पर भी भारत का विजय अर्थात् दिग्विजय होजायगा। इस कारण इस जितेन्द्रिय धर्मात्मा के चित्त में काशी की व्यवस्था को देख अत्यन्त शोक होरहा था कि जिस काशी का नाम समस्त संसार में होरहा है, जहां के विद्वान् पण्डितों के नाम से हिन्दू मात्र प्रतिष्ठा को प्राप्त होरहे हैं उन की विद्या की यह कुदशा, फिर इसका विजय करना क्या बड़ी बात है, ऐसा कहते २ एक दिन चुपचाप २२ अक्टूबर सन् ६९ को द्वितीय बार काशी में पहुंच, महाराजा बनारस के हाथी खाने के समीप गङ्गातट पर कुछ दिनों तक निवास कर पुनः आनन्द बाग के समीप सूर्य्य कुंड पर जा ठहरे।

उस समय किस को यह ध्यान था कि यह संन्यासी काशी के संन्यासियों की पोल खोल और समस्त काशी के पण्डितों की पण्डिताई को धूल में मिला देगा। यह कौन जानता था एक जितेन्द्रिय साधू सम्पूर्ण काशी के पण्डितों को हिला देगा यह किस के मन में था कि मूर्तिपूजाके केन्द्र काशीसेही मूर्तिपूजा की प्रतिष्ठा जड़पेड़ से उखाड़ भारत सन्तान के हृदय में वैदिक धर्म के महत्त्व को जमादेगा स्वामीजी के पहुंचते ही काशी के तैंतीसक्रोड़ देवता कम्पायमान हो गये पांच हजार वर्ष के महत्त्व को गङ्गा में बहाने के दिन आगये। अहा जिसपूजा पाठसे लोग आनन्द उड़ारहे थे यह किसके ध्यान में था कि यह संन्यासी हमारी मूर्ति पूजा का हमारे सन्मुख खाका उड़ा हमारीसमस्त विद्याका महत्त्व औरधर्म व्यवस्था को सदाके लिये अमान्य कर देगा। धर्मवीर स्वामी दयानन्द ने वहां पहुंचकर अच्छे प्रकार मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध, सम्प्रदायों केथोथे, धंधों, तिलक रुद्राक्ष की माला इत्यादि का खण्डन करना आरम्भ कर दिया। जहां बहुधा मनुष्य इकठ्ठे हो जाते थे। इस कारण नगर भर में इस की चर्चा फैल गई। महाराजा बनारस स्वामी जी से मिलने की इच्छा रखते थे, परन्तु चापलोसों ने उन को न मिलने दिया लेकिन पंडितों और विद्यार्थियों का आना आरम्भ हो गया, जिन में कोई व्याकरण, कोई न्याय, कोई धर्म विषय में प्रश्नोत्तर करते इस के उपरान्त रामनौमी के कारण यहां वैरागियों का बड़ा जमघट रहता था जिन में से बहुधा स्वामी जी को कुवाक्य भी कहते, परन्तु स्वामी जी वहां

निर्भय होकर वैदिक धर्म का उपदेश करते थे। जब महाराजा काशी ने उपरोक्त वैरागियों के कर्तव्य का वृत्तान्त जाना तो उन्हों ने कहला भेजा कि जिस किसी को शास्त्रार्थ करना हो करे। परन्तु असभ्यता से वार्तालाप न करे। एक दिन राजा साहिब ने गोघाट पर स्वामी निरंजनानन्द जी से पूछा कि वेद में मूर्तिपूजा और रामलीला है या नहीं उन्हों ने उत्तर दिया कि नहीं, यह लोक रीति है। इस पर राजा साहिब को बड़ा विस्मय हो गया तब उन्हों ने पण्डितों को बुलाकर कहा कि जिस प्रकार से होसके आप सब मूर्ति पूजा को सिद्ध कीजिये इसी बीच में स्वामी जी ने निम्न लिखित प्रश्न लिखकर पण्डित बल्देवप्रसाद फर्रुखाबाद निवासी के द्वारा काशी के मुख्य पण्डित राजाराम शास्त्री के पास भेजा था।

येनोच्चारितेनसास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाणिनां सम्प्रत्ययो भवति सशब्दः। अथवा प्रतीत पदार्थ कोलोकेध्वनिः शब्दः। श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाभिज्वलित आकाशदेशःशब्दः। अस्योदाहरण पूर्वकं समाधानंकुर्यादिति।"

इस प्रश्न को देख पण्डित राजाराम शास्त्री ने कहा कि एक छुरी बीच में रक्खी जावे यदि हमने इसका उत्तर दे दिया तो उनकी नासिका काट लेंगे। यह सुन पण्डित बल्देवप्रसाद ने ज्यों का त्यों स्वामी जी से कह दिया इस पर उन्हों ने कहा कि एक नहीं दो रक्खें शास्त्रार्थ नहीं तो शस्त्रार्थ ही सही। जब उक्त पण्डित जी पर यह उत्तर पहुंचा तब ढीले हो गये और कहा कि अब काशी में आगये हैं चिन्ता क्या है विदित हो जावेगा। पण्डित बल्देव प्रसाद वहां से यह उत्तर ले चल दिये। इस के उपरान्त उक्त शास्त्री जी ने अपने एक विद्यार्थी शालिग्राम शास्त्री को जो पूर्व गवर्नमेन्ट कालिज अजमेर के अध्यापक थे स्वामी जी की विद्वता के परीक्षार्थ भेजा। जिन्हों ने प्रथम स्वामी जी से आकार कहा कि तुम जो हुलास सूंघते हो यह कहां लिखा है? स्वामी जी ने मनु से उत्तर दिया कि यह रोग निवृत्ति के कारण है कुछ व्यसन नहीं। फिर व्याकरण के बहुधा प्रश्न किये जिनका उत्तर स्वामी जी ने अच्छे प्रकार दिया, तब शालिग्राम ने आकार अपने गुरु राजाराम शास्त्री से कहा कि वह बड़ा पण्डित है परन्तु नास्तिक है। उधर महाराजा और उनके बड़े भाइयों ने समस्त बड़े २ पण्डितों को इकट्ठा कर अपने उपरोक्त मन्तव्यों के अनुसार सम्मति दी। इस पर नगरस्थ पण्डितों ने कहा कि शास्त्रार्थ से पहिले स्वामी दयानन्द से पूछ लिया जाय कि वह किन २ पुस्तकों के किस २ भाग को प्रमाणीक मानते हैं और अन्य पुस्तकों के अप्रमाणीक मानने में उन के पास क्या युक्ति है। इन प्रश्नों के उत्तर के निमित्त पण्डित शालिग्राम, पण्डित दुर्गा-

राज शास्त्री धर्माधिकारी, दामोदर शास्त्री भारद्वाजी व रामकृष्ण शास्त्री तांतिया, स्वामी जी के निकट गये। और उक्त प्रश्नों का उत्तर चाहा इस पर स्वामी जी ने कहा कि जब तुम्हारे गुरु गण यहां पधारेंगे तब हम इन का उत्तर देदेंगे। ऐसा ही उन्हों ने लौटकर अपने गुरु लोगों से कह दिया। जिन्हों ने ऐसा ही राजा साहब से कहला भेजा। फिर रघुनाथप्रसाद शहर के कोतवाल की प्रार्थना करने पर चार वेद, चार उपवेद, छः अंग, छः उपांग, एक मनुस्मृति आदि २१ प्रमाणीक ग्रन्थ लिख दिये। पुनः कार्तिक सुदी मंगलवार १६ नवम्बर सन् १८६६ ई० को शास्त्रार्थ का दिन नियत हुआ इस को सुनकर प्रान्त के कर्मचारियों ने महाराजा बनारस से कहला भेजा कि हम भी इस शास्त्रार्थ को देखना चाहते हैं आप इतवार का दिन नियत कर दीजिये परन्तु राजा के मन में कुछ और ही पापकर्म प्रेरणा कर रहा था पुण्यकाम के सन्मुख असंभव था, इस लिये उन्होंने और उनके पण्डित लोगों ने न माना। अन्त को नियत दिन पर कोतवाल डिप्टी इन्स्पेक्टर मदारिस और पुलिस प्रबन्ध के लिये आगई। शास्त्रार्थ में सम्मिलित होने वाले मनुष्यों की संख्या दस सहस्र और कोई पचास सहस्र बताते हैं परन्तु इस से पूर्व किसी शास्त्रार्थ में इतने मनुष्य एकत्रित नहीं हुए थे। डिप्टी इन्स्पेक्टर प्रबन्धकर्ता ने स्वामी जी का आसन खिड़की के भीतर और प्रतिवादी का द्वितीय आसन उन के सन्मुख और एक महाराजा के लिये बिछवा दिया और शेष पण्डितों के लिये भी यथा योग्य प्रबन्ध कर दिया, " उन में से प्रसिद्ध पण्डितों के नाम निम्न लिखित हैं स्वामी विशुद्धानन्द, पं० बालशास्त्री, पं० शिवसहाय माधवाचार्य, वामनाचार्य, पं० देवदत्त शर्म्मा, पं० जयनारायण शुक्ल वाचस्पति, पं० चन्द्रशेखर त्रिपाठी, पं० राधामोहन तर्क वागीश, पं० दुर्गादत्त, पं० बस्तीराम दुबे पं० काशीप्रसाद शिरोमणि, प० हरिकृष्ण व्यास, पं० अम्बिकादत्त, पं० घनश्याम, पं० ठाकुरदास, पं० हरदत्त दुबे, पं० भैरवदत्त, पं० श्रीधर शुक्ल, पं० शिवनाथ मैथिल, पं० नवीननारायण तर्कालंकार, पं० मदनमोहन शिरोमणि, पं० कैलाशचन्द्र शिरोमणि, पं० देवकृष्ण वेदान्ती, पं० गणेश श्रोत्रिय, पं० धनीरामनारायण शास्त्री, पं० देवधर नृसिंह शास्त्री इनके उपरान्त महाराजा काशी और उनके भ्राता राजकुमार सिंह वीरनारायण सिंह व फतहनारायण सिंह वर्म्मा, बाबू ईश्वरीनारायणसिंह शर्म्मा " परन्तु जब महाराजा बनारस आये "जिनका शुभागमन पण्डित जनों ने खड़े होकर सत्कार पूर्वक किया" तब राजा साहब ने स्वामी जी के सहायकों को एक ओर बिठला और अन्य पण्डितों को आगे बिठला लिया, अर्थात् स्वामी जी को चारों ओर से घेर लिया।

पाठकगण! एक ओर काशी के सम्पूर्ण सम्प्रदायों के विद्वज्जन क्या शैव, क्या शाक्त, क्या वैष्णव सब यह संकल्प कर शास्त्रार्थ के स्थान में आये थे, कि मूर्तिपूजा के विनाशक और वर्तमान पाखण्ड रीतों के मूलनाशक,

कृत्रिम देवों के विध्वंसक स्वामी दयानन्द को परास्त करके भारत में पोप-लीला का भण्डा "जिस को कुछ काल से स्वामी जी ने हिला दिया था," फिर से यथावत् स्थापन करें, इनके अतिरिक्त विश्वनाथ दण्डीराज, लट्टू भैरों और उनके साथ में तैंतीस करोड़ देवता, बीस पचीस सहस्र ब्राह्मण, शास्त्री और महाराजा, काशी नरेश सम्पूर्ण राज वैभव सहित सहायता को उपस्थित थे, फिर भी यह शास्त्रार्थ ऐसा जिस में उदर पूर्ति ही का भय नहीं वरन् आगे की सन्तानों के मान, प्रतिष्ठा, धन धान्य के जाने का ध्यान। मूर्ति-पूजक जितना अपना बल रखते थे सब के सब अस्त्र, शस्त्र वरन् शिव का सुदर्शन चक्र साथ लिये डटे हुए थे। उनके सन्मुख एक लंगोटबंद साधु सत्धर्म वेद विद्या का प्रचारक, भस्म रमाये, आसन पर बैठा हुआ परमात्मा आश्रयी काशी के सम्पूर्ण विद्वानों की विद्वता और पौराणिक धर्म की समस्त शक्तियों का सामना कर रहा था।

शास्त्रार्थ का विषय वेदों से मूर्तिपूजा सिद्ध करना था। सम्पूर्ण काशी के पण्डितों की सहायता से पण्डित ताराचरण नैय्यायिक भट्टाचार्य, स्वामी विशुद्धानन्द बाल शास्त्री, पण्डित शिवसहाय, पण्डित माधवाचार्य, पण्डित वामनाचार्य, यह पण्डित नियमानुसार प्रश्नोत्तर करते रहे, परन्तु शास्त्रार्थ के मुख्य विषय पाषाण पूजन आवाहन और परमात्मा के साकार होने का कोई प्रमाण वेद से न दे सके, तब प्रकरण विरुद्ध स्वामी विशुद्धानन्द जी जगत् के कारण और व्यास के सूत्र पर विवाद करने लगे। तिस पर भी स्वामी जी ने जब उन से धर्म का स्वरूप पूछा तब कुछ उत्तर न दिया और फिर बालशास्त्री बोल उठे कि आप हम से धर्म शास्त्र का प्रश्न करें। स्वामी जी ने उन से अधर्म का लक्षण पूछा सुनते ही मौन धारण करली और सबके छक्के छूटगये इस्का धक्का बन सब ने मिलकर प्रश्न किया प्रतिमा शब्द वेद में है या नहीं। इस पर स्वामी दयानन्द ने कहा "काशी के पण्डित ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद मानते हैं" कि प्रतिमा शब्द सामवेद के ब्राह्मण यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र ३० में भी है इस पर काशी के पण्डितों ने कहा कि जब वेद में प्रतिमा शब्द है फिर आप क्यों खण्डन करते हैं तब स्वामी जी ने कहा कि यहां प्रतिमा शब्द आजाने से पाषाण पूजन का प्रमाण नहीं होता, अन्त को स्वामीजी ने प्रतिमा शब्द और उस वाक्य का अर्थ किया जिस से लेश मात्र भी मूर्तिपूजा का और परमेश्वर की प्रतिमा का तो उस से कुछ भी सम्बन्ध न निकला हां इन अर्थों पर बालशास्त्री ने कुछ शङ्कायें कीं, उनका स्वामी जी ने समाधान कर दिया, जिस से उनकी शान्ति होगई फिर पण्डित शिवसहाय जी ने कुछ शङ्का की। तब स्वामी जी ने कहा कि यदि आपने प्रकरण देखा है तो पूर्ण पद का विचार करो फिर क्या था, वह तो मौन होगये और अन्त तक न बोले। इसके उपरान्त विशुद्धानंद जी ने कहा कि वेद किस ईश्वर से प्रसिद्ध हुए। स्वामी

जी ने इसका उत्तर दिया जिसको सुन वह अपनी मीमांसा शास्त्र की सब विद्या को भूल यह प्रश्न करने लगे कि वेद और ईश्वर में क्या सम्बन्ध है इसका उत्तर सुन तीसरा प्रश्न यह किया।

'आदित्यम् ब्रह्म अत्युपासीत्; तथा मनो ब्रह्म अत्युपासीत्'

इन दोनों श्रुतियों में मानसिक ब्रह्मोपासना और सूर्योपासना की आज्ञा है तो फिर शालिग्राम का पूजन भी ग्रहण करना चाहिये, इसपर स्वामीजी ने कहा कि यह दोनों वचन ब्राह्मण के हैं जिसको तुम वेद मानते हो परन्तु ऐसा वचन कहीं नहीं कि "पाषाण ब्रह्म अत्युपासीत" इसलिये शालिग्राम का ग्रहण क्योंकर होसका है यह तृतीय बार ऐसे परास्त हुए कि मूर्तिपूजा का नाम भी न लिया इसके पश्चात् पण्डित माधवाचार्य ने कहा कि "उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजा गृहित्वमिष्टा पूर्ते सं सृजेथामयञ्च" इति इस मंत्र में पूर्ति शब्द से किस का ग्रहण है इस पर स्वामी जी ने कहा कि पूरत शब्द पूर्ति का वाचक है इस से किसी प्रकार और कभी भी पाषाणादि मूर्ति का ग्रहण नहीं होता यदि शङ्का हो तो इस मंत्र का निरुक्त, ब्राह्मण देखिये फिर इस पर कोई कुछ न बोला. इसको छोड़ कर पुराणों की ओर झुके और पूंछा कि पुराण शब्द वेद में है या नहीं? स्वामी जी ने कहा कि है तो बहुत स्थानों पर, पर इससे कहीं भी भागवत या ब्रह्मवैवर्त्त आदिका ग्रहण नहीं होता। इस पर बीच में विशुद्धानन्द जी बोले उन को भी यथार्थ उत्तर दिया अन्त को पुराण शब्द पर बात चीत होते होते सात बज गये नवम्बर का महीना था अंधेरा होगया माधवाचार्य्य ने दो पत्रे गृह्य सूत्र के लिखे हुये वेद के नाम से निकाले और पूंछा कि यहां पर पुराण शब्द किसका विशेषण है स्वामी जी ने कहा कैसा वचन है पढ़िये. तब माधवाचार्य्य ने पढ़ा पुनः स्वामी जी ने कहा कि यहां पुराण ब्राह्मण का विशेषण है तब बाल शास्त्री आदि अनियम से बोले जिस का स्वामी जी ने अच्छे प्रकार उत्तर देदिया, पुनः विशुद्धानन्द जी ने कहा जिनका उपनिषदों के प्रमाणों से समाधान किया इस पर भी वह फिर बोले जिस पर स्वामी जी ने प्रथम प्रमाण की पुष्टि कर द्वितीय और प्रमाण दिया "इतिहासः पुराणं पंचमो वेदानां वेदम" इस पर वामनाचार्य्य ने कहा ऐसा पाठ वेद में नहीं तब स्वामी जी ने कहा कि का शीस्थ पण्डित अर्थात् आप लोग उपनिषदों को भी वेद के अर्थों में लेते हैं इस लिये मैं कहता हूं कि यदि यह पाठ वेद में न हो तो हमारी पराजय लिखालो नहीं तो तुम्हारी-यह प्रतिज्ञा लिख दीजिये इस पर सब शान्त होगये और यह चौथी बार परास्त होने पर स्वामी जी ने उन की विद्या की परीक्षा करने के लिये सब पण्डितों से कहा कि व्याकरण जानने वाले उत्तर दें कि व्याकरण में कहीं कल्म संज्ञा है या नहीं बालशास्त्री बोले परन्तु तुरन्त ही चुप

होकर बैठ गये अब उस्तादी का समय आगया फिर माधवाचार्य्य ने गूढ़ सूझे के लिखे हुए पुराने दो पत्रे निकाल सभा में पण्डितों के सन्मुख रख कहा कि यहां दशवें दिन की समाप्ति पर पुराणों का पाठ सुनने की आज्ञा है तो बतलाइये यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है यह पत्रे स्वामी विशुद्धानन्द जी ने स्वामी जी के हाथ में दिये उस समय सायंकाल होने के कारण अंधेरा होता आताथा इसपर वहां लैम्पका भी प्रबंध न था केवल एक अन्धी लालटेन जो सनातन धर्म्मियों के हाथ में थी। इस पर भी पांच ही पल व्यतीत हुए होंगे कि वह यह उत्तर देना चाहते थे कि पुराणी जो विद्या है उस को पुराण कहते हैं और वह पुराण विद्या वेद हैं न कि अठारह पुराण। क्योंकि अन्य पुस्तकों में ऐसे स्थल पर विशेष कर ऋग्वेदादि के नाम लिखे हुए हैं उपनिषदों के नहीं, इस लिये यहां उपनिषदों की ब्रह्मविद्या की आज्ञा है वेदों में पुराणों के शब्द के साथ अठारह का शब्द नहीं है। इस लिये यह झूठे हैं इतने में स्वामी विशुद्धानन्द खड़े हुए कि अब हम को देर होती है। पाठकगण! यहां विचार दृष्टि से इस प्रयोजन की ओर देखें कि उस समय संसार के कल्याणार्थ विचार, तिस पर यह मिस मुख्य प्रयोजन, प्रत्यक्ष हार ढांपने के लिये यह कौतुक करने का मंसूवा बांध सब के सब महाराजा काशी नरेश सहित तालियां बजाते जय २ शब्द पुकारते सभ्यता का परिचय देते हुए बाहर आकर चल दिये। उधर स्वामी जी के ऊपर बदमाशोंने ईंट पत्थर फेंकना आरम्भ कर दिया परन्तु धर्मवीर ने प्राण रक्षा के लिये खिड़की बंद करली इधर पुलिस ने सब का दृढ़ प्रबंध किया पण्डितगण कोलाहल करते और नगर में स्वामी जी की हार की धूम मचाते हुये अपने २ स्थानों को चले गये। जब इस प्रकार असभ्यता का व्यवहार हुआ तब पण्डित रघुनाथ प्रसाद पुलिस इन्सपेक्टर ने महाराजा काशी से कहा कि महाराज आप के सन्मुख सत्य के कण्ठ पर छुरी फिर रही है मैंने जो प्रबंध किया था आप ने आते ही उस को बदल दिया मैं आप का मान रखने के लिये चुप होरहा अब यह चालीस पचास सहस्र मनुष्यों की भीड़ में क्या हो रहा है। इस पर महाराजा इन्सपेक्टर साहिब की बांह में हाथ डालकर अपने साथ लेगये और मार्ग में कहा कि आप को इन बातों से क्या प्रयोजन, आप भी तो मूर्तिपूजक हैं इस लिये अपने शत्रु को जिस प्रकार होसके विजय करना चाहिये। इसपर भी तो सत्य छिपाने पर नहीं छिपा इधर एक ओर काशी के समस्त पण्डित काशी नरेश सहित उधर अकेला साधु दयानन्द, तिस पर भी उन के किसीके प्रश्नका उत्तर न आया और मूर्तिपूजा, आवाहन, अवतार ईश्वर के साकार होने के प्रमाण में भी कोई वेद की ऋचा न दिखला सके, यहां तक उस धर्मवीर के सन्मुख अर्थात् सत्य के सामने सहस्रों पण्डितों के होते हुए भी असत्य के पैर उखड़ गये और खड़े होगये क्या लज्जा की बात नहीं है। मित्रो!

इस प्रकार काशी का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ और पण्डितों ने फिर कभी शास्त्रार्थ का नाम भी नहीं लिया, स्वामी जी महाराज इस शास्त्रार्थ के पश्चात् ढाई मास तक रहकर उच्चस्वर से खण्डन करते रहे और कोई मनुष्य विद्या से परास्त न कर सका हां सब पण्डितों ने मिलकर यह व्यवस्था लिखदी कि जो कोई ऐसे पापी के दर्शन करेगा वह पापी और पतित समझा जायगा परन्तु सत्य के सन्मुख इन गीदड़ भबकियों को कौन सुनता है यहां हजारों मनुष्यों के झुँड धर्म चर्चा को सुनने और शंका समाधान करने के लिये आते रहे यहां भी एक ब्राह्मण ने पान में विष दिया स्वामी जी ने जानकर कै [उलटी] करदी और डाक्टरों से पूर्ण परीक्षा के कराने पर यथार्थ विष ज्ञात पड़ा और वह महाशय जिन्हों ने विष दिया था नगर को छोड़कर चले गये इस शास्त्रार्थ का सम्पूर्ण वृत्तांत स्वामीजी ने काशी शास्त्रार्थ के नाम से सविस्तार प्रकाशित किया है।

काशी शास्त्रार्थपर समाचार पत्रों की समालोचना।

तत्त्वबोधनी बंगाली मासिक पत्र ज्येष्ठ सन् १८६६

स्वामी दयानन्द सरस्वती को कोई भी काशी के पण्डित वेद से पाषाण पूजन को सिद्ध करके परास्त न करसके इस कारण स्वामीजी को सबसे बड़ा वेद वक्ता पण्डित जानना चाहिये" **सहीफे आलम मेरठ २ दिसम्बर सन् ६६ ई०**—में प्रकाशित हुआ कि स्वामी दयानन्द और काशीस्थ पण्डितों के शास्त्रार्थ में काशी नरेश भी उपस्थित थे स्वामी दयानन्द ने प्रत्येक पण्डित के प्रश्न का उचित उत्तर दिया जिस पर भी पण्डित लोग शत्रुता से ताली बजाते और जय २ करते चले गये। **पाओनियर १४ नवम्बर सन् १८६६ ई०**—में भी एक पत्र छपा है जिस का प्रेरक भी अच्छे प्रकार से कहता है कि ऐसे शास्त्रार्थ में स्वामी दयानन्द को कुछ समय अवश्य देना चाहिये था। **रोहेलखण्ड समाचार पत्र नवम्बर सन् १८६६ ई०**-स्वामी दयानन्द सरस्वती मूर्तिपूजा के निषेधक जिनका कानपुर के पण्डितों से शास्त्रार्थ हुआ था उन्हों ने अब बनारस के पण्डितों को भी जीत लिया परन्तु उन पण्डितों ने अपनी विजय का मिथ्या हल्ला उड़ा दिया है। **ज्ञान प्रदायनी पत्रिका नम्बर ४ संख्या ५ अप्रैल सन् १८७० ई०** शास्त्रार्थ काशी में बहुधा व्यर्थ वितंडावाद बहुत हुआ परन्तु इस में संदेह नहीं है कि प्रतिमा पूजन को पण्डितगण वेदों से सिद्ध न कर सके, क्योंकि मूर्तिपूजादि का विधान पुराणों के समय से प्रचलित हुआ है और जिस भांति

देवी, देवता, अवतार, की पूजा फूल, चन्दन नैवेद्यादि से होती है जिस का वेदों में चिन्ह भी नहीं इस लिये इस विषय में स्वामी दयानन्द का कथन सत्य है। ज्ञान प्रदायनी पत्रिका के—एक पत्र प्रेरक मुगलसराय से लिखते हैं कि काशी में स्वामी दयानन्द ने आकर यह प्रसिद्ध किया है कि वेदों में मूर्तिपूजा की कोई आज्ञा नहीं है। इस लिये उस की कल्पित मूर्ति बनाकर पूजना बड़ा पाप है परन्तु आजतक किसी ने वेदों से मूर्ति पूजन सिद्ध नहीं किया। मैं एक बार गोस्वामी घनश्यामदास जी रईस मुलतान व गोस्वामी गोवर्धनदास व चांदमल खत्री समेत पण्डित बालशास्त्री जी से मिलने को गया था वार्तालाप करते हुए मैंने उन से पूछा कि आप का और स्वामी जी का जो शास्त्रार्थ हुआ था उस में किस की जय हुई तब शास्त्री जी ने नम्र वाक्यों में कहा कि हम गृहस्थ और वह यती संन्यासी और हमारे पूज्य हमारा उन को शास्त्रार्थ किस प्रकार बन सका है यह सुनकर मेरी सब शंकायें जाती रहीं और उन से मेरा पूरा विश्वास हो गया।

हिन्दू पैन्ट्रीयेट १७ जनवरी सन् १८७० ई०

हिन्दुओं की मूर्तिपूजा और पक्षपात का दृढ़ दुर्ग जो उन की (थियालोजी) के अनुसार शिव जी के त्रिशूल पर खड़ा है आजतक किसी के प्रभाव से नहीं डगमगाया पर अब गुजरात देश के एक ऋषी ने प्रकट हो कर नींव सहित हिला दिया जिनका प्रसिद्ध नाम **स्वामी दयानन्द सरस्वती** है। वह पण्डितों की वर्तमान उपासना विधि को मिटाने की इच्छा से आया है। जो वेदों को प्रमाणीक और अन्य पुराणों को अप्रमाणीक मानता हुआ कहता है कि इन पुराणों को अविद्या अंधकार के समय लोभी ब्राह्मणों ने अपनी उदर पूर्ति के लिये बनाया है वह ऋषि स्पष्ट रूप से यह भी कहता है कि वेद मूर्तिपूजन की किंचित् शिक्षा नहीं देते इस विषय में वह बनारस के पंडितों को शास्त्रार्थ के लिये चैलेंज दे रहा है अब ज्ञात हुआ है कि रामनगर के महाराजा ने काशी के योग्य पण्डितों की एक महासभा नियत कर स्वामी दयानंद सरस्वती से शास्त्रार्थ कराया जिस में समस्त पण्डित पराजित होने लगे तब उन्हों ने अनुचित व्यवहार करने पर उद्यत हो उस ऋषी को पुराणों का एक पत्रा "जिस में मूर्ति पूजा का वृत्तान्त लिखा था" उन के हाथ में देकर कहा कि यह वेदों के मन्त्र हैं। अभी वह उन को देख ही रहे थे कि पण्डित गणों ने राजा सहित तालियां बजाकर यह प्रकट किया कि इस धर्म संवाद में यह बड़ा पण्डित हार गया। स्वामी जी महाराज महाराजा काशी की इस अनुचित व्यवहार और छिछोरपन की कार्यवाही को देख कर अत्यन्त अप्रसन्न हुए परन्तु तो भी उन्हों ने धैर्य को हाथ से नहीं दिया वरन् प्रथम से अधिक अब वह तत्पर हो रहे हैं। यद्यपि वह एकाकी है तथापि विपक्षियों के

इस में निर्भय डटा हुआ है, जिन के पास सचाई की ढाल सहायता के लिये है जिससे उन की विजय की पताका लहरा रही है उस ऋषी ने एक अमीसंदर्भ विचार नामक पुस्तक छपाई है जिस में उपरोक्त शास्त्रार्थ का वर्णन है और एक नोटिस भी बनारस के पण्डितों को दिया है कि दिखलाइये वेद के कौन से भाग में मूर्तिपूजा का समर्थन किया है परन्तु किसी को उन के सन्मुख आने का साहस न हुआ। उस ऋषी की बड़ी प्रशंसा सुनकर मुझ को उन के दर्शनों की अभिलाषा हुई इस लिये मैं काशी में दुर्गावाटिका के निकट आनन्द बाग में जहां वह ठहरे थे गया उन की ऋषी सदृश प्रसन्नचित मूर्ति और साधु स्वभाव ने मेरे चित्त पर ऐसा विचित्र प्रभाव डाला जो कभी विस्मृत नहीं होसकता। वार्ता समय ऐसा प्रतीत होता था कि मानों मुख से फूलों की वर्षा हो रही है इस के उपरान्त जो उन्हों ने बुद्धि युक्त शिक्षायें की उन से मुझ को पूरा २ निश्चय होगया कि भारत वर्ष से सतयुग का अभाव नहीं हुआ, इस पण्डित ने १८ वर्ष वेद विचार कर के यह निश्चय किया है कि वेदों में मूर्ति पूजा की गन्ध तक नहीं है वैदिक धर्म जो प्राचीन समय में भारत का आर्य्य धर्म था उस को पुनः प्रचलित करने का बीड़ा उठाया है। तथा इसी लिये सम्पूर्ण सांसारिक सुखों को तिलांजली देकर संन्यास ग्रहण किया है और हिन्दूधर्म को प्रफुल्लित करने और अपने स्वदेशीय भाइयों को सदैव केलिये अमृत पिलाने की इच्छा से बीड़ा उठाकर कटिबद्ध हुआ है। यह सर्वत्र एक ईश्वर की सच्ची शिक्षा को फैलाने और वर्तमान समय के संन्यासियों और पण्डितों के अहंसः सोऽहं जिसको वह वेदों की विशेष शिक्षा बतलाते हैं गप्प सिद्ध करने के लिये उद्यत हुआ है, इस लिये वह अपने शिक्षित और विशाल बुद्धि भाइयों से एक वैदिक पाठशाला स्थापित करने की अपील कर रहा है जिस का अध्यापक वह आप बनना बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार करने को उद्यतहै। तृतीयवार स्वामी जी ने ज्येष्ठ वदी सम्वत् १९२७ तदनुसार १६ मई सन् १८७० ई० को मिर्ज़ापुर से गंगा के किनारे भ्रमण करते हुए काशी पधार कर लाला माधोदास आनरेरी मजिस्ट्रेट के बाग के समीप दुर्गाकुण्ड पर निवास किया और नवीन वेदान्तमत पर एक छोटासा ट्रैक्ट अद्वैत मत खण्डन रचकर मुद्रित कराया जिस से अहंब्रह्मास्मि का अच्छे प्रकार खण्डन होगया। और बाबू हरिश्चन्द्र की किताब दूषनमालिका जिस में कई एक निर्मूल आक्षेप संस्कृत न जानने के कारण किये थे स्वामी जी के सदुपदेश से वह किताब रद्दियों में डालदी गई। इस बार स्वामी जी ने वहां ढाई मास निवास किया। चतुर्थवार—फागुन वदी ६ सम्वत् १९२८ तदनुसार १ मार्च सन् १८७२ को फिर बनारस में सुशोभित हुए जहां २६ अप्रैल सन् १८७२ तक निवास कर प्रतिदिन

मूर्तिपूजा का खण्डन करते रहे और पौराणिक पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये बुलाया परन्तु कोई सन्मुख न आया, लाचार स्वामी जी १७ अप्रैल सन् १८७३ ई० को डुमराव होते हुए कलकत्ते को चले गये **पंचमवार**—स्वामी जी बनारस में अपनी पाठशाला देखने के लिये पधारे जो ६ मास प्रथम साधु जवाहर सिंह जी ने स्वामी जी की आज्ञानुसार नियत की थी। इस के अध्यापक काशी नगर के प्रसिद्ध पण्डित शिवकुमार शास्त्री २५) मासिक पर व्याकरण के पढ़ाने के लिये नियत हुए इस के नियम कासगंज की पाठशाला के अनुसार ही थे जो छः मास तक साधु जी के प्रबंध से चलती रही। पश्चात् स्वामी जी ने आकर परीक्षा ली और अध्यापक जी से आर्य्य धर्म की शिक्षा देने को कहा तब उन्हों ने ५०) मासिक चाहा जिस पर स्वामी जी ने गणेश श्रोत्रिय जी को १५) रुपये पर नियत कर दिया। इसी स्थान से स्वामी जी ने भाषा में व्याख्यान देने का आरम्भ कर दिया क्योंकि लोग अनुवाद करते समय कुछ का कुछ कह दिया करते थे प्रथम दिवस के व्याख्यान की भाषा क्या थी मानों सरल संस्कृत ही थी लाला माधवदासजी की स्वामी जी में बड़ी भक्ति थी एक दिन स्वामीजी ने उनको शिक्षा की कि तुम्हारे बाग से एक टोकरी फूल मूर्तियों पर चढ़ने के अर्थ जाते हैं क्या तुम अभी तक पाषाण पूजक ही बने हुए हो देखो इससे फूलों की सुगन्धि शीघ्र जाती रहती है और वृक्ष पर लगे हुए फूल बहुत दूर की दुर्गन्ध को नष्ट करते हैं यह तोड़ कर एक स्थान पर चढ़ाने और पानी पड़ने से शीघ्र सड़ जाते हैं इस लिये यह कार्य्य कदापि न करना चाहिये। लालाजी ने निवेदन किया कि महाराज मैं तो पाषाण पूजा नहीं करता परन्तु मेरे गृह के अन्य सब स्त्री पुरुष मूर्तिपूजक हैं यदि मैं बाग से फूल न जाने दूं तो प्रति दिन बाज़ार से दो ढाई रुपये के पुष्प आने लगें फिर भी तो घर की ही हानि हो जिसका मुझको स्वयं ही सोच रहता है, यह सुन स्वामी जी हँस पड़े। इस बार के व्याख्यानों में से दो तीन व्याख्यान सैय्यद अहमद खां साहिब सिब जज के बँगले पर हुए। सैय्यद साहिब ने स्वामी जी की मुलाकात शेक्सपियर साहिब कमिश्नर और महाराजा बनारस से कराई महाराजा ने उन की बड़ी प्रतिष्ठा कर अपने पिछले अपराध की क्षमा मांगी और फिर स्पष्ट रूप से निवेदन किया कि महाराज की जैसी इच्छा हो खण्डन कीजिये अन्त को एक मन मिठाई भी स्वामी जी के भेट की जिसको उन्होंने तुरन्त बटवा दी। इस बार दो मास निवासकर मिर्ज़ापुर होते हुए बम्बई को चले गये।

छटी बार—स्वामी जी बम्बई से लौट कर २७ नवम्बर सन् १८७६ ई० को यहां पधारे और उत्तम गिरी के बगीचे में उतर, वैदिक धर्म का उपदेश करना आरम्भ कर दिया। काशी के पण्डितों को भी शास्त्रार्थ के लिये बुलाया परन्तु कोई सन्मुख न आया।

सप्तम बार—स्वामी जी हरिद्वार कुम्भ सम्वत १९३६ पर धर्मप्रचार करते हुये सहारनपुर, मेरठ में वैदिक ध्वनि फैलाते, फर्रुख़ाबाद इलाहाबाद आदि से मिलते मिर्ज़ापुर दानापुर होते हुये २७ नवम्बर को काशी में पधारे और महाराजा विजय नगर के आनन्द बाग़ में उतरे।

पाठकगणों पर प्रगट हो कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी काशी के मुख्य शास्त्रार्थ के पश्चात् पांच बार काशी में पधारे और बार बार विज्ञापन द्वारा चैलेंज देते रहे कि यदि किसी को अब भी वेदों से मूर्त्तिपूजा सिद्ध करने की शक्ति हो तो सन्मुख मैदान में आ कर सिद्ध करे परन्तु कोई भी न आया। इस बार आते ही १ दिसम्बर सन् १८७९ ई० को संस्कृत और भाषा में विज्ञापन छपवा कर प्रकाशित किया कि जिस किसी को मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करना है तो हम से आकर कर ले। अब हम उस विज्ञापन का संक्षेप पाठकों के विलोकनार्थ लिखते हैं।

संस्कृत विज्ञापन का भाषानुवाद।

सब सज्जन लोगोंको विदित किया जाता है कि इस समय पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज काशी में आकर श्रीयुत महाराजे विजय नगर के आनन्द बाग़ में निवास करते हैं, वे वेद मत का ग्रहण कर उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं, किन्तु जो जो ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव और वेदोक्त सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण आप्तों का आचार और सिद्धांत तथा अपने आत्मा की पवित्रता और उत्तम विज्ञान से विरुद्ध होने के कारण पाषाणादि मूर्त्तिपूजा जल और स्थल विशेष में पाप निवारण करने की शक्ति व्यास मुनि आदि के नाम पर झूठ से प्रसिद्ध किये, नवीन व्यर्थ पुराण नामक ब्रह्मवैवर्तादि ग्रन्थ परमेश्वर के अवतार ईश्वर का पुत्र होके अपने विश्वासियों के पाप क्षमा करके मुक्ति देनेहारे का मानना, उपदेश के लिए अपने मित्र पैग़म्बर को पृथिवी पर भेजना, पर्वतों का उठाना, मुर्दों का जिलाना, चन्द्रमा का खण्डन करना, कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति मानना, ईश्वर को नहीं मानना, स्वयम् ब्रह्म बनना अर्थात् ब्रह्म से अतिरिक्त वस्तु कुछ भी न मानना और ब्रह्म को अज्ञानी समझना, कण्ठी, तिलक, रुद्राक्षादि का धारण करना, और शैव, शाक्त, गाणपत्यादि जो सम्प्रदायें हैं इन सब का खण्डन करते हैं इस लिये इस विषय में जिस किसी वेदादि शास्त्रों के अर्थ जानने में कुशल सत्य-शिष्ट, आप्त विद्वान् को विरुद्ध ज्ञान पड़े अपने मत का स्थापन और दूसरे के मत का खण्डन करने में समर्थ हो वह स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ करके पूर्वोक्त व्यवहारों को स्थापन करे, इस से विरुद्ध मनुष्य कभी नहीं कर सक्ता, इस शास्त्रार्थ में वेद मध्यस्थ रहेंगे वेदार्थ निश्चय के लिये ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त के बनाये ऐतरेय ब्राह्मणों से लेके पूर्वमीमांसा पर्यन्त वेदानुकूल

आर्ष ग्रन्थ हैं वे वादी और प्रतिवादी उभयपक्ष वालों को माननीय होने के कारण माने जावेंगे और जो उस सभा में सभासद हों, वे भी पक्षपात रहित धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के स्वरूप तथा साधनों को ठीक २ जानने, सत्य के साथ प्रीति और असत्य के साथ द्वेश रखने वाले हों इससे विपरीत नहीं,दोनों पक्षवाले जो कुछ कहें उसको शीघ्र लिखने वाले तीन लेखक लिखते जायें वादी और प्रतिवादी अपने २ लेख पर स्वहस्ताक्षर से अपना २ नाम लिखें तथा जो मुख्य सभासद हों वे भी दोनों के लेखों पर हस्ताक्षर करें उन तीन प्रतियों में से एक वादी दूसरी प्रतिवादी और तीसरी सब सभा की सम्मति से किसी प्रतिष्ठित राज पुरुष के पास रख दी जावे कि जिस से कोई अन्यथा न कर सके जो इस प्रकार होने पर भी काशी के विद्वान् लोग सत्य असत्य का निर्णय करके औरों को न करावेंगे तो उनके लिये अत्यन्त लज्जा की बात है। क्योंकि विद्वान् का यही स्वभाव होता है कि सत्य असत्य को ठीक जान के सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग दूसरों को कराके आप आनन्द में रहना और औरों को भी आनन्द में रखना। इति

उक्त विज्ञापन को छपवाकर काशी के राजमार्गों, कूचों, मन्दिरों इत्यादि में लगवा दिया और बहुत प्रतियां इस की समाचार पत्रों और अन्य नगरों को भी भेज दीं कि कोई अन्य नगरस्थ ही पण्डित शास्त्रार्थ के लिये उद्यत होवे परन्तु किसी का साहस शास्त्रार्थ के लिये न हुआ। इन्हीं दिनों मार्गशीर्ष सम्वत् १९३६ तदनुसार १५ दिसम्बर सन् १८७९ ई० को स्वामी जी के दर्शन करने के अर्थ बम्बई से कर्नल अल्काट और मैडमब्लिवेट्स्की व कतिपय अन्य जन काशी में पधारे और स्वामी जी के पास बंगले में ठहरे। फिर १६ दिसम्बर सन् १८७९ ई० को राजा शिवप्रसाद जी सी. एस. आई. जैनी कर्नल साहब के मिलनार्थ स्वामी जी के समीप आये और उनसे कहा कि मैं कर्नल साहब व मेडम साहबा से भेंट करना चाहता हूं, स्वामी जी ने एक मनुष्य द्वारा उन्हें सूचित किया तदुपरान्त उक्त राजा साहब कर्नल साहब से भेंट कर अपने स्थान को चले गये।

प्रथम स्वामी जी ने सर्वसाधारण को शास्त्रार्थ के लिये विज्ञापन दिया और उसके नियम छपवाकर प्रसिद्ध किये परन्तु जब कोई शास्त्रार्थ के लिये न आया तो फिर यही विचार किया कि उपदेशों के द्वारा मतमतान्तरों की मिथ्या लीला को भले प्रकार प्रकाशित किया जावे अतएव इस विषय के विज्ञापन छपवाये कि स्वामी दयानन्द सरस्वती बंगाली टोला के स्कूल में २० दिसम्बर सन् १८७९ ई० से उपदेश करेंगे छपा कर सब महाशय जन पधार कर अमृत रूपी व्याख्यानों को पान करें। इसके अतिरिक्त आज ही कर्नल अल्काट साहब का व्याख्यान होगा।

इन विज्ञापनों को देख काशी वालों ने सर्व सम्मति कर साहिब कलेक्टर

बनारस को एक निवेदन पत्र द्वारा अपने झूठे संकल्प को प्रकट किया कि स्वामी जी के व्याख्यानों से यहां अशान्ति फैलाने और उपद्रव हो जाने का भय है अतः इसका प्रबन्ध किया जावे। साहब बहादुर ने गवर्नमेन्ट के शासन प्रणाली (जो धार्मिक स्वतन्त्रता उसने प्रत्येक को दी है।) के विरुद्ध बिना परीक्षा किये अपनी निर्बलता के कारण उनके व्याख्यान बन्द करा दिये। परंतु ठीक समय पर कर्नल अल्काट साहब ने खड़े होकर स्वामी जी के अभिप्राय को अंगरेज़ी में बड़ी गम्भीरता और योग्यता से श्रोताओं पर प्रकट किया। इन यूरोपियन महाशय के लेकचर को बन्द कराना कोई सहल बात न थी। इधर स्वामी जी के व्याख्यान बन्द होने से बड़ा रोला मच गया, समाचार पत्रों के सम्पादकों ने भी इसका आन्दोलन अच्छे प्रकार से किया। जब यह समाचार पश्चिमोत्तर देश की गवर्नमेन्ट को ज्ञात हुआ तो अन्त को साहब कलेक्टर बहादुर ने अपनी पूर्वोक्त आज्ञा का एक चिट्ठी द्वारा प्रतिवाद कर स्वामी जी को स्वधर्म सम्बन्धी विचारों को पबलिक पर प्रगट करने के लिये स्पष्ट आज्ञा देदी।

इसी अवसर में बहुत से असभ्यता युक्त विज्ञापन काशी के पण्डितों की ओर से निकलते रहे परन्तु उन पर किसी ने किञ्चित् ध्यान न दिया। २९ दिसम्बर को पण्डित ताराचरण शास्त्री भट्टाचार्य ने जो व्याख्यान दिया वह समस्त असभ्य शब्दों से भरा था इस का बहुत अन्वेषण किया गया परन्तु वह विज्ञापन न मिला। फिर स्वामी जी ने उसके उत्तर में निम्नलिखित विज्ञापन २७ दिसम्बर सन् १८७९ ई० को मुद्रित कराया।

विज्ञापन।

सर्व शक्तिमान् जगदीश्वर की सृष्टि में दो प्रकार के मनुष्य हैं एक तो उत्तम, दूसरे निकृष्ट, उत्तम वे हैं जो विचार युक्त सुशील धर्म और उपकार करने में संतुष्ट, दुष्कर्मों से दूर, सत्य के प्रेमी, नौका के समान अविद्यादि दोषों और कष्टों से लोगों को पार उतारने वाले विद्वान् हैं वे अपने शान्त स्वभाव, परोपकारता और गम्भीरता आदि को कभी नहीं छोड़ते; और जो क्रूर, कामी, अविद्या अहङ्कार युक्त, दूषित मनुष्य हैं वे श्रेष्ठ मनुष्यों के साथ नाना प्रकार के विघ्न किया करते हैं। परन्तु आप्त जन उन असभ्य लोगों पर कृपा करके सदा इन का उपकार ही किया करते हैं, फिर भी वे अपने दोषों के कारण उपकार को अनुपकार माना करते हैं। इस लिये अब हम सर्व शक्तिमान् परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह अपनी कृपा से उन मनुष्यों को सब बुरे कामों से हटाकर सत्य मार्ग में सदा प्रवृत्त करें। ह० पं० भीमसेन

मिती मार्गशिर शुक्ला १४ शनिवार सम्वत् १९३६ विक्रमी

इस बार स्वामी जी ने पांच महीने से अधिक बनारस में रह वैदिक धर्म

के प्रचारणार्थ २२ व्याख्यान दिये जिस से बनारस नगर में अत्यन्त कोलाहल मच गया, इन व्याख्यानों का यह प्रभाव हुआ कि १५ अप्रैल सन् १८८० ईसवी को बनारस के सभासदों ने बड़ी धूमधाम से आर्यसमाज स्थापन किया और फिर रायबहादुर लाला सुरजनमल साहब ऐक्जीक्यूटिव इञ्जिनियर के विशेष परिश्रम और सहायता से आर्यसमाज मन्दिर भी बन गया, इन्हीं दिनों में पंडित युगुलकिशोर जी ने एक अपूर्व ढोंग रच कर अपनी बुद्धिमानी का परिचय इस प्रकार दिया कि कुछ मनुष्यों के बनावटी नाम से एक विज्ञापन छपवाकर बांटा कि हम स्वामी दयानन्द के पास गये और जब उन को वेद विरुद्ध और शिष्टाचार के विपरीत बात चीत करते सुना तो हम ने काशी नगरस्थ ब्रह्मामृतवर्षणी सभा के सभासदों से अपने संदेह निवृत्त करने के लिये प्रार्थना की और जब हमारी सब शंकायें दूर हो गईं तो पण्डित युगुलकिशोर जी की आज्ञा और उपदेश से प्रायश्चित्त करा ईश्वराओं के दर्शन कर अपने पापों को निवृत्त किया जब यह विज्ञापन उक्त सभा में पढ़ा गया और उस पर जो कार्यवाही हुई वह मई सन् १८८० ई० के आर्य्य दर्पण में प्रकाशित हो चुकी है पाठकों के अवलोकनार्थ हम उस से संक्षेप लेकर यहां लिखते हैं।

ब्रह्मामृतवर्षणी सभा की संक्षेप कार्य्यवाही।

जब सभा एकत्र हो गई तो बाबू नारायण सिंह सभासद् आर्य्य समाज बनारस ने पण्डित युगुलकिशोरजी से पूछा कि वे मनुष्य कहां हैं? इतना सुनते ही पण्डित जी का हृदय कम्पायमान हो गया क्योंकि वह विज्ञापन बनावटी था इसलिये उन्होंने हक्का बक्का होकर यह उत्तर दिया कि मैं आगामी सभा में उन को लाऊंगा परन्तु प्रायश्चित्त के नाम से बदनामी होने के कारण कोई मनुष्य न मिला अन्त को वह एक मनुष्य को सिखलाकर सभा में लेगये नाम पूछने पर उस ने अपना नाम रामकृष्ण दुबे बतलाया फिर उस से प्रश्न किया कि तुम स्वामी दयानन्द के पास गये थे उस ने कहा कि कदापि नहीं, कभी नहीं, फिर क्या फिर तो पण्डित जी की बनावटी कार्य्यवाही की पोल सब पर प्रगट होगई और पण्डित जी क्रोध में आकर कहने लगे कि जिस किसी ने दयानन्द का मुख भी देखा हो वह हिन्दू वीर्य्य से नहीं। इस पर उक्त बाबूजी ने कहा कि सम्वत् १९२६ विक्रमी के शास्त्रार्थ के समय श्रीमान् काशी नरेश और स्वामी विशुद्धानन्द, बाल शास्त्री आदि बहुत से पुरुषों ने स्वामी जी का मुख देखा था जिन के लिये आप ऐसे दुर्वचन कहते हैं। इस के पश्चात् सर्व सम्मति से सभा ने उक्त पण्डित जी को सभा से निकाल दिया जिन्होंने उस पर बड़ा रौला मचाया महाशय गण, पाप का यही फल है।

अब राजा शिवप्रसाद साहिब के. सी. एस. ई० सितारे हिंद की करतूत का संक्षेप वृत्तान्त सुन लीजिये।

राजा साहिब ने काशी में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये चलते समय स्वामी जी को एक चिट्ठी भेजी जिस का उत्तर देकर स्वामी ने उन को लिखा कि यदि कुछ और पूंछना हो तो आइये परन्तु वहां कौन आनेवाला था। यहां तो राजा साहिब ने मन में यही चाल चली थी कि चलते समय शीघ्रता के कारण चिट्ठी ही न लेंगे और बिना उत्तर दिये चले जायेंगे अथवा हमारी चिट्ठी ही उन के चले जाने के पीछे पहुंची तो भी हमारा प्रयोजन सिद्ध होजायगा, परन्तु स्वामी दयानन्द इन सब बातों को जानते थे इस लिये उन की मनोकामना सिद्ध न हुई तौ भी राजा साहिब ने स्वामी जी के चले जाने पर यह प्रसिद्ध किया कि हम ने कई बार स्वामी जी को शास्त्रार्थ के लिये लिखा परन्तु उन्होंने कुछ भी उत्तर न दिया और मुंह छिपाकर काशी से चले गये। प्यारे पाठकों! सत्य तो छिपाने पर भी नहीं छिपता। राजा साहिब की कार्यवाही को बहुधा जन जानते थे इस कारण उन की थोथी बातों की ओर किसी ने भी कुछ ध्यान न दिया।

---:o:---

प्रयाग कुम्भ।

स्वामी जी महाराज काशी के महान् शास्त्रार्थ के पश्चात् कुछ दिन ठहर जनवरी सन् १८७० ई० को प्रयाग कुंभ के मेले में प्रचारणार्थ पधारे. जिन के आने के समाचार सम्पूर्ण मेले में फैल गये फिर संन्यासियों, पण्डितों, महात्माओं ने जाने का आरम्भ कर दिया और प्रत्येक अपनी २ शंकाओं का समाधान कर आनंद उठाते रहे, इस मेले में कोई नियमानुसार शास्त्रार्थ नहीं हुआ वरन् अनेकान् सम्प्रदायों के मनुष्यों से धर्म सम्बन्धी वार्तालापहोता रहा। एक दिन स्वामी जी ने उपदेश करते समय आचार्यों से कहा कि तिलकादि की सजावट से उपासना और योगाभ्यास द्वारा आत्मा की उन्नति करना श्रेष्ठ है क्योंकि बाह्य आडम्बर करना साधुओं का कर्तव्य नहीं है। कैसे शोक का स्थान है कि आर्य्यावर्त जैसे पवित्र देश में मनुष्यों की रुचि तिलक इत्यादि के लगाने में अत्यंत बढ़ गई है और योगाभ्यास की ओर ध्यान तक भी नहीं रहा है अज्ञानी जन जितना समय इन कार्यों के करने में व्यय करते हैं यदि उसी समय में गायत्री का जप करें तो दोनों प्रकार के आनंद प्राप्त करसकते हैं। इस सारगर्भित उपदेश पर विचार न कर अविद्यान्धकार में फंसे हुए नाम मात्र के आचार्यों में से एक ने कहा कि यदि महाराज आप हमारे देशमें होते तो आपको जीवित पृथ्वी में गाड़ देते। महात्मा इस उत्तर को सुन हंसकर धर्म और अधर्म के विषय पर उपदेश करने लगे जिस में मूर्तिपूजा का अच्छे प्रकार खण्डन किया इस पर विपक्षियों ने वेद मंत्र पढ़कर प्राण प्रतिष्ठा और आवाहन का प्रमाण दिया, इस पर स्वामी महाराज ने उन वेद मंत्रों के अर्थ

कराये तो उन में किसी शब्द के अर्थ प्राण- प्रतिष्ठा और आवाहन के न निकले अर्थात् उन वेद मंत्रों से भी वह पण्डितगण अपना प्रयोजन सिद्ध न कर सके। एक दिन इसी मेले में प्रयाग के पण्डितों ने "न तस्य प्रतिमा" इस मन्त्र से मूर्तिपूजा सिद्ध की; परन्तु जब इस मन्त्र के अर्थ स्वामी जी ने श्रोताओं को सुनाये तो मूर्तिपूजा कदापि सिद्ध न हुई तब पण्डितगण चिल्लाते हुए वहां से चले गये। यहां भी स्वामीजी ने स्वामी विशुद्धानन्दजी को शास्त्रार्थ के लिये चेलेंज किया था परन्तु उन्होंने इन्कार कर दिया और इस मेले में पण्डित शिवसहाय जी काशी निवासी को वाल्मीकि रामायण पर उनके किये हुये टीका में स्वामीजी ने प्रमाण सहित बहुत सी अशुद्धियां उनको बतलाई जिन का वह उत्तर न दे वहां से उठकर चलेगये।

प्रिय सज्जन पुरुषों! स्वामी महाराज इस समय नङ्गे रहते थे और बहुधा दो ईंटें सिरहाने धरकर ऐसे आनन्द से सोते थे मानो लिहाफ के भीतर मनुष्य सोरहा है इस दशा को देख रामधीन तिवारी मिर्जापुर निवासी ने उनसे कहा कि महाराज इन दिनों बड़ी सरदी पड़ती है और आप को जाड़ा नहीं लगता इसका क्या कारण है स्वामी जी ने कहा कि आप के मुँह को जाड़ा क्यों नहीं लगता? तब उन्हों ने कहा कि वह सदा खुला रहता है यह सुन स्वामी जी ने उत्तर दिया कि यही दशा मेरे शरीर की है।

प्रयाग का कुम्भ समाप्त होने पर स्वामी जी मिर्जापुर पहुंचे जहां पर वो ढाई मास रह कौमुदी का खण्डन कर, महाभाष्य और अष्टाध्यायी पढ़ने की शिक्षा देते, और एक पण्डित को उपनिषद् पढ़ाते भी थे एक बाबा को शास्त्रार्थ के लिए चेलेंज दिया था परन्तु वह सम्मुख न आया, हां एक महाशय बाबा बालकृष्ण बैरागी के महाभारत और उपनिषदों पर किये हुए टीकों का कुछ भाग स्वामी जी को दिखलाने के लिये लाया जिस में उन्होंने व्याकरण की बहुत सी अशुद्धियां निकालीं, इस पर उक्त बाबा इतने भयभीत हुए कि जब तक स्वामी जी वहां रहे इधर उधर का आना जाना भी छोड़ दिया। एक दिन छोटूगिर गुसांई ने कुछ मनुष्यों के साथ स्वामी जी के पास जाकर उनको भड़काने के लिये कुछ अपशब्द कहे परन्तु शान्ति पूर्वक समझाने पर भी जब उसने न माना तब स्वामी जी ने डांटा जिस से वह कांपने लगे और गुसांई जी के नायब जगन्नाथ मालवी ने हाथ जोड़ खड़े होकर क्षमा मांगी फिर सब चले गये उसके पश्चात शंकासमाधान होता रहा परन्तु किसी पौराणिक ने शास्त्रार्थ न किया। इसके पश्चात् स्वामी जी मार्च सन् १८७१ ई० से लेकर एक वर्ष तक गंगा के किनारे २ वैदिक धर्म का उपदेश करते और यत्र तत्र अपनी पाठशालाओं को देखते रहे और अप्रैल सन् १८७२ ई० को डुमाराव पहुंच नागाबाबा के यहां

निवास किया जो स्वामी जी पर सच्चे मन से श्रद्धा रखते थे वहां से आरा पहुंच लाला हरिवंश राय जी वकील के यहां ठहरे। पौराणिक पण्डितों से शास्त्रार्थ भी हुआ जो उनकी वक्तृता को सुनकर चकित होगये। फिर पटने में (जहां मुन्शी मनोहरलाल जी व डिप्टी सावनमल जी व राय मोहनलाल जी ने उनके ठहरने का प्रबन्ध किया) पहुंचते ही वैदिक धर्म का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। एक दिन वहां के सुप्रसिद्ध पण्डित रामजीवन भट्ट पचास आठ योग्य पण्डितों को साथ लेकर स्वामी जी के समीप शास्त्रार्थ के लिये गये. जो दो चार बातों ही का उत्तर न देकर और शास्त्रार्थ को अधूरा छोड़कर लौट आये। उसी दिन स्वामी जी ने गरुड़ पुराण का भले प्रकार खण्डन किया और दुर्गापाठ की भी पोल खोली जिसको वह दुर्गापाठ पढ़ा करते थे। स्वामी जी के सतोपदेश का ऐसा प्रभाव हुआ कि पटना कालिज के पण्डित रामलाल जी ने शालिग्राम आदि की मूर्तियां (जिन की वह प्रति दिन पूजा किया करते थे) गङ्गा में फेंक दीं। एक दिन वहां के एक प्रसिद्ध प्रतिष्ठित रईस बाबू गुरुप्रसाद सेन ने स्वामी जी से प्रश्न किया था कि महाराज संसार को त्यागना ठीक है या नहीं? तब स्वामी जी ने बाबू साहब से कहा कि संसार आश्रम से क्या प्रयोजन समझते हैं। जिस के उत्तर में उन्हों ने कहा कि स्त्री, पुत्र, गृह और कुटुम्ब आदि में रहना, इस पर स्वामी जी ने कहा कि सब से प्रथम किस को गिनते हैं? तब प्रश्नकर्ता ने कहा कि धन के संग्रह करने को। इस पर स्वामी जी ने उत्तर में कहा कि आप ने प्रथम अपने प्रश्न में संस्कृत में गृह शब्द का प्रयोग किया है और पूछा भी था कि इस को भी छोड़ दें? सब कृपा कर गृह शब्द की भी व्याख्या कर दीजिये। इस को सुन वह चुप होकर कहने लगे कि मेरे प्रश्न का उत्तर स्वयमेव होगया अर्थात् गृह शब्द में खाना पीना और श्वांस लेना आदि आ गया है इस लिये अब कुछ बात आप के उत्तर देने की नहीं रही. इसी भांति एक दिन तिरहुत के रहने वाले एक पण्डित स्वामी जी के पास जा कर शास्त्रार्थ करने लगे और अपने प्रश्न की पुष्टि में भागवत का प्रमाण दिया इस पर स्वामी जी ने उस का खण्डन किया तिस पर पौराणिक पण्डित ने कहा कि अब हम को कोई ऐसा पण्डित दृष्टि नहीं आता जो १८ हजार श्लोक बनादे हां दोष निकालना और खण्डन करना सहज है इस पर स्वामी जी ने कहा कि महाराज हम आप के सन्मुख १८ हजार गढ़ सकते हैं यदि निश्चय न हो तो कागज़ कलम लेकर बैठ जाइये विषय भी बहुत सहल होगा. पण्डित जी भी स्वामी जी की परीक्षा करने को बैठ गये स्वामी जी बिना रुकावट के धड़ाधड़ श्लोक लिखाने लगे जिस को देखकर पण्डित जी चकित हो गये फिर खड़े हो नम्रता पूर्वक प्रणाम कर चले गये। स्वामी जी

वहां से चलकर अक्टूबर सन् १८७२ ई० को मुँगेर में पधारे जहां अच्छे प्रकार वैदिक धर्मोपदेश का आरम्भ कर दिया जिस को सुनने के लिये नगरस्थ पुरुषों के अतिरिक्त अन्य गावों के सुजन भी आया करते थे, एक दिन अनेकान् पण्डितों और अन्य सर्व साधारण और मान्य पुरुषों के सन्मुख मूर्तिपूजा के खण्डन विषय पर अच्छे प्रकार व्याख्यान दिया जिस को यह पण्डित गण भी चुप बैठे हुए सुनते रहे यद्यपि उनको शंकासमाधान करने का भी अवसर दिया गया तथापि उन चालीस में से किसी ने कुछ भी न कहा वरन् एक प्रकार से अनुमोदन करते रहे। एक दिन एक मौनी बाबा भी आकर स्वामी जी के सन्मुख बैठ गये तब स्वामी जी ने कहा कि यदि तू महामूर्ख है तो तेरा मौन रहना ही योग्य है और यदि तू कुछ जानता है और समझदार है तो अपनी कह और की सुन। इस उत्तम उपदेश को सुनकर मौनी बाबा स्वामी जी से बात चीत करने लगे तब स्वामी जी ने उसके सन्मुख मूर्ति पूजन और पुराणों का भले प्रकार खण्डन किया जिसको शुद्ध मन से स्वीकार कर उसने कहा कि यथार्थ में पुराणों के अनुयायी बनना दुर्गति का कारण है। मुंगेर से चलकर स्वामी जी २० अक्टूबर सन् १८७२ ई० को भागलपुर पहुंच धर्मोपदेश करने लगे वहां के प्रसिद्ध पण्डित सूर्यमल आचारी शास्त्रार्थ का नाम लेते ही नगर को छोड़कर चले गये। स्वामी जी के दर्शनार्थ महाराजा बर्दवान के कई एक नैयायिक पण्डित आये थे, जिन्हों ने अनेकान् विषयों पर वार्तालाप कर अपने महाराज से स्वामी जी के विद्या आदि गुणों की बहुत प्रकार से प्रशंसा की, जिससे उन्हों ने भी दो बार आकर स्वामी जी से वार्तालाप कर अपने चित्त की शान्ति की। इसी स्थान पर स्वामी जी के गम्भीर सतोपदेश को सुन एक बङ्गाली ईसाई महाशय ने शोक के साथ यह भी कहा कि यदि आप जैसे योग्य पण्डित मुझको पहिले से ही मिल जाते तो मैं कदापि ईसाई न होता। अन्त को स्वामी जी वहां से दो मास के पश्चात् अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये भारतवर्ष की राजधानी बृटिश गवर्नमेन्ट के मुख्य नगर कलकत्ते में पधारे।

भारतवर्ष की राजधानी कलकत्ते नगर में स्वामी दयानन्द जी का पधारना

स्वामी जी महाराज पटना, मुँगेर, और भागलपुर इत्यादि नगरों में उपदेश करते हुये १५ दिसम्बर सन् १८७२ को कलकत्ते पधारे जहां उनका स्वागत बाबू चन्द्रशेखरसेन जी ने किया जिसके विषय में नगर के सुप्रसिद्ध पत्र इंडियन मिरर ने दिसम्बर मास के २ अंक में इस प्रकार प्रकाशित किया है। कि वर्तमान समय में एक बड़ा प्रबल "हिन्दू मूर्तिपूजा का खण्डन करने

वाला" पण्डित दयानन्द सरस्वती जो अपने उत्तम २ कर्मों से पूर्वी हिन्द में अत्यन्त प्रसिद्ध हो रहे हैं जिन्हों ने अभी हाल में बनारस के बड़े २ नामी पण्डितों को एक बड़ी सभा के सन्मुख शास्त्रार्थ में विवाद किया है जो यहां राजा जोतीन्द्र मोहन ठाकौर के बंगले पश्चिमी नैना में उतरे हैं ।

स्वामी जी के कलकत्ते पहुंचते ही प्रथम ब्राह्मणगण और फिर सर्वसाधारण जन आ २ कर अपनी शंकाओं को समाधान करने लगे। कलकत्ता नगर के पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न पंडित तारानाथ तर्कवाचस्पति तथा राजा तारा यणगौड़ इत्यादि श्री स्वामी जी के समीप आते और बड़े २ विषयों पर विचार करते रहते। पंडित कृष्णचन्द्र मित्र सिटी कालिज कलकत्ता स्वामी जी के उपदेश का मन से मान्य करते थे। पण्डित हेमचन्द्र चक्रवर्ती और राजा नरायण वसु ने स्वामी जी से निम्न लिखित प्रश्न किये जिनका उन्हों ने यथोचित उत्तर दिया उनको हम यहां संक्षेप से लिखते हैं।

प्रश्नोत्तर पं० हेमचन्द्र और स्वामी दयानन्द।

प्रश्न-जाति भेद है या नहीं ?

उत्तर-मनुष्य, पशु और पक्षी एक २ जाति हैं यही जाति भेद है।

प्रश्न-हमारा प्रयोजन वर्ण भेद से है ?

उत्तर-वर्ण भेद कर्मों से है जन्म से नहीं।

प्रश्न-ईश्वर मूर्ति वाला साकार है व निराकार है ?

उत्तर-ईश्वर निराकार और सच्चिदानन्द स्वरूप है।

प्रश्न-उसके मिलने का क्या उपाय है ?

उत्तर-यथावत योग के द्वारा उसकी प्राप्ति होती है।

प्रश्न-वह योग किस प्रकार से है ?

उत्तर-अष्टांग योग अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम-ध्यान, धारणा और समाधि। इनकी व्याख्या कर कहा कि ३ घड़ी रात्रि से उठ शौच से निवृत हो निर्जन स्थान में पद्मासन लगा गायत्री का अर्थ सहित ध्यान करे।

प्रश्न-सांख्यशास्त्र के कर्ता को लोग नास्तिक कहते हैं क्योंकि उसमें ईश्वरा सिद्धि सूत्र आया है जो ईश्वर का खण्डन करता है क्या यह बात ठीक है ?

उत्तर-स्वामी जी ने कहा कि सांख्यनिरीश्वर वादी नहीं जो लोग ऋषि मुनियों की टीकाओं को छोड़ भ्रष्ट लोगों की टीकाओं को देखते हैं वह इस भ्रम में पड़जाते हैं इस लिये भागोरी भाष्य को देखो तो तुम्हारा भ्रम दूर हो जायगा। ईश्वरासिद्धि सूत्र पूर्व पक्ष में है अर्थात् प्रति पक्षी का वचन है आगे उस का उत्तर देखिये। सांख्य कारस्पष्ट रीति से पुनर्जन्म-वेद-परलोक-योग-और आत्मा को भी मानता है फिर वह किस प्रकार निरीश्वर वादी होसका है।

प्रश्न—क्या दर्शनों में परस्पर विरोध है ?

उत्तर—नहीं। देखो सृष्टि के ६ कारणों से ६ दर्शनों की उत्पत्ति है। १—न्याय परमाणुओंका। २—मीमांसा कर्मका। ३—सांख्य तत्त्वों का। ४—योग—ज्ञान विचार और बुद्धि का। ५—वैशेषिककाल का निरूपक। ६—वेदान्त में ईश्वर का वर्णन है।

प्रश्न—यज्ञोपवीत पहिनना चाहिये या नहीं ?

उत्तर—जो पंडित, ज्ञानी, वेदज्ञ, धार्मिक हैं अर्थात् द्विजमात्र को यज्ञोपवीत पहनना चाहिये और मूर्खों को नहीं।

श्री पं० राजनरायण का प्रश्न।

प्रश्न—क्या हवन मूर्तिपूजा का अङ्ग है ?

उत्तर स्वामी जी। जिस कर्म का ब्रह्म समर्पण कर अनुष्ठान किया जाता है और विशेष कर वह कार्य जिस से सम्पूर्ण जगत् का उपकार होता हो उस को मूर्तिपूजा का अंग नहीं कह सकते।

यहां के प्रसिद्ध वक्ता बाबू केशवचन्द्र को स्वामी जी में बड़ी रुचि होगई थी, इस कारण वह प्रति दिन उनके पास आकर वार्त्तालाप किया करते। एक दिन स्वामी जी का उक्त बाबू जी के साथ आवागमन पर उत्तमता से शास्त्रार्थ और ६ जून सन् १८७३ को उनके स्थान पर बड़े समारोह के साथ व्याख्यान हुआ जिसमें बड़े २ प्रतिष्ठित पुरुष उपस्थित थे। बाबू राजनारायण वसु ने अपनी बनाई हुई हिन्दू धर्म श्रेष्ठता नामक पुस्तक स्वामीजी को सुनाई जिस पर उन्हों ने यह समालोचना की कि हिन्दू धर्म की उत्कृष्टता प्रतिपादन करने के लिये पुराण और तन्त्र का प्रमाण देना योग्य नहीं, किन्तु शास्त्रों में महाभारत तक प्रमाण मानना चाहिये और ऐसा ही हम मानते हैं। तत्त्वबोधनी पत्रिका बंगला में मुद्रित हुआ कि २१ जनवरी सन् १८७३ ई० को ब्राह्मसमाज के वार्षिकोत्सव पर ब्रह्म समाज के प्रधान आचार्य्य महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर के भवन में अनेक मनुष्यों के साथ परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वती का धर्म आलोचना अर्थात् विचार हुआ उस से सब मनुष्यों को बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। उक्त महर्षि के घर में एक मण्डप जिस में एक वेदी बनी थी उस के चारों तरफ संस्कृत में श्लोक लिखे थे स्वामी जी उन्हें देख और पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए। ज्ञानेन्द्रलाल एम. ए. बी. एल. एडीटर अखबार पताका बंगला लिखते हैं कि जब से स्वामी दयानन्द जी यहां पधारे हैं उस समय से चारों ओर धर्म का बड़ा आन्दोलन होने लगा है। क्या बाल, क्या वृद्ध, क्या स्त्री, क्या पुरुष सब उनके दर्शन कर, उनकी वक्तृता, तर्क शक्ति और शास्त्रों

के पूर्ण ज्ञान को देख तथा अपने २ प्रश्नों का यथार्थ उत्तर पा प्रसन्नता पूर्वक यही कहते घर को जाते हैं कि ऐसा निर्पक्ष धर्म हम ने कभी नहीं सुना। इन्डियन मिरर में लिखा है कि २३ फरवरी सन् १८७३ ई० को गौरीचरन के स्थान पर स्वामी जी का ईश्वर और धर्म विषय पर व्याख्यान हुआ जिस का अनुवाद बंगला में पण्डित महेश्चन्द्र रत्नाकर ने सुनाया और २ मार्च को बड़ा नगर बोर्नियो कम्पनी के हाल में हवन के लाभों पर सरल संस्कृत में विस्तार पूर्वक व्याख्यान हुआ। एक दिन राजा सुरेन्द्र-मोहन स्वामीजी के पास गये और उन से शब्द उत्पत्ति पर प्रश्न किया जिसका उत्तर वह अच्छे प्रकार न समझ क्रोधित होकर चले गये और उन के आश्रित लोगों ने स्वामी जी के विपरीत बातें प्रसिद्ध करनी आरम्भ कीं। इन्हीं दिन में सोम प्रकाश के सम्पादक ने स्वामी जी के विरुद्ध कुछ लेख भी लिखा था जिस का उत्तर स्वामी जी के अनुयाइयों ने हिन्दू हितैषिणी, पत्र ढाका में मुद्रित कर दिया। द्वितीय कुछ अल्प बुद्धि के लोगों ने यह भी प्रसिद्ध कर दिया था कि यह जर्मन देशीय मनुष्य है जिस ने हिन्दू धर्म भ्रष्ट करने के लिये संन्यासी भेष बनाया है। ६ मार्च तदनुसार फाल्गुण सुदी ११ सम्वत् १९२९ को बुरहान गोरनायट स्कूल में व्याख्यान हुआ जिस के

विषय में इण्डियन मिरर लिखता है कि इस व्याख्यान में नगर के प्रतिष्ठित पुरुष अधिक एकत्रित हुए थे, यह व्याख्यान ३ घण्टे से अधिक होता रहा। इसी प्रकार मार्च के अन्त तक दो तीन व्याख्यान और हुए जिस में शिक्षित पुरुषों ने श्रद्धा और प्रेम के साथ उन के सतोपदेशों से लाभ उठाया। स्वामी जी अपने व्याख्यानों में इस बात पर भी बड़ा बल देते थे कि वेद आलोचना के बिना संस्कृत की शिक्षा से कुछ लाभ नहीं होसका, क्योंकि लोग पुराणों के भ्रष्ट उपदेश से व्यभिचारी और जो विचार शील हैं वह धर्म से पतित होते जाते हैं, इस लिये उन्हों ने प्रश्न कुमार ठाकुर की पाठशाला को देख वहां वेद पढ़ाने की प्रेरणा की। और डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार को स्वामी जी ने आयुर्वेद के महत्त्व को दर्शाकर उनका चित्त इस ओर को आकर्षित कर दिया। पण्डित बलदेवप्रसाद शर्मा फर्रुखाबाद निवासी से स्वामी जी ने कहा कि रईसों के लड़के अंग्रेज़ी फारसी ने ले लिये शेष संस्कृत के वास्ते रहे जो कुछ नहीं पढ़ते, इस कारण पाठशालाओं से कुछ लाभ नहीं होगा। अब मैं वेद-भाष्य करूंगा और उपदेश दूंगा। यहां कोई शास्त्रार्थ नहीं हुआ, हां पण्डित ताराचरण तर्करत्न नामक भाटपाड़ा ग्राम के निवासी ने श्रीयुत राजा जोतीन्द्रमोहन (जिन के स्थान पर स्वामी जी ठहरे थे) से तीन बार जा २ कर यह कहा था कि हम शास्त्रार्थ करेंगे परन्तु वह नहीं आये इसी प्रकार कलकत्ता के पण्डित तारानाथ

तर्कवाचस्पति महाचार्य्य जी मनुष्यों से कहते थे कि हमारे सन्मुख स्वामी जी की वाणी बन्द हो जावगी स्वामी जी ने मनुष्यों से प्रेरणा करके उन्हें बुलवाया आते ही उन्हों ने सत्तर प्रश्न ऐसे कठिन किये जिनका उत्तर देनेवाला यह पृथ्वी भर पर नहीं समझते थे स्वामी जी ने उनका उत्तर पाईस तईस उत्तरों में दे दिया जिनको सुनकर उक्त पण्डित जी स्वामी के पैरोंपर गिरपड़े।

एक बार बाबू केशवचन्द्र सेन—स्वामी जी से मिलने गये और वार्तालाप समाप्त होनेपर उन्होंने प्रश्न किया कि आप केशवचन्द्र सेन से मिले हैं स्वामी जी ने कहा हां मिला हूं उन्होंने कहा कि वह तो कहीं बाहर गये हुए हैं आप उनसे कब मिले, उत्तर दिया कि मैं उनसे तीन बार मिल चुका हूं, अन्त को स्वामी जी ने कहा कि तुम्हीं केशवचन्द्रसेन हो, पूछा कि आपने मुझे कैसे पहिचाना स्वामी जी ने कहा कि इस प्रकार की वार्तालाप दूसरे की होही नहीं सकी। एक दिन उक्त बाबू जी ने स्वामी जी से यह भी कहा कि आप के अङ्गरेज़ी न जानने पर मुझको बड़ा शोक है कि यदि वेदों के पण्डित अङ्गरेज़ी जानते तो इङ्गलिस्तान जाने के लिये मेरी इच्छा के अनुसार मेरे साथी होते। स्वामी जी ने कहा कि ब्रह्म-समाज के लीडर के संस्कृत न जानने पर मुझ को भी बड़ा पश्चाताप है क्योंकि वह भारत वासियों को सभ्यता युक्त मत की शिक्षा देने का पर्ण करते हैं जिस को वह आप ही नहीं समझे। इस यात्रा के साथ महर्षि के उस परोपकारी जीवन का यह समय समाप्त होता है जिस में वह केवल संस्कृत बोलते रहे यहां कलकत्ते में जब वह सरल संस्कृत में व्याख्यान देते तो उनका भाषानुवाद अन्य जन सुनाते थे एक बार के व्याख्यान का भाषानुवाद महेशचन्द्र न्यायरत्न ने सुनाया था जिस में उन्हों ने स्वामी जी के बिना कहे कई बातें अपनी ओर से कह दीं। यह देखकर संस्कृत कालिज के विद्यार्थियों को बहुत बुरा लगा और उन्हों ने अन्त में आज्ञा लेकर पण्डित महेशचन्द्र जी के अन्यथा कथन का सब प्रकार खण्डन किया जिस से सब श्रोताओं को यथार्थ बात का बोध हो गया परन्तु पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न विरोधी बन गये। इसी अवसर पर बाबू केशवचन्द्र सेन जी ने स्वामी जी से भाषा में व्याख्यान देने की प्रार्थना की उस समय स्वामी जी ने देश की दुर्दशा देख, भारत संतान को संस्कृत से विमुख जान उसके उद्धार होने के लिये इसी कलकत्ता नगर से भाषा व्याख्यान में देने और बोलने का आरम्भ कर, वस्त्र धारण करना भी स्वीकार किया। एक दिन स्वामी जी महाराज प्रमोदकानन वाटिका में तालाब के तट पर बैठे हुए मनुष्यों से वार्तालाप कर रहे थे कि इतने में किसी मनुष्य ने आकर कहा कि आप को राजा सुरेन्द्रमोहन जी स्मरण कर रहे हैं। महर्षि ने कहा कि मैं इस समय इन सज्जनों से वर्तालाप कर रहा हूं इस लिये यह उचित नहीं समझता कि इन भाइयों को छोड़कर आप के पास आऊं राजा साहब उपरोक्त कथन को सुन स्वयम्

ही चले आये और धार्मिक विषयों पर वार्तालाप करते रहे। पण्डित क्षेमचन्द्र जी चक्रवर्ती ने अपने प्रश्नों के उत्तरों से सन्तुष्ट हो और स्वामी जी के सत्संग से यथार्थ बात को जान, अष्टांग योग सीख उसका अभ्यास करने का आरम्भ कर दिया।

हुगली का समाचार।

यहां गेन्दलाल देवनिधारी ईसाई ने वर्ण व्यवस्थापर शास्त्रार्थ किया परन्तु थोड़ी देरमें ही निरुत्तर हो चले गये। नगरस्थ पुरुषों ने स्वामी जी का ६ अप्रेलको बड़े समारोह से व्याख्यान कराया। और ८ अप्रेल सन् ७३ को बा० वृन्दावन चन्द्र आदि ने पं० ताराचरण जी के साथ निम्न लिखित शास्त्रार्थ कराया।

हुगली का शास्त्रार्थ।

पंडित जी—हम प्रतिमा पूजन का पक्ष लेते हैं।

स्वामी जी—आप की इच्छा हो सो लीजिये परन्तु मैं उसका सर्वदा वेद विरुद्ध होने से खण्डन ही करूंगा।

पंडित जी—इस शास्त्रार्थ में वाद होना ठीक है।

स्वामी जी—वाद होना ठीक है जल्प और वितंडा करना पंडितों को योग्य नहीं, वाद भी वही जो गौतम ऋषि ने लिखा है।

पंडित जी—अच्छा वही होगा।

उस समय दोनों की सम्मति से यह भी निश्चय हुआ कि इस शास्त्रार्थ में चार वेद ६ अंग ६ शास्त्र के अतिरिक्त किसी का प्रमाण न माना जावेगा।

पंडित जी—'चित्तस्य आलम्ब नेस्थूलाभो गोचितम्, इति व्यास वचनम्' ऐसा पातञ्जलि का सूत्र बोलकर प्रतिपादन किया, कि स्थूल पदार्थ के आश्रय बिना चित्त स्थिर नहीं होता इसलिये उपासना में स्थूल पदार्थ प्रतिमा का ग्रहण किया जाता है।

स्वामी जी—पातञ्जलि योग शास्त्र में ऐसा सूत्र कहीं नहीं है और यदि पातञ्जलि का है तो व्यास वचनम् कहां से आया हां पातञ्जलि सूत्र में 'विषयावति वा प्रवृत्ति रुत्पन्ना मनसः स्थिति निबन्धिनी' पाद १० सू० ३५ अर्थात् मनकी स्थिति का कोई विषय होता है सो इस सूत्र की व्याख्या में व्यास जी ने स्पष्ट लिखा है कि "नासिकाग्रे धारयत" इत्यादि अर्थात् नासिका के आगे भाग में मन को स्थिर करना। आप के अशुद्ध पढ़ने से यह भी प्रतीत होता है कि आप ने योग शास्त्र नहीं देखा और पहिले जो पातञ्जलि का सूत्र कह कर

फिर अन्त को उसको व्यास वचन कहा वह भी सर्वथा असत्य है क्योंकि योग में कहीं ऐसा सूत्र नहीं है।

पंडित जी—"स्वरूपे साक्षाद्वृती प्रज्ञा आभोगः सचः स्थूल विषयत्वा-त्स्थूल" इत्यादि एक पदार्थ के आंखों से देखने से बुद्धि में साक्षात् होता है और आंखों से स्थूल पदार्थ ही देखा जासका है इस लिये उपासना स्थूल विषय होने से प्रतिमा आती है।

स्वामी जी—आप पहिले प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि इस शास्त्रार्थ में हम केवल वेदादि का प्रमाण देंगे फिर क्यों आपने यह वाचस्पति का शब्द कहा। देखो जब तक जाग्रत् अवस्था होतीहै तब तक दृष्टि में सर्व पदार्थ स्थूल रहते हैं और स्वप्न अवस्था में कोई पदार्थ स्थूल नहीं रहता, फिर आप के कथनानुसार किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं होना चाहिये परन्तु यह बात नहीं है और आप यह भी प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि हम जल्प वितण्डा न करेंगे फिर आपका जाति साधन से प्रतिमा का स्थापन करना कैसा, क्योंकि आपके इस कहने से कि स्थूल पदार्थ में ही मन स्थिर होता है यह दोष आता है कि स्थूल पदार्थों में सब संसार आजाता है क्या गधा क्या घोड़े क्या वृक्ष क्या वनस्पति क्या ईंट क्या पत्थर इत्यादि। अब आप विचार के कहें कि आप किस का ध्यान करेंगे केवल प्रतिमा ही तो स्थूल पदार्थ नहीं है जो आप ग्रहण करते हैं।

पण्डित जी—आप के कहने से यह प्रतिमा पूजन का प्रतिपादन होता है क्योंकि प्रतिमा स्थूल है।

स्वामी जी—आपने जो यहां एक शब्द तीन बार कहा इससे जाना गया कि आपको संस्कृत यथावत् बोध नहीं है इसी कारण आपको पाण्डित्य का भी अभिमान है, लोकान्तरस्थ से जो आप चतुर्भुज विष्णु को लेते हैं सो वे तो बैकुण्ठ में सुने जाते हैं फिर उनकी उपासना अर्थात् समीपस्थित इस मनुष्य लोक में आप कैसे कर सकते हैं और फिर मन कैसे स्थिर हो सकता है कदापि नहीं। और जो पाषाणादि मूर्ति एक शिल्पी के हाथ की बनाई हुई है वह विष्णु कैसे हो सकती है बड़े आश्चार्य्य की बात है।

पण्डित जी—"अथ स यदा पितृना याह पतितेन पितृ लोकेन सम्पन्नो महीपते" इस वचन से लोकान्तरस्थ अर्थात् दूसरे लोक में रहने वाले की भी उपासना होती है।

स्वामी जी—यह वचन इस कारण से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता क्योंकि उपासना इससे नहीं आती इसका प्रयोजन यह है कि जिस योगी को अणिमादिक सिद्ध होगई हों यह सिद्धि जिस २ लोक में जाने की इच्छा करता

है वहां जाकर आनन्द करता है आप जो कहते हैं कि मर कर उस लोक में जाता या इस लोक में पितरों की उपासना करता है यह दोनों बातें इस वचन से सिद्ध नहीं होतीं।

पंडित जी—उपासना का जो स्थूल विषय कहा गया था उसमें प्रतिमा भी आगई आप देख लीजिये हम वाद करेंगे जल्प-वितन्डा कभी नहीं।

स्वामी जी—आप जो बारम्बार स्थूलत्वसा धर्म से ही प्रतिमा पूजन का स्थापन करना चाहते हैं सो आप अपनी उस प्रतिज्ञा को नष्ट करते हैं कि हम वाद ही करेंगे।

पण्डित जी—प्रथमतः त्वस्माभियत्।

स्वामी जी—आपने जो यह संस्कृत बोला यह व्याकरण की रीति से अशुद्ध है और यहां कुछ सम्बन्ध नहीं रखता और यह इस प्रकार से होना चाहिये "प्रथमतोऽस्माभीर्यत्"।

पंडित जी—जिस बात का दृष्टान्त दिया जावे उसमें सब बातों का मिलना आवश्यक नहीं।

स्वामी जी—मैंने कब ऐसा कहा कि सब प्रकार दृष्टान्त मिलना ही चाहिये आपने जो वचन बोला था उसका तो एक भी अंश आप के पक्ष से सम्बन्ध नहीं रखता था इस लिये उसका कहना और आपका पक्ष सब व्यर्थ ही हो गए।

पण्डित जी—उपासनामात्रमेव भ्रममूलं अर्थात् उपासना सब मिथ्या ही है।

स्वामी जी—देखो आपका जो प्रतिमा स्थापन करने का पक्ष था सो जब सिद्ध न होसका तो आपही उसका खण्डन करने लगे कि प्रतिमा पूजन ही भ्रममूल अर्थात् मिथ्या है।

अंतिमफल

जिस समय पण्डित जी ने अपने मुख से (उपासना मात्र मेव भ्रममूले) यह सूत्र बोला उसी समय बाबू भूदेव मुकुरजी और श्री पण्डित हरिहर तर्क सिद्धान्त और बाबू वृन्दावनचन्द्र इत्यादि यह कहकर खड़े होगये कि पण्डित जी अभिमान से यह प्रतिज्ञा कर कि हम मूर्तिपूजा स्थापन करेंगे आये थे परंतु उसी का उल्टा खण्डन करने लगे इससे पण्डित जी का सिद्धान्त भी स्वामी जी के अनुकूल प्रत्यक्ष प्रकट होगया।

इसके पश्चात् स्वामी जी ने हँसकर पण्डित ताराचरण जी से कहा कि मैं तो खण्डन करता ही हूँ परन्तु यहां तो आप के कहने ही से प्रतिमा पूजन

का खण्डन होगया इस पर पण्डित जी कुछ न बोले और चुप हो कर ऊपर के मकान को चलने लगे तब स्वामी जी भी ऊपर को चले और सीढ़ियों पर पहुंचकर पण्डित जी का हाथ अपने हाथ में ले लिया और ऊपर पहुंच कर स्वामी जी तथा बाबू बृन्दावनचन्द्र इत्यादिकों ने पण्डित जी से कहा कि आप कैसा बखेड़ा करते फिरते हैं पण्डित जी बोले कि मैं तो लोक भाषा का खण्डन करता हूं और सत्शास्त्र पढ़ने पढ़ाने का उपदेश और पाषाणादि मूर्तिपूजा को मिथ्या जानता हूं परन्तु क्या करूं मैं सत्य कहूं तो मेरी जीविका चलीजाय अर्थात् काशीराज महाराज सुनते ही मुझको तुरन्त निकालकर बाहर करदें इस से मैं सत्य सत्य नहीं कह सकता हूं जैसा आप कहते हैं। स्वामी जी यहां पन्द्रह दिन रहने के पश्चात् **भागलपुर** को चले गये और नगर निवासियों को धर्मोपदेश करते रहे जिसका प्रतिफल यह हुआ कि बाबू मनमथनाथ चौधरी बी. आई. स्वामी जी के उपदेश को ग्रहण कर संस्कृत पढ़नार्थ डेढ़ वर्ष तक स्वामी जी के साथ रहे। यहां से १८ मई सन् १८७३ को द्वितीय बार **पटना** पहुंचे जहां कोई भी शास्त्रार्थ के लिये नहीं आया केवल दो दिन व्याख्यान देकर २५ मई को **छपरे** में पहुंच रायशिवगुलाम जी के अतिथि हुए। और उनके उपदेश को सुन रायजी की श्रद्धा स्वामी जी में अधिक उत्पन्न होगई जिससे सम्पूर्ण ब्राह्मणों ने द्वेष में फंस नगर में कोलाहल कर दिया कि यहां पक्का नास्तिक आया है इधर स्वामी जी ने भी विज्ञापन दिया परन्तु कोई भी शास्त्रार्थ के लिये नहीं आया, हां वहां के ब्राह्मणों ने पण्डित जगन्नाथ जी से जो स्वामी जी का मुंह देखना पाप समझते थे परदा डाल कर वार्तालाप कराया जिनकी पोल थोड़ी देर में खुल गई, स्वामी जी के व्याख्यान उत्तम प्रकार से हुए पाठशाला के निरीक्षण समय विद्यार्थियों ने बड़ा मान किया। **विहार दर्पण सफा २५३** में लिखा कि लाट्ट साहब ने स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ करने के लिये नगर के पण्डितों को इकट्ठा किया परन्तु उनकी प्रबल युक्तियों के सन्मुख ईसाई, मुसलमान और बौद्ध मत वाले नहीं ठहर सकते, तो फिर साधारण ब्राह्मण क्या कर सकते थे। यहां से स्वामी जी **दानापुर** होते हुए २५ जून को **आरा** पहुंच बाबू हरिवंश लाल के यहां ठहर एक मास धर्मोपदेश के पश्चात् २६ जौलाई को **डुमरांव** पहुंचे और वहां डुमराव के बंगले में निवास किया राज्य की ओर से स्वामी जी के खाने पीने आदि का प्रबन्ध किया गया, महाराजा डुमराव दीवानसहित स्वामी जी के दर्शनों को आते रहे स्वामी जी के खण्डन की चर्चा वहां भी फैल गई राजा साहिब के पंडित भी एक २ करके स्वामी जी के पास आते और वार्तालाप कर परास्त होते रहे अंत को राजा साहब और दीवान जैम-

काशी जी ने पण्डित दुर्गादत्त जिन्हों ने विद्याभिमान में अपना नाम परमहंस योगी वर्य्य ब्रजराजचन्द्र इत्यादि रक्खा था तथा जो महादेव के पुजारी भी थे जो इस नियम पर शास्त्रार्थ करने को उपस्थित हुए कि मूर्तिपूजन पर शास्त्रार्थ न हो इसके अतिरिक्त मूर्ति बिना वह मार्ग चलना भी पाप समझते थे इस लिए शास्त्रार्थ के समय मूर्ति अपने पास रखली और वार्तालाप इस प्रकार आरम्भ हुई।

स्वामी जी—हम द्वैत मानते हैं।

पंडित जी—"एकमेवा द्वितीयम् ब्रह्म" इस श्रुति से विरोध होता है अर्थात् आपका द्वैत मानना इसके विपरीत है।

स्वामी जी—इसका यह अर्थ नहीं जो आप समझे हैं वरन् इसका अर्थ यह है जैसे किसी के घर में कोई उपस्थित न हो तो वह कहता है कि यहां मैं एक ही हूं और कोई नहीं परन्तु गांव सम्बन्धी और कुटुम्ब का निषेध नहीं वह उपस्थित है उनका इनकार अर्थात् सजाति विजाति स्वगत भेद शून्य शङ्कराचार्य का मत है वह मिथ्या है हम उसको नहीं मानते यहां केवल दूसरे ब्रह्म का निषेध है न कि जीव का। इसका पण्डित जीने कुछ उत्तर नहीं दिया।

पंडित जी—इस सिद्धान्त को हम नहीं मानते।

स्वामी जी—हम शङ्कराचार्य को नहीं मानते, इस कारण उनके मत को भी नहीं मानते परन्तु आप जो नहीं मानते उसका क्या प्रमाण है।

इसका भी पण्डित जी ने कुछ उत्तर न दिया।

स्वामी जी—मूर्तिपूजा में श्रुति प्रमाण है।

पण्डितजी—ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहूराजन्यःकृतःऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याः शूद्रो अजायत ॥ य० अ० ३१ मं०११ त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिम् पुष्टिवर्धनम् ॥ य० अ० ३ मं० ६० में येह दोनों श्रुति प्रमाण देकर कहा कि मुख नहीं तो चारों वर्णों की उत्पत्ति कैसे हुई मूर्ति नहीं तो मुख कहां से और दूसरा मन्त्र विशेष शिव की पूजा का है जिस के तीन नेत्र हैं। और जाबाल उपनिषद् में लिखा है।

"धिक् भस्मरहितं भालं धिक् ग्राम शिवालयंधिक्।
विशर्दनं जन मधिक विध्याम सेवा शुश्यास"

इत्यादि प्रमाणों से मूर्तिपूजा सिद्ध है आप कैसे कहते हैं कि मूर्तिपूजा में श्रुति प्रमाण नहीं है—

स्वामी जी—ने प्रथम उन मन्त्रों का व्याकरण, और ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुकूल यथार्थ अर्थ करके उन के भ्रम निवारण करने का उद्योग किया और फिर बतलाया कि प्रामाणिक उपनिषदों में जाबाल उपनिषद् नहीं है यह भ्रम उपनिषद् है उसमें किसी ने वाग्जाल रचा है वेद विरुद्ध है इस लिये अप्रमाण है।

पंडित जी—ने कुछ उत्तर न दिया।

इसके पश्चात् गीता के "सर्व धर्मान् परित्यजेत्" पर कुछ बात चीत होकर सभा विसर्जन हुई।

नोट—पाठकगणों, यह शास्त्रार्थ सन् ७३ में हुआ और सन् १८८३ के अक्टूबर तक अंत तक स्वामी जी जीवित रहे तब तक एक अक्षर भी किसी विषय में न लिखा परन्तु उनके परलोक होने पर सम्वत् १९४१ में पण्डित जी ने अपने जीवनचरित्र में नानाप्रकार का अण्ड बण्ड लिख मारा, उसमें यह भी लिखा था कि जब दयानन्द जो उत्तर देने में असमर्थ हुए तो उन्हों ने कहा कि ऐ दुर्गादत्त जी तुम धन्य हो तुम पूज्य हो मैं जीव हूं तुम सर्वज्ञ और सर्व शास्त्रों के जानने वाले हो यह हमारी प्रशन्सा कर प्रणाम किया। पाठकगण ! आप स्वयम् ही जानते हैं कि भारत का ऐसे मिथ्याभिमानियों ने ही सत्यानाश कर दिया; देखिये ऐसे २ पण्डित जिस भारत में उपस्थित हों जिनका मुख्य अपनी इतनी मिथ्या प्रशन्सा करना ही उद्देश्य हो तो फिर भला भारत के सिर का मुकुट क्योंकर रह सकता है ! स्वामी जी वहां से श्रावण सुदी पूर्णिमासी को चलकर **मिर्जापुर** आये और साधू जवाहरदास को बनारस से बुला वहां पाठशाला करने की उनको सम्मति दी यह इस पर प्रसन्न होकर बनारस में पाठशाला के लिये उद्योग करने लगे, स्वामी जी मिरजापुर से **इलाहाबाद** आ अलोपी बाग में निवास करके २० अक्टूबर को **कानपूर** पहुंच कर गङ्गा के किनारे टोका घाट पर एक कुटी में निवास कर उपदेश करने लगे, स्वामी जी यहां मध्यान्ह के समय गंगा में तैर कर व्यायाम करते फिर भोजन के पश्चात् आराम करते इसके उपरान्त वही शङ्कासमाधानादि और रात्रिको समाधि लगाते। यहां पण्डित हेमचन्द्र जी कलकत्ते से स्वामी जी के पास आ उनके ही समीप रहने लगे। बाबू क्षेत्रनाथ बंगाली वकील ने कलेक्टर साहब से आज्ञा ले परेंट के मैदानमें स्वामीजीका एक व्याख्यानकराया दूसरालाला शिवप्रसादजी खजांची बंगाल बैंक के स्थान पर हुआ, फिर यहां से चलकर २० नवम्बर को **फर्रुखाबाद** पहुंचे और पाठशाला के स्थान में उतर, म्योर साहब लेफटेन्ट गवर्नर और शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर साहब से मिल उनको गौरक्षा के लाभ सुनाकर लेफटेन्ट गवर्नर बहादुर से कहा कि आप यहां से जाकर इन्डिया कौंसिल में रहेंगे इस लिये आप इण्डिया की भलाई के लिये गौरक्षा के विषय में कुछ परिश्रम करना जिसका साहब बहादुर ने प्रण किया, इसके पश्चात् एक पादरी

साहिब को उपरोक्त विषय सुनाकर उसकी रक्षा के लिये सम्मति दी। स्वामी जी वहां से कासगन्ज गये और वहां आठ दस दिन रह पाठशाला के प्रबंध में लगे रहे फिर २० दिसम्बर को वहां से चल राजघाट पर कर्णवास के ठाकुरों से मिल छलेसर पहुंच उपदेश करते रहे जहां राजा जैकिशनदास साहिब सी. एस. आई. डिप्टीकलेक्टर अलीगढ़ से पधारे और वार्तालाप कर अलीगढ़ पधारने का वचन लेकर चले गये। स्वामी जी पाठशाला के प्रबन्ध से निवृत्त होकर ठाकुर मुकुन्दसिंह समेत २६ दिसम्बर को अलीगढ़ पहुंच कर लाला चाऊलाल के बाग में उतर, राजा जैकिशनदास साहिब के अतिथि हुये महाराज के आने ही सैकड़ों मनुष्य नगर कस्बा और आस पास के गावों के एकत्र हो गये और धर्म्म सम्बन्धी चर्चा आरम्भ हो गई २७ दिसम्बर को नगर निवासियों की प्रार्थना पर स्वामी जी का व्याख्यान हुआ जिस में बहुधा प्रतिष्ठित हिन्दू मुसलमान और पदाधिकारी सिविल मिलिटरी संम्मिलित हुए उस के पश्चात् भी कई दिन तक व्याख्यान होते रहे। इस के अतिरिक्त प्रत्येक समय स्वामी जी के पास भीड़ लगी रहती थी। किसी समय कोई पण्डित आन कर अपनी शंकासमाधान करता, किसी समय कोई मौलवी आकर धर्म चर्चा में लगा रहता। यहां के सुप्रसिद्ध पण्डित बुद्धिसागर स्वामी जी से मिले, उन से संस्कृत और भाषा में वार्तालाप कर सदा उन की प्रशंसा करते रहते थे। पण्डित मेहरचन्द्र जो लाला बद्रीप्रसाद वकील की पाठशाला के मुख्य अध्यापक थे उन्हों ने लोगों से कह रक्खा था कि स्वामी जी जब अलीगढ़ आवेंगे तो मैं उन से शास्त्रार्थ करके दो मिनट में परास्त कर दूंगा परन्तु स्वामी जी के आने और विज्ञापन देने पर किसी प्रकार से भी वह स्वामी जी के सन्मुख न हुए यहां एक साधु जो भङ्ग पीता था स्वामी जी के पास आया उन्हों ने पूंछा कि गले में क्या डाले हुए हो उस ने उत्तर दिया कि रुद्राक्ष, स्वामी जी ने कहा कि रुद्र की तू आंखें उखाड़ लाया है इस पर वह बहुत क्रुद्ध हुआ और कटु वचन कहता चला गया, ठाकुर गुरुप्रसाद सिंह रईस विजैगढ़ कि जिन्हों ने यजुर्वेद भाष्य छपवाया था स्वामीजी से मिले और अपने वेद भाष्य के विषय में पूंछा स्वामी जी ने कहा कि वह अत्यन्त अशुद्ध और वेद विरुद्ध है क्योंकि तुम ने महीधर भाष्य से पण्डित अंगदराम शास्त्री एकाक्षी से भाषा कराया है इस के पश्चात् स्वामी जी राजा टीकमसिंह रईस मुरसान के यहां पधारे और वहां से २२ जनवरी तदनुसार माघ सुदी सम्वत् १९३० को ठा० मुकुंदसिंह रईस के सहित हाथरस में पहुंच एक बाग में विराजमान हुए जहां राजा जैकृष्णदास साहब प्रथम ही से उपस्थित थे। धर्मचर्चा का आरम्भ हुआ, बहुधा पण्डित आते और अपनी शङ्का निवारण कर चले जाते इस नगर में स्वामी जी ने मृतक श्राद्ध और मूर्तिपूजन पर एक व्याख्यान दिया जिस के कारण वहां बड़ा कोलाहल मच गया

अन्त को कुछ मनुष्य स्वामी जी से झगड़ा करने को भी आये थे, परन्तु राजा साहब के प्रबन्ध से कुछ भी न हुआ। स्वामी कृष्णेन्द्र सरस्वती भी इन दिनों यहां ही उपस्थित थे परन्तु उन्हों ने भी स्वामी जी से शास्त्रार्थ न किया क्योंकि वह कर्णवास में स्वामी जी से वार्तालाप कर उन की विद्या और बुद्धि का अनुभव कर चुके थे। उक्त व्याख्यान के विषय में मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी ने अपने मासिक **नीतिप्रकाश** पत्र के पृष्ठ १४१ में लिखा है कि यहां स्वामी दयानन्द जी ने सर्वसाधारण को एक उपदेश दिया जिस को सुन ब्राह्मण कहते हैं कि हमारी रोटियां को खाता और हमारी चिड़ियों को जाल से निकालता है। सच है कि लोभी मनुष्य लोभ वश होकर पशुवत् मनुष्यों को मनुष्य नहीं बनने देते वरन् उन को पशु बनाया करते हैं।

स्वामी जी यहां पांच छै दिन रहकर मुरसान पधारे और वहां कुछ दिन रह मथुरा वृन्दावन को चले गये।

———:o:———

मथुरा वृन्दावन।

मथुरा और वृन्दावन यहदो भारतवर्षमें प्रसिद्धमूर्तिपूजाके दृढ़ स्थान और यही मथुरा नगरी महाराज श्रीकृष्ण की जन्म भूमि तथा इसी स्थान पर महात्मा कृष्ण ने धर्म रक्षा के हेतु महाराजा कंस असुर को मारा। इस समय में जब कि स्वामी जी भारत देश में मूर्तिपूजा का खण्डन करते थे, उस समय में मूर्तिपूजा का मण्डन करने वाले रंगाचारी जी का मुख्य स्थान वृन्दावन था। जिन्हों ने अविद्या अंधकार के समय में सहस्रों चेले कर सैकड़ों के गले मूर्तिपूजा की खूंटी से बांध दिये। इस लिये स्वामी जी का चित्त उन से शास्त्रार्थ करने को कटिबद्ध हो रहा था। इस के अतिरिक्त स्वामी जी के गुरु परमहंस परिव्राजकाचार्य जी से भी छेड़ छाड़ हो चुकी थी। इस के उपरांत तीर्थ स्थान समझ सहस्रों स्त्री पुरुष घर बार को त्याग व्रजवासी बन यहां निवास करते थे। तदनन्तर स्वामीजी ने अपने एक स्वाध्यायी पंडित गंगादत्त जी को फर्रुखाबाद की पाठशाला में अध्यापकी के लिये बुलाया था उस के उत्तर में उन्हों ने लिखा था कि मुझ को यहां चौबों ने डरा दिया है इसलिये जब तक आप यहां आकर मूर्तिपूजा का खण्डन न करेंगे तब तक मैं कदापि न आऊंगा क्योंकि यह स्थान मूर्तिपूजा का घर है यहां बड़े २ खंभ सोने की मूर्तियों के खड़े हैं और रंगाचारी सब देशों में डंका बजाकर सर्वत्र मूर्तिपूजा का प्रचार कर आया है इस कारण आप यहां आकर मूर्ति का खण्डन कीजिये तो आप की बड़ी प्रतिष्ठा होगी। स्वामी जी ने इस के उत्तर में उनको लिखा कि मैं अवश्य वहां आऊंगा। इस प्रतिज्ञा के अनुसार स्वामी जी ठीक चैत्र में

जब कि यहां के मेले अर्थात् ब्रह्मोत्सव की अद्भुत शोभा हो रही थी जिस में सम्पूर्ण भारत वर्ष के विष्णु सम्प्रदायों और अन्य मतमतान्तरों के सहस्रों मनुष्य मेला की शोभा और उन के दर्शनों से कृतार्थ होने के लिये आये हुए थे जिस में श्रीकृष्ण से योगीराज के नाम पर लज्जा जनक कार्यवाही कर कलंक का टीका भारत के सिर पर लगा रहे थे।

स्वामी जी वृन्दावन-पहुंच नगर के बाहर राधाबाग में उतरे। जहां सैकड़ों पौराणिक तथा अन्य मतावलम्बी प्रायः स्वामी जी के समीप बैठकर अपने २ संदेहों की निवृत्ति करते थे। बख्शी महबूब मसीह सुपरिंटेण्डेण्ट चुंगी ने "जो एक योग्य धर्मात्मा पुरुष थे" अपनी ओर से हिन्दी भाषा में विज्ञापन छपाकर वितीर्ण किये कि तारीख ५ मार्च से स्वामी जी महाराज व्याख्यान देंगे। इसीके अनुसार धड़ल्ले के साथ वैष्णव मत और मूर्तिपूजादि का खण्डन आरम्भ कर दिया और साथही मूर्तिपूजा के प्रचारक रङ्गाचार्य जी को लेख बद्ध शास्त्रार्थ के लिये सूचना दी जिसके उत्तर में उन्होंने यह लिख भेजा कि मेले के पीछे शास्त्रार्थ होगा, स्वामी जी ने पांच मार्च से मूर्तिखण्डन, तिलक छाप, विष्णु मत इत्यादि विषयों पर बड़े प्रभावशाली व्याख्यान देने आरम्भ किये जिन से नगर और मेले में बड़ा कोलाहल मच गया, प्रति दिन रङ्गाचार्य के शिष्य सेवक सनातन धर्मी स्वामी जी के व्याख्यान, उन की विद्या और उनकी प्रबल युक्तियों का वृत्तान्त जा २ कर उनको सुनाते, त्योंही अविद्या अंधकार के गुरु का हृदय कम्पायमान होता जाता। अन्त को वह रुग्न होगये इधर शास्त्रार्थ के दिन निकट आगये परन्तु वहां कौन शास्त्रार्थ करता, क्या सूर्य्य के प्रकाश के सन्मुख दीपक का कुछ प्रकाश होसका है नहीं २ वह ऐसे रुग्न न थे परन्तु सचाई के सन्मुख क्या असत्य ठहर सका है कदापि नहीं! कदापि नहीं!! कदापि नहीं!!! स्वामीजी बार २ उनके पास समाचार भेजतेथे, कि आइये मूर्तिपूजा इत्यादि अंधाधुंध को वेदों से प्रतिपादन कीजिये। अन्त को जब स्वामी जी को यह निश्चय होगया कि रंगाचार्य्य द्वार से बाहर न आयेंगे तब उन्हों ने एक दिन सभा के बीच में अच्छे प्रकार से प्रकाशित कर दिया कि रङ्गाचार्य्य जी बार २ बुलाने पर भी शास्त्रार्थ के लिये नहीं आये इस लिये आप सर्व सज्जनों को जान लेना चाहिये कि मूर्ति पूजा, तिलक छाप यह सब पाखण्ड हैं और वह अपनी वर्षों की कमाई हुई मिथ्या प्रशंसा और करोड़ों रुपयों को खोना नहीं चाहते।

पाठक गणों पर विदित हो कि स्वामी जी के प्रभावशाली व्याख्यानों का अनेकान् मनुष्यों के चित्त पर बड़ा ही प्रभाव हुआ जिस के कारण बहुधा मनुष्यों ने गुप्त रूप से मूर्तिपूजा को त्याग निराकार परमात्मा की भक्ति स्वीकार की, स्वामी रंगाचार्य ने भी यथार्थ एक मित्र से कह दिया था कि यदि

दयानन्द परास्त होगया तो उसका क्या बिगड़ेगा यदि हम परास्त हो गये तो हमारी सारी प्रतिष्ठा का सत्यानाश होजावेगा। पाठक गणों! अब आपही इस वचन को न्याय तुला पर रखकर अपने विचाररूपी बांटों से तौल कर देख लीजिये कि सचाई किस प्रकार से प्रकाशित हो रही है। शोक है कि स्वार्थी जन अपने स्वार्थ में चूर हो भारत सन्तान का नाश मारते चले जाते हैं।

वृन्दावन में कई बार दुष्ट मनुष्यों ने स्वामी जी पर आक्रमण करने का उद्योग किया परन्तु कुछ सफलता न हुई। एक दिन बल्देवगिरि ने इस बात को जानकर स्वामी जी से कहा कि आप अकेले बाहर न जाया करें, जिसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि कल को तुम ऐसा कहोगे, कि कोठी के भीतर छिपकर बैठा करो। फिर किसी ने कुछ न कहा। सच है कि धर्मात्माओं को सांसारिक भय पीड़ा नहीं दे सके। स्वामी जी वहां से चलकर मथुरा जी में "जहां तीन वर्ष अपने परम गुरु विद्वान् धर्मात्मा स्वामी विरजानन्द जी के समीप रह कर संस्कृत की उच्च शिक्षा को पूर्ण किया। तथा जिस नगर के विद्वानों के हृदयों को गुरु महाराज ही ने कम्पायमान कर दिया था" अपना शिक्षक स्थानजानकर निस्संदेह चले आये। स्वामीजी के मथुरा नगर में कई स्वाध्यायी थे अतः स्वामी जी ने पण्डित गङ्गादत्त द्वारा अपने सब सहपाठी पण्डितों से कहला भेजा कि जहां २ मैं जाता हूं वहां के पण्डितगण मेरे स्थान पर न आकर मुझको बुलाते हैं और मेरे न जाने पर यह कह देते हैं कि हार गये। इस लिये मथुरा में तुम ऐसा न करना, मैं कहीं आकर ठहरूं परन्तु यह भी स्मरण रक्खो कि वेदों में मूर्तिपूजा नहीं है यदि तुमको कहीं मिल जावे तो ढूंढ रखना, यदि शास्त्रार्थ के लिये पण्डितगण आवें तो सब से प्रथम दंडी महराज ही के विद्यार्थी कृपा करें। मथुरा पहुंच स्वामीजी गो स्वामी पुरुषोत्तमदास के बाग में ठहरे, परन्तु प्रथम स्वामी जी के स्वाध्याइयों में से कोई न गया और अन्य पण्डित जो गये उन से कुछ भी उत्तर न बना इस से उन का विजय होगया और अन्त को जिस दिन यह चलने को उद्यत थे डिप्टी देवीप्रसाद साहिब ने आकर कहा कि आज आप अवश्य ही रहिये क्योंकि शास्त्रार्थ होगा। स्वामी जी महाराज ठहरे परन्तु वहां कौन शास्त्रार्थ करने वाला था। यहां चार पांच सौ चौबे लट्ठ लेकर स्वामी जी के ऊपर चढ़ आये अर्थात् शास्त्रार्थ के स्थान में शस्त्रार्थ के लिये उद्यत थे, जिसको डिप्टी साहिब ने रोक दिया। एक दिन एक वृद्ध पण्डित मदनदत्त जी स्वामीजी से मिलनेगये और वार्तालाप होतेर यहां तक प्रभाव हुआ कि सहस्रों मनुष्यों के सम्मुख स्वामी जी के अनुसार समस्त मूर्तिपूजादि सम्प्रदाइयों का खंडन करते रहे कि यह वेद विरुद्ध है यह देखकर सबलोग चकित होगये इसी प्रकार एक ब्रह्मचारी ने स्वामी जी का उपदेश सुनकर मूर्तियों को पर्यंक सहित यमुना में डाल दिया और भागवत को छोड़कर, सद्ग्रंथ पढ़ना आरम्भ

किया। स्वामीजी वहां से २० मार्च को राजा टीकमसिंह के साथ मुरसान पहुंच, राजा साहिब के बंगले में उतर, ठाकुर गुरुप्रसादसिंह रईस विस्वां को बुलाया। वह वहां आये परन्तु स्वामी जी के निकट न गये, तब राजा टीकमसिंहने कहा कि तुम तो कहते थे कि स्वामीजी कुछ नहीं जानते, यथार्थ यह है कि तुम कुछ नहीं जानते। स्वामीजी की राजा साहिब बड़ी प्रतिष्ठा करते थे।

मुरसान से स्वामी जी जौलाई सन् १८७४ को इलाहाबाद में पहुंच अलोपी बाग में उतरे और डाकखानेद्वारा नोटिस देकर सबको सचेत किया। यहां एक बंगाली महाशय के यहां स्वामी जी ने धर्म के १० लक्षणों पर बड़ी गम्भीरता से मनोहर और आकर्षण करने वाला व्याख्यान दिया, अन्त को वर्तमान समय के अविद्या अंधकार पर शोक करते हुए कहाकि इस समयकी मूर्खता के कारण स्त्रियां इन व्याख्यानों से लाभ नहीं उठा सकीं। इस उपदेश का सर्व साधारण पर बहुत ही प्रभाव पड़ा और विशेष कर म्योर कालिज के विद्यार्थियों पर क्योंकि कालिजके प्रोफेसरों और इतिहासों के धर्म निंदक व्याख्यानों के सुनने से उन के चित्त मूर्छित हो रहे थे, इस लिये स्वामी जी की शिक्षा से वह अपने वैदिकधर्म के महत्वको अच्छे प्रकार जानकर अनेक मतावलम्बियों को उत्तर देने के योग्य हो गये जिस से वह फिर हरे भरे हो फूले अंग न समाते थे। यहां तक कि उस समय के बहुधा विद्यार्थी अब तक भारत वर्ष के पृथक् २ खण्डों में आर्य्य समाजों के सभासद् हैं। एक क्रिश्चियन नरदा ने प्रोफेसर मोक्षमूलर के ऋग्वेद भाष्य से बतलाया कि अग्नि का अर्थ आग है ईश्वर के नहीं। स्वामी जी ने कहा कि यह उपरोक्त ईसाई साहब का किया हुआ भाष्य है इस लिये प्रमाणिक नहीं है फिर उक्त ईसाई को उन के ईश्वर सम्बन्धी जो मूर्खता के विचार हैं उन को संकेत के द्वारा प्रकट किया। मौलवी निजामुद्दीन बी. ए. से भी धर्म चर्चा हुई स्वामी जी ने अन्य मनुष्यों से कहा कि मुसल्मानों ने औरों की छोटी २ मूर्तियों को तोड़ दिया लेकिन उन्हों ने उस बुत अर्थात् पत्थर को " जिस को वह ईश्वर की ओर से भेजा हुआ कहते, और मक्के में जाकर सिर झुकाते हैं और उसी को मुक्तिमार्ग जानते हैं" नहीं तोड़ा। स्वामी जी कुछ मास यहां निवास कर सत्यार्थ प्रकाश नामक ग्रन्थ को रचकर छपवाने के लिये राजा जैकृष्णदास साहिब को दे बम्बई जाने के लिये जब्बलपुर की ओर पधारे। १ अक्टूबर सन् १८७४ ई० को जब्बलपुर पहुंचकर यमुना दास के बाग में उतरे। बहुधा पंडित एकत्र हुए उनका विचार मूर्तिपूजापर शास्त्रार्थकरनेकाथा परन्तु उस समय उनको कोई ग्रन्थ मूर्तिपूजाका वेदमें न मिलाइसकारण शास्त्रार्थको न आये, स्वामी जी एक व्याख्यान दे तीसरे दिन यहां से चलकर नासिक नगर में पहुंचे जो रामावतार के समय से पौराणिकोंकातीर्थ है जिसको पंचवटी कहते हैं जहां द्वितीय दिवस से व्याख्यान देना आरम्भ किया। एक व्याख्यान में यह

भी कहा जब रामचन्द्रजी बन को गये तब यहां ठहरे थे, अब तीर्थ मानने की क्या आवश्यकता, स्वामी जी कुछ दिन रहकर यहां से बम्बई में पधारे।

बम्बई की यात्रा और आर्य्यसमाज की स्थिति।

स्वामीजी प्रथमवार कई एक प्रतिष्ठित गृहस्थोंकी प्रेरणा से बनारस आदि नगरों में होते हुए २६ अक्तूबर सन् १८७४ ई० को बम्बई स्टेशन पर पहुंचे जहां उनके स्वागत के लिये कई एक सेठ साहब उपस्थित थे उन्हों ने ले जाकर बालकेश्वर महादेव के पर्वत पर ठहराया। स्वामी जी महाराजने चार भाषाओं में विज्ञापन छपवाकर "कि जिस किसी को धर्म सम्बंधी विचार की अभिलाषा हो वह आवे और विचार करे" वितीर्ण कराया जिसके बँटते ही सम्पूर्ण नगर में कोलाहल मच गया इससे प्रथम परिडत सेवकलाल कृष्णदास जो काशी के शास्त्रार्थ में उपस्थित थे उन्हों ने वहां के शास्त्रार्थ का वृत्तान्त आर्यमित्र नामक गुजराती समाचार पत्र में छपवा दिया था इस लिये दक्षिणी परिडतों को भी स्वामी जी का परिचय हो गया। स्वामी जी के विज्ञापन देते ही धर्म सम्बन्धी चर्चा की इतनी प्रबल उत्कंठा हुई कि उसका सविस्तार वर्णन करने के लिये एक पृथक् पुस्तक की आवश्यकता है। संक्षेपतः हम यही लिखते हैं कि स्वामी जी के पास हरएक सम्प्रदायी और ईसाई आदि के झुन्ड के झुन्ड आने लगे इन सब में वहां के वल्लभाचारी सम्प्रदाय की बड़ी प्रबलता थी। और सब पौराणिक मतवाले मिल कर सच्चे वैदिक धर्म्म की महिमा छिपाने के लिये उद्योग करते थे।

वल्लभाचार्यों से शास्त्रार्थ।

स्वामी जी ने वल्लभाचार्य सम्प्रदाय का खण्डन करना आरम्भ कर उनके गुप्त सम्बन्धी मन्त्र (जिससे वह चेले और चेलियों का तन-मन-धन अपने अर्पण कराके गुप्त सम्बन्ध कराते थे) अच्छे प्रकार खाका उड़ाया जिस से गुसाइयों की हानि होने लगी। तब जीवनजी गुसाई ने स्वामी जी के रसोइये बल्देवसिंह ब्राह्मण कान्यकुब्ज को बुलाकर कहा कि हम तुमको एक सहस्र मुद्रा देंगे जो स्वामी जी को मारडालोगे। और उसी समय ५) रु० और पाँच सेर मिठाई परशादी की दीति दे १०००) का रुक्का लिख दिया अभी बल्देवसिंह स्वामी जी के पास नहीं पहुंचा था इतने में एक अन्य पुरुष ने जो स्वामी जी से अत्यन्त प्रेम और श्रद्धा रखता था सब भेद स्वामी जी से प्रगट कर दिया इतने में बल्देवसिंह वहां पहुंचा स्वामी जी ने उससे पूछा क्या तुम गुसाई जीवनदास के मन्दिर में गये थे, उस ने सब वृत्तान्त ज्यों का त्यों कह सुनाया कि महाराज १०००) ठहरे हैं जिस का रुक्का यह है और पांच सेर मिठाई और ५) मुझको अब दिये हैं इस पर स्वामी जी ने हंसकर कहा कि मेरे मारने के उद्योग अब तक कईबार हो चुके हैं प्रथम कर्णवास फिर सोरों और काशी में भी

पान में लिख दिया परन्तु मैं अब तक बचा हूं और अब भी कुछ न होगा इस पर चन्द्रसिंह ने कहा कि महाराज गुरु से कभी ऐसा हो सकता है कि आप के व्याख्यानोपदेश नहीं मानकर को विष दूं इस पर स्वामी जी ने उसका कारस्तानि और मिठाई खिलवाई और प्रेरणा की कि फिर कभी गोकुलियों गुसाइयों के मन्दिर में न जाना इसके पश्चात् किसी वल्लभाचारी आदि महाशय को शास्त्रार्थ करने की बुद्धि न हुई उन को एक पंडित ने अपने नाम के बिना प्रकाशित किये चौबीस प्रश्न छपवाये जिनका उत्तर स्वामी जी ने १६ नवम्बर सन् ७४ को यथार्थ रूप से विज्ञापन द्वारा प्रकाशित कर, यह भी लिखा कि धर्म के निर्णय करने में किसी को भी लज्जा न करनी चाहिये नाम न प्रकाश करना नास्तिकता की सूचना का प्रमाण है और द्वितीय विज्ञापन द्वारा स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया कि बिना नामवाले प्रश्नों का उत्तर न दिया जावेगा। फिर को व्याख्यान आरम्भ हुए पहिले पांचोतालाव पर एक अतीव विस्तृत मकान में व्याख्यान हुआ जिसमें श्रोतागणों की संख्या दश सहस्र के लगभग थी इसका प्रभाव बहुत अच्छा हुआ इसी बीच में मथुरापंथ नाती एक भाटिया ने (जो पहिले जीवन जी को सम्प्रदाय में था) स्वामी जी के उपदेश से कण्ठी आदि तोड़ अनेक मनुष्यों को अपना साथी बना लिया। जिसके कारण वल्लभ सम्प्रदायवालों को अत्यन्त क्लेश हुआ जिसको जीवनजी न सहन करके गट्टूलाल जी के पास गए और अन्त को उन्हों ने बालबाग में गट्टूलाल जी का व्याख्यान मूर्तिपूजा मंडन पर कराया जिसमें उन्हों ने अपने कथन की पुष्टि में नहीं पुराना श्लोक "प्रतिमाहसन्ति" वेद के नाम से सुनाकर सब को प्रसन्न कर ब्राह्मणों को आठ आठ आने दक्षिणा दे सभा विसर्जन की। परन्तु वहां इस सम्प्रदाय में इस बात का कौन पूछने वाला था कि 'प्रतिमाहसन्ति' सामवेद या और किस वेदसंहिता में है या नहीं। अन्त को जीवन जी गट्टूलाल भाग गये और स्वामी जी ने वल्लभाचार्य मत खण्डन पर एक ट्रैक्ट छपवाया। इस के पश्चात् स्वामी जी का बम्बई के पण्डितों के साथ लाइब्रेरी में प्रतिमापूजन और व्याकरण पर शास्त्रार्थ हुआ परन्तु कोई भी मूर्तिपूजा वेद से सिद्ध न कर सका, द्वितीय अप्पाजन्यास शिरोमणि वेदान्ती से जीव और ब्रह्म की एकता पर लीलाधर सेठ के बाग में शास्त्रार्थ हुआ, जिसके विषय में स्वामी जी ने वेदान्तिध्वान्त निवारण पुस्तक छपवाकर प्रकाश की है। इस प्रकार बहुत काल तक स्वामी जी व्याख्यान और धर्मचर्चा करते रहे जिस से बहुधा मनुष्यों ने यह अभिलाषा प्रकट की कि एक समाज नियत होजावे कि जिस में स्वामी जी का मन्तव्य सदैव के लिये प्रचरित हो और मनुष्य मात्र को उस से लाभ हो। स्वामी जी आठ दिन तक इस पर विचार करते रहे अन्त को मार्गशीर्ष संवत् १९३१ से सप्तमी मार्गशीर्ष तक साठ मनुष्यों ने हस्ताक्षर कर दिये और स्वामी जी ने उस के नियम भी रचे, उस में उपदेश

करना आप स्वीकृत किया परन्तु उन में से कई एक पुरुषों ने नाना प्रकार के भय के कारण कायरता प्रकट की, इस कारण समाज की स्थिति को प्रसिद्ध न किया। इस के पश्चात् जब गोसाई जीवनजी ने यह जाना कि हमारा कोई उपाय नहीं चलता तब उन्होंने चार मनुष्यों को स्वामी जी के मारने के लिये " उस सड़क पर समुद्र के किनारे जहां स्वामी जी महाराज प्रतिदिन वायु सेवन के लिये आया करते थे " नियत किया। परन्तु किसी का साहस मारने का न हुआ एक दिन स्वामी जी ने उन को घूर २ देखा और गर्जकर कहा कि तुम प्रतिदिन मेरे मारने के लिये आया करते हो, वह स्वामी जी की इस बात को सुन भयभीत हो, भाग गये और फिर कभी उस सड़क पर न आये। बम्बई से चलकर स्वामी जी गोपालरावहरी देशमुख अहमदाबाद के जज की प्रार्थना से उन के पुत्र के साथ जो बैरिस्टर [illegible] दिसम्बर सन् १८७४ को अहमदाबाद स्टेशन पर पहुंचे। वहां स्वामी जी के लेने के लिये एक धनाढ्य भाटिया आया था जिस ने उन्हीं दिनों में तीन लाख रुपया लगाकर एक मन्दिर बनवाया था। जिस की प्रशंसा उस ने स्वामी जी से की उन्हों ने अत्यंत शोक के साथ कहा कि इतना रुपया तुम ने पत्थर पर व्यर्थ लगाया। यदि किसी पाठशाला में शिक्षा के अर्थ व्यय करते तो वेदों के पढ़ेहुए ब्राह्मण वहां से निकल जगत् का अत्यन्त उपकार करते। सेठ जी! ऐसी ही मूर्खता के कारण हम लोगों की दुर्दशा हो रही है कि वेद जर्मन से मंगाने पर पढ़ने को मिलते हैं। सेठ जी ने सुनकर कहा कि महाराज मैं प्रतिमापूजन को सिद्ध करा दूंगा इस के लिये बड़े २ सौ पण्डित एकत्र हुए और ५ व ६ घंटे तक शास्त्रार्थ होता रहा परन्तु वह मूर्तिपूजा सिद्ध न करसके अंत को गोपालरावहरी जज और भोलानाथ भाई ने स्पष्टरूप से कह दिया कि मूर्तिपूजा का प्रमाण स्वामी जी के कथनानुसार किसी पण्डित ने वेदों से नहीं बताया। इस लिये स्वामी जी का सर्व कथन सत्य है, मानना न मानना अपनी इच्छा पर है। स्वामी जी वहां से २८ दिसम्बर को राजकोट में पहुंचे "जहां उन्हीं दिनों में नवमेरी दर्बार होनेवाला था" एक विज्ञापन देकर दस व बारह दिन तक उत्तमोत्तम व्याख्यान देते रहे एक व्याख्यान में उन्हों ने यह भी वर्णन किया था कि आर्य्य लोग अमरीका गये थे अर्जुन का विवाह वहीं हुआ था जो लोग यह कहते हैं कि अमरीका को कोलम्बस ने जाना यह मिथ्या है क्योंकि आर्य्यजन प्रथमही से जानते थे। अग्नि की गाड़ी अर्थात् रेल पहिले भी थी जिस की पुष्टि वेद मंत्रों से की और कहा कि अंग्रेजों की नवीन आविष्कृति नहीं है, राजकुमार कालिज का अवलोकन कर प्रेन्सिपल साहब की प्रार्थना पर राजकुमारों को एक संक्षिप्त सा उपदेश किया। चलते समय उक्त साहब ने ऋग्वेद की दो प्रतियां स्वामी जी की सेवा में अर्पण कीं। इस के पीछे ट्रेनिंग कालिज में भी मांसभक्षण के निषेध पर प्रभावशाली व्या-

ध्यान दिया था उसको वहां के भद्र पुरुषों ने प्रसन्न होकर स्वामी जी का फोटो भी लिया था, वहां से चलकर २१ जनवरी सन् १८७५ को स्वामी जी अहमदाबाद पहुंचे जहां नारायण मत का खण्डन करते रहे और इन्हीं के मतखण्डनार्थ एक पुस्तक लिखकर मुद्रित कराई, वहां से बड़ौदा राज में जाने का विचार किया था परन्तु उन्हीं दिनों राज में कुछ उपद्रव होरहा था इस कारण वहां न गये और २९ जनवरी को द्वितीय बार बम्बई पहुंचे परन्तु वहां के मनुष्यों का वह उत्साह जो प्रथम बार आर्य्यसमाज स्थापित करने के विषय में था शिथिल देखकर अत्यन्त खेद हुआ इस लिये फिर उन्हों ने इस विषय को उठाया और वह यहां तक बढ़ा कि जिसको फलितरूप स्वर्गवासी रावबहादुर दादूबा पांडुरंगजी की अध्यक्षता में हुई जिसमें एक सब कमेटी आर्य्यसमाज के नियम स्थिर करने के लिये नियत हुई परन्तु उसने भी कई कारणों से इस कार्य को पूर्ण न किया तत्पश्चात् कई जिज्ञासुओं के मन में फिर अत्यन्त उत्कंठा समाज स्थिर करने की उत्पन्न हुई और एक विचार कर समाज के नियम बना, कई दिन तक वादानुवाद के पश्चात् चैत्र सुदी ५ सम्वत् १९३२ विक्रमी तदनुसार १० अप्रैल सन् १८७५ ई० को सायंकाल के समय गिरगाम में डाक्टर मानकजी के बाग में मिस्टर गिरधरलाल दयालदास कोठारी बी. ए. एल. एल. बी. की प्रधानता में एक पब्लिक अधिवेशन में आर्य-समाज स्थापन होगया जिसके नियम निम्नलिखित थे जो उस समय सभा में भी सुनाये गये।

आर्य्यसमाज के नियम जो बंबई में प्रथम बार निर्धारित हुये थे।

(१) आर्य्यसमाज सब मनुष्यों के हितार्थ अवश्य होना चाहिये।

(२) इस आर्यसमाज में मुख्य (स्वतः) प्रमाण वेदों का ही माना जावेगा, साक्षी के निमित्त वेदों के ज्ञान के अर्थ और इसी प्रकार आर्य्य इतिहास के अर्थ, शतपथ-ब्राह्मण आदि ४ उपवेद, ६ वेदाङ्ग ६ दर्शन और ११२७ शाखा वेदों के व्याख्यान वेदों के आर्य सनातन संस्कृत ग्रन्थों का भी वेदानुकूल होने से गौण प्रमाण माना जावेगा।

(३) इस समाज में प्रतिदेश के मध्य एक प्रधान समाज होगा और दूसरे शाखा प्रतिशाखा होंगे।

(४) प्रधान समाज के अनुकूल और सब समाजों की व्यवस्था रहेगी। प्रधान समाज के अनुकूल संस्कृत और आर्य्यभाषा में नाना प्रकार के सत्योपदेश के लिये पुस्तक होंगे और एक आर्यप्रकाश पत्र यथाशक्य साप्ताहिक निकलेगा।

(५) यह सब समाज में प्रवृत्त किये जावेंगे।

(६) प्रत्येक समाज में एक प्रधान पुरुष द्वितीय मंत्री तथा अन्य पुरुष और स्त्रियां सब सभासद होंगे।

(७) प्रधान पुरुष इस समाज की यथावत् व्यवस्था का पालन करेगा और मंत्री पत्रों का उत्तर तथा सब के नाम व्यवस्था लिखा करेगा।

(८) इस समाज में सत्पुरुष, सत्य नीतिधारी सत्य आचरणी और सर्व-हितकारक समाजस्थ किये जावेंगे।

(९) जो गृहस्थी से अवकाश मिले सो जैसा घर के कामों में पुरुषार्थ करता है, उससे अधिक पुरुषार्थ इन समाजों की उन्नति के लिये करें। और विरक्त तो नित्य ही इस समाज की उन्नति करें।

(१०) हर आठवें दिन प्रधान मन्त्री और सब समासद समाजमन्दिर में एकत्रित हों और सब कार्यों से इस कार्य को मुख्य जानें।

(११) एकत्रित होकर सर्वदा स्थिरचित्त हों, परस्पर प्रीति से पक्षपात छोड़कर प्रश्नोत्तर करें, फिर सामवेद गायन कर परमेश्वर, सद्धर्म, सत्यनीति और सदुपदेश के विषय में बाजा आदि के साथ गायन करें। और इन्हीं विषयों पर वेदमन्त्रों के अर्थ और व्याख्यान हों।

(१२) हर एक समासद न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से जितना धन प्राप्त करें उस में से आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, आर्यप्रकाश पत्र के प्रचार और इनकी उन्नति के लिए आर्य्यसमाज धन कोष में १) रुपया सैकड़ा प्रीतिपूर्वक देवे। अधिक देवे तो अधिक धर्मफल है। इस धनका उक्त विषयों में व्यय हो अन्यत्र न हो।

(१३) जो मनुष्य उक्त कार्यों की उन्नति और प्रचार केलिये जितना प्रयत्न करे उसका यथायोग्य सत्कार उत्साह के लिये होना चाहिये।

(१४) इस समाज में वेदोक्त रीति से एक अद्वितीय परमेश्वर की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना की जावेगी। अर्थात् निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, दयालु, सर्व जगत् पिता, सर्वजगत्माता, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त, सर्व-व्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव, अनन्त सुखप्रद और धर्मार्थ काम मोक्षप्रद, इत्यादि विशेषणों से परमात्मा को ही स्तुति, उसी के गुण कीर्तन, तथा प्रार्थना करना, उसी से सब श्रेष्ठ कार्यों में सहायता चाहना, उपासना से उसके आनन्द स्वरूप में मग्न हो जाना, सो, पूर्वोक्त निराकारादि लक्षण वाले की ही भक्ति करनी उसके अतिरिक्त और कभी किसी की न करनी।

(१५) इस समाज में नैमित्तिक आदि अन्त्येष्टि पर्यन्त संस्कार वेदों से किए जावेंगे।

(१६) आर्यविद्यालयों में वेदादि सनातन आर्यग्रन्थों का पठन पाठन कराया जावेगा। और वेदोक्त रीति सेही सत्यशिक्षा सब स्त्री पुरुषों को दी जावेगी।

(१७) इस समाज में स्वदेशहितार्थ दो प्रकार की शुद्धि का प्रयत्न किया जावेगा, एक परमार्थ और द्वितीय लौकिक व्यवहार, इन दोनोंका शोधन और

सुहृदता की उन्नति, तथा सब संसार के हित की उन्नति की जावेगी।

(१८) इस समाज में पक्षपात रहित न्याय अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणों से यथावत् परीक्षित सद्धर्म वेदोक्त ही माना जावेगा। इस से विरुद्ध को यथा शक्ति न माना जावेगा।

(१९) इस समाज की ओर से श्रेष्ठ लोग पवित्रोपदेश करने को भेजे जावेंगे।

(२०) स्त्री और पुरुष इन दोनों के विद्याभ्यास के अर्थ भिन्न २ आर्य विद्यालय यथासम्भव प्रत्येक नगर में खोले जावेंगे। स्त्रियों के लिये अध्यापिका स्त्रियां होंगी और सेवाप्रबन्ध भी स्त्रियां द्वारा किया जावेगा। और पुरुष पाठशालाओं का पुरुषों द्वारा प्रबन्ध कराया जावेगा इस में विपरीत नहीं।

(२१) उन पाठशालाओं की व्यवस्था प्रधान आर्य्य समाज के अनुकूल पालना की जावेगी।

(२२) इस समाज में प्रधान सभासद् परस्पर प्रीति के लिये अभिमान, हठ, दुराग्रह, और क्रोधादि सब दुर्गुण छोड़कर उपकार सौहृदता से सब के सब को निर्वैर होकर स्वात्मवत् सम प्रीति करनी होगी।

(२३) विचार समय सब व्यवहारों में न्याययुक्त सर्वहित जो सत्य बात भले प्रकार से विचार से ठहरे, उसी को सब सभासदों में प्रकट कर वही सत्य बात मानी जावे इसी का नाम पक्षपात छोड़ना है।

(२४) जो मनुष्य इन नियमों के अनुकूलाचरण करने वाला धर्मात्मा सतोगुणी हो उस को उत्तम समाज में प्रवेश करना, अन्य सज्जनों को साधारण में रखना और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल देना होगा परन्तु पक्षपात से यह काम नहीं करना प्रत्युत यह दोनों बातें श्रेष्ठ सभासदों के विचार से ही की जावें।

(२५) आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, आर्यप्रकाश पत्र और आर्यसमाजार्थ धन कोष इन चारों की रक्षा और उन्नति प्रधान आदि सब सभासद तन मन और धन से यथावत् करें।

(२६) जब तक नौकरी करने और कराने वाला आर्यसभासद् मिले तब तक और की नौकरी न करे न करावे। यह दोनों परस्पर स्वामी सेवक भाव से यथावत् वर्त्तें।

(२७) जब विवाह, पुत्रजन्म, महालाभ वा मृत्यु तथा अन्य समय कोई दान का हो तो आर्यसमाज के लिये धन आदि दान किया करें। ऐसा धर्मकार्य और कोई नहीं है इस को जानकर यह कभी न भूलें।

(२८) इन नियमों से कोई नियम नया लिखा जावेगा या निकाला जावेगा वा न्यूनाधिक किया जावेगा, वह सब श्रेष्ठ सभासदों के विचार रीति से सब श्रेष्ठ सभासदों को सूचित करके ही यथा योग्य करना होगा।

जब बम्बई में नियम पूर्वक समाज स्थापित होगया और स्वामी जी

द्वितीय बार अहमदाबाद चले गये। तब यहां के पौराणिक पंडितों ने यह प्रसिद्ध किया कि स्वामी जी यहां से शीघ्र चले गये नहीं तो हम अवश्य शास्त्रार्थ करते जब इस मिथ्या प्रलाप से मनुष्यों में कुछ भ्रांति सी होने लगी तो समाज के मन्त्री ने अहमदाबाद को तार देकर बुलाया उन के आने पर पौराणिक पण्डितों को मुंह छिपाना कठिन होगया लोगों के आग्रह करने पर भी शास्त्रार्थ के लिये जी चुराने लगे तब यहां के शिरोमणि पण्डित कमलनैन आचार्य जी को बड़ी कठिनता से शास्त्रार्थ के लिये उद्यत किया जिस की तिथि १२ जून नियत हुई।

मूर्तिपूजा पर स्वामी दयानंद।

और

पंडित कमलनयन आचार्यका सम्वाद १२ जूनसन् १८७५ई०

इस शास्त्रार्थ के लिये फरामजी कावसजी इन्स्टट्यूसन में सांझ पांच बजे से मनुष्यों का आना आरम्भ हुआ, जिस में बम्बई के अनुमान समस्त सेठ साहूकार अधिकारी प्रतिष्ठित और शिक्षित जन उपस्थित थे। सभा का स्थान उत्तम प्रकार से सजाया गया था एक ऊंचे स्थान पर दो कुर्सियां स्वामी जी और आचार्य जी के अर्थ और चौतरे के नीचे आठ कुर्सियां समाचार पत्रों के सम्पादकों के लिये क्रम से लगाई गई थीं, छः बजे पण्डित कमलनयन आचारी जी पचास साठ आदमियों के साथ सभा में पधारे, फिर रायबहादुर सेठ बेचरदास अम्बाईदास सभापति ने कहा कि आज बड़ाही शुभ दिन है कि स्वामी दयानन्द जी और हमारे आचार्य जी परस्पर प्रीति से मूर्तिपूजा पर वार्त्तालाप करेंगे कि जिस से हम सब,, सार को जान अपना और अपनी सन्तानों का भलाकर देशोपकार करेंगे इस के उपरान्त जीवनदयाल और शिवनारायण जी ने यह लिखित भी दिया है कि यदि स्वामी दयानन्द जी वेद से मूर्तिपूजा का खंडन कर देंगे तो मारवाड़ी आर्य्यधर्म को स्वीकार करेंगे और जो आचार्य जी वेद से मंडन कर देंगे तो जीवनदयाल रामानुज सम्प्रदाय को ग्रहण करेगा। इस के पश्चात् कमलनैन आचार्य्य ने कहा कि प्रथम उपस्थित पण्डितगण अपने २ मत से सूचित करें यह सुनकर विचारशील पुरुषों ने कहा कि यह प्रश्न इस समय असङ्गत और निरर्थक है इस लिये इस की कोई आवश्यकता नहीं, प्रमाण आप की सम्मति से नियत होचुके हैं, फिर पण्डित गोविंद शास्त्री जी ने आचार्य्य जी की ओर संकेत करके कहा कि मैं आप दोनों के शास्त्रार्थ को लिखता जाऊंगा तत्पश्चात् अन्त को पक्षपातरहित अपनी सम्मति भी प्रकट करूंगा परन्तु आचार्य्य जी ने कुछ न माना इस के उपरान्त स्वामी जी ने नम्रता पूर्वक कमलनैन आचार्य्य जी से विनती की कि महाराज मध्यस्थ वेद आदि ग्रन्थ

उपस्थित हैं आप कृपा करके इन वेदों से प्राणप्रतिष्ठा (जिस से मूर्ति में प्राण आजाते हैं) आवाहन (जिस से उनको बुलाया जाता है) विसर्जन (जिस से उनको विदा किया जाता है) पूजन (जिस से उन्हें प्रसन्न और आनन्दित किया जाता) इत्यादि के अर्थ कीजिये इस से पुरुषों का बड़ा उपकार होगा हमारा और आप का जो कुछ विवाद हो उस को पण्डित जन लिखते जायेंगे जिस पर सभापति मेरे और आप के हस्ताक्षर करा मुद्रित कर प्रकाशित करेंगे। जिस से सबको खरे और खोटे के परखने का अवसर मिलेगा। परन्तु उन्हों ने किसी तरह पर भी स्वीकार न किया। इसके पश्चात् सेठ मथुरादास लौजी ने टहरकर आदि से अन्त तक शास्त्रार्थ होने के विषय में जो कार्य्यवाही हुई थी उसको पढ़कर सुनाया जिस से आचार्य जी के शास्त्रार्थ से हटने के अपूर्व ढंग विदित होने से अन्त को विवश हो सभा में पधारे, अब यहां आकर यह करतूत की जिस को सर्व जन जानते ही हैं आचार्य्य जी में इतनी सामर्थ्य कहां थी कि सेठ जी के कथन का उत्तर देदें, निदान बिना कुछ कहे वहां से चुपचाप चलदिये। तब प्रधान सभा ने आचार्य्य जी से कहा कि महाराज आप बिना कहे यहां से जाते हैं। यह ठीक नहीं है, देखिये सहस्रों मनुष्य इस शास्त्रार्थ के सुनने की किये आये थे सो आप के चले जाने से उन को बड़ी निराशा होगी, इस के अनन्तर स्वामी जी ने आचार्य्य जी से कहा कि इस समय मूर्तिपूजा से लाखों मनुष्यों की आजीविका चलती है यदि आप इस अवसर पर वेदों से उसका प्रतिपादन न करेंगे तो क्योंकर उन की आजीविका स्थिर रह सकती है। आचार्य्य जी ज्यों त्यों कर सभा से चुपचाप उठ अपने घर को चले गये तब सभापति आदि ने कहा कि यथार्थ में स्वामी जी का कहना ठीक है। फिर सेठ हरिगोविन्द दास बाबा ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि मूर्तिपूजा सतयुग में थी या नहीं, स्वामी जी ने उस के उत्तर में कहा कि सतयुग, द्वापर, त्रेता युगों में न थी केवल कलियुग में बौद्ध मत के प्रचार होने के पश्चात् स्वार्थी लोगों ने इस को प्रचलित करा दिया। इस के पश्चात् कीवलदास ठक्कुर भाई और मिस्टर योग जी ठाकुरने पण्डित कालसैन की इस हालमटोल पर कुछ कथन कर "न तस्य प्रतिमा अस्ति" इस मन्त्र से मूर्तिपूजा का खण्डन करना आरम्भ किया और अनेकानेक प्रमाण देकर कहा कि इस अनुचित कार्य को सर्व सज्जनों को त्याग देना उचित है तदुपरान्त सभा विसर्जन हो गई।

पूना

पाठक गणों पर विदित हो कि यह नगर भी दक्षिण भारतखण्ड में मूर्ति पूजा का केन्द्र होने के कारण प्रसिद्ध है। यहां जौलाई सन् १८७५ के आरम्भ में स्वामी जी ने पधार कर उपदेश करना आरम्भ किया चारों तरफ कोलाहल मच गया और झगड़ा हो गया जो इतना बढ़ा कि जिस के कारण दो मनुष्यों

को कारागार जाना पड़ा, बहुधा मनुष्य बड़े २ प्रतिष्ठित सज्जनों की ग्रन्थों पत्रों पर धन्य गये। स्वामी जी ने दो मास निवास कर निम्न लिखित व्याख्यान दिये।

संख्या व्याख्यान	माह व तारीख		विषय
१	जौलाई	४	ईश्वर विषय पर
२	"	६	उक्त व्याख्यान के तर्कों का उत्तर
३	"	८	वेद का सब को अधिकार है।
४	"	१०	उस पर तर्कों का उत्तर।
५	"	१३	वेद ही ईश्वरीय धर्म पुस्तक है।
६	"	१७	पुनर्जन्म।
७	"	२०	यज्ञ संस्कार।
८	"	२४	
९	"	२५	
१०	"	२७	इतिहास।
११	"	२९	
१२	"	३१	
१३	अगस्त	२	नित्य कर्म मुक्ति।
१४	"	३	"
१५	"	४	अपने जीवन पर।

यह १५ व्याख्यान उसी समय गुजराती भाषा में प्रकाशित हो गये और हिन्दी भाषा में वैदिक प्रेस अजमेर तथा उर्दू भाषा में उपदेश मंजरी के नाम से गुरुकुल कांगड़ी में उपरोक्त व्याख्यान मुद्रित हुए हैं अब हम आपत्रे हित-वादी के उस लेख का संक्षेप लिखते हैं जो उस के सम्पादक ने इक स्वामी जी के विषय में लिखा है। "स्वामी जी प्रतिष्ठित पुरुषों के बुलाने पर पूना पधारे और हिन्दू रूप में उन के १५ व्याख्यान बड़ी उत्तमता से प्रबल युक्तियों के साथ हुए, उन के मनोहर कथन और सारगर्भित आशयों से श्रोताओं के चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ा स्वामी जी महाराज अत्यन्त पण्डित बुद्धिमान् और वीर पुरुष हैं, जो बड़ी शान्ति के साथ और निर्भय हो प्रत्येक पुरुष के प्रश्नों का उत्तर देकर उस के चित्त को शान्ति देते हैं, इसी कारण उन की विजय का डंका लंदन, अमरीका में फहरा रहा है और भारत के बहुत से राजा, और बुद्धिमान् लोग अपनी २ सम्प्रदायों को छोड़ स्वामी जी की आज्ञा के पालन करने में तत्पर हैं, वह वेदभाष्य भी कर रहे हैं जिससे संसार का बड़ा उपकार होगा, इस परोपकारी महात्मा में यहां के बुद्धिमान् पुरुषों की बड़ी श्रद्धा उत्पन्न होगई जिसका प्रकारान्तर में स्वामीजी को हाथी पर सवार कराकर सम्पूर्ण नगर में घुमाया और आप सब पैदल

उनके साथ २ फिरे। जिसको मूर्ख, अज्ञानी सेठ न देख सके और नाना प्रकार की अनुचित कार्यवाही की जिससे पुलिस की सहायता लेनी पड़ी।

तृतीय बार बम्बई में धर्म-प्रचार।

स्वामी जी पूना से लौट, बंबई पधार, समाजमंदिर में निवास कर, मनुष्यों की शङ्कासमाधान और वैदिकधर्म प्रचार में लग गये। ब्रह्मसमाज के मुखिया बाबू नवीनचन्द्रराय, बाबू प्रतापचन्द्र मोजूमदार और डाक्टर भन्डारकरसे वार्तालाप भी होता रहता था, जो निरुत्तर होने पर भी कभी सत्य का ग्रहण न करते थे, एक दिन स्वामी जी उपदेश कर रहे थे इतने में कई एक भद्र पुरुषों की स्त्रियां स्वामी जी के पास आईं, स्वामी जी ने उन से पूछवाया कि तुम यहां क्यों आई हो, तब उन्हों ने कहा कि हम को सन्तान की चाहना है सो आप कृपा करके हमारी मनोकामना पूर्ण कर दीजिये। तब स्वामी जी ने कहा कि मैं तो सतोपदेश देता हूं यदि तुम को लड़के आदि की चाहना है तो तुम वर्तमान समय के साधुओं के पास चलीजाओ इस समय वही लड़के लड़कियां दिया करते हैं। यह सुन वह सब स्त्रियां अत्यन्त निराश हो चली गई। परन्तु जो भद्र पुरुष वहां बैठे हुए थे वह लज्जा के कारण कुछ न बोले। इस के उपरान्त एक और व्याख्यान में राजाओं के सत्यानाश होने के विषय में एक उदाहरण दिया था कि वर्तमान समय में राजाओं और सेठों के सत-संगी ज्योतिषीजी, तेल बेचनेवाला और हीजड़ा इत्यादि इसी भांति के होते हैं जब उस राजा पर अन्य किसी राजा ने चढ़ाई की और वह किले में घुसने लगा तब राजा को सूचना हुई, उस ने तुरन्त ज्योतिषी जी को बुलाकर कहा कि अब क्या करें, ज्योतिषी जी कहते हैं कि अभी भद्रा है फिर तेली से पूंछा तो उस ने कहा शीघ्रता क्या है अभी तेल देखो और तेल की धार देखो फिर ऊंट वाले से पूंछा उस ने कहा कि देखिये तो सही ऊंट किस करवट से बैठता है ऐसा कह रहे थे कि शत्रु भीतर घुसआया, नपुंसक से पूंछा उस ने कहा कि परदा डालदो क्या वह परदे में भी चला आवेगा। अन्त को स्वामी जी ने बड़े शोक से कहा कि भारत के राजाओं की ऐसी दुर्दशा होने के कारण से हमारी और देश की दुर्दशा होगई। यहां के पादरी मिस्टर विल्सन साहिब को भी कई वार शास्त्रार्थ के लिये बुलाया, परन्तु वह नहीं आये, अन्त को वह आप उन के स्थान पर गये, जो बड़ी प्रतिष्ठा से स्वामी जी से मिले परन्तु शास्त्रार्थ या विचार के लिये अनवकाश का मिस करके उस समय को टाल गये, इन्हीं दिनों में मिस्टर मोक्षमूलर की चिट्ठी भी आई थी कि आप यहां पधारें तो बड़ी कृपा

उनकी उस देश के बड़े भाग्य हैं जहां आपने जन्म लिया है, इत्यादि के उत्तर में स्वामी जी ने लिखा कि मुझको आने की अतीव इच्छा है परन्तु वहां के लोग अभी मुझे नास्तिक कहते हैं। जब तक मैं इस देश को यह न बताऊं कि मैं कैसा नास्तिक हूं तब तक मैं नहीं आऊंगा।

शास्त्रार्थ स्वामी दयानन्द सरस्वती और पं० रामलाल शास्त्री।

जब स्वामी जी बम्बई से पूर्व के लिये जाने को उपस्थित थे तब वहां के सनातन धर्मी पण्डितों ने पण्डित रामलाल जी शास्त्री नड़िया शान्तीपुर के विद्वान् को शास्त्रार्थ के लिये उद्यत किया और २७ मार्च सन् १८७९ को भाई जीवनजी के स्थान पर निम्न लिखित शास्त्रार्थ हुआ जिस सभा के प्रधान पण्डित भोजाऊ जी शास्त्री नियत हुए थे।

स्वामी जी—वेद के किस मंत्र में मूर्ति पूजा का विधान है सो बताओ?

पण्डित जी—पुराण और स्मृतियों के श्लोक बोलने लगे।

स्वामी जी—यह ग्रन्थ माननीय नहीं हैं यदि कोई मन्त्र वेद का स्मरण हो तो कहिये?

पण्डित जी—मनुस्मृति के जो चंद श्लोक जिस में प्रतिमा और देव शब्द थे बोले।

स्वामी जी—ने सब श्लोकों के यथार्थ प्रमाण सहित अर्थ कर दिये कि जिन का मूर्तिपूजा से कोई सम्बन्ध नहीं था।

पण्डित जी—फिर और स्मृतियों और पुराणों के श्लोक बोलने लगे परन्तु अन्त तक कोई वेद का मंत्र न बोले उस समय मध्यस्थ जी ने कहा कि शास्त्री रामलाल जी आप स्वामी जी के प्रश्न का उत्तर कुछ नहीं देते यह सभा और पण्डितों का नियम नहीं है, जैसे किसी ने किसी से द्वारिका का मार्ग पूछा बतानेवाले ने कलकत्ते का मार्ग बता दिया इसी प्रकार वह आप का शास्त्रार्थ है, इस कहने पर भी पण्डित रामलाल शास्त्री ने कोई प्रमाण वेद का न दिया तब सब की सम्मति से श्रीमान् भोजाऊ जी प्रधान सभा ने स्पष्ट कह दिया कि आज पण्डित रामलाल जी शास्त्री पाषाणादि पूजन को वेदोक्त सिद्ध न कर सके। इस के पश्चात् मैनेजर वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से पण्डित रामलाल शास्त्री का मिलाप हुआ और बातें हुईं पण्डित रामलाल जी ने उनसे स्पष्ट कह दिया कि स्वामी जी विद्वान् और बुद्धिमान् हैं जो बात करते हैं वह सब शास्त्रोक्त और सत्य, हम गृहस्थी हैं हमको अनेक वस्तुओं की आवश्यकता होती है फिर हम स्वामी जी की भांति किस प्रकार कह सकते हैं मैनेजर ने कहा कि आप धर्म बेचकर जीविका करते हैं, पण्डित जी ने उस के उत्तर में

कहा कि सर्व संसार में ऐसी ही प्रवृत्ति हो रही है उस से विरोध हम लोग नहीं कर सक्ते। ७ अप्रैल सन् १८७६ को भाई जीवनदयाल और मरकादयाल ने एक इस विषय का विज्ञापन छपवाकर बँटवाया कि मैं पहले मूर्तिपूजक था, अब स्वामी दयानन्द सरस्वती के सतोपदेश से मेरी श्रद्धा मूर्तिपूजन से जाती रही है परन्तु अब भी यदि कोई पण्डित मूर्ति पूजन वेद से सिद्ध कर देवें तो मैं १२५) रु० भेट करूंगा। प्यारे पाठक गणों! ऐसा कौन सामर्थ्यवान है जो मध्य.समय को रात्रि के समान कर दिखलावे, कोई सन्मुख न आया और स्वामी जी १ मई सन् १८७६ को फ़र्रुखाबाद की ओर चले गये।

फ़र्रुखाबाद।

६ मई सन् १८७६ को स्वामी जी पंचम बार फ़र्रुखाबाद पधारे और लाला जगन्नाथदास की विश्रांत पर डेरा किया, यहां एक पादरी साहब से वार्तालाप हुआ अन्त को ईसाई साहब ने चलते समय कहा कि आप हमारे शीघ्र मतानुयायी हो जायेंगे, स्वामी जी ने उत्तर में कहा कि यह परम असंभव है हां थोड़े दिनों के पश्चात् बहुत ईसाई वैदिक धर्म की प्रशंसा करते हुए उसके अनुयायी होने की प्रार्थना करेंगे, सो ईश्वर की कृपा से यह वाक्य सिद्ध हो गया, देखिये अब किस प्रकार लोग ईसाई दीन से निकल कर वैदिक मत की शरण आ रहे हैं और यूरुप के विद्वान् किस प्रकार धर्म के नियम स्वीकार करते चले जाते हैं। यहां कई एक व्याख्यान दे, पाठशाला तोड़, उसका सब रुपया वेदभाष्य में लगा, पूर्व को पधारे और चलते समय यह भी जिता दी यदि आप लोगों ने आर्यसमाज नियत कर लिया तो मेरा आना होगा वरन् असम्भव है ऐसा जान कर शीघ्र समाज स्थापन करना। स्वामी जी यहां से चलकर २४ मई सन् १८७६ में बनारस में पहुंच उदसगिरि के बगीचे में चित्र-शाला निवास कर वैदिक ग्रन्थों को विचारते रहे और वेदभाष्य भूमिका के छपवाने का प्रबन्ध मिस्टर लाजरस के यहां कर १५ अगस्त को जौनपुर गए और नदी के किनारे ठहर सर्व साधारण को उपदेश देकर १८ अगस्त को अयोध्या पहुंच चौधरी गुरुचरणलाल की पाठशाला में उतरे, जहां उन्हों ने २० अगस्त को वेदभाष्य भूमिका के लिखने का आरम्भ किया और २६ दिसंबर को लखनऊ पहुंच कई एक भद्र पुरुषों की सम्मति से विलायत और इङ्गलिस्तान में सतोपदेश करने का निश्चय कर एक बङ्गाली बाबू से अंग्रेजी पढ़ने का आरम्भ कर दिया। इसके विषय में इण्डियन मिरर कलकत्ता से लेकर विहार बान्धव पटना में इस प्रकार प्रकाशित हुआ है कि पण्डित दयानंद सरस्वती विलायत जाने की इच्छा से लखनऊ में अङ्गरेजी पढ़ रहे हैं इस में सन्देह नहीं कि उक्त महाशय के विलायत जाने से वहां के विद्वानों को बड़ा आनन्द होगा। (देखो जिल्द ४ नं० ४० अध्याय १८ सन् १८७६ ई०) इसी प्रकार

हिन्दू बान्धव लाहौर नाम अखबार में लिखा है। ३० दिसम्बर को स्वामी जी ने लखनऊ में ईश्वर के विषय पर अति मनोहर व्याख्यान दिया जिसमें बहुत से मनुष्य एकत्र हुये थे, जिसका प्रभाव भी अच्छा हुआ जिस के विषय में समाचार पत्र इण्डियन मिरर और हिन्दू बान्धव ने इस प्रकार समालोचना की है कि पण्डित दयानन्द सरस्वती ने लखनऊ में व्याख्यान दिया जिस में उन्हों ने पुरोपियन समाज के ब्रह्म लोगों और उनके अनुगन्ताओं की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि ब्रह्म लोगों का परिश्रम जो ईश्वरोपासना के फैलाने में हो रहा है वह अत्यन्त ही धन्यवाद के योग्य है। (१ अक्टूबर सन् १८७६ ई० हिन्दू बान्धव पृष्ठ २३८) लखनऊ से चलकर स्वामी जी कुछ दिन शाहजहांपुर ठहरे और वहां से फिर बरेली चले गये व० । पर खजांची लक्ष्मीनारायण की कोठी में निवास किया यहां आङ्गदराम शास्त्री को स्वामी जी ने शास्त्रार्थ के लिये बुलाया परन्तु इन्हें स्वामी जी का बल प्रथम ही से ज्ञात हो चुका था इस लिये वह दूर ही रहे। पास जाकर शास्त्रार्थ कभी नहीं किया। बरेली से स्वामी जी कर्णवास और दो दिन वहां निवास कर छलेसर गये जहां पांच सात दिन रहकर दिल्ली दरबार के लिये डेरे आदि सामान भेजे और ठाकुर मुकुन्दसिंह इत्यादि क्षत्रियों के साथ अलीगढ़ स्टेशन पर पहुंचे जहां बम्बई से आते हुए हरिश्चन्द्र चिंतामणि भी मिल गये और सब दर्बार कैसरी के लिये पधारे।

कैसरी दरबार देहली सन् १८७७ ई० में स्वामी दयानन्द सरस्वती का पधारना और धर्मोपदेश करना।

स्वामी जी दिसम्बर सन् १८७६ ई० के अन्त में कैसरी दर्बार के अवसर पर वैदिक धर्म के प्रचारणार्थ देहली में पहुंच अजमेरी दर्वाजे के बाहर नैर्ऋत्य कोण की ओर कुतुब सड़क पर खीमों में उतरे जहां और पास अवध के राजाओं और धनी पुरुषों के तम्बू लगे हुए थे, स्वामी जी ने इस बाग के द्वार पर एक बड़ा बोर्ड जिस पर स्वामी दयानन्द सरस्वती का निवास स्थान लिखा हुआ था लगवा दिया और वहां राजा जैकृष्णदास सी. एस. आई. ठाकुर मकुन्दसिंह साहिब रईस छलेसर, ठाकुर गोपालसिंह रईस कर्णवास, हकीम रामप्रसाद अलीगढ़, मुंशी इन्द्रमणि साहब रईस मुरादाबाद, ठाकुर भूपालसिंह रईस देहली, पण्डित भीमसेन, बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, लाल और लक्ष्मीनारायणजी खजांची रईस बरेली भी ठहरे हुए थे प्रतिदिन स्वामी जी के पास दस बीस देहली इत्यादि के पण्डित आते और वार्तालाप शङ्का समाधान करते थे। स्वामी जी ने संपूर्ण देहली के अतिरिक्त दर्बारी राजाओं

के द्वारों पर नोटिस लगवा दिये और महाराजाओं के पास भी पहुंचा दिये तथा सब को चैलेंज भी दिया था कि यह अच्छा अवसर है अपने पण्डितों से सत्य असत्य का निर्णय करा लो सत्य हो उसे ग्रहण कीजिये। इसके उपरान्त स्वामी जी ने वहां पहुंच कर दो बड़े प्रयत्न किये उन में से प्रथम यह था कि सब राजे जो वहां पर पधारे हैं एक दिन एकत्रित होकर हमारा व्याख्यान सुन लें. इसके लिये महाराजा भींद की सम्मति से कुछ यत्न भी किया परन्तु ऐसे दर्बार के अवसरों पर रईसों को इस कार्य्य के लिये अवकाश कहां तो भी तमाम राजाओं के कान तक वैदिक ध्वनि पहुंचाई गई कि वेदों में मूर्तिपूजा कदापि नहीं है। द्वितीय प्रयत्न यह कि भारतवर्ष के प्रसिद्ध उपदेशक, जो मत मतान्तरों किसी न किसी प्रकार से कार्य्य करते हैं उन सब को एकत्र किया जावे, जिस के लिये उन्हों ने एक दिन सब को अपने स्थान पर आने के लिये निमन्त्रण किया और इस अधिवेशन में मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी, बाबू नवीनचन्द्रराय, बाबू केशवचन्द्रसेन, मुंशी इन्द्रमणि आनरेबिल, सैयद अहमदखां साहब और बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि एकत्र हुए। तब स्वामी जी ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि यदि होसके तो हम सब एक सम्मति होकर ही एक रीति से देश का सुधार करें तो आशा है कि शीघ्र देश का सुधार हो जावे. परन्तु कितने ही कारणों से सब में एक मत और एक सम्मति न हुई। इस के विषय में इण्डियन मिरर कलकत्ता ने इस प्रकार समालोचना की है कि हम ने सुना है कि दिल्ली में स्वामी दयानन्द जी के स्थान पर एक पाबलकमीटिंग इस निमित्त हुई थी कि इण्डिया के सब रिफार्मर एक सम्मति कर नियम पूर्वक उपदेश करें, जिस से देश का शीघ्र कल्याण हो इस सभा में हमारे लिडर बाबू केशवचन्द्रसेन भी विराजमान थे हम ईश की पूर्ति के लिये परमात्मा से प्रार्थना करते हैं। ऐसा ही रिसाला बिरादर हिन्द लाहौर में भी लिखा है बाबू नवीनचन्द्रराय ने अपने रिसाला ज्ञानप्रदर्शन सन् १८८५ ई० में इस कमेटी का वृत्तान्त लिखते हुए वर्णन किया है कि स्वामी जी के साथ हम लोगों का मूल विश्वासों में विभेद था, इस लिये जैसा वह चाहते थे वैसा न हो सका। एक दिन बाबू केशवचन्द्र जी ने स्वामी जी से कहा कि यदि आप कह दें कि हम से परमेश्वर ऐसा कहता है और ऐसा ही उपदेश करें तो बड़ी सफलता हो, स्वामी जी ने कहा कि वह अन्तर्य्यामी है, क्या किसी के कान में कहने आता है? मैं ऐसा झूठ नहीं कह सका। दर्बार के दिनों में कई एक अवध के राजा भी स्वामी जी के दर्शनों के निमित्त आये और जो कुछ उन को शंका थी निवृत्ति की ईरान के एक मौलवी साहब से भी स्वामी जी की वार्तालाप हुई थी महाराजा जम्मू स्वामी जी के दर्शनों की अभिलाषा रखते थे परन्तु पेटार्थू लोगों ने उन को मिलने न दिया स्वामी जी ने यहां से दो इश्तिहार जिन में से एक में आर्य्य समाज के नियम और दूसरे

में वेदभाष्य का विज्ञापन था इण्डियन मिरर कलकत्ता को भेजे थे जिस के लिये उस ने उनके साहस को धन्यवाद देकर परमात्मा से उस की पूर्ति के लिये प्रार्थना की थी। स्वामी जी ने उपरोक्त दोनों विज्ञापनों को अच्छे प्रकार दिल्ली में भी वितीर्ण कराया था। इस दर्बार की समाप्ति पर मुंशी हरसुखराय साहिब मालिक अखबार कोहेनूर लाहौर, पण्डित मनफूल साहिब रईस सर्दार विक्रमासिंह साहिब आहलू वालिया रईस जालन्धर, मुंशी कन्हैयालाल साहिब अलखधारी लुधियाना ने विनय पूर्वक स्वामी जी से प्रार्थना की अब आप पञ्जाब देश पर भी कृपा करें जिस को उन्हों ने हर्ष पूर्वक स्वीकार कर कहा कि अब हम शीघ्र आप के देश में आवेंगे। स्वामी जी यहां से चलकर १६ जनवरी को **मेरठ** पहुंचे और वहां साधारण उपदेश और शिक्षा कर ४ फरवरी सन् १८७७ई. को **सहारनपुर** पधारे, जहां लाला कन्हैयालाल के शिवालय और चित्रगुप्त के मन्दिर में "आर्य कौन थे और कहां से आये, सत्य की महिमा सृष्टि उत्पत्ति, सुखी दुखी कौन है" इन विषयों पर प्रभावशाली व्याख्यान दिये। जिन में अधिकता से प्रतिष्ठित और सर्व साधारण पुरुष एकत्रित होते रहे। स्वामी जी महाराज ने सुखी और दुखी पुरुष की मीमांसा करते हुए एक बड़े साहूकार का दृष्टांत इस प्रकार दिया कि उस पर न्यायालय में एक अभियोग चल रहा था जिस के कारण वह नियत तिथि से प्रथम ही चिन्तारूपी अग्नि में जलता रहता था और उस के सेवक आदि सब आनन्द से अपना कार्य कर अच्छे प्रकार से खा पी कर चैन उड़ाते थे परन्तु वह साहूकार इस दुःख में दुखी रहता कि देखिये निश्चत तिथि पर इस अभियोग में क्या होता है। ज्यों त्यों कर वह दिन आया और उक्त सेठजी पालकी में बैठकर न्यायालय में गये परन्तु उनका चित्त चिन्तारूपी दुःख से अत्यन्त ही पीड़ित हो रहा था, इस से प्रत्यक्ष प्रकट है कि केवल धन से सुख नहीं होता इस लिये उस के ऊपर अभिमान करना मूर्खों ही का कार्य है न कि बुद्धिमानों का। एक दिन के व्याख्यान में स्वामी जीने यह भी कहा था कि धर्म के बन्धन (कैद) में रहना भला है या स्वतन्त्र, उन्हों ने इस विषय में तर्क द्वारा बतलाया कि बहुधा मूर्ख जन कहा करते हैं कि हम किसी की कैद में नहीं यह उन का कहना सर्वथा मिथ्या है क्योंकि सांसारी मनुष्य किसी न किसी बंधन में अवश्य रहते हैं इस लिये सब बंधनों से धर्म का बन्धन उत्तम है, उसी दिन लाला हरिवंश सुखी जी ने धर्म के बन्धन में रहना स्वीकार किया। इस के पश्चात् एक दिन स्वामी जी से और मुंशी चंदीप्रसाद जी से इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुए।

प्रश्नोत्तर मुंशी चंदीप्रसाद और स्वामी दयानन्द।

प्र०—वेद शास्त्रानुकूल हिन्दुओं को किस २ की पूजा और क्या करना चाहिये ?

उ०—परमेश्वर की पूजा, विद्या पढ़कर मन की शुद्धि और सचाई से सब कार्यों का करना योग्य है।

प्र०—बहुधा हिन्दू कायस्थ क्षत्री आदि शराब शिकार खाते पीते हैं यह ठीक है या नहीं?

उ०—शराब पीना और शिकार का खाना योग्य नहीं, युक्ति से जीवों का मारना अन्याय और वेदशास्त्र के विरुद्ध है।

प्र०—भूत, परी, जिन्न, चुड़ैल का साया है या नहीं?

उ०—कुछ नहीं, यह मनुष्यों की अविद्या का कारण है अगर होता तो अंगरेज़ों पर उन का साया अवश्य पड़ता।

प्र०—मरने के पश्चात् जीव कहां जाता है?

उ०—यमराज अर्थात् वायु में जाता है।

प्र०—मरने के पश्चात् दूसरा जन्म होता है या नहीं। स्वर्ग नर्क का क्या वृत्तान्त है? कोई युक्ति बुद्धि सम्बन्धी ऐसी नहीं कि जिस से आवागमन और स्वर्ग नर्क का हाल यथार्थ युक्तियों से ज्ञात हो जावे, क्योंकि उत्पत्ति से प्रथम और मरण के पश्चात का हाल किसी को ज्ञात नहीं हुआ।

उ०—पुनर्जन्म होता है स्वर्ग, नर्क, प्रति स्थान पर उपस्थित हैं जिस प्रकार मनुष्य बुद्धि से जान सक्ता है कि पृथ्वी और मनुष्यादि का उत्पन्न करने वाला परमात्मा है इसी भांति विद्या से स्वर्ग, नर्क, उत्पत्ति और मरण का वृत्तान्त भी जाना जा सक्ता है।

प्र०—संसार को परमात्मा ने क्यों पैदा किया उस के उत्पन्न करने से उस का क्या प्रयोजन था?

उ०—जिस प्रकार आंख का देखना और कान का सुनना स्वभाव है और देखने और सुनने से आंख और कान का कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता इसी प्रकार ईश्वर भी अपने स्वाभाविक नियमानुसार जगत् को उत्पन्न करता है परन्तु उसका कोई प्रयोजन नहीं है।

प्र०—स्त्री पुरुष का विवाह कब और किस भांति होना चाहिये?

उ०—पुरुष की आयु पच्चीस वर्ष और स्त्री की सोलह वर्ष से न्यून कदापि न होनी चाहिये और वह एक दूसरे को अच्छे प्रकार देख कर सम्बन्ध करें जिस से सारी आयु सुख में रहें।

प्र०—परमेश्वर किस स्थान पर रहता है प्रत्यक्ष में वह किसी को दिखलाई क्यों नहीं देता?

उ०—वह सर्व व्यापक और सब स्थानों पर उपस्थित है परन्तु जो मनुष्य ज्ञान द्वारा मन रूपी दर्पण को स्वच्छ करते हैं उन्हीं को परमात्मा दृष्टि आता है अज्ञानियों की दृष्टि से अधिक दूर है।

प्र०—ब्रह्मा के चार मुख थे या नहीं और वेद को ब्रह्मा ने किसी कागज पर लिखा था या चारों वेद उनको कंठ थे?

उ०—ब्रह्मा के चार मुख नहीं थे वरन् चारों वेद उनके मुख में थे इसीलिये उनको चतुर्मुखी ब्रह्मा कहते थे परन्तु मूर्खों ने चार वेद कंठ होने के चार मुख कल्पित कर लिये।

प्र०—विवाह के पश्चात् जो गौना होता है वह होना चाहिये या नहीं ?

उ०—नहीं।

प्र०—स्त्रियों को विद्या पढ़ाना चाहिये या नहीं ?

उ०—अवश्य पढ़ाना चाहिये, बिना विद्या के मनुष्य और पशु दोनों की बुद्धि समान होती है।

प्र०—जन्म पत्री बनवाना चाहिये या नहीं ?

उ०—यह जन्मपत्री नहीं है वरन् रोगपत्र है बुद्धिमानों को कुम्भ मीनादि मिथ्या प्रपञ्चों से बचना चाहिये।

प्र०—स्त्रियों को परदे में रखना कैसा है ?

उ०—बहुत ही अनुचित रीति है, उनको विद्या पढ़ाकर बुद्धिमान करना उचित है जिस से वह परदे के बिना अनुचित कार्य्यों को विद्या के बल से त्याग करदें।

स्वामीजी के पास इन्हीं दिनोंमें एक निवेदनपत्र प्रसिद्ध मेला चांदापुर की ओर से उसमें सम्मिलित होने केलिये आया था और सहारनपुर के कई प्रतिष्ठित आर्य पुरुषों ने भी मेले में पधारने के लिये उनसे अत्यन्त प्रार्थना की थी जिस के उत्तर में स्वामी जी ने उनको लिख भेजा था कि हम १५ मार्च सन् १८७७ को मेले में पहुंचेंगे।

सत्य धर्म विचार अर्थात् मेला चांदापुर।

सज्जन पुरुषों पर विदित हो कि यह मेला अर्थात् ब्रह्मोत्सव सत्यधर्म के निर्णयार्थ मुन्शी प्यारेलाल साहब रईस चांदापुर जिला शाहजहांपुर कबीर-पन्थी ने साहब कलेक्टर बहादुर से उस की आज्ञा प्राप्त कर, सब मतमतांतरों के विद्वान् मौलवी और लीडरी उपदेशकों को आमंत्रित किया, यथार्थ में मुंशी जी का यह साहस सराहनीय था। निदान सत्य के निर्णयार्थ आर्यों में शिरोमणि व विद्वान् श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती और मुन्शी इन्द्रमणि जी और ईसाइयों की ओर से पादरी स्काट साहब, पादरी नोबिल साहब, पादरी पारकर साहब, पादरी जान्सन पादरी टाम्सन साहब, और मुसल्मानों की ओर से मौलवी मुहम्मद क़ासिम साहब, सैयद अब्दुल मन्सूर साहब पधारे, यह मेला केवल दो दिन ही रहा। मेले के आरम्भसेपूर्व कई मुसल्मानोंने स्वामी जी से कहा कि हम और आप मिलकर ईसाइयों का खण्डन करें, स्वामी जी ने इस बात को स्वीकार न किया और कहा कि यह मेला सत्यासत्य के विचार के लिये है पक्षपात के लिये नहीं। पादरी साहबान ने दो दिन से अधिक ठहरना

स्वीकार न किया इस लिये १८ मार्च सन् १८७७ ई० से २० मार्च सन् १८७७ ई० तक मेला रहा जिस में सत्य धर्म का विचार जिस प्रकार हुआ।

प्रथम दिन की सभा।

मुन्शी प्यारे लाल साहब ने खड़े होकर सब से पहिले परमेश्वर को धन्यवाद दे कहा कि धन्य है आज के दिन को जिस में ऐसे ऐसे विद्वान् मतमतांतरों के जानने वाले यहां सुशोभित हुए हैं आशा है कि आप सब कोमल वाणी से प्रेम पूर्वक वार्तालाप कर मनुष्यों को सत्य का मार्ग दिखा मनुष्य जाति का कल्याण करेंगे। १८ मार्च सन् १८७७ ई० को सभा के नियम नियत करने के लिये परस्पर बहुत वार्ता होती रही, पादरियों ने चाहा कि पण्डित लक्ष्मण शास्त्री जी का नाम आर्यों की ओर से लिखादें और फिर पौराणिकों और आर्यों में परस्पर विवाद होने लगे और हम पृथक् रहकर सब कौतुक देखें स्वामी जी इस बात को पहिले ही ताड़ गए और उन्हों ने कहा कि ईसाई और मुसल्मानों की ओर से पांच २ मेम्बर रहें और आर्यों की ओर से मैं और इन्द्रमणि दो ही रहें इस पर ईसाई मुसल्मानों ने कहा कि नहीं आर्यों की ओर से भी पांच मेंबर रहना उचित हैं तब स्वामी जी ने कहा कि आपको हमारी ओर से सभासद् चुनने का अधिकार नहीं है. जब कोई चाल न चली तो मौलवी लोग नमाज़ के लिये चले गये, लौटकर मौलवी मुहम्मद क़ासिम साहब ने कहा कि मैं आरम्भ कर एक गन्टा तक अपने मत सम्बन्धी व्याख्यान देता हूं यदि उस में किसी को कुछ शङ्का हो तो समाधान करूंगा इसी को सब ने स्वीकार किया।

मौलवी मुहम्मद क़ासिम साहब।

मौलवी साहब ने परमेश्वर के गुणानुवाद और धन्यवाद के पश्चात् कहा कि जैसे वर्तमान समय में अङ्गरेज़ी गवर्नमेंन्ट की आज्ञा मानना और सेवा करना सब का धर्म है और समय समय पर जो जो पदाधिकारी हुए लोग उन की आज्ञा पालन करते रहे इसी प्रकार जो जो अवतार और पैग़म्बर प्राचीन समय में थे और जो पुस्तकें तौरेज़बूर बाइबिल इत्यादियें उनकी आज्ञा इस समय के सबसे पिछले पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद साहबके सन्मुख न माननी चाहिये।

पादरी नौबिल साहब।

पादरी साहब ने कहा कि क़ुरान ईश्वरीय वाक्य नहीं हैं क्योंकि क़ुरान में जो २ बातें लिखी हैं सो २ बाइबिल की हैं और हज़रत ईसामसीह के अवतार होने में कुछ सन्देह नहीं क्योंकि उन्होंने बहुत से चमत्कार दिखलाये थे।

मौलवी मुहम्मद क़ासिम साहब।

हम हज़रत ईसा को अवतार और बाइबिल को आसमानी पुस्तक मानते

हैं परन्तु यह बाइबिल मूल बाइबिल नहीं है अब ईसाइयों ने बहुत नमक मिर्च मिला दिया है।

पादरी नौबिल साहब।

लेखक की भूल से कहीं पर कुछ गड़बड़ होगया था जो सत्यता स्थिर रखने के कारण प्रकट कर दिया गया इस लिये हमारा मत सत्य है।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब।

जिस पुस्तक में एक बात भी असत्य प्रतिपादन हो जाय वह माननीय नहीं रहती इस से बाइबिल माननीय नहीं है।

पादरी नौबिल साहब।

पुराणों में भी लेखक दोष से बहुत अशुद्धियां हैं और न्यूनाधिकता भी की गई हैं जिसका प्रमाण एक मौलवी ईसाई ने अरबी भाषा में दिया।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब।

जो आप सत्य ही का प्रमाण देते हैं तो तीन ईश्वर क्यों मानते हो।

पादरी नौबिल साहब।

उन तीनों ईश्वरों से एक ही ईश्वर का बोध होता है क्योंकि ईसामसीह में मनुष्यता और ईश्वरत्व दोनों विद्यमान थीं और वह दोनों चमत्कार दिखलाते थे।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब।

वाह जी एक म्यान में दो तलवार क्यों कर रह सकती हैं इस कारण आप का कथन असत्य है और ईसामसीह ने तो कहीं नहीं लिखा कि मैं ईश्वर हूं।

पादरी नौबिल साहब।

फिर एक आयत पढ़कर कहा कि इस आयत में मसीह ने ईश्वर कहा है।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब।

यदि वह ईश्वर थे तो फांसी पर आप क्यों चढ़े और औरों को बचाते रहे।

निदान इन्हीं बेतुकी बातों में प्रथम दिवस व्यर्थ गया और किसी मत का निर्णय न हुआ।

दूसरे दिन की सभा।

२० मार्च सन् १८७७ को प्रातःकाल ७॥ बजे महाशयगण एकत्रित होगये और निम्न लिखित प्रश्न जो प्रथम ही से स्वीकार हो चुके थे पढ़े गये।

(१) सृष्टि को परमेश्वर ने किस वस्तु और किस समय और किस हेतु बनाया ?

(२) ईश्वर सर्व व्यापक है या नहीं ?

(३) ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है ?
(४) वेद, बाइबिल कुरान के ईश्वरोक्त होने में क्या प्रमाण है ?

पादरी स्काट साहब और मौलवी मुहम्मद कासिम साहब

ने प्रथम प्रश्न के उत्तर में कहा कि हम नहीं जानते कि परमेश्वर ने संसार को किस वस्तु से बनाया हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि ईश्वर ने संसार हमारे सुख भोगार्थ बनाया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती

ने व्याख्यान से प्रथम ईसाई मुसल्मान महाशयों और अन्य श्रोतागणों से यह प्रार्थना की, कि यह मेला सत्य के निर्णय और इस प्रयोजन से है कि सब मतों में कौन सा मत श्रेष्ठ है इस कारण यहां हार जीत की कोई अभिलाषा न करें क्योंकि सज्जन जन सत्य की जय और असत्य की पराजय देख दुःखित नहीं होते आओ हम सब लोग मिलकर सत्य का प्रकाश करें परस्पर निन्दा करना कुवचनों का प्रयोग, हार जीत में पक्षपात, ऐसा नियम कदापि न होना चाहिये स्वामी जी ने प्रथम प्रश्न के उत्तर में कहा कि परमेश्वर ने इस संसार को प्रकृति (जिसको अव्यक्त अव्याकृत और परमाणु कहते हैं) से रचा है सो यही जगत् का उपादान कारण है जिसको वेदादि शास्त्रों में नित्य निर्णय किया है और यह सनातन है जैसे ईश्वर अनादि है वैसे ही सब जगत् का कारण भी अनादि है जैसे ईश्वर का आदि और अन्त नहीं है जितने इस जगत् में पदार्थ दिखाई देते उन के कारण से एक परमाणु भी न्यूनाधिक नहीं होता जब ईश्वर इस जगत् को रचता है तब कारण से कार्य को बनाता है सो जैसा कि यह कार्य रूप जगत् दीखता है वैसा ही उस का कारण है सूक्ष्म द्रव्यों को मिलाकर स्थूल द्रव्यों को रचता है तब स्थूल द्रव्य देखने और व्यवहार योग्य होते हैं और जब प्रलय करता है तब इस स्थूल जगत् के पदार्थ परमाणुओं को अलग अलग कर देता है क्योंकि जो २ स्थूल से सूक्ष्म होता है वह दृष्टि नहीं आता और अभाव से भाव कभी नहीं हो सकता क्योंकि जिस वस्तु की मूल नहीं वह कहां से आ सकती है फिर स्वामी जी ने वेद और शास्त्रों द्वारा सिद्ध किया कि सृष्टि के आदि से अन्त तक चौदह मन्वन्तर होते हैं और प्रत्येक मन्वन्तर ३०६७२०००० का होता है इस समय सातवां वैवस्वत मन्वन्तर वर्तमान है, अर्थात् १९६०८५२९७६ एक अरब, छ्यानवेकरोड़ आठ लाख बावन हजार नौसो छैहत्तर वर्षों का भोग हो चुका है दो अरब तैतीस करोड़ दत्तीस लाख सत्ताईस हजार चौबीस वर्ष इस सृष्टि को भोग करने को शेष हैं। आर्यवर्त्त के इतिहासों और ज्योतिष शास्त्र में भी यह प्रमाण मिलता है "ओ३म् तत्सत् ब्रह्मणो" इत्यादि संकल्प से सृष्टि के वर्षों की गणना भले प्रकार से विदित होती है और ईश्वर ने इस जगत् को अपनी सामर्थ्य की सफलता के

लिये रचा है कि सब मनुष्य सब पदार्थों से सुख भोगें, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि के लिये जीवों के नेत्र इत्यादि साधन भी रचे हैं, क्योंकि सृष्टि के करने में अनेक प्रयोजन हैं, जो कि न्यून समय में वर्णन नहीं हो सकते बुद्धिमान् मनुष्य स्वयं ज्ञात कर लेंगे। पादरी और मुसलमानों को स्वामी जी का यह कथन अनोखा और नवीन ज्ञात हुआ।

पादरी स्काट साहब और उनके साथियों और मौलवी मुहम्मद क़ासिम साहब और अन्य मौलवियों ने स्वामी जी के कथन पर बहुत सी शङ्कायें कीं परन्तु स्वामी जी ने उन सब का प्रीतिपूर्वक सहनशीलता और विद्वत्ता से उत्तर दिया, इतने में ग्यारह बजे का समय आगया तब एक ईसाई ने कहा कि ऐ मौलवी भाइयो इस प्रश्न का पण्डित जी अनेक प्रकार से उत्तर दे सकते हैं इस में बहुत विवाद कर समय खोना उचित नहीं, उसी दिन मध्यान्ह काल के पश्चात् सब महाशय फिर एकत्र हुये और विचार हुआ कि समय थोड़ा है और विचारनीय प्रश्न बहुत हैं इस हेतु मुक्ति के प्रश्न पर विवाद करना उचित है अब पादरी साहबान और मौलवी महाशयों ने एकत्र होकर प्रथम व्याख्यान देने से निषेध किया तब स्वामी जी ने ही पहिले कहना स्वीकार किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी

मुक्ति के अर्थ छूट जाना संसारी दुखों से छूट कर एक सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होकर सदा आनंद में रहना और फिर जन्म मरण इत्यादि दुख सागर में न फंसने का नाम मुक्ति है।

मुक्ति के साधन।

(१) सत्याचरण (२) सत्य विद्या अर्थात् ईश्वर रचित वेद विद्या को यथावत् पढ़कर ज्ञान की उत्पत्ति और सत्य का पालन करना (३) योगाभ्यास करके अपने मन इन्द्रियों और आत्मा को असत्य से हटाकर सत्य में स्थिर करना (४) ज्ञान को बढ़ाना (५) ईश्वर की कृपा का यश कीर्तन करना (६) **प्रार्थना**—कि हे जगदीश्वर ! हे कृपानिधे ! हे परम पिता ! हम को असत्य से छुड़ाकर सत्य में स्थिर कर। इसपर **मौलवी मुहम्मद क़ासिमसाहब** ने बहुत से तर्क वितर्क कर कहा कि ईश्वर की इच्छा है जिस को चाहे मुक्ति दे जिस को न चाहे मुक्ति न दे, समय के हाकिम, मुहम्मद पैग़म्बर पर विश्वास रखना चाहिये इसी से मुक्ति होती है और **पादरी सहाब** ने कहा कि ईसामसीह पर विश्वास लाने से मुक्ति होती है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती।

स्वामी जी ने अनेक प्रमाणों के पश्चात् कहा कि ईसामसीह के बिना ईश्वर अपनी सामर्थ्य से अपने भक्तों को नहीं बचा सका वह अपने भक्तों को

सब प्रकार से बचा सक्ता है उसको किसी पैग़म्बर की आवश्यकता नहीं, हां यह सच है कि जब जिस २ देश में शिक्षा करनेवाले धर्मात्मा पुरुष हैं उस २ देश में मनुष्य पापों से बच जाते हैं और उन्हीं देशों के सुख और गणों की वृद्धि होती है परन्तु वह महात्मा मोक्ष दाता नहीं होसक्ते यही दशा मुहम्मद साहब और ईसामसीह की है इसहेतु वह कदापि मोक्षदाता नहीं होसक्ते और जो मौलवी साहब ने कहा कि पैग़म्बर पर विश्वास लाने से मुक्ति होती है यह सर्वथा असत्य है क्योंकि ईश्वर अन्यायी नहीं जो किसी के कहने से मुक्ति दे वह आप सर्वशक्तिमान है वह अपने काम में किसी की सहायता नहीं लेता। इतने में चार बज गये स्वामी जी ने कहा कि हमारा कथन अभी कुछ शेष रह गया है मौलवी साहब ने कहा कि हमारी नमाज़ का समय आगया पादरी स्काट साहब कुछ कहने के लिये स्वामी जी को एकांत में ले गये उधर मौलवी और पादरी अपने २ मतों के व्याख्यान देने लगे, और कितने लोग कहने लगे कि मेला हो चुका, तब स्वामी जी ने पादरी और आर्य्य लोगों से पूंछा कि यह क्या गड़बड़ है उत्तर दिया कि मेला हो चुका तब स्वामी जी ने कहा कि न किसी से सम्मति लीगई, न किसी से पूंछा, मेला कैसे समाप्त कर दिया गया। जब यहां बहुत गड़बड़ हुआ और व्याख्यान होने का कोई ढंग न जान पड़ा तब स्वामी जी अपने स्थान पर आ वार्तालाप करने लगे और मौलवियों ने शाहजहांपुर जाकर मुन्शी इन्द्रमणि को लिखा कि जो आप यहां आवें तो हम आप से शास्त्रार्थ करना चाहते हैं परन्तु जब स्वामी जी और उक्त मुन्शी जी वहां पहुंचे तो शास्त्रार्थ का नाम भी न लिया। मेला समाप्त होने पर चारों ओर यही शब्द सुनाई देता था कि स्वामी दयानन्द सरस्वती की विद्वत्ता जैसी सुनी गई थी उस से अधिक दृष्टिगोचर हुई। "मेला चांदा पुर" इस नाम से स्वामी जी ने एक पुस्तक लिखी है जिस में मेले का सविस्तार वर्णन है।

पंजाब देश में स्वामी दयानन्द सरस्वत की यात्रा। और धर्मोपदेश लुधियाना।

स्वामी जी महाराज दर्बार कैसरी के समय मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी इत्यादि पंजाबी प्रतिष्ठित पुरुषों से प्रतिज्ञा कर चुके थे तदनुसार मेला चांदापुर से अवकाश पाकर ३१ मार्च सन् १८७७ ई० को लुधियाना में पधारे। यहां स्वामी जी के व्याख्यान लाला जदमण जी के स्थान पर बड़े धूमधाम से हुए जहां सहस्त्रों मनुष्य सुनने के लिये आया करते थे जिस का प्रभाव अति उत्तम हुआ। इन्हीं उपदेशों को सुन पण्डित रामशरण गौड़ नयत निवासी ने जो पुराणों की पोपलीला को ईसाइयों के द्वारा सुन उन का यथोचित उत्तर न देने के कारण ईसाई होने वाला था, वैदिक धर्म को स्वीकार कर, अपनी आत्मा

को शान्ति देने लगा। यहां एक दिन मिस्टर बेरी साहब और मिस्टर कारस्टीफन बहादुर जुडीशल असिस्टेंट कमिश्नर श्री स्वामी जी से मिलने को आये थे और वार्तालाप में कहने लगे कि श्रीकृष्ण महाराज के विषय में जो कुछ श्रीमद्भागवत में लिखा है उस को पढ़कर बुद्धि इस बात को स्वीकार नहीं करती कि वह महात्मा थे तब स्वामी जी ने कहा कि जो पुराणों ने उन पर दोष लगाये हैं वह सब मिथ्या हैं क्योंकि वह पूर्ण योगी धर्मात्मा और विद्वान् थे परन्तु आश्चर्य यह है कि आप की बुद्धि ने "परमेश्वर का आत्मा कबूतर के रूप में आकाश से उतर मरियम के गर्भाशय में प्रवेश होगया और फिर कुमारी (बिना विवाहिता) के पेट से महात्मा ईसा उत्पन्न होगये" यह झट स्वीकार कर लिया। एक दिन स्वामी जी व्याख्यान दे रहे थे तब एक पौराणिक पण्डित ने उनका व्याख्यान सुन क्रोध में आकर अपने साथी से कहा कि चलो यह दुष्ट है इस लिये इस का मुंह नहीं देखना चाहिये। यह सुन स्वामीजी ने कहा कि यदि मेरे मुंह देखने से आपको पाप लगने का भय है तो आप कृपा कर ओट में खड़े होकर मेरा व्याख्यान अवश्य सुन जाइये। यह सुन पण्डित लज्जित होकर चले गये यहां किसी ने किसी प्रकार की शङ्का, समाधान और शास्त्रार्थ नहीं किया। स्वामी जी के विषय में अखबार नूरअफसां ने तारीख ५ अप्रैल सन् १८७७ जिल्द ५ नम्बर १४ में यों लिखा है कि यहां पर स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज वैदिक धर्म के प्रसिद्ध प्रचारक उपदेश करते हुए पधारे हैं, जिन का मुख्य अभिप्राय यह प्रकट होता है कि ईश्वर के अतिरिक्त, किसी की पूजा पाठ न कि जावे। और जो २ बातें बुद्धि के विपरीत प्रचलित होगई हैं वह सब दूर की जावें और मूर्ति पूजा को जो वर्तमान में हिन्दुओं का धर्म हो रहा है उसको छोड़ प्राचीन आर्यों की सभ्यता के अनुसार अपने कार्यों को करें मैं आशा करता हूं कि उन के उपदेश से हिन्दुओं को बहुत लाभ पहुंचेगा। स्वामी जी लुधियाने से चलकर १५ अप्रैल सन् १८७७ को लाहौर में पधारे जहां पण्डित मनफूल जी भूतपूर्व मीर मुंशी गवर्नमेन्ट पंजाब और मुंशी हरसुखराय साहिब मालिक मतबअ कोहनूर उन के स्वागत के लिये रेलवे स्टेशन पर गये थे। इन्हों ने इन को लाला रतनचन्द्र डाढ़ी वाले के बाग में निवास दिया जहां वह प्रति दिन हिन्दुओं के वर्तमान धर्म का खण्डन और वेदों का सच्चा उपदेश किया करते थे। इन व्याख्यानों के होने से जो कुछ उस समय बुद्धिमान पुरुषों ने निश्चय किया वह हम इसी सप्ताह के दो प्रसिद्ध समाचार पत्रों के लेखों से उद्धृत करते हैं। कोहनूर २८ अप्रैल सन् १८७७ जिल्द २६ नम्बर १७ में यह प्रकाशित हुआ था कि एक प्रसिद्ध वेदवक्ता स्वामी दयानन्द सरस्वती देहली और लुधियाने से होते हुए १९ अप्रैल को लाहौर में दीवान रतनचन्द्र के

बाग में विराजते हैं उन्हों ने २५ अप्रैल को पहुचा ब्रह्म समाजियों और सज्जनियों इत्यादि की प्रेरणा से स्थान बावली साहब में वेदोक्त धर्म पर एक व्याख्यान दिया, जिस के सुनने के लिये अनुमान ५०० मनुष्य एकत्र हुए होंगे उक्त व्याख्यान में स्वामी जी ने वेद मंत्रों के अर्थ व्याकरण के द्वारा करके कहा कि यह चारों वेद जगत् अर्थात् सृष्टि के परमाणुओं के समान अनादि हैं और जब प्रलय होती है, तो जैसा वृक्ष का अंकुर वृक्ष के बीज में छिप जाता है वैसे यह भी छिप जाते हैं। परमेश्वर ज्ञान स्वरूप ने इन लोगों को ज्ञानी बनाने के लिये अग्नि, आदित्य, वायु, अंगिरा इन चार महात्माओं के हृदय में वेदों का प्रकाश कर, सर्व साधारण में प्रकट किया कि यह वेद अनादि है उस के सनातन होने का सब को मन्तव्य है। जिस से यह बात अच्छेप्रकार सिद्ध होती है कि सृष्टि की आदि में संपूर्ण संसार में यही धर्म प्रचलित था। और फिर सब भिन्न २ धर्म इसी से निकले वेदों की १७२७ शाखायें हैं जिन में असंख्या विद्यायें उपस्थित हैं ऐसी कोई विद्या व गुण नहीं, जिसका मूल वेदों में न हो। जैसे कि भूमण्डल का भ्रमण और सूर्य में आकर्षण शक्ति इत्यादि इस बात की साक्षी वेद मन्त्र दे रहे हैं, चाहे उन के अर्थ मूर्खों ने कुछ ही समझे हों। राजा भोज के सुराज्य में जिस को अनुमान १४०० वर्ष व्यतीत हुए, ऐसे विमान प्रचलित थे जो एक घंटा में ५५ मील जाते थे, जिस में नगर के नगर अर्थात् असंख्य मनुष्य, अपनी सामग्री समेत आकाश मार्ग से एक देश से दूसरे देश को चले जाते थे। एक पंखा की ऐसी रचना की गई थी, कि जिस की कुंजी देने से एक मास तक स्वयम् चलता रहता था। वेद उपासना, ज्ञान, कर्मकांड इन तीन विभागों में विभाजित हैं। जिस में से कर्म पूजन अर्थात् स्तुति, आदर सत्कारादि और ज्ञान, बुद्धि और विद्या शक्ति से प्रयोजन है। इसी लिये जो चेष्टायुक्ति के सहारे की जाती है, उसका नाम धर्म है उस के विरुद्ध अधर्म। धर्म का द्वितीय अर्थ न्याय है अर्थात् न्याय में धर्म और धर्म में न्याय है। चारों वेदों में बीस सहस्र के लगभग ऋचायें हैं। देवता से अभिप्राय बुद्धिमान और उस के अनुकूल आचरण करने वाले पुरुष के हैं। प्राचीन समय में उनका पूजन होता था, जैसा शास्त्रों और स्मृतियों में लिखा है। यदि कर्मकांड का विशेष लक्षण देखना चाहो, तो जैमुनि ऋषि कृत कर्मकाण्ड के द्वादश अध्याय को देखो। यजन यज्ञ को कहते हैं जो वेदोक्त किया जाता है वह यज्ञ। होम अर्थात् अग्निहोत्र दुर्गंधित वायु और वर्षा जल के शुद्ध करने के लिये प्रातः और सायं एक सेर घी में एक रत्ती कस्तूरी और एक माशा केशर इत्यादि कई प्रकार के सुगंधित पदार्थ मिलाकर प्रत्येक स्त्री पुरुष बारह २ आहुतियां अग्नि में डालें। यह परिमाण उतने वायु और जल के शुद्ध करने के लिये ठीक समझा जाताहै जो वायु मनुष्यों के छूटे हुए परमाणुओं से श्वास द्वारा रात व दिन में दुर्गंधित हो जाती है। और जो जीवों के मलमूत्र से परमाणु बिगड़तेहैंउन

की दशा ठीक करने के लिये अमावस्या और पूर्णमासी के दिन पढ़े २ हवन होते थे जिन की सुगंधि से वायु के परमाणु भी शुद्ध हो जाते थे प्रायः अन्य अनेक प्रकार के अशुद्ध परमाणुओं की शुद्धता के लिये षट् मासिक व वार्षिक हवन भी किये जाते थे, जिस का अब होली और दिवाली कहते हैं इस क्रिया के न करने से जैसी व्याधियां और बीमारियां इस संसार में इस समय फैल रही हैं उस समय में इन का चिन्ह और नाम भी न था। इसी का नाम पुरुषों का पुरुषार्थ था और यह जो प्रसिद्ध है कि वेदों का पढ़ना ब्राह्मणों के उपरांत सब को मना है यह बात अज्ञानी मनुष्यों की स्वार्थता से संबन्ध रखती है जिस किसी को इस बात पर शंका हो, वह यजुर्वेद के दूसरे अध्याय का छब्बीसवां मंत्र देखले। जिसका अभिप्राय यह है कि ईश्वर सब मनुष्यों को उपदेश करता है कि जैसा मैं तुम को उपदेश करता हूं वैसाही तुम भी सब ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र और वर्णशंकरों को उपदेश करते रहो। परन्तु शोक कि वेदों के बिना पढ़े सुने और जाने भेड़ की भांति अन्धे को अन्धा मार्ग दिखलाकर दोनों स्वार्थ के कूप में गिर स्वार्थता को फैला रहे हैं। हाय! अन्धेर जिस का माल खाते हैं उस की भलाई करने के पलटे में बुराई करते चले जाते हैं देखो वेदों का यथार्थ अर्थ और प्रयोजन न समझ कर, जो चाहते हैं सो वेदोक्त वर्णन कर देते हैं ऐसे धोखा देने वालों से छुटकारा जब ही होसकता है, जब कि वेदों का प्रचार भली भांति हो। ऐसे ही मूर्ख लोगों ने वेदों के रूपालंकार वर्णित विषयों को पुराणों में धर्म सम्बन्धी कथा के नाम से वर्णन किया है। जैसा कि चन्द्रमा का गौतम की स्त्री से भोग करना, ब्रह्मा जी का अपनी कन्या के पीछे कामातुर होकर भागना इत्यादि लिखा है। *

अखबार आम लाहोर २ मई सन् १८७७ में इस प्रकार प्रकाशित हुआ है।

एक सप्ताह से अधिक हुआ कि लाहौर में स्वामी दयानन्द सरस्वती पधारे हैं। यह महाशय साधु भेष में नगर २ उपदेश करते फिरते हैं चारों वेद इनको कंठस्थ हैं जिस में सारे संसार की विद्या अर्थात् कोई बात ऐसी नहीं जो इन पुस्तकों से बाहर हो। भारतवर्ष के प्राचीन निवासी रेल तार चलाने, अमेरिका आदि दूर देशों से समाचार मंगाने, चिकित्सा ज्योतिष और न्याय आदि की विद्या तथा सम्पूर्णगुणों में परिपूर्ण थे। परन्तु उनकी बहुतसी पुस्-

*पुराणों की इस प्रकार विचित्र कथाओं को देखना हो तो मेरे बनाये पुराण तत्व प्रकाश तीनों भागों को देखिये मूल्य ३) डा० व्यय ॥=)

प्रकाशक।

कों का नाश होगया और फूट ने उनकी यह अवस्था करदी जो वर्तमान में हम देखते हैं। वेदों में मूर्तिपूजा का लेश भी नहीं और न चांद, सूर्य, अग्नि, वायु इत्यादि की पूजा की शिक्षा है। जो मनुष्य ऐसा समझे हुए हैं वह बड़ी भूल में हैं। स्वामी जी वेद की टीका भी लिखरहे हैं, जिस के कई भाग छप भी चुके हैं, उनके निकट वैदिक धर्म ही सच्चा धर्म है, उनके मैंने दो चार व्याख्यान सुने यथार्थ में वह बड़े बुद्धिमान हैं भारतवर्ष में इस समय इनके समान वेद ज्ञाता कोई नहीं सुना जाता परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि वेद मन्त्रों की जो टीकायें अन्य आचार्यों ने की हैं उन से स्वामी जी की टीका कैसी है। उक्त महात्मा भारतवर्ष के नव शिक्षक पुरुषों से इस बात में सहमत हैं कि जात कुछ नहीं है इन के विचार में ब्राह्मण वही है जो ब्राह्मण के से कर्म करे अन्यथा शूद्र से भी निकृष्ट। शूद्र शब्द का अर्थ मूर्ख के हैं परस्पर में खाने पीने का विचार जो इस देश में होरहा है वह इन की दृष्टि में मिथ्या है क्योंकि वेदों में इस हुत बात का नाम भी नहीं न्यून अवस्था में लड़का लड़की का विवाह करना अनुचित है, इन मन्तव्यों ने ब्राह्मणों को स्वामी जी का शत्रु बना दिया परन्तु उन को इस की कुछ चिन्ता नहीं, वह अपने कार्यों में कटिबद्ध हैं इसी लिये जो लोग इस देश के शुभचिन्तक और मन से उस की उन्नति की इच्छा रखते हैं उन को उचित है कि स्वामी जी की तन-मन और धन से सहायता करें।

मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी के लेखका संक्षेप।

ऐ भारत के उन्नति चाहने वालो, स्वामी जी की शिक्षा को सुनो और धता भेजो उन पर जो तुम को सच्चिदानंद के अतिरिक्त दूसरों के पूजने की आज्ञा देते हैं। पंडित मोहनलाल जी ने एक दिन स्वामी जी से कहा कि आप संन्यासी होकर शिव की निन्दा करते हैं स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मैं शिव की निंदा कभी नहीं करता बरन् जितनी प्रतिष्ठा उनकी मेरे मन में है औरों में क्या होगी उस कल्याण स्वरूप शिव की तो सब प्रतिष्ठा करते हैं तुम्हारा पत्थर का शिव जो जड़ और मृतकवत मन्दिर के भीतर बंद है उस को शिव नहीं मानता, न उसकी प्रतिष्ठा करता हूं। क्या वह प्रतिष्ठा के योग्य है? यह सुन वह निरुत्तर हो चले गये। **पण्डित शिवनारायण अग्निहोत्री एडीटर बिरादर हिंद**। बहुधा मनुष्य स्वामी जी के निकट आकर वेदों के ईश्वरोक्त होने पर वार्तालाप किया करते थे एक दिन एक पण्डित ने एक फूल तोड़ स्वामी जी को भेट किया तब उन्हों ने कहा कि इस को तोड़ना न चाहिये क्योंकि (१) जितनी देर तक सुगंधि फैलाने के लिये ईश्वर ने उस को उत्पन्न किया है उस से प्रथम तुम ने तोड़ डाला

(२) अब शीघ्र सड़ जायगा और दुर्गंधि देने लगेगा (३) यदि यह स्वाभाविक नियम से रहता तो बहुत मनुष्यों को लाभ पहुंचाता (४) अपने आप गिरता तो शुष्क होकर गिरता और दुर्गंधि न फैलाता वरन् फिर भी खाद आदि के काम में आता जिस को सुनकर पंडित जी और अन्य पुरुष प्रसन्न हुए। एक दिन पण्डित मनफूल जी ने आकर स्वामी जी से कहा कि यदि आप मूर्तिपूजा का खंडन न करें तो समस्त नगरों के निवासी और महाराजा कश्मीर व जम्बू इत्यादि आप से बहुत प्रसन्न हों तब स्वामी जी ने भर्तृहरि का निम्न लिखित वाक्य पढ़कर कहा कि—

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वास्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्। अद्यैव वा मरणमस्तु युगांतरेवा न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

अर्थात् संसारी जन चाहे निन्दा करें या स्तुति, धन मिले या चला जाय, मौत इसी समय आजाये वा युग तक जीता रहे परन्तु धर्मात्मा जन सन्मार्ग से किंचित् भी पीछे को नहीं हटते, इस लिये मैं महाराजा जम्बू काश्मीर को प्रसन्न करूं या ईश्वराज्ञा (जो वेदों में है) पालन करूं? पण्डित जी यह उत्तर सुन, अप्रसन्न हो चले गये। इस के अनंतर प्रत्न मंदिर अनारकली में वेदों के ईश्वर कृत होने और आवागमन पर दो व्याख्यान दिये, जिस से नगर निवासियों पर बड़ा प्रभाव हुआ और स्वार्थी ब्राह्मणों ने कोलाहल मचा, दीवान भगवानदास से जाकर कहा कि आप के स्थान पर ठहर कर स्वामी दयानन्द जी मूर्ति पूजा का खंडन और ब्राह्मण तथा देवताओं की निन्दा करते हैं। दीवान जी ने ब्राह्मणों से डरकर अपने स्थान के खाली कराने की इच्छा प्रकट की। स्वामी जी के सहायकों ने डाक्टर रहीमखां की कोठी में प्रबन्ध किया वहीं व्याख्यान होने लगे। इन दिनों की कार्यवाही प्रकट करने के लिये हम उन दिनों के समाचार पत्रों का संक्षेप लिखते हैं। कोहनूर ५ मई स्वामी दयानन्द अभी लाहौर में डाक्टर रहीमखां साहब बहादुर की कोठी में ठहरे हुए हैं और वहीं-कभी २ वेदोक्त धर्म पर लोगों की इच्छानुसार उपदेश करते हैं जिस को सुनकर नगरस्थ मनुष्यों के दो दल बन गये हैं। १ जो इन के उपदेशों को यथार्थ और लाभदायक समझते हैं यह दल नवशिक्षक नौकरी करने वालों का है। द्वितीय वह वृद्ध लोग जो पुरानी रीति वाले हैं जो इन व्याख्यानों को बनावटी और झूठे समझ कर इन से विरोध रखते हैं। अभी हम कुछ नहीं कह सकते परन्तु इतना हम अवश्य देखते हैं कि अनुयायी दल उन्नति पर है और विपक्षी अवनति पर है। रिसाला बिरादर हिंद लाहौर बाबत माह जून सन् १८७७ ई० ने तो इस विषय में उपरोक्त समाचार पत्रों की

भाँति बहुत कुछ लिखा है उस को छोड़ शेष इतना ही नवीन समाचार है कि स्वामी जी के व्याख्यानों से नगर में बड़ा कोलाहल मच गया और विशेष कर ब्राह्मणों में। जिन्हों ने एक सभा की जिस में पण्डित भानुदत्त को (जो सत्य सभा के आचारी थे) बुलाया। इस सभा का मुख्य उद्देश्य निराकार परमात्मा की उपासना फैलाने का था। और वह स्वामी जी के पास भी आया करते थे ब्राह्मणों की सभा के पण्डितों ने उन से बहुत कुछ झगड़ा किया और कहा कि तुम स्वामी दयानन्द का मत रखते हो जिस को सुन महाराज अधीर हो कहने लगे कि मेरा वही मत है जो आप लोगों का है मैं आप का साथी तब मन से हुं सब ने प्रसन्न हो कर पण्डित जी को सभा का मंत्री बना दिया। जिस को सुन कर बुद्धिमान सज्जन जनों को जो उनके अन्तरीय वृत्तान्त से जानकार थे बड़ा शोक हुआ और इस को भी इतना खेद अवश्य हुआ कि वह मूर्तिपूजा के विरोधी थे कभी २ उन की इच्छा उपदेशक बन स्वामी जी के साथ रहने को होती थी। पाठकगण इस से निश्चय कर सके होंगे कि पंडित जी ने किसी लोभ के कारण मूर्तिपूजक सभा का मन्त्री बनना स्वीकार किया होगा, इतना ही नहीं उन्हों ने स्वामी जी के पास का आना जाना छोड़ मूर्ति पूजा के मंडन में दो व्याख्यान भी दिये और देवताओं का भी वर्णन किया। एक दिन डाक्टर मथुराम के सम्मुख पण्डित शिवनारायण जी ने कहा कि सामवेद में उल्लू की कहानी है फिर आप यह क्यों कहते हैं कि वेदों में कहानी नहीं है। स्वामी जी ने कहा कि नहीं। इस पर पंडित जी ने कहा कि अवश्य है आप क्यों नहीं मानते हैं। तब स्वामी जी ने सामवेद उठाकर उन के हाथ में दे दिया और कहा कि यदि है तो आप निकाल कर दिखलाइये। पण्डित जी पुस्तक लेकर थोड़े काल तक ढूंढते रहे अन्त को कह दिया कि इस में तो नहीं मिलती। स्वामी जी तो चुप रहे परन्तु अन्य मनुष्यों ने उनको बहुत लज्जित किया। एक दिन पादरी डाक्टर होपड़ साहब ने स्वामी जी से कहा कि वेदों में अश्वमेध और गोमेध इत्यादि का वर्णन है उस समय में लोग घोड़े और गाय का बलिदान देते थे आप इस में क्या कहते हैं ? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि वेदों में घोड़े और गाय के बलिदान की आज्ञा नहीं है। यह अर्थ वाममार्गियों के चलाये हुए हैं जो उनके ग्रन्थों में लिखे हैं, हिन्दू ग्रन्थों में भी इन्हीं लोगों ने जहां तहां लिख दिये हैं देखो राष्ट्रंवाऽश्वमेधः। शतपथ १३।१।६।२ और अन्नंहिगौः शतपथ ४।३१।२२ में लिखा है कि राजा न्याय से प्रजा का पालन करे यह अश्वमेध है। अन्य इन्द्रियां अंतःकरण और पृथिवी इत्यादि को पवित्र करने का नाम गोमेध है। जब मनुष्य मर जाय तो उस के शरीर का विधि पूर्वक दाह करना नरमेध कहाता है। उसके पश्चात् पादरी साहब ने कहा कि वेदों में जाति-व्यवहार किस प्रकार है स्वामी दयानंद जी ने कहा कि गुण कर्म अनुसार। इस पर पादरी साहब ने कहा कि यदि मेरे गुण कर्म

अच्छे हों तो क्या मैं ब्राह्मण हो सकता हूं । स्वामी जी ने कहा निःसंदेह यदि आप के गुण कर्म ब्राह्मणों के से हों आप ब्राह्मण हो जावेंगे। एक दिन एक पण्डित जी ने एक श्लोक पढ़कर कहा कि देखो योगवाशिष्ठ में भी मूर्ति पूजा की आज्ञा है स्वामी जी ने कहा कि हम योगवाशिष्ठ को प्रामाणिक नहीं मानते, सो भी आधा श्लोक योगवाशिष्ठ का और आधा बनाया हुआ मालूम होता है अंत को वह ऐसा ही निकला। एक दिन कुछ स्त्रियां स्वामी जी से विशेष आज्ञा लेकर उन के पास गईं और उन से पूछा कि कल्याण और शांति किस प्रकार हो सकती है स्वामी जी ने उन से कहा कि तुम्हारे पति तुम्हारे गुरु हैं उन्हीं की सेवा तुम को करनी चाहिये किसी अन्य साधु इत्यादि को गुरु न बनाओ, विद्या पढ़ो, शुभ आचरणों को धारण करो, इन्हीं उत्तम कर्मों के करने से शांति मिलती है इस लिये तुम अपने पतियों को हमारे पास भेजा करो और उन्हीं के द्वारा तुम हमारे उपदेशों से लाभ उठाया करो।

स्वामीजी के व्याख्यानों का जो प्रभाव हुआ वह १६ जून के कोहनूर से प्रकट होता है कि इस नगर में स्वामी जी के व्याख्यानों का बड़ा प्रभाव हुआ है—मूर्तिपूजा से बहुधा मनुष्यों के चित्त हट गये, बहुधा सज्जनों ने मूर्तियां बांध कर रखदीं अनेकान् पुरुषों ने रावी नदी की भेंट करदीं और लाला बालकराम शर्मा ने ठाकुरों को चौकी समेत बाज़ार में फेंक दिया।

पंजाब में आर्य-समाज की स्थिति की प्रथम तिथि।

स्वामी जी के आने से पूर्व विद्वान् लोगों की एक अद्भुत गति हो रही थी। अंग्रेजी शिक्षा ने उन को पुराने प्रचलित मत और रीतों से अश्रद्धालु कर दिया था। बहुधा जन तो नाम से हिन्दू परन्तु मन में ईसाई और मुसलमान थे। कई एक मनुष्य ईसाई हो गये बहुधा होने को उपस्थित थे और बहुत बड़ी संख्या ब्रह्मसमाज की ओर झुक गई थी, किंतु हिन्दुओं की बुरी रीतों के प्रभाव से बहुत से शिक्षित पुरुषों के चित्त उधर से फिर गये, केवल कुसंगति के बन्धन ने उन को अपने अधीन कर रक्खा था शराब पीना और व्यभिचार आदि कुकर्मों की अधिक वृद्धि होगई थी। ऐसे समय में कौन जान सकता था कि हिन्दुओं में भी कोई मनुष्य ऐसा वीर उत्पन्न होगा जो धर्म संबन्धी विचारों के इस प्रवाह को एक ओर से दूसरी ओर पलट कर अपनी प्रतिष्ठा और मान का ध्यान भुला देगा। निस्सन्देह ऐसे समय में जब कि शिक्षित जन धर्म संबन्धी शिक्षा के लिये यूरुप और अमरीका की ओर देख रहे थे अपनी ही जाति में अकस्मात् ऐसे बड़े महात्मा और विद्वान् संन्यासी का देशोपकार और धर्म संबन्धी सुधार के लिये कटिबद्ध होकर जीवन पर्यन्त कार्य्य करने के लिये खड़ा हो जाना एक अत्यंत ही विचित्र बात है। जिस से

प्रत्यक्ष होता था कि इस मृतक जाति में भी कोई सजीव मनुष्य विद्यमान है। इस समय में स्वामीजी का पंजाब में आना विशेष कृपा का परिचय प्रकट कर रहा है। महाशय गण, एक दिन स्वामी जी ने सब मनुष्यों पर यह प्रकट किया कि आर्य्य धर्म की उन्नति जब ही हो सकी है जब कि नगर नगर गांव गांव में आर्य्य समाजें नियत हो जायें स्वामी जी के उपदेशों से बहुधा मनुष्यों के चित्तों में धर्म रूपी अंकुर दृढ़ हो चुका था। अतः शिक्षित पुरुषों ने सम्मति कर लाहौर में आर्य्य समाज स्थापित करने का विचार किया। यद्यपि इस से पूर्व बंबई में आर्य्यसमाज नियत हो चुका था परन्तु नाम मात्र ही था। वास्तव में लाहौर नगर ही में प्रथम समाज रूपी बीज भारत के उद्धार करने को बोया गया। क्योंकि पंजाब भूमि में नानकदेव ने मूर्तिपूजा की पौराणिक रीतों को जड़ पेड़ से हिला दिया था इस के उपरान्त वहां एक सत सभा भी नियत थी जो केवल निराकार परमेश्वर की उपासना की शिक्षा देती थी और उसी विषय का वहां गायन भी होता था। इधर महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने पहुंचकर उच्च स्वर से लोगों को धर्म और अधर्म की परीक्षा की कसौटी, वेदों का वहां बड़े वेग से उपदेश सुनाया जिस को सुनकर सज्जन मनुष्यों की श्रद्धा इस ओर को झुकने लगी। अंत को आर्य्य समाज रूपी पौदा २४ जून सन् १८७७ को लाहौर में रक्खा गया। जिसकी शाखाओं ने थोड़े ही दिनों में सारे भारत को ढांप लिया। इस के नियम बम्बई और पूना में आर्य्य समाजें नियत होते ही बन चुके थे परन्तु वे अधिक विस्तृत थे इसी लिये यहां स्वामी जी ने सारद्रूप नियम निर्धारित किये जो इस समय सम्पूर्ण आर्य्य समाजों के नियम हैं और जो उसी समय सितम्बर के अखबार खैरख्वाह पंजाब स्टार आफ इन्डिया जिल्द १२ नम्बर १७ पृष्ठ ८ स्यालकोट में प्रकाशित होचुके हैं वह नियम यह हैं:—

आर्य्य-समाज लाहौर के नियम।

(१) सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

(२) परमेश्वर, सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्व शक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनंत, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्त-

यामी, अजर, अमर, अभय, नित्यपवित्र और सृष्टिकर्त्ता है उस की उपासना करना योग्य है।

(३) वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

(४) सत्य को ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करना चाहिये।

(६) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक, उन्नति करना।

(७) सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना चाहिये।

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करना चाहिये।

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में तत्पर रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

इसके पश्चात् आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन होने आरम्भ हुए। एक दिन स्वामी जी ने अपने व्याख्यान में कहा कि वैदिक धर्म के प्रचार का महान कार्य हमारे इस जीवन में पूरा न होगा तो हम द्वितीय जन्म में इस कार्य्य को पूरा करेंगे इस से स्वामी जी का गम्भीर धैर्य व साहस भली प्रकार विदित होता है। स्वामी जी महाराज आर्यसमाज अनारकली में व्याख्यान

दिया करते थे। एक दिन सब सभासदों की सम्मति से बाबू शारदा प्रसाद ने सर्व साधारण के इजिलास में यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि स्वामी जी को समाज की ओर से रक्षक व शिक्षक का विशेष पद दिया जावे। सब सभासदों ने इस बात को स्वीकृत किया। उस समय स्वामी जी ने हंसकर कहा कि इस शब्द से गुरुपन की गन्ध आती है और मेरा उद्देश्य गुरुपद आदि पन्थों के तोड़ने का है न कि मैं स्वयम् गुरु बनकर एक नवीन पन्थ स्थापन करने का आरम्भ करूं। इसके अतिरिक्त इस पदवी को स्वीकार करने पर यदि मुझे अभिमान आजावे या मेरे स्थानापन्न को अहंकार हो जावे तो फिर तुम्हारे लिये बड़ी कठिनाई होगी और वही कुदशा भोगनी पड़ेगी जो अन्य नवीन मतवालों को उठानी पड़ती है। इस लिये यह कदापि नहीं होना चाहिये। इस पर उक्त बाबू ने फिर हठ किया और कहा कि आप इस समाज के परम सहायक पद को ग्रहण कीजिये उन्हों ने कहा कि यदि मैं परम सहायक बना तो ... जगदीश्वर जगत् गुरु को तुम क्या कहोगे इस लिये यदि ऐसा ही है तो मेरा नाम समाज के सहायकों में लिख लीजिये। मुक्त समाज के रिसाला बिरादर हिन्द ने १ जौलाई को जो स्वामी जी के विषय में लिखा है उसका संक्षेप हम यहां लिखते हैं "इन के विचार बहुत गम्भीर और इनका मस्तक बहुत शुद्ध है जिस के कारण यह देश की उन्नति धार्मिक बल से करना चाहते हैं। यह मूर्तिपूजादि पौराणिक रीतों को (जिन से इस देश की अधोगति हो रही है) जड़ पेड़ से उखाड़ने के लिये यत्न करते हैं अर्थात् प्रत्येक प्रकार की मूर्तिपूजा को मिटा परमेश्वर की स्तुति करना बतलाते हैं। मुख्य कथन यह है कि यह महाशय देश की मूर्खता और द्वेषानल को दूर कर विद्या को फैला वैदिक रीति से कार्यों के प्रचार कराने में उद्यत हैं। औरित पत्र कोहनूर ने २८ जौलाई सन् १८७७ को यह प्रकाशित किया कि प्रथम दो तीन मास जो स्वामी दयानन्द सरस्वती जी उपदेश करते रहे उनके सुनने से मनुष्यों के चित्तों में जाति प्रेम इतना उमड़ा कि उन्हों ने २४ जून को आर्यसमाज स्थापन कर लिया अब इस समाज के अनुमान ३००, सभासद हैं और दिन प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं इस समाज का मुख्य उद्देश्य आर्य धर्म और वेदों की उन्नति और प्रचार करना है इसी विचार की पूर्ति के लिये अब एक पाठशाला संस्कृत और वेदों की शिक्षा के लिये खोली गई है। जिस में १०० विद्यार्थी विद्याध्ययन करते हैं यह सब स्वामी जी के आगमन का फल है। इतिहास के देखने से प्रगट प्रकट होता है कि २५०० वर्ष में स्वामी शङ्कराचार्य के पीछे कोई वेदवक्ता ऋषी, उपदेशक उत्पन्न नहीं हुआ जो सत् मार्ग बतलाता। यह

अत्यन्त प्रसन्नता का अवसर है कि स्वामी जी सन्मार्ग पर चलाने के लिये पूर्ण रूप से कटिबद्ध हो रहे हैं पे आर्य धर्म के अनुयाइयो ! उस घटा की निद्रा से अब क्यों नहीं जाग्रत होते। देखो धन्य है ईश्वर सच्चिदानन्द कृपालु को कि जिसने वेदों का संस्कार प्रकट किया और धन्य है आर्य लोग ! जो वेद के अनुयायी हुये वह वेद की शिक्षा के बल से बलवान और गुण से गुणवान हो प्रसन्नता से अपना समय व्यतीत कर भ्रातृभाव से बर्ताव करते थे जिस की यह पूर्ण साक्षी है। आदि सृष्टि संसार से राय पिथौरा के राज्य तक कोई अन्यजाति इस आर्यवर्त पर चढ़ाई न कर सकी। परन्तु पे भाइयो ! जब से इस जाति ने अविद्या के कारण फूट में उन्नति की। उसी समय से महमूद गजनवी आदि ने चढ़ाई की और अन्त को शहाबुद्दीन इस देश का राजा हो गया। जिस फूट का अंतिमफल यह हुआ कि हमारे वैदिक धर्म कर्म और वेद सब लोप होगये और वेद की शिक्षा तो ऐसी गुप्त होगई कि यदि हम दीपक लेकर भी ढूंढें तो कहीं भी उसका खोज नहीं मिलता, परन्तु परमेश्वर सर्व शक्तिमान् ने अपनी कृपा से इन लोगों की दुर्दशा देख कर **स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज** को उत्पन्न कर उन के हृदय में ईश्वर पूजा और वेद सिखलाने का बीज आरोपण किया और सामर्थ्य दी कि मनुष्य को मूर्ति और थोथी पूजाओं से हटाकर सब समुदाय को सत्य मार्ग पर लावें। हम स्वामी जी के अत्यन्त कृतज्ञ हैं कि जिन्हों ने घतौर क्लेश उठाकर वेदों की शिक्षा ग्रहण कर हमारे सन्मार्ग दिखलाने के लिये अपने अमूल्य जीवन को हमारे समर्पण किया जिससे आशा है कि जैसे २ वह यत्न और उपाय कर रहे हैं यदि सब भारतवर्ष मिल कर मान्य करें तो एक दिन में ही निर्धनता और अविद्या की नाव पार हो जावे और फिर वही वेदोक्त धर्म कर्म और ईश्वरीय पूजन (जो किसी समय में ऋषीश्वर मुनीश्वर किया करते थे) प्रचलित होजावे। परन्तु शोक तो इस बात का है कि बहुधा लोग आप मूर्खता के कूप में गिरकर चकनाचूर हो औरों को भी निकलने से रोक रहे हैं। मित्रों अब सत धर्म और सच्चे परमेश्वर की उपासना में लगकर मनुष्यमात्र को सन्मार्ग की शिक्षा दो। पे भ्रातृगणों ! मेरी सम्मति यह है कि फूट को जड़ को एक साथ उखाड़ कर वेदों की शिक्षा को सर्वत्र फैलाओ जैसा कि स्वामी जी महाराज ने उपदेश किया है। मित्रो ! उसी के अनुकूल चलने से हमारी मुक्ति हो सकती है। स्वामी दयानन्द जी लाहौर में आर्यसमाज नियत कर कई बार समय २ पर पंजाब के अन्य नगरों में भी उपदेश के लिये जाते रहे इधर इस समाज के सभासद अनेक प्रकार से उन्नति करने में लगे रहे, यहां तक २२ जोलाई १८७७ को लाहौर समाज ने एक संस्कृत पुस्तकालय खोला जिसके लिये लाला साईंदास स्वर्गवासी ने २००) दान किये उन्हीं दिनों में स्वामी जी के पास कई एक मनुष्य उपासना और प्राणायाम सीखने के लिये आया करते थे उन को

बहुत लाभ हुआ था। एक दिवस पादरी साहब मेम साहिब सहित स्वामी जी से मिलने गये वार्तालाप के मध्य में स्वामी जी ने कहा कि धन के अपरमित होने से भी जाति की कुदशा का कारण होता है जैसे आर्यजाति का हुआ ऐसा ही सब अङ्गरेजों का बिगड़ता जाता है। देखो प्रथम बहुधा अंगरेज वायु सेवन को जाया करते थे परन्तु इस समय बहुधा दिन चढ़े तक सोते रहते हैं। इसी स्थान पर मिर्जा फतहबेग और स्वामी जी के वार्तालाप हुई थी जिसमें स्वामी जी ने उनके प्रश्नों का पूरा २ उत्तर देकर यह सिद्ध करा दिया था कि वैदिक धर्म ही सच्चा और ईश्वरीय धर्म है।

एक दिन पण्डित रामरत्न जी ने स्वामी जी से यह प्रश्न किया कि सामवेद में भारद्वाज इत्यादि ऋषियों के नाम आते हैं इस से सन्देह होता है कि वेद बहुत पीछे ऋषियों ने बनाये थे। इस के उत्तर में स्वामी जी ने बहुत से कण्ठाग्र अर्थ सहित वेद मन्त्र "जिसमें भारद्वाज इत्यादिकों के नाम आते थे" सुनाकर कहा कि इन स्थानों पर यह नाम किसी मनुष्य अथवा ऋषि के नहीं हैं किन्तु इन्हीं स्थानों से ऋषियों के नाम रक्खे गये हैं अर्थात् वेदों के मुख्य अर्थों को न जानने से यह भूल हो रही है। इस से पण्डित जी की पूरी शांति हो गई। एक दिन विशप साहब स्वामी जी से आकर मिले और उन्हों ने प्रश्न किया कि वेद के ऋषियों को ईश्वर के विषय में कुछ ज्ञात न था कि वह कौन है। प्रमाण के लिये एक मन्त्र दिखलाया जिसका मूलराज ने अंग्रेजी में अर्थ पढ़कर सुनाया तब स्वामी जी ने कहा कि यह अर्थ अशुद्ध है इस लिये आप को शङ्का हुई इस का अर्थ यह है कि सर्वव्यापक परमात्मा की हम उपासना करते हैं फिर विशप साहब ने कहा कि बाइबिल का बड़प्पन देखिये कि उसका उपदेश सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त फैला हुआ है। स्वामी जी ने कहा कि यह भी वेद का कारण है हम लोग उस धर्म को छोड़ बैठे हैं आप लोग ब्रह्मचर्य, विद्याध्ययन, एक स्त्री सङ्ग, दूरदेश यात्रा, देश भक्ति, इत्यादि रखते हैं इस वास्ते इतनी उन्नति हो रही है हमारी जाति के भूल से ही यह आपकी उन्नति है, बाइबिल के कारण नहीं है।

स्वामी जी महाराज १२ अक्टूबर सन् १८७७ ई० को ब्रह्मसमाज के वार्षिकोत्सव पर दो तीन सौ सज्जनों सहित सम्मिलित हुये थे। और ६ नवम्बर सन् १८७७ को आर्यसमाज लाहौर की अन्तरङ्ग सभा ने जिसमें स्वामी जी भी विराजमान थे उपनियम बनाये जो इस समय भारतवर्ष की समाजों के उपनियम हैं।

अमृतसर में वैदिक धर्म प्रचार।

स्वामी जी महाराज ५ जौलाई सन् १८७७ को अमृतसर पधारे सर्दार दयालसिंह मजीठिये ने कोठी मियां मुहम्मदजान की में ठहराया। नगर

निवासी बड़ी रुचि और उत्साह से स्वामी जी के दर्शनों को आने लगे। प्रत्येक मनुष्य अपनी शंकाओं का समाधान करता। लोगों का प्रेम और उत्साह देखकर स्वामी जी ने व्याख्यान देने का आरम्भ कर दिया, जो १२ दिसम्बर तक होते रहे कभी २ यह अवसर पाकर वहां से लाहौर आर्यसमाज की पुष्टि के लिये चले आया करते थे। इन्हीं दिनों में स्वामी जी ने एक दिन घंटेघर में ठाकुर जन्म के विषय पर व्याख्यान दिया उस में कहा कि यह बात बनावट की है, लोग पत्थर को ठाकुर कहते हैं और अजन्मा का जन्म बतलाते हैं इस का वेद शास्त्र में कहीं पता नहीं, यह केवल भिक्षा मांगने वाले पेटार्थू लोगों ने लीलायें रची हैं इस व्याख्यान में नगरस्थ प्रतिष्ठित पुरुषों के अतिरिक्त असंख्य मनुष्य एकत्र थे जिस का प्रभाव यह हुआ कि बहुधा मनुष्यों की श्रद्धा मूर्ति पूजा से हट गई और सत्य वैदिक धर्म में उन की रुचि अधिक होने लगी यहां तक कि १२ अगस्त को सत् धर्म का बीज बोने के लिये मनुष्य उपस्थित हो गये। जिसमें बाबू शारदाप्रसाद भट्टाचार्य और लाला श्रीराम एम. ए. लाहौर से पधारे थे। प्रथम स्वामी जी ने हवन करा फिर उपासना कराकर उपदेश दिया तत्पश्चात् बाबू शारदाप्रसाद भट्टाचार्य का व्याख्यान हुआ इसके अनंतर आर्यसमाज की स्थिति और पचास महाशय उस के सभासद बने जब लोगों ने पौराणिक पण्डितों को लज्जित करना आरम्भ कर दिया तब उन्होंने अमृतसर के प्रसिद्ध पण्डित रामदत्त जी से निवेदन किया कि आप ही अब हमारी लज्जा को रखिये अर्थात् स्वामी जी से शास्त्रार्थ कर हमारी आजीविका की रक्षा कीजिये तब श्रीमान् ने स्पष्ट कह दिया कि मेरी सामर्थ्य नहीं है कि मैं स्वामी जी से शास्त्रार्थ कर सकूं परन्तु जब उन्हों ने न माना तो पण्डित जी हरिद्वार को चले गये। एक दिन पण्डित बिहारीलाल एकस्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर ने स्वामी जी से प्रार्थना की थी कि यदि आप मूर्तिपूजा का खण्डन न करें तो यहां सब जन आप के सहायक हो जावें इस पर स्वामी जी ने स्पष्ट कहा कि मैं सत्य को हाथ से नहीं दिया चाहता मुझ को किसी पुरुष की सहायता की आवश्यकता नहीं मेरा काम यही है कि मैं स्वयम् वेदों की आज्ञा को मान और अन्य भाइयों को पालन कराऊं।

द्वितीय पण्डित तुलसीराम जी स्वामी जी से बाजार में मिले और उनको गाड़ी से उतार अपनी बैठक में लेजाकर उनकी बड़ी स्तुति कर कहा कि आप विद्या के सूर्य हैं मेरी आत्मा आपको धन्यवाद देती है ऐसा कहकर मिश्री के कूजे और २) भेंट दे बड़ी नम्रता से स्वामी जी को विदा किया जिस की चर्चा सम्पूर्ण नगर में फैलगई। स्वामीजी के उपदेशों में सर्व साधारण मनुष्यों के अतिरिक्त प्रतिष्ठित पुरुष भी आया करते थे समस्त नगर के प्रत्येक घर २ में स्वामी जी के धर्म उपदेश की चर्चा फैल रही थी यहां तक कि एचपरकेन्स साहिब कमिश्नर अमृतसर को मिलने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। स्वामी जी

लाला गुरमुखराय जी वकील के कहने पर उक्त साहिब से मिलने को गये वहां निम्न लिखित वार्तालाप हुई कमिश्नर साहब—ने कहा कि हिंदुओं का मत क्यों सूत के धागे के समान कच्चा है स्वामी जी ने कहा कि यह मत सूत के धागे के समान कच्चा नहीं है परन्तु लोहे से भी बढ़कर पक्का है लोहा टूट जाय तो टूट जाय परन्तु यह कभी नहीं टूटता कमिश्नर साहब ने कहा कि आप कोई उदाहरण दें तो विश्वास हो सकता है। स्वामी जी ने कहा कि हिंदू धर्म समुद्र समान है जिस प्रकार उसमें अगणित लहरें आती हैं। इसी भांति इस धर्म के असंख्य मत हैं देखिये एक यह मत है जो छान २ कर पानी पीते हैं जिससें सूक्ष्म जीव पेट में न चले जावें। एक मत में केवल दूध ही पीते हैं। एक वाममार्गी मत है जो पवित्र व अपवित्र के बिना विचारे सब का भक्षण करते हैं। एक मत ऐसा है जो आयु पर्यंत जितेन्द्रिय रहते हैं। एक मत ऐसा है जो अन्य स्त्रियों से बुरा काम करते हैं। एक मतवाले निराकार को पूजते हैं। एक अवतारों को मानते हैं। एक ज्ञानी। एक ध्यानी। एक शूद्रों के हाथ का जल तक नहीं पीते। एक शूद्रों से भोजन बनवाकर खाते हैं। इस पर भी सब हिंदू कहलाते हैं। और कोई उन को हिंदू धर्म से निकाल नहीं सकता अब कहिये कि हिंदू मत पक्का कि कच्चा। कमिश्नर साहब आप किस प्रकार का मत बढ़ाना चाहते हैं स्वामीजी हम केवल यह चाहते हैं कि मनुष्य वेद की आज्ञा का पालन करें और निराकार अद्वितीय की पूजा और उपासना, शुभगुणों को ग्रहण करें और अवगुणों को छोड़ें। इस नगर में लाला मनसुखराय का पुत्र जो किसी को अपना गुरु नहीं बनाना चाहता था जब उस ने स्वामी जी के उपदेश सुने तब तो उन्हीं से दीक्षा ली और गुरु मन्त्र पूछा उन्हों ने कहा कि गायत्री ही गुरु मन्त्र है।

द्वितीयवार १५ मई सन् १८७८ से ११ जोलाई सन् १८७८ तक

द्वितीयवार स्वामी जी रावलपिंडी आदि नगरों में उपदेश करते हुए १५ मई को अमृतसर पधारे और सरदार भगवानसिंह के बाग में निवास कर मलोई बंगलों में व्याख्यान देने का आरम्भ कर दिया। एक नोटिस नगरस्थ पण्डितों को दिया था कि यदि मेरी कोई बात वेद विरुद्ध आप समझते हो तो आकर निर्णय करलीजिये नहीं धर्म कार्य्य में सहायता कीजिये। इस में कई दिन तक तो परस्पर नियम और शास्त्रार्थ की निश्चिन्ती के लिये नोटिस निकलते रहे अन्त को सर्दार भगवानसिंह का तबेला नियत हुआ। पांचसहस्र मनुष्य शास्त्रार्थ देखने और सुनने के लिये आये जब शास्त्रार्थ का समय व्यतीत होगया तो स्वामी जी ने व्याख्यान देना स्वीकार किया। इतने में बाबू मोहनलाल वकील आये और उन्हों ने कहा कि मैं पण्डितों का वकील हूं यह भी

आना चाहते हैं बड़ी धूमधाम से जै २ शब्द करते हुए सभा में पधारे। प्रथम पण्डित चन्द्रभानु को शास्त्रार्थ के नियम दिये उन पर वाद विवाद होने लगा और दुष्टों ने ईंट ढेले फेंकने आरम्भ कर दिये। स्वामी जी बच गये परन्तु ईंट और रोड़ों ने सभा को छिन्न भिन्न कर दिया और कुछ झगड़ा पढ़ा जो कठिनाई से रोका गया। द्वितीय दिन बाबू मोहनलाल को विज्ञापन दिया उन्हों ने लिखा कि मैं उसी समय का वकील था अब कुछ सम्बन्ध नहीं पण्डित आपस में झगड़ते हैं शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते। इस के पीछे स्वामी जी २० दिन तक रहे और कोई शास्त्रार्थ को न आया तब सब वृत्तान्त मुद्रित कराकर वितीर्ण किया गया इस के अतिरिक्त इस नगर के पादरियों ने मिस्टर जहन सिंह को बुलाया जो स्वामी जी के सन्मुख जाते ही उन के पक्ष की पुष्टि करने लगे तब उन्हों ने डाक्टर के. एम. वेनरजी के लिये कलकत्ते को तार दिया उन्हों ने स्वीकार कर लिया परन्तु लड़की की बीमारी का बहाना कर न आये इस पर बहुत से मनुष्य ईसाई धर्म को छोड़ कर समाज के मेम्बर होगये। एक पादरी ने स्वामी जी से कहा था कि हम और आप एक मेज पर खावें इस से प्रेम बढ़ेगा स्वामी जी ने कहा कि यदि यह सत्य है तो शिया, सुन्नी, रूसी और इंगलैण्डवाले और तुम और रोमन कैथलिक एक मत के होकर एक मेज पर खाते ही तो भी तुम एक दूसरे के शत्रु हो फिर हम से और दूसरे धर्मवालों से क्योंकर प्रीति होसकी है। पादरी साहब चुप हो गये।

कवि वचन सुधा नंबरी ३९ ता० १७ जून में स्वामी जी के विषय में जो लेख मुद्रित हुआ है हम उस का संक्षेप लिखते हैं।

स्वामी जी पंजाब के मुख्य नगरों में भ्रमण कर उपदेश कर रहे हैं मैं ने उन के कथित वाक्यों को सुना तो प्रकट हुआ कि पुराण और तान्त्रिक ग्रन्थों को अप्रमाणीक मानते हैं प्रतिमापूजन को अकर्त्तव्य कर्म ठहराते हैं वेद का अधिकार सब को देते हैं इन की वक्तृता बुद्धि और युक्ति पूर्वक होती है जिस नगर में वह जाते हैं कुछ न कुछ मनुष्य उन की ओर चले जाते हैं मुझे इस का बड़ा शोक है कि सनातनधर्म के बड़े २ पण्डित उनकी बातों का वेद से कोई प्रमाण नहीं देते और राजा लोग भी इस की ओर कुछ ध्यान नहीं देते फिर बताओ धर्म क्यों कर बचे।

गुरदासपुर के समाचार।

स्वामी जी के व्याख्यानों की प्रशंसा डाक्टर बिहारीलाल जी असिस्टेंट सरजन के द्वारा सुन लाला हंसराज साहिनी व लाला गुरुचरणदास जी को अति अभिलाषा उन के दर्शनों और व्याख्यानों के सुनने की हुई इस लिये उप-

रोक तीनों सज्जनों ने स्वामीजी को गुरदासपुर लाने के लिये यत्न किया जिस पर वह १८ अगस्त को गुरदासपुर में, ठाकुर साहिब के स्थान पर सुशोभित हो प्रति दिन व्याख्यान देने लगे। जिस में, एक सहस्र के लगभग प्रतिष्ठित, पदाधिकारी और साधारण पुरुष रुचि पूर्वक सम्मिलित होते और व्याख्यान के उपरान्त बहुधा मनुष्य शङ्का समाधानार्थ स्वामी जी के पास आया करते थे। स्वामी जी के मूर्ति पूजादि के खण्डन से अप्रसन्न हो कर मियां हरीसिंह और शेरसिंह मूर्तिपूजकों ने "जो उन दिनों पदाधिकारी थे" स्वामी गणेशगिरि प्रसिद्ध विद्वान् जी से शास्त्रार्थ के लिये कहा जिन्हों ने उसके उत्तर में कहा कि हम साधु और विरक्त हैं हम को शास्त्रार्थ से क्या प्रयोजन और न मैं उनके योग्य हूं इस पर भी जब उनको बहुत छेड़ा तो उन्हों ने येहकह कह दिया कि यदि हमको क्रोधित करोगे तो यहां से चले जावेंगे पुनः उक्त सर्दारों ने पण्डित लक्ष्मीधर व पण्डित दौलतराम को दीनानगर से बुलाया और वह व्याख्यान में पधारे उस समय स्वामी जी शिवपुराण के खण्डन पर व्याख्यान कर रहे थे उसमें उन्हों ने महादेव के लिङ्ग के बढ़ाने की कहानी "जिसको ब्रह्मा विष्णु उसके नापने को दौड़े" सुनाई थी। व्याख्यान को बीच ही से समाप्त कर विपक्षी पंडितों से शास्त्रार्थ होना प्रारम्भ हुआ और उन्हों ने गणानांत्वा इत्यादि मन्त्र पढ़कर कहा कि इस से गणेशपूजा सिद्ध होती है स्वामी जी ने कहा किसी भाष्य का प्रमाण दीजिये। तब उन्हों ने महीधर भाष्य का नाम लिया स्वामी जी ने उसको निकालकर और उसके घृणित भाष्य को सुनाकर कहा कि इस से मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं होती और न गणेश पूजा फिर उन्हों ने सनातन निरुक्त आदि के प्रमाण से उसके शुद्ध अर्थों को सुनाकर कहा कि यहां मूर्तिपूजा से कोई सम्बन्ध नहीं है जिस पर उक्त सरदार लोगों ने अप्रसन्न हो कर कहा कि अंग्रेज़ी राज्य है नहीं तो कोई आपका सिर काट डालता। परंतु वह धर्मवीर "जिसकी नसों के भीतर धर्म का रक्त उमग रहा था" निर्भय होकर खण्डन करता रहा। ठाकुर बिहारी लाल जी को भी जोश आगया जिससे परस्पर विवाद हो गया और ९ बजे रात के सभा विसर्जन हुई एक दिन श्राद्ध खण्डन करते हुये स्वामी जी ने कहा कि ब्राह्मण पितरों को तिल और जौ देते हैं और आप खीर और लड्डू उड़ाते हैं फिर किसी दूसरे व्याख्यान में उन्हों ने यह भी कहा कि हिन्दू तो सिर्फ एक छोटी सी गुड़िया को पूजते हैं और मुसल्मान उससे बड़े मूर्ति पूजक हैं अर्थात् बिल्ली को पूजते हैं क्योंकि सालिग्राम एक छोटी सी वस्तु है और मक्के का बुतखाना बहुत बड़ा है। इस स्थान पर स्वामी जी के व्याख्यानों का यह प्रभाव हुआ कि धर्मोत्साही सुजनों ने स्वामी जी की उपस्थित ही में २४ अगस्त सन् १८७७ को आर्यसमाज स्थापन कर लिया जिसके प्रधान मुन्शी सूर्यशरण मुन्सिफ और मंत्री दीवान कृष्ण

वास नियत हुए। स्वामी जी यहां से चल पट्टिवाले में एक घन्टा ठहर कर अमृतसर को चले गये।

जालंधर समाचार।

जब स्वामी जी बम्बई में सुशोभित थे तब सर्दार विक्रमासिंह व सर्दार सुचेतसिंह स्वामी जी से मिले थे और दर्बार कैसरी में उक्त सर्दारों ने स्वामी जी से पञ्जाब में पधारने और सदुपदेश के लिये निवेदन किया था। स्वामी जी प्रथम बार १ अप्रैल को जालन्धर आये और सर्दार सुचेतसिंह की हवेली में एक रात्रि निवास कर लाहौर की ओर चले गये। द्वितीयबार १३ सितम्बर सन् १८७७ तदनुसार भादों ६ सम्वत् १९३४ को अमृतसर से चलकर जालंधर में सर्दार सुचेतसिंह की कोठी में उतरे। प्रातः सृष्टि उत्पत्ति पर व्याख्यान हुआ जिसमें उन्हों ने यह भी वर्णन किया था कि सृष्टि की आदि में प्रथम तरुण पुरुष उत्पन्न हुये थे यदि वह बालक और वृद्ध बनाता तो काम न कर सके। इस व्याख्यान में मनुष्यों से सब छत और सहन भर गया था इस लिये दूसरे दिन से सर्दार विक्रमासिंह की हवेली में व्याख्यान होने लगे। इस नगर में स्वामी जी ने अनुमान ४० व्याख्यान आवश्यक विषयों पर दिये। एक बार स्वामी जी ने राजा और पुरोहित का दृष्टान्त इस प्रकार से दिया कि एक राजा का मन बैंगन खाने को चला। पुरोहित ने कहा कि महाराज बड़ी उत्तम वस्तु है देखिये रंग श्याम कृष्ण की भांति, मुख में बांसुरी सिरपर मोर मुकुट, और नाम कैसा कि बादुगुन राजाजी अत्यंत प्रसन्न हो खाने लगे यहां तककि खून आने लगा और बवासीर होगई जिससे उनकी दशा कुदशा होगई और कहने लगे कि पुरोहित जी बैंगन तो बड़ी बुरी वस्तु है। पुरोहित जी ने कहा कि महाराज आप सच कहते हैं। देखिये इसका रंग काला मानों हब्शी या भङ्गी, सिर पर खूंटी, कांटों का मुकुट अत्यंत बुरी दशा, बीज ऐसे जैसे किसी को कोढ़ हो जाय नाम भी बहुत बुरा अर्थात् बेगुन। एकबार किसी की मिठाई का उदाहरण देकर कहा कि तुम भाव क्या पूंछते हो आये जाओ यही दशा झूंठके प्रचार की है। इसीप्रकार अंधेर नगरी का दृष्टांत दिया कि जिसमें चोरके बदले मूर्खराजा को फांसी मिली और "अंधेर नगरी चौपट राजा टकासेर भाजी टकासेर खाजा"। मुक्ति के व्याख्यान में यह भी कहा था कि लोग कहते हैं कि जीव ब्रह्म एक हो जाते हैं यह ठीक नहीं है पिता और पुत्र का संबंध होजाना ही मोक्ष है मोक्षमें जीव आनन्द भोगता है और एक कल्प के पश्चात् आकर जन्मलेता है और परस्वार्थ करता है और कृष्ण इत्यादि भी मोक्ष से लौटकर आये थे। मद्य और मांस के खंडन करते समय उन्होंने बतलाया था कि इस के खान पान से परमाणु बिगड़ जाते हैं जिस से आत्मा और शरीर दोनों की हानि होती है वह योग विद्या में पूर्ण उन्नति नहीं करसकें और न उनको कोई सिद्धि प्राप्त हो सक्ती है अर्थात् वह ईश्वरी पूर्ण ज्ञान से वंचित रहते हैं इस कारण ऐसी

हानि कारक वस्तु को कदापि न खाना चाहिये। एक दिन एक राजा की कहानी भी सुनाई थी कि वह देहली गया था वहां उसे एक मनुष्य मिला कि महाराज मुझे एक ऐसा वस्त्र बनाना आता है कि जो उसे पहिने वह किसी को दृष्टि न आवें परन्तु जो हराम का होगा उस को दृष्टि आयेगा। राजा ने कहा कि क्या लेगा उस ने कहा कि बीस हजार। अन्त को दस हजार ठहरे पांच हजार पहिले लेलिये और कई महीने में वह वस्त्र बने। राजा ने उस को बुलाकर कहा कि लाओ उत्तर दिया कि लाया हूं राजा साहिब ने कहा कि हमको वह वस्त्र दृष्टि नहीं आते तब उसने उत्तर दिया कि महाराज यदि दृष्टि ही आजावें तो उन की प्रशंसा ही क्या है। आप भीतर चलें मैं पहिनाये देता हूं भीतर लेजाकर राजासाहिब के सब कपड़े उतरवा कर नंगा कर दिया और फिर झूंठ मूंठ पगड़ी कुरता, पायजामा, दुपट्टा, कद २ कर सब वस्त्र पहिना दिये इस प्रकार बिल्कुल नंगे राजा साहिब कचहरी में आये। एक मंत्री ने "जो बुद्धिमान् था" जब देखा तो बहुत लज्जित हो कहा कि यदि किसी राजा का दूत आजावे तो क्या कहेगा तब वजीर ने राजा से कहा कि सब वस्त्र दिल्ली के पहिने रहिये केवल लंगोटी देशी पहिन लीजिये कि जिस से यह नंगापन बुरा न मालूम हो राजा साहब ने कहा कि क्या हम नंगे हैं ? उसने कहा कि हां श्रीमान्। तब राजा साहब ने बड़ी कठिनाई से स्वीकार किया और कहा कि उस ठग ने हमें धोका दिया यही दशा आज कल के राजाओं की है।

एक दिन एक व्याख्यान में पण्डित श्रद्धाराम फल्लोरी कंठी और तिलक लगाये हुए बैठे थे स्वामी जी ने कहा कि एक पटोही मार्ग में मर गया कौवे ने उस के माथे पर बीट कर दी उधर यमदूत आये इधर विष्णु के गण इन में झगड़ा हुआ अन्त में विष्णु के गण उस को बैकुण्ठ ले गये भला जब इन कण्ठी तिलकों से पुलिस का सिपाई तो डरता ही नहीं फिर यमदूत कैसे डर गये। इस पर श्रद्धाराम जी ने अप्रसन्न होकर ठाकुरद्वारे में व्याख्यान दिया और कहा कि जैसे कोई बच्चों को लड्डू देकर उन के आभूषण उतार लेता है इसी भांति स्वामी जी ठगते हैं। एक दिन व्याख्यान देते समय एक शंख और घड़ियाल बजा तब उन्हों ने कहा कि देखो यह औरतों के बुलाने का बिगुल है साधू लोग बच्चों को परसादी का स्वाद व बर्फी की चाट डाल देते इस लिये जब घड़ियाल बजता है तो बच्चा कहता है कि मा चल आरती देखें घड़ियाल सुनें परन्तु उस बच्चे को यह हाल नहीं कि वहां मां की क्या दुर्दशा होगी।

एक दिन के व्याख्यान में जब कि राजा विक्रमसिंह जी बैठे हुए थे स्वामी जी ने कहा कि जो राजा होकर कंजरी (रंडी) रखता है वह कंजर है इस पर राजा साहब ने स्वामी जी से एकान्त में कहा कि आपने तो हम से

भी कहा स्वामी जी ने उत्तर दिया कि हम तो सब से स्पष्ट कहते हैं धर्म के विषय में पक्षपात करना ठीक नहीं। मृतक श्राद्ध खण्डन करते हुए कहा था कि अग्निष्वात्ता इत्यादि शब्दों के अर्थ यदि अग्नि से जले हुए के माने जावें तो यह ठीक नहीं सके इसी प्रकार जो चौबीस वर्ष तक विद्या पढ़े वह पिता और तैंतीस वर्ष तक शिक्षा पावे वह पर पितामह और जो ४८ वर्ष तक शिक्षा पावे वह परपिता कहाते हैं। देखो (मनुस्मृति अ० ३) इस लिये यह तीनों जीते हुओं के नाम हैं मरे हुओं के नहीं। इस के उपरान्त जब पिंड की वेदी बनाते हैं तब उसके और पास निम्नलिखित मंत्रपढ़ लकीर फेरदेते हैं

ये रूपाणि प्रति मुंचमाना असुराः सन्तःस्वधाचरंति परापरो निपरो अग्निष्टान् लोकात् प्रणुदात्यस्मात् प्राणाः हिनः॥

जिसका प्रयोजन यह है कि भूत प्रेत उस के निकट न आवें परन्तु विचार दृष्टि से नहीं देखते कि भूत प्रेत हो कोई वस्तु नहीं फिर निकट कौन आता है इस के अनन्तर इस मन्त्र के पढ़ने से मक्खी तक नहीं उड़ती तो भूत प्रेत क्यों उड़ जाते हैं इस लिये यह सब मिथ्या है। पितृ शब्द के अर्थ व्याकरण की रीति से पालन और रक्षा करने वालों के हैं। जो जीवित हो पुरुषों में घट सके हैं। एक दिन काशी की विचित्र लीला का अच्छे प्रकार खण्डन कर उस की दुर्दशा को दर्शाया बहुधा लोग जो कहते हैं कि पंच कोश के किये हुए पाप अमुक स्थान पर और अमुक स्थान के पाप अमुक मंदिर में और वहां के शिवायनमः कहने से दूर हो जाते हैं यह महा गप्प है। पाप शुद्ध संकल्प और तप करने और फल भोगने से दूर होते हैं। लाला हरनरायन व बा० हंसराज जी ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि आप ईश्वर को निराकार मानते हैं। परन्तु वेद पुस्तक लेखनी दावात की स्याही और वाणी के बिना रचे नहीं जाते तो फिर ईश्वर ने किस प्रकार बनाये। स्वामी जी ने कहा कि तुम अपने चित्त में कुछ पढ़ो उसने पढ़ा स्वामी जी ने कहा तुम तो पढ़ सकते हो तो क्या ईश्वर ऐसा भी नहीं कर सकता। २४ सितम्बर को सात बजे प्रातः अहमदहुसैन मौलवी का शास्त्रार्थ उक्त सर्दार जी के सन्मुख हुआ जिस का सम्पूर्ण वृत्तान्त मिर्जा मुहम्मद प्रोप्राइटर सम्पादक वजीरहिन्द ने पुस्तकाकार छपवा दिया है।

छावनी फीरोजपुर।

यहां की हिन्दू सभा के सभासद बाबू रघुवंशसहाय ने लाहौर से आकर कहा कि एक स्वामी जी लाहौर में आये हैं जो मूर्तिपूजा का खण्डन और वेद शास्त्र का बड़प्पन सम्पूर्ण मतों की माननीय पुस्तकों से सिद्ध करते हैं। इस लिये वहां के विद्वान लोग उन की ओर होते चले जाते हैं। क्या अच्छा हो कि यह

सभा भी उन्हीं के नियमों पर कार्य करना आरम्भ कर दे। लाला मथुरादास जी प्रधान सभा को स्वामी जी के दर्शनों की बड़ी अभिलाषा हुई उन्हों ने गोविन्दलाल, कायस्थ को लाहौर स्वामी जी के लेने को भेजा वह २६ अक्टूबर को फीरोजपुर आये और लाला बिहारीलाल की कोठी में ठहरे। जहां उन के आठ व्याख्यान बड़ी उत्तम रीति से हुये। उन में उन्हों ने यह उदाहरण भी दिया था कि एक राजा के यहां एक कोठारी जी थे जो कोई पण्डित राजा के समीप जाना चाहतातो वह प्रथम कोठारीजी के पास जा कर सहायता मांग उनसे कहता कि मैं कुछ पढ़ा लिखा नहीं हूं तब कोठारी जी कहते कि इसकी कुछ आवश्यकता नहीं अपना भाग ठहराकर कह देते जो तुम्हारे मन में आवे सो कह कर जप करो। परन्तु गोमुखी और माला अवश्य होनी चाहिये उसने इन दोनों वस्तुओं को ले एक स्थान पर बैठकर "राजा का जप करूं" यह कह कर जप करने लगा इस भांति दूसरा पण्डित भी वहां पहुंचा और उसके जाप को सुन यह "जो तू करे सो मैं करूं" जपने लगा फिर तीसरा विद्वान् पंडित वहां पहुंचा दोनों के जप को सुन चकित हो यह कहना आरम्भ किया "यह बनेगी कब तक" फिर चौथे भी पहुंचे और उन्हों ने कहा "जब तक बनेगी तब तक" यह कहकर बताया कि वर्तमान समय के ब्राह्मणों की ऐसी कुदशा हो रही है जो यथार्थ में जानते भी हैं वह अविद्या में फंसे चले जाते हैं स्वामी जी के व्याख्यानों का फल यह हुआ कि हिन्दू सभा आर्यसमाज के नाम से रीत्यानुसार कार्य करने लगी। एक दिन व्याख्यान देने के पश्चात् स्वामी जी ने नियमानुसार सर्व सज्जनों को सूचना दी जिस किसी को कुछ शङ्का हो तो करके निवृत्त करले अथवा कोई महाशय कुछ पूछना चाहें तो पूछलें। परन्तु कोई न उठा। तब महतीराम दफ्तरीनेखड़े होकर कहा कि ज्ञान कर ज्ञान को खंडन कर लेख चौगान मैदान में इतने में स्वामी जी ने कहा अब इस का अर्थ करलो फिर आगे को पढ़ना। वह अर्थ करने में सकुचा तब स्वामी जी ने कहा कि प्रथम कुछ लिख पढ़ फिर लिखा पढ़ा सब भूल मैदान में जा गिल्ली डंडा खेला कर। इस को सुन महतीराम लाल पीला हो बोला कि आप ने चाहे कितनी विद्या पढ़ली हो परन्तु अभी आप संतों के रहस्य को नहीं समझते। फिर उसने स्वामी जी से पूछा कि आप का गुरू कौन है ? उन्हों ने कहा कि वेद। जिसको सुन वह चुप होकर बैठगया। एक दिन रघुनाथ पुजारी स्वामी जी के पास गये उन्हों ने कहा कि पुजारी शब्द का अर्थ करो वह कुछ न बोला तब स्वामी जी ने कहा कि यह शब्द पूजा और अरी से मिलकर बना है जिस के अर्थ पूजा के शत्रु हैं। फिर रघुनाथ ने कहा कि महाराज सब शास्त्र वेद के सहारे से बने हैं। स्वामी जी ने कहा कि ठीक है परन्तु जिस प्रकार थैली के रुपये खरे और खोटे का जानना सर्राफ का काम है इसी प्रकार सत असतका निर्णय करना विद्वानों का काम है।

रावलपिण्डी—स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यान लाहौर नगर में राय बहादुर सरदार सुजानसिंह साहब रईस रावलपिण्डी ने सुन अपने नगर में जाकर नामधारी संस्कृतज्ञों से चर्चा किया था कि लाहौर में उपरोक्त नाम के एक ऐसे महात्मा आये हैं जो वेद शास्त्रों से मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध का खण्डन करते हैं जिसको सुन लोगों ने सरदार साहब से कहा कि ऐसा हो नहीं सका यह बातें सनातन चली-जाती हैं जिस पर सरदार साहब ने कहा कि यदि आप को इस के सिद्ध करने की योग्यता है तो आप प्रमाण सहित लिखकर हमको दे दीजिये हम स्वामी जी के पास भेजदेंगे निदान कुछ पुराणों के श्लोक लिख कर सरदार साहब को दिये जिस को उन्हों ने स्वामी जी के पास भेज दिया स्वामी जी पढ़कर हंसे और सरदार साहब को लिख भेजा कि हम स्वयं आकर उत्तर देंगे। निदान स्वामी जी ७ नवम्बर को रावलपिण्डी पहुंच सेठ जस्सामल की कोठी में उतर, व्याख्यानों का प्रारम्भ कर दिया और सब बाईस व्याख्यान हुए पौराणिक पण्डितों ने नगर में यह प्रसिद्ध कर दिया कि यह सब को ईसाई करने के लिये आये हैं इस पर भी जब कुछ न बना तो उक्त पारसी सेठ को भड़काया जिस के समाचार प्रथमही स्वामी जी को भी ज्ञात होगये इस लिये. स्वयं उस मकान को छोड़कर सरदार सुजानसिंह के बाग़ में जा ठहरे। कनखल की गद्दी के महन्त साधु सुपन्तगिरि भी उन दिनों में यहां ही उपस्थित थे लोगों ने इन से शास्त्रार्थ के लिये कहा महन्त जी ने कह दिया कि स्वामी जी वेदवक्ता हैं जो वह कहते हैं हम नहीं कह सक्ते। एक दिन स्वामी जी ने कहा कि मेलों में हिन्दू भाई जाकर ईसाई आदि की बातें सुनकर लज्जित हो जाते हैं परन्तु शोक इतना ही है कि वह अन्य मत वालों की पुस्तकें नहीं देखते। देखिये ब्रह्मा के लिये अपनी बेटी के साथ कुकर्म करने को कहा जाता है जो किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में नहीं लिखा परन्तु बाइबिल में लूत पैग़म्बर का अपनी बेटियों से व्यभिचार करने का वर्णन है यदि यह जानें तो पादरी और मुसल्मान कभी भी बात नहीं कर सक्ते। एक पादरी को यह सुनकर बहुत बुरा लगा दूसरे दिन स्वामी जी से आकर कहा कि जो आपने कल कहा था वह झूंठ है स्वामी जी ने कहा कि क्या अच्छा होता यदि तुम घर में दीपक जलाकर अपनी चारपाई की दशा को देख लेते परन्तु वह इस पर भी न समझे। तब बाइबिल मँगा कर पैदायश बाब १०. आयत ३० से लेकर ३८ तक अच्छे प्रकार दिखलादी।

इसी स्थान पर महाराजा काश्मीर का निमन्त्रण पत्र स्वामी जी के नाम आया था, जिस में उन्हों ने बड़ी विनय के साथ अपने राज्य में बुलाया था। परन्तु स्वामी जी ने अस्वीकार किया, क्योंकि महाराजा साहब मूर्तिपूजक हैं और बहुधा मंदिर शिवालय इत्यादि इसकी पूर्ति के लिये बने हुए हैं। और मैं डंके की चोट उन का खण्डन करता हूं इस लिये सम्भव है राजा साहब को

बुरा मालूम हो और किसी प्रकार का लड़ाई झगड़ा खड़ा हो जावे इस के अतिरिक्त हम को बहुत से आवश्यक कार्य करने हैं इस लिये प्रथम हम उनको पूरा करलें फिर कश्मीर जायेंगे। एक दिन स्वामी जी ने यह भी कहा था कि मारवाड़ में एक राजा साहब पन्द्रह सेर के लगभग रुद्राक्ष के दानों की माला अपने शरीर पर लादे रहते थे जिन को यह गौरीशंकर बतलाया करते थे उन को हम ने शिक्षा की यह एक वृक्ष के फल हैं इन के धारण करने से क्या लाभ उस समय उन्हों ने इस बात को स्वीकार न किया परन्तु जब द्वितीय बार वह राजा साहब मिले तो एक दाना उन के शरीर पर न था हम ने उन को धन्यवाद दिया तब राजा साहब ने कहा कि महाराज यह आप के उपदेश का फल है इस दृष्टान्त से प्रयोजन यह था कि महाराजा कश्मीर पर भी वैदिक धर्म का प्रभाव पड़ सकता है परन्तु अधिक समय की आवश्यकता है। स्वामी जी के व्याख्यानों और उपदेश का यह प्रतिफल हुआ कि उन की उपस्थिति ही में, समाज यहां पर नियत हो गया।

स्वामी जी रावलपिंडी से गुजरात आने के लिये रेलवे स्टेशन झेलम पर आये जहां से मास्टर लक्ष्मणप्रसाद जी उनको नगर में ले गये वहां १४ दिन तक रहकर व्याख्यान देते रहे। जिस का प्रभाव यह हुआ कि समाज नियत हो गया और मास्टर साहब ही जो ब्रह्म समाजी थे उस के प्रधान बने। कुछ दिनों के पश्चात् मास्टर साहब आर्य धर्म को त्याग ब्रह्म बन गये। एक दिन एक ईसाई पादरी साहब घर से कुछ प्रश्न लेकर आये थे परन्तु जब वह सभा में पढ़ने को खड़े हुए। तब उनका सम्पूर्ण शरीर कांपने लगा और वाणी भी कार्य न कर सकी, तब वह आप ही सभा से बाहर चले गये और फिर लौट कर न आये। बहुधा सत्यवादी मुसल्मान भी स्वामी जी की विद्या की प्रशंसा करते थे इन्हीं दिनों में झेलम नदी के तट पर एक वृद्ध योगी निवास किया करते थे उन से और स्वामी जी से परस्पर प्रेम पूर्वक संस्कृत में वार्तालाप हुआ करती थी जिन के विचार स्वामी जी के उद्देश्यों के अनुकूल थे। वहां से चल कर स्वामी जी १३ जनवरी सन् १८७८ को गुजरात पहुंचे जहां उनके व्याख्यान गवर्नमेंट स्कूल में हुए और डाक्टर विष्णुदास साहिब ने उनका आतिथ्य सत्कार किया। पौराणिकों ने कुछ संस्कृत के शब्दों को जोड़ जाड़कर सभा में यह प्रकट किया कि यह वेद की श्रुतियां हैं तब स्वामी जी ने चारों वेद उनके सन्मुख रखकर कहा यह श्रुतियां जो तुम पढ़ते हो निकाल दो इस पर उत्तर दिया कि हम अपने वेद में से दिखला सकते हैं, द्वितीय दिवस कहा कि अब अपने वेद में ही दिखलाओ, वहां कौन दिखलाने वाला था। एक दिन पौराणिक पंडितों की कुदशा देखकर मिस्टर बोकेनन ने सभा के मध्य में कहाकि आप इन विचारों के टेकनेकी लकड़ी छीनते हैं इस

के पलटे में आप देते क्या हैं इस के उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि मैं इन को वेद और योगाभ्यास देता हूं । यहां अनेकान् व्याख्यान हुए कोई शास्त्रार्थ को न आया हां कितने ही धूर्तों ने किसी के बहकाने से ईंट पत्थरों की वर्षा की परन्तु वह बाल ब्रह्मचारी जिन का उद्देश्य अविद्या अंधकार के मिटाने का था कब ऐसी तुच्छ बातों की ओर ध्यान करते । एक दिन कुछ आदमी सम्मति करके स्वामी जी के निकट गये और उन से प्रश्न किया कि आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? इस से उन का अभिप्राय यह था कि यदि स्वामी जी अपने को ज्ञानी कहेंगे तो हम यह कह कर कि आप को अहंकार है और अहंकारी संत का तप नष्ट हो जाता है और यदि उन्हों ने अज्ञानी कहा तो यह कहेंगे कि जब आप स्वयम् ही अज्ञानी हैं तो दूसरों को उपदेश कैसा करते हो । उस बालब्रह्मचारी ने इनके मुख्य अभिप्राय को जानकर ऐसा विलक्षण उत्तर दिया कि जिस को सुन सब चकित रह गये अर्थात् दूकानदारी, व्योपार, फारसी से अज्ञानी और संस्कृत और धर्म की वार्ता में ज्ञानी हूं । यहां से स्वामी जी **वजीराबाद** पधारे जहां के सामाजिक पुरुषों ने स्टेशन पर स्वागत किया और राजा फकीरुल्ला की कोठी में उतरे जहां दूसरे दिन से व्याख्यान होना आरम्भ हुए जिन में असंख्य मनुष्य एकत्र होते थे उन में से एक दिन एक मनुष्य झुंझला कर उठा और उच्चस्वर से बोला कि जो व्याख्यान सुनेगा वह हिन्दू वीर्य से न होगा परन्तु सत्य के इच्छुक डटे ही रहे । स्वामी जी के आते ही बड़े २ पण्डित नगर छोड़ कर चले गये नगर निवासी एक पण्डित को लाये और शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ पण्डित जी ने एक मन्त्र पढ़ा फिर वह दोही बातों में निरुत्तर हो गये तब सब ने आक्रमण किया स्वामी जी ऊपर चले गये फिर उन्हों ने ईंट पत्थर फेंकने का आरम्भ किया । जिस को स्वामी जी का लेखक विहारीलाल समझाने के लिये उन के पास आया दुर्जनों ने उस को मार गिराया तब स्वामी जी लाठी लेकर नीचे आने लगे जिन की ललकार का शब्द सुन कर सब इधर उधर चले गये । सामाजिक पुरुषों ने नालिश करना चाहा तब स्वामी जी ने सतोपदेश कर शान्त कर दिया । यहां से ७ फरवरी सन् १८७८ को **गुजरानवाला** में पधारे और सरदार महानसिंह के स्थान में ठहरे । व्याख्यान आरम्भ हुए जब कि स्वामीजी ने ईसाई मत का अच्छे प्रकार खण्डन किया तो पादरियों ने शास्त्रार्थ का प्रस्ताव किया और १६ फरवरी को गिरजा घर में शास्त्रार्थ हुआ जहां दो डेढ़हजार मनुष्य उपस्थित थे । डिप्टी गोपालदासजी मध्यस्थ थे । पादरी हुइफट साहबने कहा कि यदि जीव अनादि माना जावे और ईश्वर भी, तो दोनों समान होगये । स्वामीजी ने इसका उत्तर दिया और तर्कों द्वारा भली भांति दर्शाया । अन्त में मध्यस्थ ने कहा कि पादरी साहब स्वामीजी के प्रश्नों का उत्तर न देसके आपका हठ है जो नहीं मानते । द्वितीय दिवस किसी अन्य स्थान पर विवाद

करने का विचार हुआ क्योंकि यहां स्थान न्यून होने के कारण सहस्रों मनुष्य लौट गये थे और समय ४ बजे को नियत किया गया परन्तु पादरी साहब ने १२ बजेही गिरजे में पहुंच स्वामीजी और डिप्टी साहब को बुला भेजा जिन्हों ने तुरन्त उत्तर भेजा कि यह समय शास्त्रार्थ का नहीं है इसी पर पादरी साहब ने प्रसिद्धकर दिया कि स्वामीजी बुलाने पर नहीं आये इससे समझना चाहिये कि वह परास्त होगये। जब स्वामीजी को इस कार्य्यवाही की सूचना हुई तो तुरंत समाधि के निकट व्याख्यान का प्रबन्ध कराया जहां चार बजे अर्थात् नियत समय पर सहस्रों मनुष्य एकत्र हुए। पादरी साहब को बुलाया परन्तु वह न आये तब नियत समय के एक घंटा पश्चात् बड़ी बुद्धिमत्ता से ईसाई मत का अच्छे प्रकार खण्डन किया। जिसको सुन श्रोतागण बहुत प्रसन्न हुए और आर्य्यसमाज नियत होगया यहां से लाहौर होते हुए मुलतान पधारे।

मुलतान।

स्वामी जी जिन दिनों पञ्जाब के अन्य २ नगरों में उपदेश कर रहे थे बाबू रलामल परिडत बसन्तराम इत्यादि महाशयों ने सम्मति करके स्वामी जी को तार द्वारा बुलाने की प्रार्थना की। स्वामी जी उस समय तो न आसके फिर बाबा ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी को स्वामी जी के पास भेजा और उससे प्रथम डाक्टर जसवन्तराय की चिट्ठी भी गुजरानवाला पहुंच चुकी थी स्वामी जी यहां से चल लाहौर ठहरते हुये १२ मार्च सन् १८७८ ईस्वी को मुलतान पहुंचे जहां नगर में होलका उत्सव के कारण धूम मचरही थी इस कारण स्वामी जी के व्याख्यानों में अनेकान् पुरुष जाया करते थे। सब से प्रथम वैष्णव मत के सिद्धान्त और गोसाइयों को गुप्त करतूत की अच्छे प्रकार पोल खोली जिस के कारण नगर और उसके ओर पास ग्रामों में बड़ी धूम मच गई। गोसाईं लोग (जिन की इधर बड़ी मानता थी) स्वामी जी के रक्त के प्यासे हो एक दिन अपने बहुत से चेलों को साथ ले बड़ी धूम धाम के साथ शङ्ख घड़ियाल बजाते हुये जयजयकार मचाते हुये सभा में आये स्वामी जी व्याख्यान दे रहे थे इन की धूर्तता पर कुछ ध्यान न देकर बुद्धिमान् पुरुषों ने तत्क्षण प्रबन्ध किया जिसके कारण वह जैसे आये थे वसे ही चले गये यहां सैंतीस दिन में छत्तीस व्याख्यान हुए जिन में प्रत्येक मत और सम्प्रदाय के सैकड़ों मनुष्य आते और अनेकान् पुरुष अपने सन्देह निवारण किया करते थे रायसागरमल साहिब एकज़ीक्यूटिव इञ्जीनियर ने (जो चौदह सौ पुस्तकें पढ़कर नास्तिक हुये थे) स्वामी जी से तीन दिन वार्तालाप कर शुद्ध मन से नास्तिकता छोड़ने की प्रतिज्ञा की। छावनी के कई प्रतिष्ठित पारसियों ने आमंत्रित कर स्वामी जी के व्याख्यान सुन १००) रुपये और एक थाल भर किशमिश का भेट किया

था। एक दिन व्याख्यान देते समय स्वामी जी ने कहा था कि जो लोग रुपया लेकर अपनी पुत्रियों का विवाह करते हैं उन में और कस्बनियों में कुछ भेद नहीं है यह मनुष्य एक से अधिक रुपया लेकर अपनी पुत्री उसको देते हैं और कञ्चन अनेक मनुष्यों से रुपया व सामान लेकर उनको देते हैं कमाई दोनों २ पुत्रियों की दोनों खाते हैं।

मुसल्मान लोग भी स्वामी जी के पास आकर वार्तालाप करते परन्तु उत्तर में कोई भी न ठहरता। ४ अप्रैल को यहां समाज नियत हुआ तब बाबा ब्रह्मानन्द ने हास्य में कहा कि केवल सात ही सभासद हैं जिस को सुन कर स्वामी जी ने कहा कि मुसल्मानों के पैग़म्बर की केवल एक स्त्री सहायक हुई थी। जिसकी अब इतनी उन्नति हो रही है तो फिर हमारे धर्म के तो सात सहायक हैं। एक दिन एक व्याख्यान में स्वामी जी ने एक दृष्टान्त में वर्णन किया कि एक बार एक पठान और एक हिन्दू दुकानदार का साथ हुआ जिस के साथ में एक ब्राह्मण भी नौकर था। जब प्रातःकाल हुआ तो बनिये साहब ने कहा कि महाराज पालागन। फिर पानी की आवश्यकता हुई तो पानी मंगाया, रोटी के समय भोजन कर दिलाता और चलते समय बोझा उठाकर पीछे २ चलता, एक दिन मार्ग में अंधेरा होगया ब्राह्मण साथ न था तब पठान ने पूछा कि आप का वह ब्राह्मण जो पीर, बबर्ची, भिश्ती, खर का काम देता है कहां है? बनियां सुनकर हंस पड़ा यही दशा भारत के अनेकान् ब्राह्मणों की हो रही है हा शोक! स्वामी जी ने यहां एक मास से अधिक निवास किया और विज्ञापन भी दिये परन्तु किसी ने भी शास्त्रार्थ न किया नगर के पण्डित गण स्वामी जी को विद्यासागर और खारा समुद्र कहते थे। पाठक गण! स्वयम् ही विचार करलें कि जो विद्यासागर है वह ही मीठा समुद्र है परन्तु स्वार्थी जनों का स्वार्थ सिद्ध न होने से उक्त महात्मा पर लोग नाना प्रकार के आक्षेप करते थे परन्तु सत्य वक्ता ने धर्म के प्रकाश करने में तनक भी त्रुटि नहीं की। एक दिन पण्डित कृष्ण नारायण ने स्वामी जी से पूछा कि वर्तमान समय में मिस्टर मोक्षमूलर साहब वेदों के ज्ञाता कहाते हैं इस में आप की सम्मति क्या है। ऋषि ने उत्तर दिया कि जब तक वह महीधर और सायणाचार्य्य के भाष्य के अनुयायी बने रहेंगे तब तक वह वेद के गूढ़ाशयों को नहीं समझ सकते।

एक दिन एक कश्मीरी ब्राह्मण से स्वामी जी का मांस खाने के विषय पर वार्तालाप हुआ था। उन्हों ने उस को योगाभ्यास की कुछ क्रियायें सिखला कर उस को अच्छे प्रकार प्रतीत कराया कि मांस खाने वाले को आत्मिक आनन्द कभी प्राप्त नहीं होता। इस लिये उसने मांस खाने का परित्याग कर दिया एक पारसी ने प्रश्न किया कि जब आप हम को एक ही दस्त बतलाते हैं तो आप हमारे साथ खान पान क्यों नहीं करते। स्वामी जी ने उत्तर दिया

कि आप लोगों का मुसल्मान आदि कौमों से मेल होने के कारण आप के साथ खान पान का व्यवहार हम लोग नहीं करते यदि आप कुछ समय तक आर्य्य लोगों से मिलते रहें तो आप शुभाचारी हो जायेंगे उस समय हमारा आपका आहार व्यवहार एक हो जावेगा। अब रहा एक स्थान पर बैठकर झूंठा भोजन करने के विषय में आप बतलावें कि इकट्ठे मिलकर भोजन करने से क्या लाभ और ऐसा न करने से क्या हानि? पादरी साहिब ने कहा कि झूंठा खाने से प्रेम प्रीति अधिक होती है और विपरीत इस से अप्रीति होती है। स्वामी जी ने कहा कि आर्य्यावर्त्त के वैद्यराजों ने वैद्यकी विद्या के अनुकूल झूंठा और इकट्ठा मिल कर खाने का निषेध किया क्यों कि उन्हों ने बतलाया है कि झूंठा खाने और झूंठे पानी पीने और हेल मेल से रहने में बहुधा रोग शीघ्र एक के दूसरे में प्रवेश कर जाते हैं। जिन के नाम व्याख्या सहित बाबू जसवन्तराम असिस्टैंट सर्जन ने उसी समय वर्णन कर दिये। द्वितीय यदि साथ खानेवालों में प्रीति होती है तो मुसल्मान भाई जो सदा साथ ही खाते हैं एक दूसरे के क्यों शत्रु हो जाते हैं।

रुड़की।

प्रिय पाठक गणों! लाला मुरलीधर जी वैश्य ने पञ्जाब से आकर पंडित उमरावसिंह जी से कहा कि वर्तमान समय में एक बड़े योग्य विद्वान् महात्मा पञ्जाब देश में धर्मोपदेश कर रहे हैं जिससे वहां आर्यसमाज रूपी धर्म का अंकुर जमता चला जाता है। यह सुन वह बड़े प्रसन्न हुए और उनको स्वामी महाराज के दर्शनों की लालसा उत्पन्न होगई तब उन्हों ने एक निवेदन स्वामी जी की सेवा में रुड़की पधारने के विषय में भेजा स्वामी जी ४ जौलाई सन् १८७८ को रुड़की पहुंच, लाला शगरनाथ, देहली निवासी के बंगले में उतरे। उसी दिन कर्नल अल्काट अमरीका निवासी के आये हुए पत्र का उत्तर देते समय उपस्थित पुरुषों से कहा था कि कैसे शोक की बात है कि हमारे धर्म की खोज अन्य मत वाले तो अमरीकादि देशों से पत्र द्वारा करने में तत्पर और हम ऋषी सन्तान इसी पवित्र भूमि पर जन्म लेकर ऐसे बेसुध हो रहे कि करवट तक नहीं लेते।

इस नगर में प्रथम सत धर्म पर, द्वितीय मूर्ति खण्डन और आवागमन, तृतीय बाइबिल, कुरान खण्डन और चतुर्थ अंग्रेजी सायन्स और डार्विन के कथन पर बड़ी उत्तमता से व्याख्यान हुवे। आवागमन पर डाक्टर सुरेन्द्रचन्द्र साहब असिस्टैंट सर्जन ने उसी समय कहा कि मैंने ऐसी युक्तियां इस विषय में नहीं सुनीं और न मेरा विश्वास था। अब मुझको निश्चय होगया। तृतीय दिन के व्याख्यान में जब कि वह बाइबिल का खण्डन करने लगे तो कर्नल मार्सल आर. ए. साहब बहादुर कमांडिंग आफिसर और कप्तान स्टुअर्ट साहब

क्वाटर मास्टर ने "जो व्याख्यान सुनने आये थे" घबड़ा कर बीच में ही प्रश्न करने आरम्भ किये जिनका उत्तर स्वामी जी भली भांति देते रहे परन्तु साहब बहादुर को मध्य में ही क्रोध आगया और अन्त को निरुत्तर हो कल आकर स्वामी जी शङ्काओं का उत्तर देने की प्रतिज्ञा कर चले गये और फिर न आये परन्तु कप्तान साहब आकर प्रसन्नता पूर्वक सुनते रहे इन तीनों व्याख्यानों से नगर में बड़ा कोलाहल मच गया और अन्त को चौथे दिन के लिये पुलिस का प्रबन्ध कराया उस दिन स्वामी जी ने वर्णन किया कि डार्विन के कथनानुसार अब सहस्रों वर्षों में बन्दर से मनुष्य क्यों नहीं बनता यदि बन्दर और मछली के प्रसङ्ग से कोई बच्चा उत्पन्न हुआ उस ने किसी अन्य पशु से सन्तान उत्पन्न की और ऐसा होता हुआ मनुष्य बन गया तो अब क्या कारण है कि यह रीति बन्द हो गई क्या अन्तिम सन्तान ने कोई लेख इस प्रकार का लिख दिया कि जो क्रिया हमारे बड़े करते आये हैं वह कोई पशु और विशेष कर बन्दर न करे। ऐसी अनेक युक्तियों को सुनकर अंग्रेज़ी पुरुष चकित हो गये। स्वामी जी ने यह भी कहा था कि हमारे वेदों में सब विद्यायें उपस्थित हैं और उन्हीं से सबने सीखा है पृथिवी की आकर्षण शक्ति जिस को न्यूटन का आविष्कृत बतलाते हैं वेदों से उसके विषय में मन्त्र पढ़कर सुनाये। रुड़की कालिज के विद्यार्थियों से यह भी कहा कि तुम यह समझते हो कि सायंस और फिलासफी केवल पश्चिमी शिक्षा पर निर्भर है संस्कृत में क्या रक्खा है सो मैं तुमको बड़ी प्रसन्नता से आज्ञा देता हूं, कि किसी सायंस के सिद्धान्त के विषय में मुझ से पूंछो। मैं तुमको संस्कृत की प्रमाणीक पुस्तकों से प्रमाण देकर संतोषित कर दूंगा तुम लोगों की यह भी बड़ी भूल है कि इस देश के विद्वानों और फिलासफरों को जंगली समझते हो यहां के निवासियों ने प्रत्येक विद्या और क्रियाओं के खोजने में अपनी आयु व्यतीत करदी थी और वह अपनी आत्मिक उन्नति में सर्वोपरि थे यह सुन उक्त विद्यार्थियों ने सूर्य और पृथ्वी के भ्रमण आकर्षण तत्वों की व्यवस्था, पवन, मेघ, रसायन तत्व इत्यादि विद्याओं के विषय में प्रश्न किये। स्वामी जी ने प्रत्येक के उत्तर में संस्कृत के श्लोक पढ़ और उन के शब्दों के सरल अर्थ कर बताया। जिस को सुन कर वह संतुष्ट हो गये स्वामी जी का सब लोग मान्य करते थे। एक दिन स्वामी जी ने यह भी कहा था कि हमारे देश अवनति संस्कृत विद्या के प्रचार न होने के कारण हो गई है ज्यों २ इस का प्रचार होता जावेगा त्यों २ वेद विद्या की उन्नति होती जावेगी प्रकार मनुष्यों की आंखें खुलती जावेंगी फिर लोग संस्कृत के प्राचीन को देख कर आश्चर्य में हो जावेंगे।

इस नगर में व्याख्यानों के सुनने से बड़ी हलचल मचगई। ने मौलवी मुहम्मद क़ासिस साहिब देवबन्द निवासी को शास्त्रार्थ के

बुलाया और कई दिन तक शास्त्रार्थ के नियमों पर लिखा पढ़ी होती रही अन्त को मौलवी साहिब शास्त्रार्थ करने पर कटिबद्ध न हुए तब लिखा पढ़ी बन्द हो गई।

इधर हिन्दुओं की ओर से मुंशी चरणलालजी के स्थान पर पंडित तिलोकचंदजी ने कुछ अंडबंड कहा. पर शास्त्रार्थ करने के लिये उद्यत न हुए इसी भांति एक पौराणिक पंडित को जो आर्मन स्कूल में अध्यापक थे शास्त्रार्थ करने को बहुत कुछ कहा. वह यह कहकर अपना पीछा छुड़ा लेगये कि वेदों में मूर्तिपूजा नहीं है फिर विवाद क्या करें वहां के एक पौराणिक पंडित जो प्रकट में स्वामीजी के साथ विरोध रखते थे और कहा करते थे कि वेदों में मूर्तिपूजा है अन्त को जब चोला छोड़ने को थे तो अपने वैद्य से कहने लगे यदि मेरे पिता जीवित होते तो मैं निःसंदेह आर्य धर्म को स्वीकार कर स्वामीजी का अनुयायी हो जाता। इन्हीं दिनों में वहां एक सतुआ स्वामी आये थे उन के लिये लोगों ने प्रसिद्ध कर दिया था कि यह स्वामी जी से शास्त्रार्थ करेंगे परन्तु वह बार २ कहने पर भी शास्त्रार्थ के लिये न आये। स्वामी जी के व्याख्यानों का प्रभाव ऐसा हुआ कि २० अगस्त सन् १८७८ ई० को रुड़की में आर्य्य समाज नियत होगया। स्वामी जी वहां से चल कर २२ अगस्त को अलीगढ़ पहुंचे उन्हीं दिनों मिस्टर मूल जी, ठाकुर जी, मिस्टर हरिश्चन्द्र चिन्तामणि और पंडित श्याम जी कृष्ण वर्मा स्वामी जी के दर्शनों के लिये आये थे। इस स्थान पर स्वामी का शरीर कुछ अस्वस्थ हो गया था इस कारण वह २३ अगस्त को सैय्यद अहमदखां के निमन्त्रण में सम्मिलित न हो सके। और फिर वहां सहस्रों मनुष्यों के बीच में एक व्याख्यान देकर २६ अगस्त को मेरठ चले गये और लाला रामोदर दास की कोठी में ठहरे और उसी स्थान पर शङ्का समाधान और साधारण उपदेश होता रहा और फिर राय गनेशीलाल साहब प्रबन्ध-कर्ता यन्त्रालय जलवैतूर की कोठी में १ अगस्त से ४ अगस्त तक। इस के पश्चात् लाला रामशरणदास रईस मेरठ की कोठी पर, पुनः कुछ दिन लाला छेदालाल गुमाश्ता कमसरियट की कोठी में अनेक विषयों पर व्याख्यान हुये। नगर के गली २ कूंचों २ में चर्चा फैलगई। प्रथम मुसलमानों की ओर से मौलवी अब्दुल्लः जी ने शास्त्रार्थ का विज्ञापन दिया परन्तु वह लेखबद्ध शास्त्रार्थ करने पर उद्यत न हुए सनातन धर्म सभा की ओर से वही प्रश्न, जो सब धर्म सभाओं की ओर से होते हैं जैसे कि मूर्तिपूजा सदा से चली आती है, गङ्गा-स्नान से मुक्ति होती है, परमेश्वर का अवतार होता है। इन प्रश्नों के प्राप्त होने पर स्वामी जी ने व्याख्यान के समय पढ़कर सुनाने पर कहा कि इनका उत्तर अच्छे प्रकार से कल के व्याख्यान में दूंगा। जिन के यह प्रश्न हैं वह भी आकर सुनलें अथवा कोई लिखना चाहें तो लिखलें। दूसरे दिन व्याख्यान में इनके अच्छे प्रकार उत्तर दिये और कहा कि यजुर्वेद अध्याय ३२ मं० ३ में मूर्ति-

पूजा का निषेध है। गंगा का जल उत्तम है परन्तु मुक्तिदाता नहीं।

मनु ने लिखा है कि जल से शरीर और सत्य से मन और विद्या तप से जीवात्मा और ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है और छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है कि मनुष्य अपने मन से वैर भाव को छोड़कर सब को सुख देने में प्रवृत्त रहे और संसारी व्यवहार के बर्ताव में किसी को दुःख न देवे इसी को तीर्थ कहते हैं अन्य कोई तीर्थ नहीं परमेश्वर कभी अवतार नहीं लेता और ईश्वर के उपरान्त किसी की उपासना करने की आज्ञा नहीं। यथा ऋग० अ० ८ अध्याय ७ वर्ग ३ मं० १ और यजुर्वेद अ० ४० मं० ६ में लिखा है।

इसके उपरान्त बहुधा पौराणिक पण्डितों ने एक सम्मति कर एक चिट्ठी शास्त्रार्थ के लिये स्वामी जी के पास भेजी परन्तु उस पर किसी के हस्ताक्षर न थे इस लिये उन्हों ने व्याख्यान के अन्त पर स्पष्ट रीति से कह दिया कि जब तक चिट्ठी पर लाला किशनसहाय के हस्ताक्षर न होंगे तब तक मैं इस पर कुछ ध्यान न दूंगा क्योंकि ऐसे कार्य बिना किसी प्रतिष्ठित पुरुष की मध्यस्थता के नहीं हो सकते और प्रबन्ध का भार भी उनके सिर होगा और प्रमाण वेदादि सत्य शास्त्रों के माने जायेंगे परन्तु जब धर्म सभा ने टालमटोल की तब स्वामी जी ने एक चिट्ठी लाला किशनसहाय जी को लिखी कि आप जिस पण्डित से चाहें शास्त्रार्थ करायें जिस का उत्तर भी बिना हस्ताक्षर के लाला जी के यहां से यह आया कि आप वेदों के विपरीत उपदेश करते हैं इस कारण शास्त्रार्थ से कुछ लाभ न होगा फिर जब स्वामी जी ने इसका विस्तार पूर्वक उत्तर लिखा तो उसके उत्तर में हस्ताक्षर सहित एक पत्र आया जिस में सभ्यता को तिलाञ्जली देकर लेख था कि हम को अपने पण्डितों द्वारा विदित हुआ है कि आप वेदों को नहीं जानते क्यों कि आप उनके विपरीत उपदेश करते हैं और हमारे पण्डित वेदों के जानने वाले हैं जब तक आप अपने वर्ण का ठीक निश्चय न करा देंगे हम कदापि आप के निकट न आयेंगे। बुद्धिमान् जन आप ही विचार लें कि उपरोक्त लेख उन के भीतर भाव को कैसा प्रकट कर रहा है कि सत्य के विचार करने के लिये उपस्थित नहीं जिस से उन की विद्वत्ता अच्छे प्रकार प्रकट होती है। परन्तु सत्य की सदा जय होती है यहां भी परमेश्वर की कृपा से आर्यसमाज स्थित हो गया। स्वामी जी यहां से चलकर १ अक्टूबर को दिल्ली पहुंचे जहां उन के आने और व्याख्यान होने की सूचना विज्ञापन द्वारा दीगई। तदुपरान्त व्याख्यान हुये जिन में २०० से ६०० तक श्रोतागण एकत्रित होते थे जिन का परिणाम यह हुआ कि नवम्बर मास के प्रथम सप्ताह में आर्यसमाज स्थित हो गया। सम्वत् १९३५ में जब स्वामी जी महाराज पञ्जाब में धर्मोपदेश कर रहे थे तो अजमेर नगरस्थ धार्मिक पुरुषों को यह अभिलाषा हुई कि स्वामी जी महाराज यहां पधारें इधर जब स्वामी जी मेरठ से दिल्ली आये उस समय उनका प्रेम और भी बढ़ा और सब

को सम्मति से समर्थदानजी ने स्वामी जी के पधारने के लिये एक पत्र भेजा। इस के उत्तर में स्वामी जी ने लिखा कि हम शीघ्र आवेंगे जब आने के समाचार नगर में प्रसिद्ध हो गये तो स्वार्थी जनों ने सम्मति करके युगलविहारी के नाम से स्वामी जी को पत्र लिख भेजा कि समर्थदान लज्जा के कारण आप को कुछ नहीं लिखते यहां चन्दा आदि का अभी कुछ प्रबन्ध नहीं हुआ परिश्रम कर रहे हैं फाल्गुण तक हो जावेगा आप उसी समय पधारें। स्वामी जी ने इस पत्र को पढ़कर समर्थदान को लिखा तब उन्हों ने उस के उत्तर में निवेदन किया कि यहां युगलविहारी कोई नहीं है यह किसी धूर्त का काम है आप अवश्य पधारें। स्वामी जी इस लीला को जान कार्तिक शुक्ला तेरस गुरुवार को अजमेर पहुंचे और वहां से चलकर पुष्कर के मेले में आ विराजे और विज्ञापन द्वारा सब को सूचना दी जहां सहस्रों मनुष्य व्याख्यान सुनने को आते बहुधा उन में से शङ्का समाधान भी करते रहे। यहां स्वामी जी ने वाममार्गी साधुओं की अच्छे प्रकार पोल खोली महाराजा मसौदा ने यहां प्रथम बार स्वामी जी के दर्शन किये मेले की समाप्ति पर स्वामी जी पुनः अजमेर पधारे और वहां लाला नजमल जी की हवेली पर ईश्वर प्रतिपादन, वेद, वर्णाश्रम, नियोग, विदेश गमनागमन, मद्यामद्य आदि विषयों पर व्याख्यान हुये और बड़ा आनन्द रहा मौलवी मुहम्मदमुरादअली प्रोप्राइटर राजपूताना गजट लिखते हैं कि मैं स्वामी जी से पांच बार मिला प्रथम बार जब मैं गया तो मैंने बहुत से प्रश्न जीव,मृत्यु,मोक्ष,आवागमन इत्यादि पर किये जिन के उत्तरों से मुझ को अत्यन्त प्रसन्नता हुई इस के उपरान्त गोरक्षा के लाभ सुन कर उन्हों ने उस के विषय में उद्योग करने का भी प्रण किया।

छावनी नसीराबाद।

एक प्रतिष्ठित पुरुष के आमंत्रित करने पर स्वामी जी यहां पधारे जहां कई एक उपदेश हुये जिन में धूर्तों ने गड़बड़ मचाने का उद्योग किया परन्तु कुछ न चली। स्वामी जी शान्ति पूर्वक उपदेश करते रहे जिस का प्रभाव अच्छा हुआ पादरी महाशय भी आया करते थे। फिर यहां से स्वामी जी जयपूर पधारे वहां के मंत्री श्रीमान् फतहसिंह जी ने अच्छे प्रकार आदर सत्कार किया महाराज जयपूर भी स्वामी जी के व्याख्यान सुनने की आशा रखते थे परन्तु पेटार्थू लोगों के फुसलाने से स्वामी जी के निकट न गये। हां उन के खानपान आदि का उत्तम प्रबन्ध करने के लिये आज्ञा देदी। स्वामी जी चौबीस दिसंबर को यहां से रेवाड़ी पहुंचे राव युधिष्ठिरजी ने बड़े आदर सत्कार के साथ ठहराया और सन्मान किया यहां पर स्वामी जी के ११ व्याख्यान हुए श्रोतागणों

की उपस्थिति चार सौ से सात सौ तक रही राय साहब ने अपने सम्बन्धियों को भी दूर २ से बुलाया था जिस से उनको बहुत लाभ हुआ। एक दिन मृतक श्राद्ध के विषय में कहा था कि यदि मृतक को ब्राह्मण का खाया हुआ मिलता है तो जो लोग मांस मदिरा खाते पीते हैं इन के लिये ब्राह्मणों को मांस मदिरा भी खिलानी चाहिये परन्तु वह नहीं खाते इस से भी प्रकट है कि मनुष्य अपने कर्मों से स्वर्ग नर्क भोगता है मृतक श्राद्ध से नहीं, जिस से राय साहिब का सच्चा विश्वास आर्य्य धर्म पर होगया क्योंकि बैकुण्ठवास होने के प्रथम उन्हों ने अपना वेदोक्त रीति से संस्कार करने की आज्ञा दी थी परन्तु पीछे को कई कारणों से लोगों ने न किया। स्वामी जी यहां से ६ जनवरी को दिल्ली पहुंच बालमुकन्द किशोरचन्द्र के स्थान पर केवल तीन व्याख्यान देकर मेरठ होते हुए हरिद्वार कुम्भ के लिये पधारे।

हरिद्वार कुम्भ में स्वामी जी का द्वितीय वार पधारना।

प्रिय पाठक गणों! यह वही स्थान है कि जहां पर महर्षि को शोकमय चरित्रों के देखने से पूर्ण वैराग्य उत्पन्न हुआ था। उस समय से स्वामी जी भारत संतान के सुधार का दृढ़ निश्चय कर भारत वर्ष के अनेकान् प्रसिद्ध स्थानों पर धर्मोपदेश व शास्त्रार्थ द्वारा सत्य का प्रकाश कर अविद्या अंधकार को मेटते हुए १२ वर्ष पश्चात् २७ फरवरी को फिर हरिद्वार पहुंच, श्रावण नाथ के बाग़ में निर्मलों की छावनी के सम्मुख मूलानाले के पार मूला मिस्त्री के खेत में कलेक्टर साहब के डेरे के समीप अपने डेरे गड़वाकर उतरे और पहुंचते ही मार्गों, घाटों, मंदिरों, पुलों इत्यादि में विज्ञापन लगवाकर अपने आने और शंका समाधान और व्याख्यान के समय की सूचना दी। उसी विज्ञापन के अन्त में सब भाइयों से निम्नलिखित प्रार्थना भी की थी और उस के दूर करनार्थ उपाय लिखे थे।

प्रार्थना।

पाठक गणों! मैं शोक और महान् शोक के साथ आप से प्रार्थना करता हूं कि पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य्य, चन्द्रमा, ऋतु, नाक, कान इत्यादि, शरीर, औषधी, वनस्पति, खान, पान इत्यादि सब व्यवहार ब्रह्मा से लेकर जैमुनि ऋषी तक ज्यों के त्यों रहे फिर आर्य्यों की दशा पलटने का क्या कारण है?

सुधार का उपाय।

इस के सुधार के लिये प्रथम तो एक उपदेशक मंडली ऐसी होनी चाहिये जिस में निम्न लिखित योग्य पुरुष सम्मिलित हों।

(१) संस्कृत वेत्ता (२) स्वदेशीय मनुष्यों की उन्नति अभिलाषी (३)

परोपकारी (४) निष्कपट (५) धार्मिक (६) पूर्ण विद्वान् (७) और साथ ही साथ एक संस्कृत पाठशाला स्थापित की जावे जिसमें वेदादि सत्य शास्त्रों की शिक्षा कराई जावे। परन्तु यहां कौन सुनता है इस कुम्भ में पूर्व कुम्भ से जन संख्या कहीं अधिक थी अर्थात् १२ अप्रैल तक दो लाख आदमी आ चुके थे इस के उपरान्त जो १५ दिन पर्वों के शेष रहे थे जिन में रात दिन ट्रेन पर ट्रेन चली आती रही। इस का विशेष कारण यह था कि सम्पूर्ण भारत में बहुत दिन आगे यह प्रसिद्ध होगया था कि गङ्गा का महात्म जो पुराणों में लिखा है उतना समय समाप्त हो चुका। उस का यही अन्तिम कुम्भ था गङ्गा के किनारे २ आठ दस कोस तक बराबर यात्री जन ठहरे थे। स्वामी दयानन्द ने इस पौराणिक समूह के बीच प्रति दिन मूर्ति पूजा, तीर्थ, मृतक श्राद्ध और गङ्गा स्नान इत्यादि के खण्डन पर बड़े प्रभावशाली व्याख्यान देकर वैदिक धर्म का डंका बजाया। हज़ारों गृहस्थी और साधु और महात्मा व्याख्यान सुनने के लिये आया करते थे उन में से बहुधा ब्राह्मण, संन्यासी, साधु, बैरागी, दांत पीस २ कर चले जाते, कोई २ मुंह पर यह कहते कि तूने हमारी आजीविका छीन ली, बड़ा अनर्थ मचादिया कहते हमारा मन तो यही चाहता है कि तुझ को मारकर शान्ति करें परन्तु क्या किया जावे कि सरकारी राज्य है।

इस मेले पर पौराणिक मत के बड़े २ विद्वान् विद्यमान थे बनारस के प्रसिद्ध स्वामी विशुद्धानन्द, पण्डित शुकदेव गिरि, और जीवनगिरि के अतिरिक्त एक और विद्वान् जो लतुआ स्वामी के नामसे प्रसिद्ध थे जो कनखल के निकट उतरे हुए थे। स्वामी जी ने इन सब के पास पत्र भेजे परन्तु किसी ने भी शास्त्रार्थ करने और धर्म विचार के लिये ध्यान न दिया।

जब मेला पूर्ण रीति से यात्रीजन भरगया तब पंडित श्रद्धाराम फलौरी और पं० चतुर्भुज ने एक सभा नियत कर उसकी ओर से स्वामी जी को शास्त्रार्थ के लिये चैलेंज दिया स्वामी जी ने शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर कहला भेजा कि यदि स्वामी विशुद्धानन्द यह लिखदेंगे कि दोनों साहब वेदों के जाननेवाले हैं तो मैं शास्त्रार्थ करने को उद्यत हूं और यही स्वामी इस शास्त्रार्थ के मध्यस्थ होंगे। ऐ भारत संतान! ऐ ऋषियों के रक्तसे उत्पन्न होनेवाले पुरुषों! क्या इस पर भी आप के चित्तों में महात्मा दयानन्द के वाक्यों की सत्यता प्रतीत नहीं होती जब कि वह पौराणिक दल के बीच शास्त्रार्थ में पौराणिकों के शिरोमणि स्वामी विशुद्धानन्द ही को उसका मध्यस्थ बनानेके लिये उद्यत थे। सच है कि सत्यवादी सत्य के प्रकाश करने के लिये परमात्मा को अपना सहायक समझते हुए संपूर्ण संसारी पुरुषों के बल का किञ्चित् भी भय नहीं करते। धन्य है उस महान् पुरुष को कि जिसने संसार में वैदिक धर्म फैलाने के लिये अनेक कष्टों को सहन किया। जब यह चिट्ठी स्वामी विशुद्धानन्द के पास

पहुंची जिन को उक्त महात्मा की पूर्ण विद्वत्ता का अच्छे प्रकार निश्चय था पण्डित श्रद्धाराम और पण्डित चतुर्भुज को बहुत भला बुरा कहकर कहा कि तुम दोनों स्वामी दयानन्द के सन्मुख एक अक्षर भी नहीं कह सके फिर भला मैं क्यों कर तुम्हारा मध्यस्थ हो सका हूं और स्वामी जी को उत्तर में लिखा कि बहुत से मूर्ख पुरुष इकट्ठे होकर झगड़ा करने के लिये उद्यत हैं आप उन की ओर ध्यान न दें मैं ऐसे पुरुषों के कहने से ऐसी सभा का मध्यस्थ होना स्वीकार नहीं कर सका, जिस में आप से विद्वान् शास्त्रार्थ के लिये सम्मिलित हों इस के उपरांत पण्डित श्रद्धाराम आदि ने सम्मति कर बहुत से साधुओं से यह प्रबंध पक्का कर लिया था कि जब स्वामी जी इस सभा में आवें तो उन को ऐसा मारो कि जिस से उन का सिर कट जावे फिर एक को फांसी हो जावेगी परन्तु यह बखेड़ा तो सदा को जाता रहेगा। प्यारे मित्रों, पौराणिकों ने स्वामी जी के साथ सदा इन्हीं विचारों से कार्यवाही की और स्वार्थ के कारण कभी सत्यासत्य के निर्णय के लिये उद्यत न हुए। हा भारत ! तभी तो तेरे सिर से मुकुट गिर गया। व्याख्यान के समय जब कि पं० भीमसेन जी ने स्वामी विशुद्धानन्द जी का उपरोक्त पत्र पढ़कर सुनाया उस समय दश हज़ार मनुष्य उपस्थित थे सुनते ही उन पुरुषों के चित्तोंपर बड़ा प्रभाव हुआ। सच है क्यों न हो "सत्य मेव जयति नानृतम्" अर्थात् सत्य की सदा जय होती है लेकिन तौ भी पौराणिक पण्डित श्रद्धाराम जी ने समाचार पत्र कोहनूर में प्रकाशित कराया कि स्वामी दयानंद सरस्वती ने हमारे वारम्बार कहने और निवेदन करने पर भी शास्त्रार्थ नहीं किया। इस मेले में राव एवज़खां हकीम ज्वालापुर स्वामी जी से मिलने को आया करते थे और वार्तालाप सुनने से हकीम जो गौरक्षा के सहायक बनगये और उन्हों ने वचन दिया कि हम अन्य मुसल्मान भाइयों को गौरक्षा के लाभ अच्छी तरह समझायेंगे और साहब कमिश्नर मेरठ व जङ्गलात मुहकमे के कंसरवेटर साहब भी स्वामी जी से मिलने को आये थे जिन्हों ने स्वामी जी की वार्तालाप से प्रसन्न होकर उनकी रक्षार्थ पुलिस का प्रबंध कर दिया। इसी प्रकार नैनीताल के एक यूरोपियन डाक्टर आप से मिलने को आये स्वामी जी ने कहा कि विष्ठा आदि मैले के जलाने और गाड़ने के प्रबंध से हैजा फैलने का भय रहता है साहिब बहादुर इस को सुन कर हंस पड़े परन्तु इस वार्तालाप के तीन या चार दिन के पश्चात् ही वहां हैजा फूट निकला वही डाक्टर साहब फिर स्वामी जी के पास आये और पूछा कि इस विषय में आप की सम्मति के अनुसार क्या करना योग्य है स्वामी जी ने कहा कि मेले के निकट जो यह विष्ठा आदि गाड़े जाते हैं यह कदापि न होना चाहिये वरन् मेले से बहुत दूर जहां हवा विपरीत हो फिकवा देना चाहिये। डाक्टर साहब ने ऐसा ही किया मेला समाप्त होने से कई दिन पहिले आपने एक व्याख्यान में बल देकर लोगों

को चले जाने के लिये कहा था क्योंकि अधिक ठहरने से बीमारी का भय है बहुधा मनुष्यों ने इस के अनुसार कार्यवाही की और सामाजिक पुरुषों को भी अपने जाने से एक दिन पहिले भेज दिया। इस मेले में स्वामी जी के उपदेशों से बड़ी धूम मच गई और पौराणिक पण्डित, साधू, संन्यासी इत्यादि के हृदय कम्पायमान होगये तब उन में से कुछ मनुष्यों ने सम्मति कर स्वामी जी के पास आ निवेदन किया कि महाराज आप हम सब पर कृपा कर मूर्तिपूजा, श्राद्ध, तर्पण, तीर्थयात्रा का खंडन न कीजिये आप की पूर्ण विद्या का सब पर अनुभव हो गया है इस लिये यदि आप हमारे निवेदन को स्वीकार करलें तो सम्पूर्ण भारत वर्ष आप को अवतार मान पूजा करने लगेगा और हम सब मिलकर आप की प्रतिष्ठा करायेंगे। यदि आप ने हमारी इस प्रार्थना को स्वीकृत न किया तो अंत को आप बहुत पछतायेंगे। स्वामी जी ने इस कथन को अच्छे प्रकार सुन कर "निन्दन्तुनीति०" इस श्लोक को पढ़कर उत्तर दिया चाहे नीति के जाननेवाले मेरी निन्दा करें या स्तुति, लक्ष्मी रहे या जाय, मरण आज हो या युगान्तर में परन्तु मैं न्याय अर्थात् धर्म से एक पद नहीं हट सका पौराणिक पण्डितों को इस पर भी कल न पड़ी और अपने स्वभाव के अनुकूल पण्डित श्रद्धाराम जी ने एक और नई चाल चली कि कुछ साधुओं को सिखलाकर अपनी सभा में यह कहलाया कि हम ने स्वामी दयानन्द के उपदेश को सुनकर उन का मत स्वीकार कर लिया था अब हम को सनातन धर्मी पण्डितों से इस विषय में वार्तालाप करने से अपनी भूल विदित होगई इस लिये अब हम सनातन धर्म में आना चाहते हैं.अतएव पण्डित श्रद्धाराम जी ने उन का प्रायश्चित्त कराकर बड़ी धूमधामके साथ उनको हरिकी पौड़ियों पर लेगये जिस की संपूर्ण मेले में चर्चा फैल गई परन्तु अन्त को पाप मगरे पर बोल उठा अर्थात् उन्हीं की मंडली के पण्डित गोपाल शास्त्री ने यह सब भेद प्रकट कर दिया।

(देखो रिसाला विद्या प्रकाशक शुक्ल माह जून सन् १८७६ ई०)

स्वामी जी महाराज इस मेले में प्रति दिन प्रातः शौच कर्म से निवृत्त होकर ग्यारह बजे तक और फिर एक बजे से पांच बजे तक उपदेश करते रहते थे इस के अतिरिक्त बहुधा शास्त्रार्थ और धर्म विषय पर वार्तालाप करते हुए दिन का एक भी बज जाया करता था। रात्रि के सात बजे से नौ बजे तक सामाजिक पण्डितों और अन्य आर्य्य पुरुषों से धर्मचर्चा किया करते थे अर्थात् स्वामी जी ने अपने पूर्ण बल से पौराणिकी दल में वैदिक धर्म का प्रचार कर लाखों भारत सन्तान के कान में वैदिक ध्वनि को पहुंचा दिया परन्तु आप बीमार होगये यहां तक एक २ दिन में ३०,४० दस्त आने लगे और अति निर्बल होगये इस कारण एक दिन व्याख्यान न हो सका अर्थात् बंद रहा फिर तो पौराणिक भाईयों ने समस्त मेले में हल्ला मचा दिया और बहुतों ने

एकत्र हो सम्मति की कि यह समय परास्त करने का बहुत ही अच्छा है अर्थात् इस समय बिना शास्त्रार्थ किये हुए विजय मिलती है क्योंकि यह बीमारी के कारण अति क्लेशित हो रहे हैं शास्त्रार्थ नहीं करेंगे फिर यह सब मेले में रोला मचा देना इस प्रकार कार्य करने से बिना औषधी के व्याधि जाती है और बात रहती है और सम्पूर्ण मेले में सनातन धर्म का डंका बज जायगा। ऐसा विचार कर बहुत से साधू एकत्र हो स्वामी जी के डेरे पर गये जिन का सत्कार स्वामी जी ने कर आगमन का कारण पूछा तब तक विद्वान् साधू ने उत्तर दिया कि हम शास्त्रार्थ के अर्थ आये हैं. स्वामी जी ने कहा कि किस विषय को लीजियेगा।

साधू जी—हम वेदान्त पर चर्चा करेंगे।

स्वामीजी—प्रथम आप मुझे बतलावें कि आपका वेदान्त से क्या प्रयोजन है?

साधूजी—वेदान्त से यह प्रयोजन है कि जगत् मिथ्या है और ब्रह्म सत्य है।

स्वामी जी—जगत् से क्या अर्थ है और कौन २ पदार्थ जगत् के भीतर हैं?

साधू—जी परमाणु से लेकर सूर्य्य तक जो कुछ है उसको जगत् कहते हैं और सब मिथ्या है।

स्वामी जी—तुम्हारा शरीर बोलना, चालना, उपदेश, गुरु और पुस्तक भी इस के भीतर है या नहीं।

साधू जी—हां यह सब उस के भीतर हैं।

स्वामी जी आप का मत भी इस के भीतर है या बाहर।

साधू जी—हां यह भी जगत् के भीतर है।

स्वामी जी—अब तुम स्वयम् ही कहते हो कि हम और हमारे गुरु। हमारा मत बोलना उपदेश मिथ्या ही है तो हम आप को क्या कहें तुम आप ही अपनी बात काटते हो साक्षीकार की कुछ आवश्यकता नहीं।

साधू जी—चुप चाप वहां से चले गये और फिर कभी इस प्रकार जत्था बांधकर स्वामी जी के सन्मुख शास्त्रार्थ को न आये।

देहरादून।

स्वामी जी हरिद्वार कुंभ में प्रचारकर १४ अप्रैल को देहरादून पधारे और मिस्टर डक के बंगले में उतरे वहां के प्रेमियों ने उन को निवास दिया। हरिद्वार कुम्भ के प्रचार के परिश्रम से स्वामी जी का शरीर कुछ अस्वस्थ होगया था इस कारण कई दिन तक वहां व्याख्यान न होसके, निर्बलता बहुत बढ़गई थी, वार्तालाप करते हुए कई बार शौच जाना पड़ता था। तीनचार दिन के पश्चात् कुछ स्वस्थता होने लगी तब व्याख्यानों का विज्ञापन दियागया। प्रथम दिवस ईश्वर विषय पर " जिस में जन संख्या ३०० थी " कथन करते हुए नास्तिक मत का अच्छे प्रकार से खण्डन किया। द्वितीय दिवस वेद के ईश्वर कृत होने

पर, इसमें विशेषता यह थी कि एक ओर बाइबिल और दूसरी ओर कुरान का हुआ व्याख्यान में मिस्टर पारमर, मिस्टर मार्टिन, कर्नल जयायली, मिस्टर किरीन और रेवरेंड डाक्टर मार्टेसन भी उपस्थित थे, बाइबिल के खंडन करने से पादरी साहब को अत्यंत जोश आया और व्याख्यान की समाप्ति पर तुरन्त उठ कर क्रोधित हो कहने लगे कि पण्डित जी ने केवल धूल उड़ाई और अपने वैदिक मत को पूरा ही छिपा लिया। इस के पश्चात् कहा कि हमें आज तक किसी पण्डित ने इस प्रकार वेदों की शिक्षा नहीं दी। क्या यह ज्ञाता और सत्य हिन्दू धर्मज्ञान है? इस के पीछे पादरी जी ने स्वामी जी के व्याख्यान का खंडन आरम्भ किया और जब वह अच्छे प्रकार खंडनकर चुके तब स्वामी जी महाराज शांति पूर्वक उन के कथन का खण्डन करने लगे। पादरी साहब उस समय भी क्रोध को न रोक कर बीच में ही बात बात पर व्यर्थ टिप्पणी करने लगे तब मिस्टर पारमार साहब ने अंग्रेजी भाषा में पादरी से कहा कि हे डाक्टर मार्टिसन जिस योग्यता और गंभीरता से व्याख्यान दाता अपने विषय को सिद्धकरता है उस को तुम अनुचित और क्रोध युक्त वचनों से रोकना चाहते हो यह मेरी सम्मति के अयोग्य है। जिस दृढ़ता और साहस के साथ वह अपने वचन की पुष्टि और आप के विषय के खंडन में युक्तियां देते हैं आप भी दें। इस के उत्तर में पादरी साहब ने कहा कि मैं बहुत योग्यता से उत्तर देरहा हूं यदि तुम को अनुचित प्रतीत होता है तो तुम भी उन के साथ जाओ और आप क्रोधित होकर चलेगये। इस के अनन्तर मिस्टर पारमर और मार्टिन महाशयों ने स्वामी जी से वार्तालाप करने की इच्छा प्रकट की। स्वामी जी ने इस को स्वीकार कर एक बरामदे में बैठ उन के साथ हो मिस्टर बोस (बिरादर पादरी रामचन्द्र बोस) ने बाइबिल के विषय में वार्तालाप आरम्भ की जो दस बजे तक होती रही अन्त को मिस्टर बोस और मार्टिन में झगड़ा होगया।

इस कारण स्वामी जी को कहने का समय ही न मिला अन्त को सब अपने २ स्थानों को चले गये परन्तु स्वामी जी ने अपने व्याख्यानों में सर्व मतों का पूर्ण रूप से खण्डन किया। मुहम्मदी मत को चकनाचूर कर दिया, ब्रह्मसमाज की पोल खोलदी, ईसाई तौरेत का वर्णन ऊपर से विदित ही है इस कारण समस्त नगर शत्रु होगया। मुसलमान भाई अपनी प्रकृति के अनुसार रक्त के प्यासे होगये इस कारण रात्रि को यह भय रहा कि कहीं कोई मनुष्य उस कुल के बंगले को "जिस में स्वामी जी ठहरे थे" जलाकर भस्म न कर दें। दूसरे दिन बहुत मुसलमान इकट्ठे होकर झगड़ा करनेके लिये गये परन्तु उस समय कोई शास्त्रार्थ नहीं हुआ केवल नियमों पर ही बातचीत होती रही। चौथे दिन पुराणों और पांचवे दिन आर्य्यावर्त्त की प्राचीन दशा पर व्याख्यान दिया इस में रोग बढ़गया दस्त आने लगे शरीर निर्बल होगया

इतने में कर्नैल अल्काट साहब का सहारनपुर से तार आया। स्वामी जी तुरंत ३० अप्रैल को वहां से चलदिये और इस के पश्चात् २६ जून को यहां आर्य्य समाज स्थापन होगया। स्वामी जी १ मई को सहारनपूर पहुंचे जहां कर्नैल अल्काट और मेडम बिलैवटस्की से मिलाप हुआ और दो दिन वहां ठहर कर सब के सब २ मई को मेरठ पहुँचे जहां प्रथम दिवस ईश्वर विषय पर व्याख्यान दिया अन्त समय कर्नैल व मेडम साहिबा के विषय में संक्षेप कथन किया दूसरे दिन कर्नैल साहिबा ने अमरीका देश का वर्णन कर ईसाई मत पर कुछ कह कर कहा कि बहुधा मनुष्य इस प्रकार सत्मार्ग से कुमार्ग में जारहे हैं फिर थियोसापीकल सुसाइटी के स्थापन करने का प्रयोजन वर्णन कर, अन्त को यह भी कहा कि हम स्वामी जी महाराज को अपना गुरु मान कर भारत वर्ष में आये हैं इस के पीछे कर्नैल साहब ने व्याख्यान का अनुवाद उर्दू में सुनाया फिर स्वामी जी ने कथन किया। पश्चात् मेडम साहिबा ने कुछ कहा। पुनः कर्नैल साहब मेडम सहित बंबई को चले गये और स्वामी जी ५ मई तक वहां रहकर औषधी कराने और आराम करने के लिये छलेसर गये जहां एक मास रहकर ३ जौलाई सन् १८७६ ई० को मुरादाबाद पहुँचे राजा जयकृष्णदास सी. एस. आई. के बंगले पर सुशोभित हुए। रोग के कारण इसवार केवल ३ ही व्याख्यान हुए एक व्याख्यान कलेक्टर साहब के निवेदन पर राजनीति विषय पर हुआ जिस में नगर के प्रतिष्ठित और पदाधिकारी और वकीलों के अतिरिक्त अंग्रेज महाशय भी उपस्थित थे, प्रथम स्वामी जी ने एक मन्त्र को स्वर सहित पढ़ा जिस से कोठी गूँज उठी और शान्ति फैल गई और इस बात की साक्षी मिल गई कि सम्पूर्ण संसार में जो ज्ञान विद्या फैली हुई है वह वेदों ही से निकली है फिर स्वामी जी ने राजा और प्रजा के धर्मों का पूर्ण रूप से वर्णन किया जिस का प्रभाव यह हुआ कि मिस्टर स्पीडिंग साहिब बहादुर कलेक्टर ने खड़े होकर स्वामी जी की अत्यंत प्रशंसा कर कहा कि जो कुछ स्वामी जी ने कहा है यदि इसी प्रकार राजा और प्रजा अपने २ धर्म पर आरूढ़ होवे तो ग़दर के समय में जो क्लेश राजा और प्रजा को हुए वह कदापि न होते। लाला श्यामसुन्दरलाल और मुन्शी इन्द्रमणि साहिब स्वामी जी के प्रथम मन से ही अनुयाई हो चुके थे। उन में से मुन्शी इन्द्रमणि साहिब मुसल्मानों के धर्म के खण्डन करने के कारण प्रसिद्ध थे अब स्वामी जी के मिलने से उन को अपने निज धर्म में बहुत दृढ़ता हुई। स्वामी जी के संग्रहणी रोग की चिकित्सा पण्डित लक्ष्मीदत्त वैद्य द्वारा, तत्पश्चात् डाक्टर ड्रेन साहिब

बहादुर से कराई गई। डाक्टर साहब ने स्वामी जी को परोपकारी समझकर उनसे अपनी फीस के २००) रु० नहीं लिये इसी स्थान पर रामलाल यदुवंशी क़ायमगंज निवासी ने आकर यज्ञोपवीत कराया और स्वामी जी ने उस से यह भी कहा कि शरीर सदा नहीं रहेगा तुम हमारी पुस्तकों से शिक्षा लेते और अन्यों को करते रहना। यहां समाज नियत होने से, प्रथम मुंशी इंद्रमणि जी ने स्वामी जी से कहा कि समाजों में सलाम के स्थान पर कौनसा शब्द नियत करना चाहिये मैंने पहिले जयगोपाल कराया था और अब मैं परमात्मा जयति कहना भला समझता हूं स्वामी जी ने कहा कि नहीं नमस्ते कहना चाहिये मुंशी जी ने कहा कि इस में राजा और प्रजा एक हो जावेंगे स्वामी जी ने कहा कि अभिमान अच्छा नहीं अर्थात् अनेकान् राजा विद्वान् शूरवीर हुए परन्तु उन्हों ने अपने मुख अपनी बड़ाई नहीं की और नमस्ते का अर्थ मान और सत्कार का है जो राजा और प्रजा दोनों को कहना उचित है। हम तुम से सत्य पूछते हैं कि जब कोई तुम्हारे स्थान पर आता है या तुम से मिलता है तो तुम्हारे हृदय में क्या ध्यान आता है। वह चुप रहे। तब स्वामी जी ने कहा कि प्रतिष्ठित पुरुष को देख कर मान और छोटे को देख कर उस के आदर का ध्यान चित्त में आता है तो फिर बताओ ऐसे समय में परमेश्वर के नाम से क्या सम्बन्ध। इस के उपरान्त मनुष्य का यह भी धर्म है जो मन में हो वही कहे इस लिये आर्यसमाजों में नमस्ते उच्चारण करना ठीक है जैसा कि पूर्व ऋषि मुनियों में प्रचार था और वेदादि पुस्तकों में भी नमस्ते ऐसा शब्द आया है। २० जौलाई को राजा साहब के स्थान पर हवन होकर समाज नियत हो गया इसी दिन नगर में मूर्ख लोगों ने हल्ला उड़ा दिया कि स्वामी जी का थूका हुआ हलुवा सब ने खा लिया, सत्य तो यह है कि मूर्ख अपनी मूर्खताई से कहीं भी नहीं चूकते। साहू श्यामसुन्दर जी ने कहा कि मैंने सब दुराचार छोड़ दिये हैं तब स्वामी जी ने उन को अग्निहोत्र और बलिवैश्वदेव करने का उपदेश कर उन की माता जी को बहुत शांति की शिक्षा की जिस समय स्वामी जी मुरादाबाद में उपदेश कर रहे थे उसी समय बदायूं के कई भद्र पुरुषों ने "जहां मई सन् १८७९ में आर्यसमाज स्थापित हो गया था" पण्डित बिहारीलाल सभासद को स्वामी जी के पास बुलाने को भेजा उन के कहने पर स्वामी जी ३० जौलाई को मुरादाबाद से चलकर ३१ जौलाई को बदायूं पधारे। सभासदों ने स्वागत के पश्चात् साहू गंगाराम के बाग में ठहराया। १ अगस्त को प्रातःकाल सभासद जन स्वामी जी के दर्शनों को गये वह उन दिनों रोग के कारण दवा खाते थे उस समय वार्तालाप करते हुए यह भी कहा था कि भागवत में कृष्ण महाराज को (जो बड़े विद्वान् और महात्मा पुरुष थे) निन्दा की है। परन्तु महाभारत में उन बातों का चिन्ह भी नहीं इस कारण यह सब मिथ्या जानना चाहिये। स्वामी

जी महाराज का शरीर अभी पूर्ण रूप से आरोग्य नहीं होने पाया था तो भी नगर में विज्ञापन लगाये गये और १ अगस्त से १४ तारीख तक बड़े समारोह के साथ व्याख्यान होते रहे, जिन में लगभग दो दो हजार के मनुष्य उपस्थित होते थे। मौलवी आबिद हुसैन साहब एक मुसलमान भाइयों को साथ लेकर स्वामी जी के यहां गये और वार्तालाप हुई अन्त को उन्हों ने कहा कि मौलवी क़ासिम साहिब को बुलाया है उन के आने पर शास्त्रार्थ होगा न मौलवी साहिब आये न शास्त्रार्थ हुआ. हां चार अगस्त से दो दिन तक धर्म सभा के मुखिया पण्डित गंगाप्रसाद जी से शास्त्रार्थ हुआ जिस में स्वामी जी ने उनके प्रत्येक प्रश्न का यथावत् उत्तर दिया परन्तु उन्हों ने हठ के कारण उन की बात को स्वीकार न किया।

बरेली।

स्वामी जी १४ अगस्त सन् १८७९ को बरेली में पहुंच लाला लक्ष्मीनारायण खजांची की बेगम बाग़ की कोठी में उतरे। और नियत पूर्वक व्याख्यान आरम्भ हुए एक दिन टौनहाल में व्याख्यान था जिस में पादरी स्काट व मिस्टर रीड कलेक्टर व मिस्टर एडवर्ड्स साहब कमिश्नर सहित पन्द्रह बीस अंग्रेज़ों के उपस्थित थे स्वामी जी ने प्रथम पुराणों की असभ्य बातों का खण्डन करते करते उनकी असभ्यता तथा कुशिक्षा का जो परिचय देते हुये पंचकन्याओं का अच्छे प्रकार वर्णन करते हुये कहा कि पौराणिकों की बुद्धि पर शोक है कि द्रौपदी के पांच पति होते हुये कुंवारी कहते हैं इसी प्रकार कुन्ती, तारा, मंदोदरी और अहिल्या को इससे इनकी सभ्यता पर धब्बा लगता है। जिसको सुनकर पादरी स्काटादि बड़े प्रसन्न हो रहे थे इसके पश्चात् जब स्वामी जी ने कहा कि किरानी इनसे भी गिरे हुए हैं क्योंकि वह कुमारी कन्या से सन्तानोत्पत्ति मानते हैं और फिर शुद्ध स्वरूप परमात्मा पर दोष आरोपण करते हैं और ऐसा घोर पाप करते हुये तनिक भी लज्जित नहीं होते, इस पर पादरी स्काट साहब आदि के छक्के छूट गये। प्रातःकाल लाला लक्ष्मीनारायण को बुलाकर कहा कि स्वामी जी को आप समझादें कि अत्यन्त कटु शब्दों में व्याख्यान न दें नहीं तो कदाचित् मूर्ख हिन्दू मुसलमान बिगड़ गये तो स्वामी जी के लेक्चर बन्द हो जायेंगे। यह सुन खजांची साहब घबड़ाकर स्वामी जी से कहने का साहस कर घर को लौट आये और आते ही कई एक मनुष्यों से कहा कि तुम स्वामी जी से इस बात को कह दो परन्तु कोई न मिला अन्त को एक नास्तिक ने कहने का प्रण किया तब खजांची उस नास्तिक और अन्य कई पुरुषों को साथ ले ज्यों त्यों कर उस कमरे में पहुंचे जहां स्वामी जी कार्य कर रहे थे, जाते ही नास्तिक ने केवल इतना ही कहा कि खजांची साहब आप से कुछ प्रार्थना करना चाहते हैं क्योंकि उन को कमिश्नर साहब ने बुलाया था। इतना कह वह पृथक् हो गया अब खजांची साहब के होश सूख गये, कहीं सिर

फुसलाते, कहीं गला साफ करते, अन्त को जब पांच मिनट व्यतीत हो गये और उन से कुछ न कहा गया तब स्वामी जी ने कहा कि तुम्हारा तो कोई काम करने का समय नहीं है इस कारण तुम समय की अमूल्यता को नहीं समझते, मेरा समय अमूल्य है जो कुछ कहना हो कहो इस पर खजांची साहब ने कहा कि महाराज, यदि सख्ती न की जाय तो क्या हानि है इस से प्रभाव भी अच्छा पड़ेगा इस के अतिरिक्त अंग्रेज़ों का अप्रसन्न करना भी अच्छा नहीं यह सुन स्वामी जी हंसकर बोले, अरे बात क्या थी, जिस के लिये इतना गिड़गिड़ाता है हमारा इतना समय नष्ट किया, साहब ने कहा होगा कि तुम्हारा पण्डित कठोर वचन कहता है इस कारण व्याख्यान बन्द हो जायेंगे यह होगा, वह होगा अरे भाई मैं हउआ तो नहीं कि जो तुम को खा लूंगा सीधे कह देता व्यर्थ इतना समय क्यों गंवाया। खजांची साहब घर पर चले गये स्वामी जी व्याख्यान के समय से ५ मिनट प्रथम नियत स्थान पर पहुंच गये। इस दिन व्याख्यान आत्मा के स्वरूप पर था जिस में सत्य के पक्ष पर स्वामी जी ने कहना आरम्भ किया, लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट मत करो कलेक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा परन्तु चक्रवर्ती राजा क्यों न अप्रसन्न हो हम तो सत्य ही कहेंगे। पुनः इस उपनिषद् को पढ़कर (जिस में लिखा है कि आत्मा को कोई शस्त्र छेदन नहीं कर सकता न अग्नि जला सकती है) गरजकर बोले कि शरीर अनित्य है इस की रक्षा में प्रवृत्त हो कर अधर्म करना व्यर्थ है जिसे मनुष्य का जी चाहे नाश करदे फिर चारों ओर तीक्ष्ण नेत्रों की ज्योति डाल कर सिंहनाद करते हुये कहा कि वह शूरवीर मुझे दिखलाओ जो मेरे आत्मा का नाश करनेका प्रणकरता है जब तक ऐसा पुरुष दृष्टिगोचर नहीं होता तब तक मैं किञ्चित् भी इस बात को विचार करने में तत्पर नहीं होता कि मैं सत्य को दबाऊं। इसके पश्चात् स्वामी जी और पादरी स्काट साहब का शास्त्रार्थ २५ व २६ अगस्त को सभ्यता पूर्वक होता रहा जिसका संक्षेप वृत्तान्त हम नीचे लिखते हैं।

प्रथम दिवस।

प्रथम दिवस २५ अगस्त सन् १८७९ को आवागमन के विषय पर शास्त्रार्थ हुआ स्वामी जी का कथन था कि जीव का गुण कर्म स्वभाव अनादि है इसी प्रकार परमेश्वर के न्याय आदि गुण अनादि हैं इस हेतु जीव सदा से कर्म करता चला आया है और ईश्वर उनको फल देता रहा है इस कारण आवागमन अवश्य माननीय है।

पादरी साहब ने कहा यह बात तो प्राचीन है परन्तु वर्तमान काल के सभ्य पुरुष इसको नहीं मानते इस कारण यह माननीय नहीं है।

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि यदि मान लिया जावे कि प्राचीन बातें

अप्रमाणीक और नवीन प्रमाणीक हैं तो तौरेत व इन्जील भी पुरानी होने के कारण अप्रमाणीक हैं यह तर्क किसी बात को सिद्ध नहीं कर सकती। पादरी साहब—मैंने मान लिया कि प्राचीन नवीन से प्रमाणीक अप्रमाणिक का परिचय नहीं हो सकता फिर यह तर्क कि जीव व ईश्वर दोनों को अनादि मानने से दो ईश्वर मानने पड़ेंगे अनुचित बात है और कहा कि शास्त्रों का यह लेख कि मनुष्य पशु पक्षी इत्यादि के शरीर में जन्म लेता है बहुत ही निकृष्ट है इस विषय पर इंजील का लेख अति शांतिदाता है।

स्वामी जी—दो वस्तुओं के अनादि होने से वह एक ही प्रकार की नहीं हो सकती जबतक कि उनके गुण भी तुल्य न हों परमेश्वर सर्व देशी और जीव एक देशी है परमेश्वर सर्वज्ञ जीव अल्पज्ञ इस हेतु दोनों के अनादि होने से दो ईश्वर सिद्ध नहीं होते।

द्वितीय दिवस।

द्वितीय दिवस २६ अगस्त को परमेश्वर के अवतार धारण करने के विषय में पादरी साहब ने मंडन और स्वामी जी ने खंडन किया। पादरी साहब ने कहा कि जो मनुष्य निश्चय पूर्वक कहता है कि मैं सम्पूर्ण ईश्वरीय विषयों को भले प्रकार जानता हूं वह ठीक नहीं इस हेतु यदि परमेश्वर किसी शरीर में प्रकट हो तो सम्भव है। **स्वामी जी** ने कहा कि पादरी साहब का कथन था कि ईश्वर साकार होता है और जो प्रमाण दिया वह कथन के विरुद्ध था (१) प्रश्न यह है कि ईश्वर को शरीर धारण करने की आवश्यकता ही क्या है (२) वह सर्वज्ञ है या नहीं (३) वह निराकार है या साकार (४) वह सर्वज्ञ है या एक स्थान पर रहता है **पादरी साहब** ने इस के उत्तर में कहा कि सर्वव्यापी और सर्वदर्शी का कोई ठीक प्रयोजन नहीं जानना, परमेश्वर शरीर भी धारण कर सकता और बाहर भी रह सकता है क्योंकि सर्व व्यापक है और शरीर धारण करने से परमेश्वर की प्रतिष्ठा में अन्तर नहीं आता **स्वामी जी** ने उत्तर दिया कि यदि परमेश्वर सर्वव्यापक है तो वह न किसी शरीर में आता न कहीं निकल जाता? पादरी साहब ने इसका उत्तर नहीं दिया कि परमेश्वर को देह धारण करने की क्यों आवश्यकता है निदान पादरी साहब जब स्वामी जी के प्रश्न का ठीक २ उत्तर न दे सके तब अण्ड सण्ड उत्तर देने लगे और तत्व विषय को छोड़ मसीह के अवतार पर दौड़ गये कि मसीह का अवतार ईश्वर के साकार होने का प्रमाण है और कहा कि सभ्यजन बाइबिल को मानते जाते हैं इस कारण सिद्ध होता है कि देह धारण करना ईश्वर आधीन है और इसी से बाइबिल भी सच्ची है।

तृतीय दिवस।

तृतीय दिवस सत्ताइस अगस्त को पादरी साहब ने यह विषय वादानुवाद

के लिये निश्चय किया कि परमेश्वर पापों को क्षमा भी करता है इस बात की सिद्धि के हेतु पादरी साहब ने कहा कि आवश्यकता के अनुसार अर्थात् मसीह पर ईमान लाने से पापों को क्षमा भी कर सकता है। स्वामी जी ने कहा कि पापों को क्षमा करना संसार में पापों की वृद्धि करना है क्योंकि जीवों को पाप करने में रुचि बढ़ती है जब परमात्मा सर्वज्ञ है तो उस के न्याय आदि गुण भी बेभूल हैं इस से जब परमेश्वर अपने कर्म स्वभाव से उलटा काम नहीं करसक्ता तो न्याय से उलटा क्षमा क्यों कर सकेगा और ईश्वर जो दयालु है तो दया का भी वही अभिप्राय है जो कि न्याय का है क्षमा करना दया नहीं यदि किसी डाकू के अपराध को क्षमा करने का नाम दया है तो इस से प्रति दिन डाकू अधिक होते जावेंगे जिस से संसारी लोगों को बहुत ही दुःख होगा। इन के अतिरिक्त उस डाकू का स्वभाव क्षमा होजाने के कारण पाप कर्मों में अधिक रुचिवाला होजायगा। पुनः वह बड़े पापों के करने का साहस करने लगेगा फिर बतलाये अपराध का दण्ड देना ही परमात्मा की सच्ची दया है न कि अपराध के क्षमा का नाम दया। इस के पश्चात् फिर एक दिवस पादरी साहब ने स्वामी जी से वादानुवाद के लिये कहा तब स्वामी जी ने कहा कि मेरा और आप का वादानुवाद अनेक विषयों पर हो चुका है और आप किसी नियत विषय पर नहीं रहते इस कारण आज आप वेदों में तर्क करें और फिर मैं बाइबिल पर करूंगा इतना कह ऋग्वेद उन के सामने रख दिया तब पादरी साहब ने कहा कि प्रथम आप ही आरम्भ करें स्वामी जी ने बाइबिल हाथ में लेकर पादरी साहब से पूछा कि प्रथम दिवस परमेश्वर ने पृथ्वी को रचा फिर आकाश इसी भांति चौथे दिन सूर्य्य को, क्या यह सब बातें सत्य हैं?

पादरी साहब—ने कहा कि हां।

स्वामी जी—ने कहा कि बिना सूर्य्य के दिन रात कैसे नियत हो गये और सूर्य्य ही न था तो चौथा दिवस कैसे प्रतीत हुआ।

पादरी साहब—ने कहा कि इंजील में ऐसा ही लिखा है।

शाहजहांपुर।

इस के पश्चात् स्वामी जी ७ सितम्बर को बरेली से चल कर शाहजहांपुर पधारे जहां १७ सितम्बर तक ६ व्याख्यान उत्तम प्रकार से हुए जिस से नगर में बड़ी हल चल मचगई और सनातन धर्मियों ने पण्डित अंगदराम शास्त्री को "जो पीलीभीत के स्कूल में संस्कृत के पण्डित थे" शास्त्रार्थ के लिये बुलाया जिन्हों ने आते ही सामान्य पण्डिता की भांति लिखा पढ़ी आरम्भ करदी और इसी में सब समय व्यतीत होगया और अन्त को सन्मुख न आये हां पत्र व्यवहार में कठोर शब्दों का प्रयोग कर अपनी पण्डिताई का परिचय देते रहे।

है कि जो कहता है वह अपनी ही कहता है फिर पण्डित जी के पास आकर सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। तब पण्डित जी ने कहा कि एक २ बार और जाकर प्रत्येक से अच्छे प्रकार समालोचना करो कि आप का धर्म क्या है वह उन की आज्ञानुसार गया तो कोई कहता है कि लाल लंगोटवाले की सेवा में रहना धर्म है। कोई कहता है कि माखन के चोर गोपियों से किलोल करने वाले की शरण में आना धर्म है। कोई कहता है कि चरस पीकर धतूरे में दम लगाकर भंग का लोटा चढ़ाकर भोले की याद में मग्न होजाना धर्म है। कोई कहता है संड मुसंडों का खिलाना और पृथ्वी, धन वरन् स्त्री तक देदेना धर्म है। कोई कहता है कि गंगा, यमुना, सरस्वती में डुबकी लगाना धर्म है। कोई कहता है कि कथा आदि का कराना और ब्राह्मणों को अच्छे २ पदार्थ देना धर्म है। कोई कहता है कि अत्यन्त मद्यपान करना, मछली, मांस खाना, व्यभिचार करना धर्म है। इसी प्रकार कोई जल, सूर्य्य, पीपल, पत्थर, मथुरा, काशी, राम, गणेश, भैरों, गोगापीर, सैय्यद, गाज़ीमियां, पीर, कबर, मृतक, मदार, भूत, चुड़ैल, मसान, जिन्न आदि की पूजना धर्म बतलाता है। कोई कहता है कि सब को छोड़ खुदा के बेटे ईसामसीह पर ईमान लाना धर्म है। कोई कहता है कि रसूल पैग़म्बर को मानना (जिहाद) धर्म के ऊपर बलिदान करना धर्म है। निदान इस प्रकार सब ने अपने २ धर्म बतलाये वह प्रत्येक मनुष्य के मुख से नवीन धर्म सुनकर चकित होगया और सब से पूंछकर फिर पण्डित जी के पास आया और सब वृत्तान्त ज्यों का त्यों उन को सुनाया तब पण्डित जी ने कहा कि इन सब से सच्चा धर्म तुम को बतलाता हूं ध्यान से सुनो देखो जब एक बात के सच होने पर चार मनुष्यों की गवाही एक सी हो तो न्यायाधीश जानता है कि यह बात सत्य है और जब एक विषय पर ९९ साक्षी हों तो उस को सच होने में क्या संदेह है। जब एक मनुष्य अपने धर्म की बात बतावे और उस के ९९ मनुष्य अप्रमाणीक कहें तो किस तरह ठीक माना जावे कदापि नहीं जैसे यहां एक मनुष्य ने कहा कि ईसा पर विश्वास लाना धर्म है उसपर भी ९९ साक्षियों ने धर्मविरुद्ध बतलाया। तीसरे ने कहा कि मुहम्मद पर विश्वास लाना धर्म है शेष ने उस को भी विरुद्ध कहा इस से यह बात जान पड़ती है कि सब ने अपने मन की सेना इकट्ठी की है। अब जिन बातों के मानने में सब की साक्षी एक सी हो उस को मानो कोई बात ऐसी किसी ने न कही जो सब ने कही हो उसने कहा हां महाराज बहुत सी बातें मिलती हैं जैसा एक ईश्वर को मानना और उसी का ध्यान करना सत्य भाषण और सत्य को मानना असत्य को छोड़ना और दीनों पर दया करना ऐसी बातें हैं कि सब धर्मों में एक सी हैं तब पण्डित जी ने कहा कि यही धर्म की बातें हैं केवल इन्हीं को मानो शेष सब अप्रमाणीक और कल्पित हैं। इसी ध्यान से स्वामी जी ने संस्कृत के पठन पाठन की शिक्षा

प्रणाली की पुस्तकें लिखना आरम्भ की थीं जिसका नोटिस भी सर्व साधारण को यहां से दिया था स्वामी जी के आने से पूर्व ही आर्य्यसमाज स्थापित हो गया था जिसके मंत्री मुंशी बख़्तावरसिंह एडीटर आर्य्य दर्पण नियत हुये थे। स्वामी जी शाहजहांपुर से १७ सितम्बर को चल कर लखनऊ पहुंचे और यहां केवल छः दिन रह फर कानपूर होते हुए २४ सितम्बर को फ़र्रुख़ाबाद पहुंचे जहां प्रति दिन ५ बजे से ७ बजे तक व्याख्यान होते रहे जिन में नगरस्थ प्रतिष्ठित पुरुषों के अतिरिक्त पदाधिकारी और सहस्रों साधारण मनुष्य एकत्र होते थे २ अक्टूबर को स्वामी जी ने लाला जगन्नाथ प्रसाद रईस फ़र्रुख़ाबाद के स्थान पर गौ रक्षा के लाभों का सविस्तार वर्णन कर, उसकी रक्षा न करने से जो २ देश की हानियां हो रही हैं और आगे को होंगी उनका पूरा फ़ोटो खींचकर दिखलाया फिर इस के पीछे गौ माता और बैल पिता और मरते समय पूछ पकड़ कर वैतरणी करने से वैकुण्ठ पहुंचाती है इन सब बातों को भले प्रकार निषेध तथा सत्पात्रों को दान देने के लाभ और विद्याहीनों को देने की हानियों का अच्छे प्रकार वर्णन किया फिर आर्य्यसमाज में 'जो स्वामी जी के आने से प्रथम नियत हो चुका था' व्याख्यान दिये जिन का नगर में बड़ा प्रभाव हुआ। एक सहस्र मुद्रा वेद भाष्य आदि पुस्तकों के निर्माणार्थ आर्य्य भाइयों ने प्रदान किये और पौराणिकों ने अपनी प्रतिष्ठा स्थिर रखने के लिये चलते समय नीचे लिखे २५ प्रश्न भेंट किये जिनका उत्तर निम्नलिखित दिया गया।

———:o:———

प्रश्न।

१—आप्त ग्रन्थों अर्थात् वेदादि सत् शास्त्रों से संन्यासियों के क्या धर्म हैं?

२—आप के मत में पापों की क्षमा नहीं होती तो मनुस्मृति आदि आप्त ग्रन्थों में लिखे प्रायश्चित्तों का क्या फल है।

३—आप के मत में तत्व आदि परमाणु नित्य हैं और कारण का गुण कार्य्य में रहता है तो परमाणु जो सूक्ष्म और नित्य हैं उनसे संसारादिक स्थूल और अनन्त कैसे होसका है।

४—मनुष्य और ईश्वर में क्या सम्बन्ध है। विद्या और ज्ञान से मनुष्य ईश्वर होसकता है या नहीं। जीवात्मा और परमात्मा में क्या सम्बन्ध है। दोनों नित्य हैं और जो दोनों चेतन हैं तो जीवात्मा के आधीन है या नहीं और यदि है तो क्यों है।

५—आप संसार की रचना और प्रलय को मानते हैं या नहीं जब प्रथम सृष्टि हुई तो उसमें एक या बहुत से मनुष्य उत्पन्न हुये। अब उन में कर्म आदि

की कोई विशेषता न थी तब परमेश्वर ने कुछ मनुष्यों ही को वेद उपदेश क्यों किया ऐसे परमेश्वर में पक्षपात का दोष आता है।

६-आप के मत में कर्मानुसार न्यूनाधिक फल होता है तो मनुष्य स्वतन्त्र कैसे है परमेश्वर सर्वज्ञ है तो उसको भूत भविष्यत् वर्तमान का ज्ञान है अर्थात् उसको यह ज्ञान है कि कोई पुरुष किसी समय में कोई काम करेगा और परमेश्वर का यह ज्ञान असत् नहीं होता क्योंकि वह सत् ज्ञान है अर्थात् वह पुरुष वैसाही कर्म करेगा जैसा कि परमेश्वर का ज्ञान है तो कर्म उसके लिये नियत हो चुका तो फिर जीव स्वतन्त्र कैसे ?

७-मोक्ष क्या पदार्थ है ?

८-धन बढ़ाना अथवा शिल्प विद्या वैदिक विद्या से ऐसा यन्त्र अर्थात् कला तथा औषधि का निकालना जिस से मनुष्य को इन्द्रिय जन्म सुख प्राप्त हो, अथवा पापी मनुष्य जो रोग ग्रसित हो उसको औषधि आदि से निरोग करना धर्म है या अधर्म है ?

९-आमस भोजन (मांस खाने) से पाप होता है या नहीं यदि पाप है तो वेद और आप्त ग्रन्थों में हिंसा करना यज्ञादिकों में विदित है और भक्षणार्थ हिंसा करना क्यों लिखा है ?

१०-जीव का क्या लक्षण है ?

११-सूक्ष्म नेत्रों से ज्ञात होता है कि जल में अत्यन्त जीव हैं तो जल पीना उचित है या नहीं ?

१२-मनुष्य के लिये बहुत स्त्री करना कहां निषेध है यदि निषेध है तो धर्म शास्त्र में जो यह लिखा है कि यदि एक पुरुष की बहुत सी स्त्री हों उनमें एक के पुत्र होने से सब पुत्रवती हैं ऐसा क्यों लिखा है ?

१३-आप ज्योतिष के फलित ग्रन्थों को मानते हैं या नहीं और भृगुसंहिता आप्त ग्रन्थ है या नहीं ?

१४-ज्योतिष शास्त्र में आप किस ग्रन्थ को आप्त समझते हैं ?

१५-आप पृथ्वी पर सुख, दुख, विद्या, धर्म और मनुष्य संख्या की न्यूनता और अधिकता मानते हैं या नहीं; यदि मानते हो तो पहिले इनकी वृद्धि थी या अब है या होगी ?

१६-धर्म का क्या लक्षण है और सनातन धर्म परमेश्वर कृत या मनुष्य कृत है।

१७-यदि मोहम्मदी या ईसाई मतानुयायी कोई आप के अनुसार हैं और आप के मत में दृढ़ विश्वासी हों तो आप उनहें ग्रहण कर सकते हैं या नहीं, उन का बनाया हुआ भोजन आप और आप के मतानुयायी कर सकते हैं या नहीं ?

१८-आप के मत से बिना ज्ञान मुक्ति होती है या नहीं ? यदि कोई पुरुष

आप के मतानुसार धर्म पर आरूढ़ हो और अज्ञानी अर्थात् ज्ञान हीन हो तो उस की मुक्ति हो सकी है या नहीं ?

१९-श्राद्ध आदिक अर्थात् पिंड आदिक जिस में पितृ तृप्ति के हेतु ब्राह्मण आदिकों को भोजन कराते हैं श्राद्ध रीति है या नहीं यदि नहीं है तो पितृ कर्म का अर्थ क्या है और मनु आदिक ग्रंथों में उस का लेख है या नहीं ?

२०-कोई मनुष्य यह समझकर कि मैं पापों से मुक्त नहीं हो सका आत्मघात करे तो उसको पाप है या नहीं ?

२१-जीव आत्मा संख्य हैं या असंख्य, कर्म से मनुष्य पशु अथवा वृक्ष आदि योनि में उत्पन्न होसक्ता है या नहीं ?

२२-विवाह करना अनुचित है या नहीं संतानोत्पन्न करने में किसी पुरुष को पाप होता है या नहीं यदि होता है तो क्यों ?

२३-अपने सगोत्र में सम्बन्ध करना ठीक है या नहीं यदि है तो क्यों है सृष्टि की आदि में ऐसा हुआ था या नहीं ?

२४-गायत्री जाप से कोई फल है या नहीं और है तो क्या ?

२५-धर्म अधर्म मनुष्य के अंतरी भाव से होता है या कर्म के परिणाम से, यदि कोई मनुष्य नदी में किसी डूबते के बचाने के लिये कूद पड़े और आप डूब जाय तो उसे आत्मघात का पाप होगा या नहीं ?

उक्त प्रश्नों का उत्तर ।

१-वेदादि शास्त्रों में विद्वान् होकर उन के अनुकूल पक्षपात रहित दुःखों को सहन कर सत्त और असत्त को जान भ्रमण कर सत्य का उपदेश दे सब मनुष्यों की शारीरिक सामाजिक आत्मिक उन्नति करना और आप दुष्ट आचरणों से पृथक् रहना योगाभ्यास करना इत्यादि संन्यासियों के धर्म हैं।

२-हमारा वैदिक मत है कोई कपोल कल्पित नहीं है और उस में पापों की क्षमा नहीं लिखी और न कोई विद्वान् युक्ति से सिद्ध करसक्ता है क्या प्रायश्चित तुम ने दुःख भोग का नाम समझा है जिस प्रकार जेलखाने आदि में चोरी आदि के पापों के फलका भोग होता है वैसे ही प्रायश्चित्त भी समझो यहां क्षमा की कुछ भी कथा नहीं क्या प्रायश्चित्त यहां दुःखरूपी फलका भोग होता है कदापि नहीं। परमेश्वर की क्षमा और दयालुता का यह प्रयोजन है कि बहुत से मूढ़ मनुष्य परमात्मा का अपमान और खण्डन करते हैं और पुत्रादि के न होने या आकाल में मरने अति वृष्टि, अवृष्टि, रोग पीड़ा के होने पर ईश्वर को गाली भी प्रदान करते हैं, तथापि परब्रह्म सहन कर कृपालुता से रहित नहीं होता यह भी उस के दयालु स्वभाव का प्रयोजन है, क्या कोई न्यायाधीश कृत पापों की क्षमा करनेसे अन्यायकारी और पापों के आचरण का बढ़ानेवाला नहीं होता, क्या परमेश्वर कभी अपने न्यायकारी स्वभाव से विरुद्ध अन्याय कर सकता है हां जैसे न्यायाधीश विद्या और सुशिक्षा करके

पापियों को पाप से पृथक् कर राज दण्ड देकर शुद्ध और सुखी कर देता है उसी भांति परमात्मा भी।

३-जो परम अवधि सूक्ष्मता की अर्थात् जिस के आगे स्थूल से सूक्ष्मता नहीं होती उस को परमाणु कहते हैं, जिस के प्रकृति अव्याकृत अव्यक्त कारण आदि नाम भी हैं और वह अनादि भी कहलाते हैं और वह अनादि होने से सत हैं, हाय लोगों की उल्टी बुद्धि जो कारण के गुण सिवाय सम्बन्ध हैं वे कारण में नित्य हैं जो कारण के कारण अवस्था में नित्य हैं वे कार्य्य अवस्था में भी नित्य हैं क्या जो गुण कारण अवस्था में हैं वे कार्य्य अवस्था में वर्तमान होकर जब कारण अवस्था में होते हैं तब भी कारण के गुण नित्य नहीं होते, जब परमाणु मिलकर स्थूल होते हैं या पृथक् २ होकर कारण रूप होते हैं तब भी उन के भाग और संयोग होने का सामार्थ नित्य होने से अनित्य नहीं होते वैसे ही गुरुत्व लघुत्व होने का सामर्थ्य भी उन में नित्य है क्योंकि यह गुण गुणी में समवाय सम्बन्ध से हैं।

४-मनुष्य ईश्वर का राजा और प्रजा, स्वामी सेवक आदि का सम्बन्ध है, अल्पज्ञ ज्ञान होने से जीव ईश्वर कभी नहीं होसका जीव और परमात्मा में व्याप्य व्यापक आदि सम्बन्ध हैं जीवात्मा परमात्मा के आधीन रहता तथापि भोगने में एक नहीं है। परमेश्वर अनन्त सामर्थयुक्त और जीव अल्प सामर्थ वाला है इस लिये उसका परमेश्वर के आधीन होना अवश्य है।

५-संसार की रचना और प्रलय को हम मानते हैं, सृष्टि प्रवाह से अनादि है सादि नहीं, क्योंकि ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव अनादि और सत् हैं जो ऐसा नहीं मानते उन से पूछना चाहिए कि प्रथम ईश्वर निकम्मा और उस के गुण कर्म स्वभाव निकम्मे थे जैसे परमेश्वर अनादि वैसे ही जगत् का कारण अनादि और जीव भी अनादि है क्योंकि बिना किसी वस्तु के उस से किसी कार्य्य का होना सम्भव नहीं जैसे कि इस कल्प की सृष्टि की आदि में बहुत जो पुरुष उत्पन्न हुये थे वैसे ही पूर्व कल्प की सृष्टि में थे और आगे की कल्प सृष्टियों में भी उत्पन्न होंगे कर्मादिक भी जीव के अनादि से हैं चार मनुष्यों की आत्मा में वेद उपदेश करने में यह हेतु है उन के सदृश वा अधिक पुण्यवाला जीवात्मा कोई नहीं थे इस लिये परमेश्वर में पक्षपात नहीं आ सकता।

६-कर्म के फल न्यूनाधिक कभी नहीं होते क्योंकि जिस ने जैसा और जितना कर्म किया हो उस को वैसा और उतना ही फल मिलना न्याय कहलाता है अधिक न्यून होने से ईश्वर में अन्याय आता है और ईश्वर के ज्ञान में भूत भविष्यत काल का सम्बन्ध नहीं होता क्या ईश्वर का ज्ञान होकर नहीं और न होकर होनेवाला है जैसे कि ईश्वर को हमारे आगामी कर्मों का ज्ञान है वैसे मनुष्य अपने साधारण गुण कर्म के साधनों के नित्य होने से सदा

स्वतन्त्र है परन्तु अनुचित रूप पापों के फल भोगने के लिये ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र होते हैं जैसा कि राजा की व्यवस्था में चोर और डाकू पराधीन हो जाते हैं वैसे ही इन पाप पुण्य आत्मिक कर्मों के दुख सुख होने का ज्ञान हमारे किये हुए कर्मों से उलटा है जैसे वह अपने ज्ञान में स्वतन्त्र है वैसे ही सब जीव अपने २ कर्मों के करने में स्वतन्त्र हैं।

७–सब दुष्ट कर्मों से छूटकर सब शुभ करना जीवन मुक्ति और सब दुखों से छूटकर आनन्द से परमेश्वर में रहना यह मुक्ति कहलाती है।

८–न्याय से धन बढ़ाने और शिल्प विद्या और परोपकारी बुद्ध से मन्त्र औषधि सिद्ध करने से धर्म और अन्याय करने से अधर्म होता है धर्म से आत्मा और इन्द्रिय शरीर को सुख प्राप्त होता है जो पापी मनुष्य को अधर्म से छुड़ाने और धर्म में प्रवृत्त करने के लिये औषधि आदि से रोग छुड़ाने की इच्छा हो तो धर्म, इस से विपरीति करने से अधर्म होता है।

९–मांस खाने में पाप है वेदों तथा अन्य आप्त ग्रन्थों में कहीं भी यज्ञादिक के लिये पशु हिंसा करना नहीं लिखा गौ, अश्व, अज, मेध के अर्थ वाममार्गियों ने बिगाड़ दिये हैं उनके सत्य अर्थ में हिन्सा करना कहीं भी नहीं लिखा हां जैसे डाकू आदि दुष्ट जीवों को राजा लोग मारते और बन्धन और छेदन करते हैं वैसे ही हानिकारक पशुओं को मारना लिखा है परन्तु मारकर उनको खाना नहीं लिखा, आज कल तो वाममार्गियों ने झूठे श्लोक बनाकर गौ मांस खाना भी बतला दिया है जैसे कि मनु स्मृति में इन धूर्तों का मिलाया हुआ यह लेख है कि गौ मांस का पिन्ड देना चाहिये क्या कोई पुरुष ऐसे भ्रष्ट वचन मान सकता है।

१०–इच्छा और द्वेष प्रयत्न) सुख और ज्ञान यह जीव का लक्षण न्याय शास्त्र में लिखा है।

११–क्या स्त्रियां में लोग अपनी मूर्खता की प्रसिद्धि वचनों से नहीं करा देते न जाने यह भूल संसार में कब तक रहेगी अब पात्र और पात्रस्थ जल भांत वाले हों तो उनमें अनन्त जीव कैसे समायेंगे छानकर या आंख से देखकर जल का पीना सबको उचित है।

१२–एक मनुष्य को अनेक स्त्रियों के करने का वेद में निषेध लिखा है, संसार में सब ही उत्तम मनुष्य नहीं होते बहुधा कामातुर मनुष्य विषय सुख के लिये बहुत सी स्त्रियां करलेते हैं उनमें पतिभाव के स्थान पर सौत भाव उत्पन्न होकर विरोध होजाता है इस लिये जब एक के पुत्र होता है तो फिर विरोध के कारण विष आदि से उसको न मारने के लिये सबको पुत्र लिखा है।

१३–हम ज्योतिष शास्त्र के गणित भाग को मानते हैं फलित भाग को नहीं क्योंकि जितने ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थ हैं उनमें फलित का लेश भी नहीं जो भृगु सिद्धान्त कि जिसमें केवल गणित विद्या है उसको हम मानते हैं अन्यथा

को नहीं ज्योतिष शास्त्र में भृगु भविष्यत काल का सुख या दुःख विदित होना आप्त ग्रन्थों में कहीं नहीं लिखा।

१४-ज्योतिष शास्त्र में जो वेदानुकूल ग्रन्थ हैं उन सबको हम आप्त ग्रन्थ मानते हैं अन्य को नहीं।

१५-इस पृथ्वी में सुख आदिकों की वृद्धि किसी की व्यवस्था सापेक्ष होने से अनियत मानते हैं मध्य अवस्था में तुल्य।

१६-जो पक्षपात रहित न्याय कि जिसमें सत का ग्रहण और असत का परित्याग हो वह धर्म का लक्षण कहलाता है तथा जो सनातन ईश्वरोक्त और वेद प्रतिपादित हैं। मनुष्य कल्पित कोई धर्म नहीं।

१७-बिना वेदों के हमारा कोई कपोल कल्पित मत नहीं है फिर हमारे मत के अनुसार कोई कैसे चल सकता है क्या तुम ने अधेरमें गिरकर खाना पीना, मलमूत्र करना, जूती, धोती, अङ्गरखा धारण करना, सोना, उठना, बैठना, चलना, धर्म मान रक्खा होगा। शोक है इन कुमति पुरुषोंपर कि जिनकी बाहर और भीतर की दृष्टि पर परदा पड़ा हुआ है जो कि जूता पहिनना या न पहिनना धर्म्म मानते हैं, सुनो और आंख खोल कर देखो यह सब अपने २ देशदेशव्यवहार हैं।

१८-बिना परमेश्वर संबंधी ज्ञान के मुक्ति किसी की नहीं होती और जो धर्म पर होना उसके ज्ञान का अभाव कभी नहीं हो सकता और ज्ञान के बिना धर्म पर पूरा निश्चय कोई मनुष्य नहीं कर सकता।

१९-जीते पित्रों की श्रद्धा से सेवा पुरुषार्थ व पदार्थों से तृप्ति करनी श्राद्ध और तर्पण कहाता है यह वेद और शास्त्रोक्त हैं भोजन भेंट अर्थात् स्वार्थियों का लड्डू आदि से पेट भरना शास्त्रोक्त नहीं किन्तु पापों का अनर्थकारक आडम्बर है, वेदानुकूल मनु आदि ग्रन्थों के लेख माननीय हैं अन्यथा नहीं।

२०-आत्मघात करने से पाप होता है बिना पाप आचरण के फल को भोगे पापों से मुक्ति कभी भी नहीं हो सकती।

२१-ईश्वर के ज्ञान में जीव संख्यात और जीव के अल्पज्ञ ज्ञान में असंख्यात हैं पाप अधिक करने से जीव पशु, वृक्ष आदि योनि में उत्पन्न होता है।

२२-जो पूर्ण विद्वान् जितेन्द्रिय होकर सर्व उपकार किया चाहे उस पुरुष और स्त्री को विवाह करना योग्य नहीं अन्य सबको उचित है, वेदोक्त रीति से विवाह करके ऋतुगामी होकर सन्तानोत्पत्ति करने में दोष नहीं इसके विपरीत कार्य करने से पाप होता है।

२३-अपने सगोत्र में विवाह करने से योनि दोष होता है जिस से शरीर और आत्मा में प्रेम और बलादि की यथार्थ उन्नति नहीं होती इससे भिन्न गोत्रों में विवाह करना उचित है। सृष्टि की आदि में गोत्र ही नहीं थे, हां पोपलीला में दक्ष प्रजापति व कश्यप की एक ही सब संतान मानने से पशु व्यवहार सिद्ध होता है उसको जो मानता है सो मानता रहे।

२४-वेदोक्त रीति से जो गायत्री का जप करते हैं उनको यथार्थ लाभ होता है, क्योंकि उसके अनुकूल आचरण करना लिखा है।

२५-मनुष्यों के धर्म और अधर्म भीतर और बाहर की इच्छा से होते हैं जिनका नाम कर्म और कुकर्म भी है, जो किसी को बचाने के लिये परिश्रम करेगा और फिर उपकार के लिये जिसका शरीर ही वियोग होजाय उसको विना पाप पुण्य ही होगा।

स्वामी जी ८ अक्टूबर को फर्रुखाबाद से चलकर कानपूर में कुछ दिन ठहर कर १७ अक्टूबर को प्रयागराज पधारे जहां छः दिवस निवास कर २६ अक्टूबर को चलकर मिरज़ापुर में सेठ रामरत्न जी के बाग में ठहरे जहां केवल तीन ही व्याख्यान हुए परंतु शङ्का समाधान और वार्त्तालाप प्रतिदिन होता रहा और वेद भाष्य के कार्य करते रहे।

स्वामी जी के यहां आने से प्रथम ही समाज स्थापित हो गया था बाबू मक्खनलाल और बाबू श्यामलाल जी सभासद् आर्य्यसमाज दानापुर से स्वामी जी को लेने आये थे स्वामी जी महाराज उन के साथ चलकर ३० अक्टूबर को स्टेशन दानापुर पहुंचे जहां स्वागत के लिये बहुत से मनुष्य उपस्थित थे वहां से चल बाबू माधोलाल के मकान पर उतरे और बातचीत होना आरम्भ हुआ बाबू अम्बाप्रसाद मुकुरजी ने कहा कि यदि आप का कहना ठीक है और लोग हठ से न मानें तो आप क्या करेंगे स्वामी जी ने कहा हमारा इतना ही काम है कि हमारे कथन को मनुष्य पूर्ण रूप से सुनले फिर वह सुई की भांति भीतर चुभ जायगा और निकालने से न निकलेगा जब कोई उन का मित्र उन से पूछेगा तो कहदेंगे हां हठ या लोभ से न कहें। फिर जौन्स साहब के बङ्गले पर जा निवास लिया और यहां ही दो नवम्बर से व्याख्यान के विज्ञापन लगाए गए जहां १६ नवम्बर तक १४ व्याख्यान हुए जिनसे नगर में बड़ा गड़बड़ मच गया। एक दिन बाबू गुलाबचंद ने स्वामी जी से कहा कि आप मुसलमानों का खंडन न करें, स्वामी जी ने इसका कुछ उत्तर न दिया और जब व्याख्यान का समय हुआ तब इसलाम का खूब खण्डन किया और कहा कि कई छोकरों के छोकरे हम को मना करते हैं परन्तु सत्य को क्यों छिपाओ जब मुसल्मानों का राज्य था तो उन्हों ने हम लोगों का तलवार से खण्डन किया अब क्या अन्धेर है कि यह मुझे बातों से खण्डन करने में भी रोकते हैं। ऐसा सुराज्य पाकर भला मैं किसी की पोल खोलने में कभी रुक सकता हूं अब अंधेर का समय नहीं वरन् सर्कार अंगरेज़ का राज्य है जिस में प्रत्येक मनुष्य सभ्यता से अपने धर्म्म का बड़प्पन और अन्य के दोष दिखला सकता है यही बात इस सुराज्य में अत्यन्त बड़प्पन की है देखो पंजाब के किसी एक नगर में जिस का नाम मुझे अब स्मरण नहीं रहा व्याख्यान दे

रता था इस से एक दिन पहिले यह नोटिस हो चुका था कि कल मैं ईसाई मत का खण्डन करूंगा। इस लिये बहुत से विलायती नेटिव क्रिश्चियन पादरी यहां आये थे और सब से बढ़कर किसी कारण से जनरलरायर्डस साहब बहादुर भी मेरे व्याख्यान में पहुंच गये मेरी जिह्वा में जितनी शक्ति थी उस से पादरियों का खण्डन किया और उस का परस्पर विरोध दिखला कर प्रबल युक्तियों से उस को झूंठा धर्म सिद्ध किया व्याख्यान की समाप्ति पर अप्रसन्न होना तो पृथक् रहा जनरलरायर्डस साहब इतने प्रसन्न हुए कि हमसे उठ कर हाथ मिलाया और कहा कि आप यथार्थ में निर्भय मनुष्य हैं कि हमारे सामने हमारे मत के खण्डन में नहीं डरते और से क्यों डरते होंगे और प्रसन्न होकर चले गये एक दिन ठाकुरप्रसाद ने स्वामी जी से पूंछा कि मुझको योग सिखलाइये (बिना उस के वृत्तान्त के जाने) उत्तर दिया कि एक शादी और करले तब तेरा योग ठीक होजायगा जिस को सुनकर वह अचम्भित हो गए क्यों कि एक स्त्री के होते हुए इन्हों ने दूसरा विवाह कर लिया था बाबू शिवगुलामप्रसाद (जो भङ्ग पिया करते थे) ने स्वामी जी से पूंछा कि मन एकाग्र होने का कोई यत्न बतलाइये स्वामी जी ने कहा तुम दो तोले भङ्ग पी लिया करो तो खूब जमेगा वह लज्जित हो गए। एक दिन मिस्टर जौन्स साहब सौदागर पादरी साहब और मिस्टर केरियर साहब स्वामी जी से मिलने को गए और कहा आप कुछ वर्णन करें तब स्वामी जी ने सच्चे मत परीक्षा की कसौटी (जो शाहजहांपुर के गतवृत्त में लिखी है) बड़ी गम्भीरता से अच्छे प्रकार सुनाई स्वामी जी ने फिर उन से कहा कि आप को कुछ कहना है तब साहब ने कहा आप इस प्रकार कहते हैं कि उस के विरुद्ध कहना अनुचित है इस के पश्चात् जौन्स साहब ने कहा कि जब आपका यह विचार है तो हमारे साथ खाने में क्या शङ्का है स्वामी जी ने कहा कि साथ खाने या न खाने में हम धर्म अधर्म नहीं मानते यह सब बातें देश और काल से सम्बन्ध रखती हैं जो बुद्धिमान हैं वे भी बिना आवश्यकता के अपने देश के विरुद्ध काम नहीं करते कि आप अपनी बेटों का विवाह किसी नेटिव क्रिश्चियन से कर सकते हैं और क्या करने के पश्चात् आप को आनन्द होगा साहब ने कहा कि नहीं, तब स्वामी जी ने कहा कि धर्म विचार से या जाति के प्रचार के ध्यान से। साहब ने उत्तर दिया कि जाति के प्रचार के ध्यान से । इसके पश्चात् स्वामी जी ने कहा कि अपने देशी भाइयों के प्रचार से हम भी नहीं करते धर्म का इस से कुछ सम्बन्ध नहीं, फिर मूर्ति पूजा पर चर्चा हुई स्वामी जी ने कहा यह बात वेद विरुद्ध है प्रथम अपने पुरुषों और बड़ों का चित्र अपने पास रखते थे फिर अविद्या के कारण उन का पूजन आरम्भ कर दिया जैसे आप लोगों में बहुत से ईसा, मरियम, क्रूस और मसीह के शिष्यों की मूर्ति बनाकर पूजते हैं यह मूर्खता दोनों ओर है साहब बड़े प्रसन्न हुए एक दिन स्वामी जी से

मिलने को गए उस समय गौ मांस पर वार्तालाप आरम्भ हो गई स्वामी जी ने पूछा कि नेकी किस को कहते हैं साहब ने कहा कि आप ही बतलाइये स्वामी जी ने कहा कि हम नेकी उस कर्म को समझते हैं जिस से अनेकान् जीव जन्तुओं का उपकार हो साहब ने इस को स्वीकार किया फिर स्वामी जी ने पूछा कि गाय से अधिक उपकार होता है अथवा मांस से और साहब को गौकरुणानिधि पुस्तक के अनुसार हिसाब लगाकर समझाया कि एक गाय से कितना उपकार हो सकता है इस कारण गौ का मारना पाप और न मारना धर्म्म है साहब ने कहा इस से तो ऐसा ही ज्ञात होता है फिर स्वामी जी ने कहा कि आप गाय का मांस खाना छोड़ दीजिये साहब ने कहा कि आज से कभी गौ का मांस न खाऊंगा। यहां से चलकर स्वामी जी **बनारस** होते हुए पांच मई सन् ७० ई० को **लखनऊ** पधारे और दो मई तक उपदेश कर के २० मई को **फर्रुखाबाद** पहुंचे और ३० जून तक फर्रुखाबाद व केम्प फतहगढ़ में उपदेश करते रहे और वहां के कार्य्य को धर्मानुकूल चलाने के अर्थ अन्तरङ्ग सभा के ऊपर मीमांसिक सभा स्थापित की और पण्डित उमादत्त जी से मौखिक शास्त्रार्थ होने के अर्थ बहुत लिखा पढ़ी हुई राजा शिवप्रसाद कृत निवेदन पत्र का मुंह तोड़ उत्तर दिया यहां पर स्वामी जी ने एक व्याख्यान में कहा कि मनुष्य जो कहते हैं कि पृथ्वी शेष पर है यदि हम सोचें तो उन को शेष के वास्ते कोई आधार ढूंढना पड़ेगा और उस के वास्ते कोई और, परन्तु वास्तव में यह शब्द ठीक है लोग अर्थ नहीं जानते और भूल से मनुष्यों ने इस का अर्थ सांप जान लिया है। वास्तव में यह सब नाशवान है शेष (बाकी) परमेश्वर है और पृथ्वी उसके आधार पर है यहां पर स्वामी जी ने लाला जगन्नाथप्रसाद रईस फर्रुखाबाद से कहा कि ऐसा कौन मूर्ख होगा कि अपना बीज दूसरे के खेत में जाकर बोवे और यदि कोई ऐसा करे तो उसको फल किस प्रकार मिल सकता है इस बात को सुनकर वह लज्जित हो गए और अन्त को इस बुरे कर्म्म को छोड़ दिया, इस बार स्वामी जी के पहुंचने से पूर्व समाज के एक मेम्बर और कई बदमाशों से झगड़ा हुआ था उस में उन बदमाशों को कारागार हो गया अब स्वामी जी मिस्टर अल्फ्रांड मजिस्ट्रेट से मिलने को गए और इस मुकद्दमे की वार्तालाप हुई तो स्वामी जी ने स्पष्ट कह दिया कि झगड़े का स्थान वह नहीं था शेष सच है यहां पर हानिस्टन साहब ने योग के विषय में पूछा तो स्वामी जी ने योग की व्याख्या की और कहा कि यदि आप लोग करना चाहें तो नहीं कर सकते क्यों कि मांस शराब के खाने वाले हो यदि योग करना चाहते हो तो रोटी और मूंग की दाल खाना चाहिये। यहां से चलकर स्वामी जी एक जौलाई को प्रातःकाल **मैनपुरी** पहुंचे जहां सहस्रों नगर निवासी दर्शनों के अर्थ आते और

आनन्द पूर्वक वार्तालाप कर प्रसन्न हो कहने कि जैसा कुछ आनन्द हम ऋषि और मुनियों के समागम में सुनते आये वह हमने आज प्रत्यक्ष देख लिया इस अपूर्व मूर्ति को धन्य है यहां अकबरगञ्ज में तीन दिन स्वामी जी के व्याख्यान हुए जिन में साहब कलेक्टर और जज साहब, डाक्टर साहब के अतिरिक्त अन्य भद्र पुरुष आते रहे । ५ जौलाई को शङ्कासमाधान हुआ कोई शास्त्रार्थ के लिये नहीं आया यहां ११ जौलाई को समाज स्थापित हो गया स्वामी जी यहां से आठ जौलाई को मेरठ पहुंचे मुन्शी रामशरण साहब उपमन्त्री समाज की कोठी में सुशोभित हुए जिन के दो व्याख्यान बड़ी उत्तमता से हुए । इसी स्थान पर स्वामी जी के मिलने के लिये पण्डिता रामाबाई कलकत्ते से आई थीं जिसके स्त्री शिक्षा पर बाबू छेदीलाल की कोठी और समाज में कई व्याख्यान हुए जिन का प्रभाव अच्छा हुआ स्वामी जी महाराज ने एक पैकट-अपनी पुस्तकों का पण्डिता की भेंट किया इसी समय में कर्नैल अल्काट और मेडमब्लिवैटस्की शिमला जाते हुए स्वामी जी के दर्शनार्थ यहां पधारे और ईश्वर विषय पर स्वामी जी और कर्नैल अल्काट साहब से बहुत कुछ वार्तालाप हुआ परन्तु उक्त साहब के चित्त को शान्ति न हुई मानों इसी स्थान से आर्य्यसमाज और थियोसाफीकल सुसाइटी में अन्तर का बीज बोया गया स्वामी जी ने एक पत्र यहां से अपने शिष्य श्याम जी कृष्ण वर्मा को 'जो आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी में असिस्टेंट प्रोफेसर थे' लिखा था जिस को मिस्टर मानियर विलियम ने अपनी सम्मति सहित विलायत के एक समाचार पत्र में छपवाया था जिस को हम पाठकों के विलोकनार्थ आर्य्य समाज मेरठ से उद्धृत करते हैं ।

सम्मति मिस्टर मानियर विलियम्स् ।

ऐसे थोड़े मनुष्य हैं जो इस बात को अच्छे प्रकार जानते हों कि संस्कृत विद्या अभी तक आर्यवर्त्त देश के पत्र व्यवहार और प्रतिदिन की बोलचाल में कहां तक प्रचलित है इस के उपरान्त इस में एक और भी उत्तमता और सुगमता है कि पढ़े लिखों के बीच फ्रांस भाषा के सम्पूर्ण आर्यवर्त्त में जहां अनेक भाषाओं में कार्यवाही की जाती है प्रचलित हैं।

कस्ट साहब ने अपने नियमानुसार बतलाया है कि आर्यवर्त्त में अनुमान दोसौ के भाषायें बोली जाती हैं संस्कृत भाषा के अभाव और हिन्दुस्तानी के जो शिक्षित लोगों में प्रचलित हैं बहु-भांति २ की भाषायें भिन्न-२ चकलों (सूबों) के विचारों (ख्यालातों) के इकट्ठा करने में कठिनता उत्पन्न कर सकती है कोई २ मनुष्य यह भी विचार करते हैं कि संस्कृत भाषा अभ्यास से बाहर है और बहुधा मान लेते हैं कि यह अवनति में है परंतु क्या कोई ऐसी भाषा को नष्ट कह सका है जो अबतक उपस्थित हो, जिसमें विचार परस्पर प्रकट किये जाते हों और वार्तालाप की जाती हो,

प्रतिदिन की चिट्ठी पत्रों के द्वारा उस के प्रभाव को बढ़ाता तथा हिन्दुकुश से लंका तक अनुवाद विद्याओं और मत सम्बन्धी बातों के प्रकाशित करने से जिसका जीवन प्रभाव पूर्ण हुआ है। एथेनम् । समाचार पत्र के पाठकों को स्मरण होगा कि अनुमान एक वर्ष के बीता होगा उस समय एक नवयुवक का पधारना (कि जिसका नाम श्यामजी कृष्णवर्मा है और जिनको संस्कृत विद्या में अच्छी योग्यता है और जिनका लेख और वर्णन शक्ति इस भाषा में यहां तक है कि उन के लिये पण्डित का उपनाम उचित और उचित समझा दिया गया) प्रकाशित हुआ था और इस समाचार पत्र में यह भी लिखा था कि उन तरुण मनुष्य ने एक ऐसे प्रसिद्ध विद्वान् से शिक्षा पाई है जो केवल प्राचीन संस्कृत भाषा को ही नहीं जानते वरन् उन्हों ने अपने प्रभावशाली व्याख्यान से जैन एकता और मूर्ति पूजन आदि सम्पूर्ण आर्य्यवर्त के मत सम्बन्धी सम्प्रदायों में बड़ी हलचल डालदी है उक्त महाशय आर्य्य जाति के एक ऐसे ईश्वर के माननेवाले हैं अपने मत सम्बन्धी सिद्धान्तों को वे [illegible] निर्भय रखने की आशा करते हैं इस देश की उन्नति और संशोधन करने [illegible] पुरुष का नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती है जिस की [illegible] लेख का स्वयम् मैं साक्षी हूं क्योंकि जब मैं बम्बई में था उस समय [illegible] स्वामी जी को आर्य्यसमाज की सर्व साधारण सभा में धर्म का उपदेश सुना है जो आर्यों के प्रचलित मत विषय पर था और उन्होंने एक संस्कृत पत्री (जो उन्हों ने वर्तमान में अपने शिष्य श्याम जी कृष्ण वर्म्मा को, जो अब आक्सफोर्ड बेलियल कालिज के सभासद हैं) लिखा था देखा है जिसका अनुवाद मैं उक्त वर्म्मा जी की आज्ञा से नीचे लिखता हूं।

पत्र का अनुवाद।

स्वामी दयानन्द सरस्वती की आशीर्वाद श्याम जी कृष्णवर्म्मा को हो- प्रकट हो कि यद्यपि तुम धैर्यता से वैदिक धर्म के अनुयायी और अपनी विद्या के अवलम्बन हो परन्तु शोक! कि तुमने पत्रों के द्वारा मुझको बहुत दिन से प्रसन्न नहीं किया अब मैं आशा करता हूं कि अपनी कुशल और निम्न लिखित विषयों के उत्तर से मुझको प्रसन्न करोगे। इंगलिस्तान के निवासी किस प्रकार के हैं उन के स्वभाव और चाल चलन कैसे २ हैं? वहां की पृथिवी और पवन पानी कैसा है? खाने की वस्तु आदि वहां पर कैसे मिलती है? जब से तुम वहां से गये हो तुम्हारी आरोग्यता की दशा क्या है? तुम्हारा मनोरथ वहां पूर्ण होता है या नहीं? कितने रक्षिक हैं और कौन २ पुस्तकें तुम से पढ़ते हैं? तुम्हारी मासिक प्राप्ति और व्यय क्या है? तुम्हारे पढ़ने और दूसरों के पढ़ाने और विचार करने का कौनसा समय है? इसका क्या कारण है कि धर्म के उपदेश करने में आर्य्यावर्त के अनुसार अभी तक तुम्हारी

प्रसिद्धता इंगलिस्तान में नहीं फैली? कदाचित् यह कारण हो कि मैं दूर हूं और तुम्हारी प्रसिद्धता का समाचार मुझ को न मिला हो। या यह कि तुम को इस कार्य्य के लिये अवकाश न मिला हो। यदि द्वितीय कारण है तो मेरे हृदय की अभिलाषा है कि जिस समय तुम पढ़ने और पढ़ाने से अवकाश पाओ तो वैदिक धर्म की उन्नति में प्रयत्न करते रहो और इस के पश्चात् यहां को लौट आओ परन्तु इस से प्रथम नहीं। क्योंकि ऐसे भले कार्य्य में प्रसिद्धता प्राप्त करना उत्तम है। इस में एक प्रकार का कल्याण प्राप्त होता है हमारे प्यारे प्रोफेसर मानियर विलियम और महाशय मोक्षमूलर की वेद और शास्त्र के विषय वर्त्तमान में क्या सम्मति है और उनकी और औरों की वेदभाष्य के विषय में "जो मैं इन दिनों कर रहा हूं" क्या सम्मति है मेरे ग्रंथों के अर्थों को प्रचार करने की उन को कहां तक रुचि है यह सत्य है कि थियोसाफीकल सुसाइटी ने एक शाखा वेद मत की लंदन में स्थापित की है। कभी तुम "कैसरहिंद" से भी मिले और कभी पार्लमिंट में भी गये हो। कृपा पूर्वक इन सब प्रश्नों का उत्तर अति शीघ्र भेज दो और भी जिन बातों को तुम लिखने के योग्य समझो लिख भेजो वर्तमान में मेरा इतना ही लिखना बहुत है, और बुद्धिमानों को संकेत मात्र ही से समझलेना चाहिये अधिक बढ़ाने की आवश्यकता नहीं। लिखित मंगलवार ६ आषाढ़ शुक्ला सम्वत् १९३७ तदनुसार १३ जौलाई सन् १८८० ई०।

उपरोक्त पत्र अति स्पष्ट संस्कृत में लिखा हुआ था, यों तो बहुधा शिक्षित आर्य्य लोगों से पत्र व्यवहार रहता था और काश्मीर, त्रावङ्कोर इत्यादि के विद्वानों से पत्र व्यवहार प्रचलित था परन्तु यह चिट्ठी सब की एक बानगी है और इसके अनुवाद के छापने से मेरा तात्पर्य यह है कि वर्तमान में भी संस्कृत का प्रचार है और इसमें वह विचार प्रकट किये जाते हैं जो आर्य्यावर्त में शिक्षित लोग मत संबन्धी संशोधन और अपने देश की शिक्षा की उन्नति से सर्कार इंगलैंडी के राज्य के समय में चैन चान स्थापित रखने के लिये किया करते हैं उक्त स्वामी जी ने शब्द कैसरहिंद का उल्था राजराजेश्वरी किया है।

लेखक मानियार विलियम आक्सफोर्ड से

अक्टूबर सन् १८८० ई०।

मुजफ्फर नगर।

लाला निहालचन्द साहिब रईस की प्रार्थना पर स्वामी जी मेरठ से चल कर मुजफ्फर नगर पधारे और उन की कोठी में उतरे उक्त लाला साहिब ने मृतक श्राद्ध पर प्रश्न किया जिस के उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि कदापि न करना चाहिये इस पर राय साहिब ने कहा कि क्या मरने के पश्चात् दान

पुन्य और परोपकार करना भी योग्य नहीं ? स्वामी जी ने कहा कि धर्म सदा कर्त्ता के साथ रहता है नष्ट नहीं होता और मृतक श्राद्ध को जीवित करते हैं इस कारण मृतक को कुछ लाभ नहीं होता क्योंकि वह दूसरे का कर्म है फल अपने कर्म का मिलता है न कि मरने के पश्चात् अन्य के खिलाने आदि का, हां पुन्य और परोपकार करना उदार कार्य है जिन का फल दाता को सदा मिलता है। लाला बुद्धिसेन जी ने स्त्री शिक्षा पर भी कुछ प्रश्नोत्तर किये थे। स्वामी जी के व्याख्यान में बहुत भीड़ होती थी जो कोई शंका करते उन को शांति पूर्वक उत्तर देकर सन्तुष्ट कर देते थे, यहां दस व्याख्यान हुए एक दिन उन्होंने यह भी कहा था हम पौराणिक लीलाओं को कहां तक कहें देखिये यह लोग यह भी कहते हैं कि पार्वती ने अपने शरीर से मैल छुड़ा बालक बना द्वार पर नियत कर दिया वहां युद्ध हुआ उन का सिर कटगया फिर हाथी का सिर लगादिया और जो मूसे की सवारी करते थे।

वार्षिकोत्सव आर्य्यसमाज मेरठ पर स्वामी जी का पधारना।

स्वामी जी ३ अक्टूबर सन् १८८० ई० को द्वितीयबार मेरठ आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर पधारे और प्रातःकाल हवन के पश्चात् उन्होंने हवन के लाभों पर एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया जिस में संपूर्ण सनातन धर्मियों के आक्षेपों का सम्यक् उत्तर होगया यहां से स्वामी जी देहरादून पधारे।

देहरादून।

स्वामीजी ७ अक्टूबर को मेरठ से देहरादून पधारे और आते ही विज्ञापन देकर सब को सूचना देदी सत्य के प्रेमी आकर धर्म चर्चा करने लगे और विपक्षी गण अपनी पुरानी चाल अर्थात् मित्रों को निश्चय करने ही में समय को खोते रहे और कोई सामने न आया हां मिस्टर गिलबर्ट साहिब पादरी स्वामी जी के स्थान पर पधारे और वार्तालाप में लज्जित होकर लौट गये स्वामी जी २० नवम्बर तक यहां रहे।

आगरा।

स्वामी जी देहरादून से चल कर मेरठ होते हुए २६ नवम्बर को आगरे में पधारे। प्यारे पाठकगणों! यह वही स्थान है जहां से महर्षि ने प्रथम परोपकार का कार्य्य आरम्भ किया था अब वही महात्मा भारत के मुख्य २ नगरों में धर्मोपदेश करते काशी आदि स्थानों में सनातन धर्मियों को पूर्ण रूप से परास्त और दिग्विजय करते हुए १७ वर्ष के पश्चात् उसी आगरा नगर में पधारे मानों पश्चिमोत्तर देश और अपरइंडिया में यह स्वामी जी का अन्तिम आगमन था इस के पश्चात् पतद्देशियों को सर्वोपकारी महात्मा के चरणों के

दर्शन न हुए। स्वामी जी ने २८ नवम्बर से २२ दिसम्बर तक २५ व्याख्यान दिये और २२ दिसम्बर से ८ जनवरी तक शङ्का निवृत्त करने के लिये समय दिया परन्तु कोई पण्डित शास्त्रार्थ के लिये नहीं आया हां उनके व्याख्यानों ने धर्मात्माओं के हृदयों में अत्यन्त प्रभाव उत्पन्न करा दिया जिस के कारण २६ दिसम्बर को समाज स्थापित होगया द्वितीयवार २३ जनवरी से व्याख्यान आरम्भ होकर २६ को समाप्त हो गये इसी भांति फरवरी और मार्च में भी व्याख्यान होते रहे अन्त को धर्म सभाने पण्डित चतुर्भुज जी को बुलाया उन की विद्या आदि का सम्पूर्ण भेद पबलिक में प्रकाश होगया तब वह लज्जित हो चुप होकर बैठ गये। स्वामी जी एक दिन रोमन कैथलिक ईसाइयों के लाट पादरी साहिब के बुलाने पर उन से मिलने गये जहां कुछ देरतक धर्म विषय पर वार्तालाप होतो रही उस से प्रसंगानुसार स्वामी जी ने उन से पूछा कि जो आपने अभी कहा था कि हमारी भूल को इटली के पोप शोधन करते हैं तो फिर यह भी बतलाइये कि उन इटली के पोपों की भूलको कौन संशोधन करता है इस पर इस के अतिरिक्त और कुछ न कह सके कि वह पोप इस संसार में ईश्वर के प्रतिनिधि समझे जाते हैं।

स्वामी जी ने १० मार्च को यहां से भरतपुर जाने का प्रबन्ध किया उस समय आर्य्यसमाज आगरे ने उन को अभिनन्दन पत्र दिया। जिसको स्वामी जी ने स्वीकार किया।

सन १८८१ में राजपूताने में धर्मोपदेश

भरतपुर।

स्वामी जी १० मार्च को आगरे से चलकर भरतपुर में पहुंचे और वहां २२ मार्च तक धर्मोपदेश कर २६ मार्च को **जयपुर** पधारे और वहां पर एक मास उपदेश करने के पश्चात् आर्यसमाजस्थापन कर आर्यपुरुषों की प्रार्थना पर ५ मई सन् १८८१ को **अजमेर** में पधारे और विज्ञापन प्रकाशित किया कि श्रीमान् स्वामी दयानन्द सरस्वती जी पधारे हैं यह वेदोक्त मत का मण्डन और वेद विरुद्ध मतों का खण्डन सेठ गजमल के स्थान पर करेंगे इसको पढ़कर सहस्रों मनुष्य आये और स्वामी जी के उपदेशों से लाभ उठाते रहे आर्य्य पुरुष अपनी शंकाओं को निवारण कर अति प्रसन्न होते थे परन्तु ईसाई और मुसलमान बहुत घबड़ाते थे एक दिन शिवप्रसाद कायस्थ ने आकर जीव ब्रह्म और अन्य मतवादियों के शुद्ध विषय पर प्रश्न किये जिनके उत्तर यथोचित दिये गये। इस के उपरान्त जैन और ईसाई लोग भी अनेकान् प्रश्न करते थे। जिन का यथोचित उत्तर सुन चुप चले जाते थे। एक मुवाहिन्द जो ईसाई मत की ओर झुका था उसने आकर स्वामी जी से प्रश्न किये जिन का उन्हों ने ऐसा उत्तर दिया कि वह सुन शान्त हो गया और फिर वह ईसाई न हुआ। हिन्दुओं ने

पण्डित चतुर्भुज जी को काशी से बुलाने का विचार किया और स्वामी जी से कहला भेजा उसके उत्तर में उन्हों ने स्पष्ट कह दिया कि निम्न लिखित नियमों पर शास्त्रार्थ करने के लिये उपस्थित हूं:—

(१) सभा का स्थान हमारी सम्मत्यानुसार होगा।

(२) इस सभा में इस प्रान्त की नीति परिपूर्ण अधिकार अपने आधीन रक्खेंगे जिस से दोनों पक्षवालों के न्याय अन्याय पर ध्यान रहे।

(३) शास्त्रार्थ लेख द्वारा होगा।

(४) शास्त्री जी स्वामी जी के सन्मुख बैठकर प्रश्नोत्तर करेंगे।

(५) यदि कोई पुरुष मूर्खता से या असभ्यता से बात करेगा तो वह सभा से निकाल दिया जायगा।

इन नियमों को सुनकर पण्डितों का उत्साह भङ्ग होगया और फिर शास्त्रार्थ करने के लिये न कहा वास्तव में उनको शास्त्रार्थ न करना था वरन् वैसी ही लीला करनी थी जैसी कि आगरादि में कर चुके थे। स्वामी जी १५ दिन तक निर्भय होकर और प्रचार कर २३ जून सन् १८८१ ई० को मसौदा चले गये भारतविलास आगरा में लिखा है कि स्वामी दयानन्द जी अजमेर में डेढ़ मास निवास करके और आर्य्यों को सतोपदेश की शिक्षा करके २३ जून सन् १८८१ ई० को मसौदे की ओर जो अजमेर से १६ कोस है यात्रा कर गये उन्हीं दिनों में आर्य्यावर्त के प्रसिद्ध समाचार पत्रों में यह नोट निकला कि प्रत्येक मनुष्य का एक २ सिद्धान्त निराला होता है जैसे कि पण्डितों का सिद्धान्त केवल दक्षिणा है स्वामी दयानन्द का सिद्धांत मूर्ति पूजन का जड़ पेड़ से उच्छेद कर देना है इण्डियन पोप लोगों का सिद्धान्त सेवकों का तन मन धन अर्पण करना है।

मसौदा में द्वितीय वार आगमन।

स्वामी जी अजमेर से २३ जून सन् १८८१ ई० को मसौदा पधारे आषाढ़ बदी १३ सम्वत् १९३८ वि० को स्वामीजी का व्याख्यान महलोंमें धर्म, राजनीति, पुनर्विवाह, सत शास्त्र और मोक्ष आदि विषयों पर हुए इसी बार जैनियों के प्रसिद्ध साधु सिद्धकरण जी से शास्त्रार्थ हुआ जो सविस्तार जैनियों के पत्र व्यवहार में लिखा है इसी समय में पादरीसोलबर्ड व बाबू विहारीलाल स्वामी जी के पास आये स्वामी जी ने उनको प्रतिष्ठा पूर्वक बिठला कर ईसाई धर्म पर कुछ प्रश्न किये उनका उत्तर वह न देकर बोले आप ही उपदेश कीजिये स्वामी जी ने राज धर्म पर कथन किया इस पर पादरी साहब ने कहा कि वेदों में गोमेध और अश्वमेध यज्ञ लिखे हैं स्वामी जी ने कहा कि ऐसा नहीं लिखा चारों वेद मेरे पास हैं आप बतलाइये पादरी साहब ने कहा कि मेरी किताबें मौजूद नहीं स्वामी जी ने कहा कि आदमी भेजकर मँगवा लीजिये

इस पर पादरी साहब ने कहा कि मुझको फुरसत नहीं फिर बाबू बिहारीलाल ने कहा कि आप राजाओं को उपदेश करते हैं दीनों को नहीं स्वामी जीने कहा कि मैं प्रत्येक स्थान पर जाकर उपदेश करता हूं मेरे व्याख्यान में राजा और दीन को कोई रुकावट नहीं इस कारण मेरा उपदेश मनुष्य मात्र के लिये है इसके अतिरिक्त कुए के पास प्यासे को आना चाहिये न कि प्यासे के पास कुए को। इसके पश्चात् पादरी साहब चले गये। इसी समय में सुना गया था कि इस राज में शादी समय के मुसलमान गुरु हिन्दुओं के साथ उन की जाति के हिन्दू लोग विवाह आदि करते हैं और अपनी बेटी देते हैं परन्तु लेते नहीं, स्वामी जी ने उन्हें समझाया कि ऐसा अनर्थ न करो क्यों कि जो तुम्हारे धर्म को नहीं मानते उन से संयोग करना उचित नहीं। उन के इस उपदेश से लाखों स्त्रियां मुसलमान होने से बचीं। स्वामी जी ने यहां दो बड़े यज्ञ कराये **प्रथम यज्ञ** श्रावण सुदी पूर्णमासी सम्वत् १९३८ को हुआ यज्ञशाला पत्रों और पुष्पों से सजाई गई थी स्वामी जी स्वयम् वेदमन्त्र पढ़ते और चालीस हवनकर्त्ता आहुति देते अन्त में ३२ मनुष्यों के यज्ञोपवीत कराये। **द्वितीय यज्ञ** भाद्र कृष्ण सम्वत् १९३८ को हुआ इस में भी उसी भांति बहुत से मनुष्यों के यज्ञोपवीत कराये। द्वितीय बार स्वामी जी २१ सितम्बर सन् १८८१ में पधारे थे और १५ दिन धर्मोपदेश कर चले गये।

रायपुर।

स्वामी जी रायपुराधीश के कई बार आमंत्रित करने पर १९ अगस्त सन् १८८१ ई० ब्यावर होते हुए रायपुर पहुंचे। ठाकुर हरीसिंह आदि कई धनी पुरुष रेलवे स्टेशन पर आगमन के लिए पहुंच गये थे श्रीमान् ने स्वामी जी का बड़ा आदर सत्कार किया। वार्तालाप होते समय स्वामी जी ने पूछा कि आप के यहां मन्त्री कौन महाशय हैं, ठाकुर साहब ने कहा कि महाराज शेख इलाहीबख्श साहब हैं जो इन दिनों जोधपुर गए हैं उन के भतीजे करीमबख्श जी सारे काम का प्रबन्ध करते हैं और बतलाया कि वह बैठे हैं। तब स्वामी जी ने कहा कि आपके यहां यवन मन्त्री है वह तो दासी पुत्र हैं आर्य्य पुरुषों को यवनों का मन्त्री बनाना उचित नहीं है क्यों कि यह दासी पुत्र हैं। यह सुन वह सब रुष्ट हो गये और कुछ काल के पीछे शेख जी की हवेली में बहुत से मुसलमान उपद्रव करने के लिये एकत्र हुये इतने में एक बुद्धिमान् मुहम्मदी ने कहा कि इस विषय में हमको किसी प्रकार का उजड्डपन न करना चाहिये वरन् पांच सात दिन के पीछे ईद के दिन यहां काजी साहब आवेंगे तब उनको स्वामी जी के साथ वार्तालाप करायेंगे तब सब भेद प्रगट होजायेगा जिस को सुन सब सहमत हो गये। २० अगस्त को काजी आगये जिन को लेकर स्वामीजी के स्थान पर गये और कहा कि आप हम को

दासी पुत्र बताते हैं इसका क्या कारण है, स्वामी जी ने उत्तर में कहा कि इसराईल जिनको आप इबराहीम कहते हैं उनकी दो बीबियां थीं जिनमें सारह ब्याही हुई और दूसरी उसकी लौंडी हाजरह जिसको उन्होंने घरमें डाल लिया था उसी से तुम्हारी उत्पत्ति हुई फिर दासी पुत्र होने में क्या सन्देह है। यह सुनकर काजी साहब ने कहा कि कुरान में ऐसा नहीं लिखा इसपर स्वामी जी ने कुरान मंगवाकर "सूरतहम्कबूरा" दिखला दिया जिस पर काजी जी ने कहा कि यह ठीक है कि लौंडी थी परन्तु फिर उन्हों ने उसके साथ विवाह कर लिया था इस पर स्वामी जी ने कहा वास्तव में वह लौंडी ही थी फिर तुम्हारे दासी पुत्र होने में क्या सन्देह है। यह सुन काजी जी ने फिर कुछ न कहा और सबके सब वहां से चले आये। इतने में ठकुरानी जी का देहान्त हो गया और ठाकुर शोक में डूबगए अन्त को स्वामी जी ८ सितम्बर को वहां से चल दिये जिनको ठाकुर साहब के पियादों ने बड़े सत्कार के साथ विदा किया। स्वामी जी ६ सितम्बरको ब्यावर पहुंचे जहां प्रातःकाल ही से मनुष्य दर्शनों को आने लगे। यहां उन्हों ने १५ दिन तक व्याख्यान दिये और बहुधा लोगों ने अपने २ संदेह निवृत्त किये। जिनका ऐसा प्रभाव हुआ कि थोड़े ही दिनों के पश्चात् यहां आर्य्यसमाज नियत होगया स्वामी जी यहां से मसौदा की ओर चले गये।

मसौदा।

स्वामी जी २१ सितम्बर को तीसरी बार मसौदा पहुंचे, रामबाग में निवास कर, साधारण उपदेश करने लगे और १५ दिन निवास किया। देशहितैषी पत्र से ज्ञात होता है कि अगस्त मास के आरम्भ में एक साधू कबीरपन्थी ब्यावर से पधारे उनसे इस प्रकार वार्तालाप हुआ।

स्वामी जी—आपके मत के कितने ग्रन्थ हैं?

साधू जी—हमारे २४ करोड़ पुस्तक हैं।

स्वामी जी—यह वार्ता मिथ्या है क्योंकि इतने ग्रंथ रखने केलिए कितना स्थान चाहिये। (इसपर साधूजी न बोले) तब स्वामी जी ने फिर कहा?

स्वामी जी—कबीर कौन थे जब तुम कबीर मत में होते हो तब उनकी परसादी और गुरु का झूठा खाते हो या नहीं।

साधू जी—झूठा खाते हैं कबीर का जन्म नहीं होता है वह अजन्मा है उसके मा बाप भी नहीं।

स्वामी जी—कबीर काशी में कुकर्म से उत्पन्न हुए इस कारण उस की

माता ने उस को बाहर फेंक दिया था उसी समय जहां पर (जहां कबीर पड़ा था) एक मुसलमान जुलाहा आ निकला और कबीर को उठाकर घर लेजाकर पुत्र के समान पाला अब देखिये उसका जन्म भी हुआ और उस के माता-पिता भी थे इस पर साधु जी चुप रहे और कुछ उत्तर न दिया ।

बनेड़ा ।

स्वामी जी महाराज रियासत मसौदा से चलकर छुरड़े रुपाहेली और रायड़े होते और उपदेश करते हुए ६ अक्टूबर १८८१ ई० को बनेड़े में पहुंचे । राजा साहब संस्कृत विद्या को अच्छे प्रकार से जानते थे इस लिए उन्हों ने स्वामी जी का बड़ा आदर सत्कार किया, प्रति दिन उन के समीप जाते और उपदेश सुनते, राजा जी के दो पुत्रों ने स्वामी जी को सामवेद का गान सुनाया था जिस को सुन वह बहुत प्रसन्न हुए उनकी संस्कृत में परीक्षा भी ली थी । एक दिन राजा साहब ने स्वामी जी से प्रश्न किया था कि जीव आत्मा और परमात्मा में क्या २ भेद हैं ? स्वामी जी, जैसे मन्दिर और आकाश एक नहीं और न पृथक् है और पृथक भी है इसी प्रकार ब्रह्म और और व्याप्य व्यापक होने से एक नहीं और ब्रह्म के सर्व व्यापक होने से ब्रह्म न्यारा भी नहीं इस हेतु जीव और ब्रह्म पृथक् २ हैं । स्वामी जी ने अपने उपदेशों में चक्रांकितों का खण्डन करते हुए यह भी कहा था यदि शरीर के एक भाग के जलाने से मुक्ति होती है तो फिर मुक्ति चाहने वाले भड़भूजों के भाड़ में क्यों नहीं कूदपड़ते जिस से एक ही साथ सब की मुक्ति हो जावे । यहां राज की ओर से एक बड़ा पुस्तकालय था जिसको सरस्वती भन्डारकहते थे उसमें से अपने निघण्टु का मिलान किया था ।

चित्तौड़ में धर्मोपदेश ।

बनेड़े से चलकर स्वामी जी २८ अक्टूबर को चित्तौड़गढ़ पधारे । जहां कविराज श्यामदास जी ने आतिथ्य सत्कार का प्रबन्ध किया था । द्वितीय दिवस से व्याख्यान होना आरम्भ हो गये जिन में श्रोतागण अधिकता से इकट्ठे होते थे क्यों कि उन्हीं दिनोंमें गवर्नरी दर्बार होनेके कारण बहुतसे राजे सर्दार सेठ और साहूकार वहां उपस्थित थे जिनमें **आसीन्द के राव अर्जुनसिंह जी, भीलवाड़े के राजा फतहसिंह जी, शाहपुर के राजाधिराज नाहरसिंह जी, कानूड़ के रायन उम्मेदसिंह जी और शावड़ी के राजा राजसिंह जी** इत्यादि सुजन आया करते और बहुधा राजा अपने संशयों को निवृत्त किया करते थे । कई एक राजाओं ने स्वामी जी से प्रसन्न होकर अपने २ राज्य में पधारने और सतोपदेश के

लिये प्रार्थनायें कीं तब स्वामी जी ने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर कहा कि मैं अवश्यमेव बम्बई से लौटकर आप के यहां आऊंगा। एक बार जब राना साहिब स्वामी जी से मिलने गये तो उन को राजनीति का उपदेश कर धर्म की व्याख्या करते हुए कहा था कि राजा शेर के समान है और पाखण्ड क्रियां जो मन्द, व शूद्रस हैं उन को महलों में न डालना चाहिये इस उपदेश से इन के चित्तपर बड़ा प्रभाव हुआ और अपने मित्रों आदि से कहा वही एक पुरुष महे हैं जो यथार्थ सतोपदेश करते हैं धन्य है।

कविराज श्यामलदास जी के यहां जीवनगिरी और आत्मानंदगिरी दो महात्मा ठहरे हुए थे। जिन्हों ने स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट की परन्तु कविराज जी ने यह विचार कर कि यह दोनों हमारे अतिथि हैं शास्त्रार्थ न होने दिया। कविराज प्रतिदिन अपने साथ सुब्रह्मण्य शास्त्री तैलंगी को ले आया करते थे जिस से स्वामी जी के साथ छः सात दिन तक न्याय शास्त्र के पदार्थ विषय पर वार्तालाप हुई स्वामीजी ६ और शास्त्रीजी ७ पदार्थ बतलाते थे स्वामीजी ने अपने पक्षको प्रबल युक्तियोंसे सिद्ध किया परन्तु शास्त्रीजी ने न माना। स्वामी जी ने यहां दो मास रहकर अच्छे प्रकार वैदिक धर्म का उपदेश किया जिससे चहुँओर आर्य्य धर्म की चर्चा होने लगी और धर्म के प्रेमी महाराजा सज्जन सिंह जी ने अच्छे प्रकार महात्मा स्वामी दयानंद जी का मान किया चलते समय उक्त राना जी ने ५००) और सर्दारान उदयपुर ने २००) मार्गव्ययादि के लिये भेंट किये। स्वामी जीवनगिरी जी केवल प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये शास्त्रार्थ करना चाहते थे परन्तु वह स्वामी के सन्मुख किसी प्रकार से नहीं ठहर सक्ते थे इस के उपरान्त उनको ईर्षा भी अधिक थी जब राना जी ने स्वामी जी को ७००) रुपये भेंट किये तो आप अप्रसन्न हो गये और जब महाराना जी ने इनको भी ५००) रुपये भेंट किये तो यह कहकर लौटा दिये कि हम आप की भेंट स्वीकार नहीं करते क्योंकि आप ने दयानंद जी का मान्य किया है। स्वामी जी यहां से चलकर २१ दिसम्बर को "इन्दौर" पहुंचे परन्तु वहां महाराजा साहब (जो स्वामी जी के भक्त थे) इस समय उपस्थित न थे इस लिये यहां एक सप्ताह उपदेश करके "बम्बई" को चले गये। यहां सर राजा साहब के जज श्रीनिवास दासजी ने स्वामी जी का अच्छे प्रकार आदर सत्कार किया था जब राजा साहब अपनी राजधानी में पधारे और स्वामी जी के पधारने का वृत्तान्त ज्ञात हुआ तब उन्हों ने बहुत पश्चात्ताप कर उनको बम्बई तार दिया कि मैं अब यहां आगया हूं आप अवश्यपधारें।

बंबई आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव पर स्वामी जी का पधारना और धर्मोपदेश।

स्वामी जी ३० दिसम्बर सन् १८८१ ई० को समाज के उत्सव में सम्मि-

शिल होने के लिये पधारे और समुद्र के तट पर एक रम्य स्थान पर ठहरे बराज में दक्षिणी ब्राह्मण हवन करा रहे थे उन में एक वृद्ध ब्राह्मण ऐसे थे जिनको चारों वेद स्वर सहित कंठाग्र थे उस समय स्वामी जी ने दो चार मुख्य पुरुषों से कहा था कि आप ने जो ब्रह्मा के चार मुख सुने हैं वह इसी प्रकार के थे क्यों कि हवन के पश्चात् सामवेद का गान हुआ फिर स्वामी जी ने भी व्याख्यान दिये। एक सेठ साहिब अपने पुत्र को स्वामी जी के पास शिक्षा के लिये लाये थे उन्हों ने उससे कहा कि तुम प्रातःकाल उठ शौच आदि से निवृत्त होकर ईश्वर की प्रार्थना कर फिर माता पिता को नमस्ते कर पुस्तकें ले पाठशाला जाया करो। इसी प्रकार और उपयोगी शिक्षायें की थीं। इन्हीं दिनों में यहाँ के एक सेठ मथुराप्रसाद जी ने विज्ञापन दिया था यदि कोई पण्डित वेदों से मूर्तिपूजा सिद्ध कर दे तो उस को पांच हजार रुपया पारितोषिक दूं परन्तु किसी को साहस न हुआ। प्यारे पाठक गणों! ऐसा साहस कौन कर सकता था क्या कोई पण्डित काशी, नदिया, शान्तिपुर, पूना आदि में भी न था जो अपनी विद्या के बल से वेद की ऋचादि लाकर पांच हजार रुपये ले अपने परम् सनातन धर्म के गौरव को भारत आदि देशों में फैलाता. क्या इस पर भी आप को प्रत्यक्ष प्रकट नहीं होता कि वेद में मूर्तिपूजा की गंध तक भी नहीं है जैसा कि महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी कहते हैं, यथार्थ में सत्य सनातन धर्म यही है। आओ प्यारे सज्जन पुरुषों सब मिलकर सत्य सनातन धर्म के पालन करने के लिये तत्पर होजावें जिस से भारत का सौभाग्य उदय हो जावे और पूर्व की भांति समस्त संसार में इस की विद्या आदि गुणों का डंका बजने लगे। स्वामी जी महाराज २३जून तक यहाँ रहकर २४ जून को खंडवा पहुंचे और वहां से ४ जौलाई को इन्दौर पहुंचे, परन्तु इस बार भी महाराजा साहब के विराजमान न होने के कारण ५ जौलाई को रतलाम पधारे. यहां ८ जौलाई तक निवास किया पुनः जावरा होते हुए उदयपुर को चले गये। स्वामी जी ने इन उपरोक्त स्थानों में अच्छे प्रकार धर्मोपदेश दिये।

उदयपुर।

महाराजा उदयपुराधीश के कई वार निवेदन करने पर ११ अगस्त १८८२ई० को स्वामी जी उदयपुर पहुंचे—राज्य की ओर से सवारी आदि का उत्तम प्रबन्ध था। नगर में पहुंचकर स्वामी जी नौलखा बाग के महलों में (जिस को अब सज्जन निवास कहते हैं) डेरा किया। जहां राज्य की ओर से सब प्रकार का उचित प्रबन्ध किया गया। रामानंद ब्रह्मचारी, पण्डित भीमसेन और महाशय आत्माराम जी भी साथ थे स्वामी जीने राणा साहिब को उपदेश करना आरम्भ किया जिस का प्रभाव यह हुआ महाराजा साहिब में जो दुष्ट

व्यसन अर्थात् अधिक विवाहों का करना, रात को जागना, दिन में सोना, राज्य कार्य्यों को यथायोग्य न करना, दान का रीतानुसार न होना, नाच रंग इत्यादि में तत्पर रहना आदि बातों को छोड़ स्वामी जी के लेखानुसार दिनचर्य्या के अनुकूल कार्य्य करना आरम्भ कर दिया इस के अतिरिक्त प्रातः सायं दोनों समय स्वामी जी के निकट चार पांच घंटे रहना स्वीकार कर संस्कृत पढ़ने का आरम्भ किया और थोड़े ही दिनों में मनुस्मृति आदि ग्रन्थ अच्छे प्रकार से पढ़ने लग गये योगसूत्र पातञ्जलि को पढ़ योगाभ्यास का भी आरम्भ कर दिया और एक निराकार परमात्मा की उपासना स्वीकृत कर दोनों समय करने लग गये, स्वामी जी ने राज्य के धनी और सर्दारों के पुत्रों की शिक्षा के लिये महाराजा को एक पाठशाला बनाने और उसमें शास्त्र और शस्त्र दोनों प्रकार की विद्याओं के सिखलाने की सम्मति दी थी। परन्तु शोक! कि यह शुभकार्य्य स्वामी जी के चले जाने के पश्चात् उदयपुराधीश के आरोग्य न रहने के कारण सफल न हुआ। यहां एक बड़ा भारी यज्ञ दर्बार के सभासदों की आज्ञानुसार नीलकंठ जी के मन्दिर के निकट कराया था जो कई दिवस तक होता रहा जिस में चारों वेदों के वेदपाठी होते थे जो सब नियमानुसार कार्य्य करते थे यज्ञ समाप्त होने के पश्चात् तांबे का अग्नि कुंड सम्पूर्ण महलों में घुमाया जाता था यह नियम राना जी के जीवन तक प्रचलित रहा परन्तु उक्त महाराना के देवलोक होने के पीछे जब महाराना फतहसिंह जी गद्दी पर बैठे तो लोगों ने उन के हृदय में संदेह उत्पन्न करा दिया कि तुम्हारे पिता हवन यज्ञ कराने के कारण मृत्यु को प्राप्त हुए।

इस कारण उन्होंने इस मिथ्या भ्रम में पड़कर हवन यज्ञ की रीति को बंद करा दिया। स्वामी जी का विचार था कि सम्पूर्ण देशीय राज्यों के कर्म्मचारियों की भाषा देवनागरी हो जावे जिस से राज्य की कार्य्यवाही इसी भाषा में होने लगे। उन की यह भी अभिलाषा थी कि जहां तक हो सके मनुष्य स्वदेशी वैद्यों से चिकित्सा कराया करें और वैद्यों का अभाव, एक वैदिक पाठशाला प्रचलित कर दूर किया जावे जिस के अर्थ उन्होंने एक प्रस्ताव भी किया था परन्तु शोक! महान शोक! स्वामी जी के शीघ्र देवलोक होजाने के कारण यह विचार योंही रह गया। एक दिन स्वामी जीने कवि श्यामदास जी से कहा था कि मेरे शरीरपात होने पर मेरे अस्थी को एक स्थान पर पृथ्वी में गड़वा देना और कोई समाधि इत्यादि न बनवाना जिस को सुन कविराज जी ने कहा कि मैंने अपने जी में यह विचार किया था कि मैं अपनी एक पत्थर की मूर्ति बनवाकर एक स्थान पर रखवा दूंगा वही मेरे मरने के पश्चात् स्मारक चिन्ह समझा जावेगा। जिस को सुन स्वामी जी ने कहा कि ऐसा कदापि न करना चाहिये, यही मूर्तिपूजा की जड़ है। एक दिन स्वामी जी से महाराना ने नम्रता पूर्वक एकान्त में निवेदन किया था कि आप राजनीति को विचार मूर्तिपूजा

का खंडन न करें क्योंकि आप पर यह भी विदित है कि यह राज्य एक लिंगेश्वर महादेव के आधीन है मैं आप को उस का महंत बनाकर लाखों रुपया का स्वामी बना दूंगा जिस को सुन कर स्वामी जी ने कहा कि ऐ राजन्! आप मुझ को लालच देकर सर्व शक्तिमान् परमेश्वर की आज्ञा के विपरीत कार्य करने के लिये उद्यत करना चाहते हो यह आपका थोड़ासा राज्य जिस से मैं दौड़कर थोड़े ही दिनों में बाहर जा सकता हूं परन्तु उस परमेश्वर की आज्ञा के विरुद्ध कदापि नहीं चलसक्ता जिस का राज्य अपार और असीम है जिस से बाहर कभी भी कोई नहीं जासक्ता आप निश्चय जानिये मैं कभी परमात्मा और उन की आज्ञा वेद के विपरित नहीं कर सक्ता जिस को सुन महाराजा चकित होगये और मन में लज्जित हो महाराजा साहब ने कहा कि महाराज मैं यह परीक्षा करना चाहता था कि आप मूर्ति के खण्डन पर कितने दृढ़ विश्वासी हैं अब मुझ को पूर्ण निश्चय होगया कि आप वेदों की आज्ञा पालने और उस के अनुकूल चलने पर सन्नद्ध हैं।

महाराना साहब स्वामी जी की बड़ी प्रतिष्ठा करते थे और उपदेश के समय स्वामी जी से नीचे बैठते और कहते थे कि आप मेरे गुरु हैं इस कारण बराबर नहीं बैठ सक्ता। महल की रानियों ने महाराज जी से कहा कि हम स्वामी जी के दर्शन करना चाहती हैं जब महाराना जी ने स्वामी जी से यह निवेदन किया तो प्रथम उन्हों ने स्वीकृत न किया परन्तु जब उक्त राना जी ने बारम्बार प्रार्थना की तो कहा कि मैं महलों में समाधिस्थ होकर बैठजाऊंगा रानियां शीघ्र ही दर्शन कर चली जावें इस पर ऐसा ही किया गया क्योंकि वह कहते कि स्त्रियां ब्रह्मचारी के नेत्रों में घुसजाती हैं इस कारण उन के बिना देखे ही ब्रह्मचर्य्य रह सक्ता है वह बड़े २ प्रतिष्ठित और धनी पुरुषों के सन्मुख वेश्याओं को कुतिया कहते और उनसे बचने का उपाय भी बतलाया करते थे और यह भी कहा करते थे कि यदि गान सुनने की रुचि हो तो वेदों का गान सुनना चाहिये।

एक दिन स्वामी जी ने यहां की पाठशाला की परीक्षा ले प्रसन्न हो विद्यार्थियों को आवश्यक शिक्षा करने के पश्चात् उन को भोजन भी दिया था।

एक दिन महाराज उदयपुराधीश अपने सर्दार सहित स्वामी जी के पास बैठे हुए थे उस समय उन्हों ने मनुस्मृति का एक श्लोक पढ़कर प्रत्येक को उपदेश किया था कि राजा और उनके अधिकारी जो धर्म शास्त्र अनुसार जो आज्ञा करें उस का पालन अवश्य करना चाहिये परन्तु अधर्म्म की किसी प्रकार कोई आज्ञा नहीं माननी चाहिये इसको सुन रईस व सरदारों ने कहा कि यदि हम उदयपुराधीश जो हमारे प्रभु हैं उनकी आज्ञा पालन न करें तो तुरन्त हमारी जागीरों को छीन लें इस के उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि धर्म रक्षा के लिये तन मन धन जाता रहे तो कुछ चिंता नहीं परन्तु अधर्म छल और कपट कदापि न करना चाहिये।

एक बार रियासत के जमींदारों ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि हमारे अभियोग में आप महाराणा जी से कहकर न्याय कराइये हम आप के बहुतही कृतज्ञ होंगे। स्वामी जी ने यह सुन स्पष्ट उत्तर दिया कि मैं संन्यासी हूं हम को राज्य कार्य्यों में हस्ताक्षेप करना उचित नहीं हां तुम सब स्वयं महाराना जी से अपनी प्रार्थना करो जो तुम्हारा कर्तव्य है।

यहां ११, १२, व १३ सितम्बर सन् १८८२ ई० को महाराजा की आज्ञानुसार स्वामी जी और मौलवी अब्दुल रहमान सुपरिन्टेन्ट पुलिस व. जज उदयपुर से वादानुवाद हुआ था जिस में एक या दो दिन महाराजासाहब भी उपस्थित रहे थे जिस का विस्तार पूर्वक वर्णन आगे लिखेंगे।

इसी स्थान पर महर्षि ने परोपकारी दृष्टि से एक स्वीकार पत्र जिल्दार दर्बार उदयपुर से स्वीकार कराया था जिस के अनुसार परोपकारणी सभा नियत हुई और उस की पूर्ति का भार २३ सभासदों को सौंपा गया और वैदिक फन्ड खोला गया जिस के अधिकारी और सभासद निम्न लिखित नियत हुए थे।

परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी कृत स्वीकार पत्र की प्रति

राजकीयमुद्रा।

आज्ञा (राज्ये श्रीमहद्राजसभा) संख्या २६० आज यह स्वीकार पत्र श्रीमान् १०८ श्री जी धीर वीर चिर प्रतापी विराजमान राज्ये श्रीमहद्राज सभा के सन्मुख स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने सर्व रीत्यानुसार अंगीकार किया अतएव:—

आज्ञा हुई

कि प्रथम प्रति तो इस स्वीकारपत्र की स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को राज्ये श्री महद्राज के हस्ताक्षरी और मुद्राङ्कित दीजावे और दूसरी प्रति उक्त सभा के यन्त्रालय में रहे और एक २ प्रति इस की राज यन्त्रालय में मुद्रित होकर इस स्वीकारपत्र में लिखे सब सभासदों के पास उन के तात्पर्य्य और इस के नियमानुसार वर्तने के लिये भेजी जावे संवत् १९३९ फाल्गुण शुक्ला ५ मंगलवार तदनुसार तारीख २७ फरवरी सन् १८८३ ई०

हस्ताक्षर महाराजा सज्जन सिंह, श्रीमेदपाटेश्वर और राज्ये श्रीमहद्राज सभापति।

(राज्ये श्रीमहद्राज सभा के सभासदोंके हस्ताक्षर)

(१) राव तख्तसिंह बेदेले
(२) राव रत्नसिंह पारसोली
(३) म० महाराज गजसिंह
(४) म० महाराज रायसिंह
(५) म० मामा बख्तावरसिंह
(६) म० राणावत उदयसिंह
(७) म० ठाकुर मनोहरसिंह
(८) म० कविराज श्यामलदास
(९) म० सहीवाला अर्जुनसिंह
(१०) म० राव पन्नालाल
(११) म० पुरोहित पद्मनाथ
(१२) जा० कुन्दनलाल
(१३) म० मोहनलाल पाण्ड्या

स्वीकार पत्र ।

मैंकि स्वामी दयानन्द सरस्वती निम्न लिखित नियमानुसार त्रियोविंशन सज्जन आर्य्य पुरुषों की एक सभा जिसका नाम **परोपकारिणी सभा** है उस को अपनी पुस्तक, धन, यन्त्रालय आदि समस्त वस्तुओं का अधिकार देता हूं कि वह उस को परोपकार में लगायें इस लिये यह पत्र लिखे देता हुं कि समय पर कार्य्यकारी हो।

पदाधिकारी ।

(१) श्रीमान् महाराजाधिराज मंहिमहेन्द्रयावदार्य्य कुल दिवाकर महाराणा जी श्री १०८ श्री सज्जनसिंह जी वर्म्मा और जी. सी. एस. आई. उदयपुराधीश राज मेवाड़ **सभापति** ।

(२) लाला मूलराज एम. ए. एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर प्रधान आर्य्य समाज लाहौर **उप सभासद** ।

(३) श्रीयुत कविराज श्यामलदास जी उदयपुर राज्य मेवाड़ मंत्री ।

(४) लाला रामशरणदास रईस उप प्रधान आर्य्य समाज मेरठ मंत्री ।

(५) उपमन्त्री पाण्ड्या मोहनलाल विष्णुलाल जी उदयपुर निवासी जन्म स्थान मथुरा ।

सभासद ।

१–श्रीमान् महाराजाधिराज श्री नाहरसिंह जी वर्म्मा शाहपुराधीश ।
२–श्रीमान् रावतख्तसिंह जी वर्म्मा बेदले राज मेवाड़ ।
३–श्रीमद् राज राना श्री फतहसिंह जी वर्म्मा भीलवाड़ ।
४–श्रीमद् रावत अर्जुनसिंह जी वर्म्मा आसीन्द ।
५–श्रीमद् महाराज श्री गजसिंह जी वर्म्मा उदयपुर ।
६–श्रीमद् राव श्री बहादुरसिंह जी वर्म्मा जि० अजमेर ।
७–राय बहादुर पण्डित सुन्दरलाल सुपरिन्टेन्डेंट वर्कशाप व प्रेस अलीगढ़ व आगरा ।

८—राजा जैकृष्णदास सी. एस. आई. डिप्टी कलेक्टर बिजनौर।
९—बाबू दुर्गाप्रसाद कोषाध्यक्ष आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद।
१०—लाला जगन्नाथ प्रसाद फर्रुखाबाद।
११—सेठ निर्भयराम प्रधान आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद।
१२—लाला कालीचरण रामचरण मंत्री आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद।
१३—बाबू छेदीलाल गुमाश्ते कमसरियट छावनी मुरार कानपुर।
१४—लाला साईंदास मन्त्री आर्य्यसमाज लाहौर।
१५—बाबू माधोदास मन्त्री आर्य्यसमाज दानापुर।
१६—राव बहादुर रा० पण्डित गोपालराव हरीदेशमुख मेम्बर कौंसिल गवर्नर बम्बई प्रधान आर्य्य समाज बंबई पूना।
१७—राव बहादुर रा० रा० महादेव गोविन्द रानाडे जज राजपूताना।
१८—पण्डित श्याम जी कृष्ण वर्म्मा प्रोफेसर संस्कृत यूनीवर्सिटी आक्सफोर्ड लण्डन।

नोट—उक्त सभासदों में से कई एक महाशय परलोक सिधारे हैं और उन के स्थान पर भिन्न २ स्थानों के और महाशय सभा के मेम्बर नियत किये गये हैं।

नियम।

(१) उक्त सभा जिस प्रकार वर्तमान समय में मेरी और मेरे कुल पदार्थों की रक्षा करके सर्व साधारण के हितार्थ लगाती है उसी प्रकार मेरी मृत्यु के पीछे लगाया करे।

(२) इस वेद वेदाङ्ग आदि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने कराने पढ़ने पढ़ाने सुनने सुनाने छपने छपवाने आदि में।

(३) वेदोक्त धर्म्म के उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशक मंडली नियत कर के देश देशान्तरों और द्वीपद्वीपान्तरों में भेजकर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग आदि।

(४) आर्यवर्त्तके अनाथ और दीन प्रजा की शिक्षा और पालनमें खर्च करें करावें। जिस प्रकार मेरे सन्मुख यह सभा प्रबन्ध करती है उसी प्रकार मेरे पीछे तीसरे या छठे मास किसी सभासद को वैदिक यन्त्रालय का ब्योरा समझने और परताल ने के लिये भेजा करे यह सभासद वहां जाकर सम्पूर्ण आय व्यय और बचत की जांच कर और उस के नीचे अपने हस्ताक्षर कर दिया करे और इस परताल की एक २ प्रति प्रत्येक सभासद के पास भेजे और यदि यन्त्रालय के प्रबन्ध में कुछ त्रुटि देखे तो उस के संशोधन के विषय में अपनी परामर्श लिखकर प्रत्येक सभासद के पास भेज देवे और प्रत्येक सभासद को उचित है कि अपनी २ परामर्श सभापति के निकट लिख भेजे और

सभापति सब की सम्मति से उचित प्रबन्ध करे इस विषय में कोई सभासद आलस्य या अनुचित न करे।

(५) इस सभा को उचित है कि जैसा यह परमधर्म परमार्थ का काम है वैसाही उसको उत्साह, पुरुषार्थ और गंभीरता, उदारता से करे।

(६) उपरोक्त २३ आर्य्य जनों को सभा मेरे पीछे सब प्रकार मेरी स्थानापन्न समझी जाय अर्थात् जो अधिकार मुझे अपने सर्वस्व का है वही अधिकार सभा को है और होगा। उपरोक्त सभासदों में से यदि कोई स्वार्थ में पड़कर इन नियमों के विरुद्ध कार्य्य करे या कोई अन्य मनुष्य हस्ताक्षेप करे तो यह झूठा समझा जायगा।

(७) जिस प्रकार इस सभा को वर्त्तमान समय में मेरी और मेरे सब पदार्थों की यथाशक्ति रक्षा और भलाई करने का अधिकार है, जब मेरा शरीर छूटे तो न उसको गाड़े न जल में बहावे न वन में फेंके केवल चन्दन की चिता बनावें और जो यह सम्भव न हो तो २ मन चन्दन, चार मन घी, ५ सेर कस्तूरी कपूर, ढाई मन अगर तगर १० मन लकड़ी लेकर वेदानुसार जैसा कि संस्कार विधि में लिखा है वेदी बनाकर वेद मंत्रों द्वारा भस्म करे इस के अतिरिक्त और कुछ वेद विरुद्ध न करे और जो इस समय इस सभा का कोई सभासद उपस्थित न हो तो जो कोई उस समय उपस्थित हो वही करे और जितना धन इस में लगे उतना सभा से लेलेवें और सभा उस को देदेवे।

(८) अपनी उपस्थिति में मैं और मेरे पीछे इस सभा को अधिकार होगा कि जिस सभासद को चाहे पृथक् करके किसी और सभ्य सामाजिक आर्य्य पुरुष को उस का स्थानापन्न नियत करले परन्तु कोई और सभासद तब तक सभा से पृथक् न किया जायगा जब तक उसके कार्य्य में कोई त्रुटि न पाई जाय।

(९) मेरे सदृश यह सभा सदैव स्वीकारपत्र के नियमों और प्रतिज्ञाओं का पालन करने या किसी सभासद के पृथक् करने और उस स्थान पर और अन्य सभासद नियत करने या मेरे विपत्ति और आपत्तिकाल के निवारण करने के उपाय और यत्न में वह उद्योग करे जो सब सभासदों की सम्मति से निश्चय और निर्णय पाया जावे और यदि सभासदों में से किसी की सम्मति में विरुद्धता रहे तो जो अधिक सभासदों की सम्मति से निश्चय हो वही करे और सभापति की सम्मति को सदैव दुगुण जाने।

(१०) किसी दशा में भी यह सभा तीन से अधिक सभासदों को अपराध की परीक्षा कर पृथक् न कर सकेगी जब तक पहिले तीन के प्रतिनिधि नियत न करले।

(११) कार्य्य करने लगे, तो सभापति की सम्मति से उस को पृथक् करके उस की जगह कोई अन्य चतुर वेदोक्त धर्म युक्त कोई आर्य्य पुरुष

नियत करें लेकिन उस समय तक साधारण कार्य्य के अतिरिक्त कोई नवीन कार्य्य आरम्भ न किया जावे।

(१२) इस सभा को अधिकार है कि सब प्रकार और नवीन परामर्श निकालें परन्तु यदि सभा को अपने परामर्श और विचार पर पूरा २ निश्चय न हो तो लेख द्वारा नियत समय के पश्चात् सब आर्य्यसमाजों से सम्मति ले और अधिक सम्मति पर प्रवन्ध करें।

(१३) आन्य न्यूनाधिक का स्वीकार अस्वीकार करना या किसी सभासद को विसर्जन का नियत करना या आय-व्यय का अन्वेक्षण करना और उस विषय लाभ हानि को समागति वार्षिक या छमाही छपवाकर चिट्ठी द्वारा सब सभासदों को विदित करे।

(१४) इस स्वीकार पत्र के विषय कुछ झगड़ा उत्पन्न हो तो उस को न्यायाधीश के निकट न ले जाना चाहिये किन्तु यह सभा स्वयम् उसका न्याय करे परन्तु जो परस्पर न्याय न होसके तो राजगृह में यह कार्य्यवाही की जाय।

(१५) यदि मैं अपने जीते जी किसी योग्य आर्य्य पुरुष को पारितोषिक देना चाहूं और उस की लिखित पढ़त कराकर रजिष्ट्री करा दूं तो सभासद को चाहिये उस को माने और दे।

(१६) मुझे और मेरे पीछे सभा को सदैव अधिकार है कि उपरोक्त नियमों को किसी मुख्य लाभ देशोपकार सर्व साधारण के हितार्थ न्यूनाधिक करें।

ह० दयानन्द सरस्वती।

दिनचर्या।

जिस का उपदेश महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज ने उदयपुराधीश और उन के राज्यधिकारियों को किया।

हे राजन ! और राज्यधिकारियों ! आप तीन घड़ी रात्रि रहे उठ शौच से शुद्ध हो एक प्याला ठंडा पानी व तीन माशे चोबचिनी जो सायंकाल को पानी में भिगोया गया हो छान कर पिया कीजिये परन्तु यह भी जान लीजिये कि प्रथम से द्वितीय अति लाभदायक है जिस का मैं भी सेवन करता हूं। इस के उपरान्त एकान्त में बैठ शांत चित्त हो एक घड़ी परमेश्वर का ध्यान कर फिर पैदल तथा बग्घी पर बैठ कर नगर से बाहर का वायु सेवन करना अभीष्ट है। परन्तु बग्घी से पैदल जाने में विशेष गुण हैं जाते समय मार्ग की सम्पूर्ण वस्तुओं को ध्यान पूर्वक देखते आना और इस नियम को आयु पर्य्यन्त सेवन करना उचित है। लौटकर निज निवास स्थान में सुगंधित द्रव्यों का हवन यथाशक्ति घृत सहित कीजिये जिस से वायु शुद्ध हो वर्षा और उससे उत्तम बलिष्ठ अन्न औषधी उत्पन्न होती हैं जिस से सम्पूर्ण संसार का उपकार होता है इस के पश्चात् ९ बजे तक राज्य के आवश्यक कार्य्यों को कर भोजन के पीछे टहल

और तब महाराज से कहा कि ग्यारह बजे से [illegible] तक आराम कर फिर चार बजे तक न्याय व लिखना पढ़ना इत्यादि राज्य संबंधी कार्यों को, फिर शौचादि से निवृत्त हो नवीन [illegible] को [illegible] कर [illegible] और [illegible] नगर और [illegible] आदि का भ्रमण करें। जिन २ आवश्यक कार्यों को देखना हो उनको यथोचित करना चाहिये फिर सन्ध्या के समय भवन में आकर परमेश्वर की उपासना कर विद्या संबंधी बातों को श्रवण करना तथा सज्जन पुरुषों का सत्संग और धर्म विचार। इस के अतिरिक्त ऐतिहासिक विषयों को सुनना चाहिये। रात को नव बजे के बीच में पर फिर भोजन करने के उपरान्त एक घंटे पर्यन्त [illegible] में नाना विद्या के उत्तमोत्तम गान को सुनिये परन्तु इस में व्यभिचार [illegible] और [illegible] कहानियों को जिन में हिंसा की बातें हों कदापि न सुनिये फिर निश्चिन्त हो दस से प्रथम ६ घंटे सोइये। चलते समय स्वामी जी ने महाराजा से पूछा कि आप इन नियमों पर चलना स्वीकार करते हो या नहीं महाराज ने बड़ी प्रसन्नता से उत्तर दिया कि मैं अवश्य इन नियमों पर चलूंगा और द्वितीय दिन से चलना आरंभ कर दिया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज की दिनचर्या जो उदयपुर में थी।

प्रातः ४ बजे उठने और कुल्ला दातौन कर थोड़ी सी सौंफ और दो चार घूंट पानी के पीकर पांच व सात मिनट करवट लेते रहते पांच बजे एक लंगोट बांध ऊपर से छोटी धोती पहिन लेते और सब शरीर नंगा रखते और हाथ में मोटा सोटा ले घूमने को जाते और जंगल में पहुंच एक वृक्ष के नीचे आधे घंटे योगाभ्यास कर दो कोस धीरे २ पैदल आते फिर वहां से कुछ शीघ्रता से चल स्थान पर लौट आते जिससे पसीने अच्छे आजाते उनको कपड़े से नहीं पोंछते वरन् उस पर रेत लगाते और सात बजे आकर १५ या २० मिनट कुर्सी पर बैठ वायु लेते फिर एक गिलास दूध व पानी मिला हुआ पी आठ बजे से ११ बजे तक वेदभाष्य लिखते फिर उठ कर स्नान कर एकान्त स्थान अर्थात् एक कोठरी में जा एक घन्टे व्यायाम कर थोड़ी देर टहल बाहर भोजन के लिये आते जिसमें दूध साग चावल रोटी सदा और कभी २ खिचड़ी खाते परन्तु भोजन सदा एक बार दोपहर को किया करते थे। ग्रीष्म ऋतु में दही छाछ उस में इलायची मिसरी केशर मिलाकर खाते, कभी कभी हलवा और अमरस मनवाते भोजन के पश्चात् आध या पौन घण्टे लेट करवटें लेते परन्तु सोते कभी नहीं, फिर उठकर जल पीते दो चार मिनट बैठे रहते भोजन आधसेर से कम, पाव या डेढ़पाव करते। सत्यार्थ-प्रकाश और संस्कार विधि की छपी हुई कापियों को देख-चिट्ठियों का उत्तर लिखाते इसके पश्चात् यदि कोई आवश्यक कार्य्य आजाता तो उसको भी कर

लेते और तीन बजे मुलतानी मिट्टी सम्पूर्ण शरीर पर और छाती, माथे दण्डों पर चन्दन भी लगाते, फिर चार बजे एक पाटम्बरी धोती कमर में और अंगोछा सिर पर, चादर पीठपर डाल व्याख्यान केलिये जाते इस के अतिरिक्त और कोई वस्त्र अपने पास नहीं रखते थे। ६ बजे से ८ बजे तक शङ्का समाधान करते और नौ बजे तक वार्तालाप करते रहते आमों की ऋतु में दो तीन आम खाकर ऊपर से एक सेर औटा हुआ दूध मिसरी संयुक्त ठंडा कर पीते और इसी समय पर समाचार पत्रों को सुन, दशबजे अवश्यही सो रहते। समय निश्चित पर सदा ध्यान रख उसी के अनुकूल कार्य्य करते थे। जब कभी महाराजा सात बजे से दश बजेके उपरांत तक बात चीत करना चाहते तो स्वामी जो दस बजने पर कह देते कि अब समय होगया प्रातः फिर कहूंगा। १ मार्च सन् १८८३ ई० को जब स्वामी जी ने चलने की तय्यारी की तो दर्बार की ओर से २०००) भेंट किये गये परन्तु जब स्वामी जी ने लेना स्वीकार न किया तब महाराजा साहब ने बहुत आग्रह किया तो स्वामी जी ने यह रुपया परोपकारिणी को देदिया इसके अतिरिक्त महाराजा साहब ने १२००) स्वामी जी को वेदभाष्य की सहायता में भेंट किये और ८००) पुत्र उत्पन्न होने के समय अनाथालय फीरोजपुर को दान दिये इसके अतिरिक्त चलते समय जो मानपत्र महाराजा साहिब ने स्वामी जी को दिया वह निम्न लिखित है।

मान पत्र की प्रति।

स्वस्ति श्री सर्वोपकारणार्थं कारुणिक परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री ५ श्रीमद्दयानन्द सरस्वति यतिवर्य्यपुङ्गवः महाराजा सज्जन सिंहस्य नतितत्यः समुल्लसन्तु उदन्तस्तु। आपका अठे सात मास का निवास यूं चित अत्यन्त आनन्द में रह्यो क्योंकि आपकी शिक्षा को प्रकार श्रेष्ठ और उन्नतिदायक है और आपके संयोग सूं ही न्याय धर्मादि शारीरिक कार्य्यों में निःसन्देह लाभ प्राप्त है बाकी म्हा का सभ्य जना सहित इइसा हुई कारण कि शिक्षा और उपदेश व श्रेष्ठ पुरुषों का दृढ़ होवे है ज्यों स्वकीय आचरता भी प्रतिकूल नहीं राखे सो यो आप में यथार्थ मिल्यो अब म्हे आप वियोग को संयोग तो नहीं चावा थां परन्तु आपको शरीर अनेक मनुष्यों के उपकारक है जोसंदावरोधकरणो अनुचित है तथापि पुनरागमन सूं आप भी म्हा का चित ने शीघ्र अनुमोदित करेगा इत्यलम्। संवत् १९३९ फाल्गुणे कृष्ण ५ भोमे।

हस्ताक्षर महाराणा

सज्जन सिंहस्य।

शाहपुरा

स्वामी जी १ मार्च सन् १८८३ ई० को उदयपुर से चलकर नीमाहेड़े और चित्तौड़गढ़ होते हुये ९ मार्च सन् १८८३ ई० को शाहपुरा में पहुंच नाहर

नियाल ग्राम में ठहरे और उपदेश करना आरम्भ कर दिया महाराजा नाहरसिंह जी शाहपुराधीश प्रतिदिन दर्शनों को जाते और अनुमान तीन घण्टे के रहकर एक घण्टा सतोपदेश और शङ्का समाधान और दो घण्टे मनुस्मृति योगसूत्र और वैशेषिक के पढ़ने में व्यतीत करते। स्वामी जी के उपदेश से राजभवन में एक यज्ञशाला भी बनवाई गई थी उसी में राजा साहब प्रतिदिन हवन किया करते थे और प्राणायाम का अभ्यास भी स्वामी जी से सीखा था एक दिन वहां दैवयोग से कोठी की छत जो नई बन रही थी गिरपड़ी और उस में कई एक मनुष्य भी दब गये परन्तु किसी को इतना साहस न हुआ कि उनको निकलता परन्तु उस धर्मवीर स्वामी दयानन्द सरस्वती ने झट आन की आन में बाहर निकाल लिया सच तो यह है कि ब्रह्मचारी ही अपने कर्त्तव्य को पूरा कर सकते हैं।

इस स्थान पर स्वामी जी ने एक ब्राह्मण को जो थोड़ासा पढ़ा हुआ था उस के आग्रह करने पर संन्यास ग्रहण कराकर ईश्वरानन्द सरस्वती नाम रखकर उसी समय प्रयाग पढ़ने के लिये भेज दिया और मैनेजर के नाम पत्र लिख दिया कि जब तक वह विद्यार्थी पढ़ता रहे ५) मासिक भोजनों के लिये देते रहना इस स्थान पर रामसनेहियों का बड़ा अखाड़ा था और सब से बड़े महन्त यहां रहते थे स्वामी जी ने उन महन्त के साथ शास्त्रार्थ करने का उद्योग किया परन्तु वह किसी प्रकार से उद्यत न हुए इस का कारण यही प्रतीत होता है कि उन में कोई पूर्ण विद्वान् न था फिर शास्त्रार्थ कैसा। महाराजा शाहपुराधीश ने स्वामी जी के उपदेश से अपने राज्य में उपदेश करणार्थ ३०) रुपये मासिक पर एक उपदेशक नियत किया और २५० वेदभाष्य की सहायता के अर्थ दान किये इसके अतिरिक्त चलते समय एक मानपत्र भी दिया जो नीचे लिखा है।

मान पत्र।

स्वस्ति श्री सर्वोपकारणार्थ कारुणिक परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती महाराज के चरणारविंदों में महाराजाधिराज शाहपुरेश की वारम्वार नमस्तेस्तु। अपरंच यहां आपका विराजना सार्द्धद्वय मासपर्यन्त हुआ तथापि आप के सत्य धर्मोपदेश के श्रवण से मेरी आत्मा तृप्त न हुई आशा थी कि आप श्रीमान्त अवस्थित होते परन्तु जोधपुराधीशों की ओर से दर्शनों की और वेदोक्त धर्म उपदेश ग्रहण की पुनः सत्याचरण असत्य को त्याग और आप के मुखारविन्द से श्रवण करने की अभिलाषा देखके आप ने वहां पधारना स्वीकार किया और भगवच्छरीर भी कोड़ों मनुष्यों के उपकारार्थ प्रकट हुआ है यह समझ के मेरी भी सम्मति यही हुई कि आपका

पधारना ही उत्तम है यही मनन के यहां विराजने की प्रार्थना नहीं की आशा है कि कृतकृत्य करने के निमित्त पुनरागमन करेंगे ।

सम्वत् १९४० मिती जे० कृ० ४

हस्ताक्षर नाहरसिंहस्य ।

जोधपुर में प्रचार रोग और मृत्यु ।

जिन दिनों में स्वामी जी उदयपुर में धर्मोपदेश कर रहे थे उस समय में वहां के राजद्वारा गोरक्षापत्र पर जोधपुराधीश के हस्ताक्षरार्थ भेजा गया था उस समय से महाराजा जोधपुराधीश स्वामी जी को विशेष रूप से जानते थे उन्हीं दिनों में महाराजा सर करनैल परतापसिंहजी उच्चाधिकारी राज मेवाड़ और राव राजा तेजसिंह जी ने बड़ी अभिलाषा और नम्रता के साथ जोधपुर पधारने के लिये निवेदन किया था जिस को उन्हों ने स्वीकार कर लिया । जिस समय स्वामी जी उदयपुर से शाहपुर में पहुंचे उस समय शाहपुराधीश उनको वहां अधिक रखने का बहुत यत्न कर रहे थे परन्तु महर्षि कहां रहसके थे क्योंकि उनको तो नित्य प्रति संसार में भ्रमण कर धर्मोपदेश करने की चिन्ता लगरही थी इस समय में महाराजा प्रतापसिंह जी का पत्र पहुंचा कि हमने आप के लिये सवारियों का प्रबन्ध कर दिया है और मार्ग के प्रबन्ध के हेतु बारेठ अमर दान जी को शाहपुरे भेजा कि वहां उन के साथ रहें इधर रेलवे स्टेशन पाली पर हाथी, रथ, घोड़े गाड़ियां पालकी आदि का प्रबन्ध भी करदिया । जब स्वामी जी ने उनका ऐसा प्रेम देखा तो चलने की तय्यारी करदी ।

प्यारे भ्रातृगणों ! इस यात्रा का प्रथम ही दिन स्वामी जी को दुखदाई हुआ अर्थात् मार्ग में ऐसी वृष्टि हुई कि कोई स्थान ठहरने को न मिला बिना छाया के सब मनुष्य भीगते रहे पवन के वेग से गाड़ियों की छत उड़गई ज्यों त्यों फर बड़ी कठनाई से २७ मई सन् १८८३ ई० को अजमेर पहुंचे वहां सभासदों ने मारवाड़ के मनुष्यों के गुण स्वाभाव स्वामी जी से भलीभांति प्रकट किये और निवेदन किया कि महाराज आप अभी वहां न जाइये ईश्वर वैदिक धर्म के प्रचारक श्रीस्वामीजी ने उत्तर दिया था कि यदि वहां के निवासी मेरी उंगलियों की बत्ती बनाकर जलावें तो भी कुछ शंका नहीं मैं अवश्य वहां जाकर वैदिक धर्म का प्रचार करूंगा जो मेरा मुख्य कर्तव्य है इसके पश्चात् एक सभासद् ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि आप वहां जाते तो हैं तो वहां नम्रता से उपदेश करना क्योंकि वहां के मनुष्य कठोर निर्दयी और कपटी भी हैं इस के उत्तर में उक्त स्वामी जी ने कहा था कि मैं पापरूपी वृक्षों के काटने के लिये पैने कुठारे से कार्य्य करूंगा जिस से वह पापरूपी वृक्ष शीघ्र

नष्ट होजाय न कि उस के बढ़ने के लिये कैंचियों से छाटूं। स्वामी जी से इस अन्तिम उत्तर को सुन कर किसी महाशय को कुछ कहने का साहस न हुआ, इस के पीछे वहां एक दिन रह कर जोधपुर को चल दिये; १९ मई को प्रातःकाल जोधपुर पहुंच गये। राज्य की ओर से राव राजा जवानसिंह जी स्वागत के लिये आये जिन्हों ने बड़े आदर सत्कार के साथ भय्या फैज़ुल्लाखां के बाग के बड़े बंगले में निवास दिया थोड़ी देर के पश्चात् महाराजा सर करनैल प्रतापसिंह जी और राव राजा तेजसिंह जी स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुये एक अशर्फी और १५) रुपये भेट किये। और अतिथि सत्कार का भार चारण मूलदान जी को सौंपा और ६ सिपाही और एक हवलदार चौकी पहरे के लिये नियत कर दिये। इस के १७ दिन पीछे श्रीमान् महाराजा यशवन्तसिंह जी जोधपुराधीश स्वामी जी के मिलने के लिये पधारे और ५ अशर्फी १००) भेट कर, नीचे बिछौने पर बैठ गये, तब स्वामी जी ने कुर्सी पर बैठने के लिये कई बार कहा उस समय महाराजा ने नम्रता पूर्वक यह निवेदन किया कि आप हमारे स्वामी हैं और मैं आप का सेवक हूं अतः आप के सन्मुख किसी प्रकार भी कुर्सी पर नहीं बैठ सकता तब स्वामी जी ने स्वयम् हाथ पकड़ कर अपने सामने कुर्सी पर बैठा लिया और तीन घण्टे धर्मोपदेश करते रहे अन्त को महाराजा ने स्वामी जी से निवेदन कर कहा कि आपका यहां पधारना हमारे सौभाग्य का कारण है अब आप से हमारी यही प्रार्थना है कि आप कृपा करके प्रति दिन उपदेश किया करें। इतना कह राजा साहब अपने साथियों समेत निज स्थान को सिधारे। स्वामी जी महाराज ने द्वितीय दिन से चार बजे से छै बजे तक व्याख्यान देने का समय नियत कर लिया इन व्याख्यानों में राज्य के बहुधा कर्मचारी और प्रतिष्ठित उमराव, हिन्दू मुसलमान सम्मिलित हुआ करते थे और स्वामी जी महाराज अपने सत्य संकल्पानुसार जो २ राज्य में अनाचार और कुचाल देखते उसको निर्भय होकर उसके सुधार के लिये सतोपदेश करते और राजधानी को प्राचीन आर्य्य राजों के ढंग पर लाने के लिये अनेक प्रकार के उपदेश और इतिहास सुनाया करते थे और राव राजा शिवनाथ सिंह जी और उनके भाई राव राजा मोहनसिंह जी जो शाक्त मत के अनुयायी और संस्कृत के विद्वान् थे जिनकी स्वामी जी के साथ शाक्त मत और नवीन वेदांत के विषय में बहुधा वार्तालाप हुआ करती थी और अन्त को स्वामी जी के कथन को स्वीकार कर उन में बड़ी भक्ति और प्रेम रखने लगे और पण्डित शिवनारायण जी प्राइवेट सेक्रेटरी महाराजा साहब जोधपुर स्वामी जी को हिन्दू का फिलास्फर कहा करते और उन में बड़ी भक्ति रखते थे। मुसलमानों में से नव्वाब मुहम्मद खां साहब भी स्वामी जी से मिलने को जाया करते परन्तु उन से कभी बहस नहीं करते थे और जब कभी कोई आजाती थी तो वह कह

किया करते थे कि आप तो पहुंचे हुए साधू हैं हम आप का क्या मुकाबिला कर सकते हैं। करनैल मुहीउद्दीन व कामदार इलाहीबख्श बहुधा वार्तालाप करने के लिये आते, भय्या फैजुल्लाखां मुसाहिब आला राज मारवाड़ स्वामी जी के व्याख्यान सुन कर नाक भौं चढ़ाया करते थे एक दिन स्वामी जी से स्पष्ट कह दिया था कि यदि मुसलमानों का राज्य होता तो आप ऐसे व्याख्यान नहीं दे सकते तथा यदि आप ऐसा करते तो जीते भी नहीं रह सकते थे। उस समय स्वामी जी ने यह उत्तर दिया। मैं भी समयानुसार दो राजपूतों को छोड़ देता कि वह तुम्हारी भले प्रकार सुधलेते। मित्रो ! स्वामी दयानन्द सरस्वती इस प्रकार निर्भय हो धृति को धारण किये परमात्मा के भरोसे पर उपदेश करते थे।

एक दिन स्वामी जी ने क्षत्रियों के धर्म और उन की गिरी हुई दशा पर उत्तम कथन किया कि जिसका एक २ शब्द गम्भीर अर्थों से भरा हुआ था इस व्याख्यान में स्वामी जी ने यह भी कहा था जो राजा एक अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़कर पराई स्त्रियों से सम्बन्ध रखता है वह महापाप का भागी होता है उन से तो पशु अच्छे हैं जो नियमानुसार कार्य्य करते हैं इसी भांति मूर्तिपूजक परमात्मा की सत्ता को ठीक नहीं मानते।

इस बीच स्वामीजी पर यह बात विदित हुई कि महाराजा साहब एक नन्हींजान से अनुचित सम्बन्ध रखते हैं। और यह वेश्या महाराजा साहब के अत्यन्त मुंह लगी हुई है। राज्य के सब काम इसी की सम्मति से होते हैं। सब कर्म्मचारी, अधिकारी जनभी इससे दबते हैं। यह सुनकर स्वामीजीको बड़ा खेद हुआ कुछ काल के पश्चात् महाराजा यशवन्तसिंह जी ने स्वामी जी का दीवान खास में उपदेश के अर्थ निवेदन किया जिस को स्वामी जी महाराज ने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार किया क्योंकि वह इस समय पर एक विशेष उपदेश करना चाहते थे। संयोग से जिस समय स्वामी जी दीवानखास में पहुंचे उस समय नन्हींजानकी पालकी अन्दर थी और वह पालकी के भीतर से महाराजा साहिब से बातें कर रही थी स्वामीजीके आनेके समाचार सुन शीघ्रतासे महाराजा साहिब ने पालकी उठानेवालों को आज्ञादी कि पालकी लेजाओ उठाने वालों का शीघ्रता के कारण कन्धा ऊंचा नीचा हो गया जिस से पालकी टेढ़ी होने लगी तो स्वयं महाराजा साहिब ने अपने कन्धे के सहारे से उसे सीधा कर दिया और आज्ञा दी शीघ्र पालकी निकाल लेजाओ इतनी शीघ्रता होने पर भी स्वामी जी ने थोड़े अन्तर पर अपनी आंखों से देखलिया कि महाराजा साहिब ने हमारे आने के कारण अपना कन्धा लगाकर पालकी को उठवा दिया। अपने देश के राजाओं की यह कुदशा अपने नेत्रों से देख सच्ची देश हितैषता के कारण उपदेश के समय स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि राजपुरुष सिंह के समान हैं और वेश्या कुतिया के समान, सिंहों को कदापि न चाहिये

कि वह कुतिया से समागम करे, ऐसी कुतियों पर आसक्त होना कुत्तों ही का काम है और लड़कों पर मोहित होनेवाले सूकर और कौवे ही होते हैं सहस्रों धिक्कार हैं ऐसे जीवन पर।

इस के अतिरिक्त स्वामी जी ने अपने साधारण उपदेशों में भी राजाओं के भी प्रसंग का स्पष्टता के साथ खंडन करना आरम्भ किया। महाराजा जोधपुर पर इस व्याख्यान का बड़ा असर पड़ा उन्हीं दिनों में स्वामी जी ने यह भी कहा था हिन्दू रियासतों की दशा बड़ी शोचनीय है वे कभी की नष्ट भ्रष्ट हो गई होतीं, परन्तु जितनी या जो कुछ बची हुई हैं व सब उन की पत्नियों के पतिव्रत धर्म्म के कारण। अन्यथा यदि राजाओं के कर्मों पर होता तो कबका बेड़ा डूबगया होता। स्वामीजी को ऐसे प्रतिष्ठित राज्य की यह कुदशा देखकर संतोष न आया तब निम्न लिखित एक पत्र महाराजा प्रतापसिंहजी को लिखा।

पत्र।

श्रीयुत् मान्यवर शूरवीर महाराजा सर करनैल प्रतापसिंहजी आनंदित रहो! मुझको इस बात पर अत्यंत शोक है कि श्रीमान् जोधपुराधीश आलस आदि में वर्तमान हैं इस के उपरांत आप और बाबा साहब दोनों के शरीर रोगयुक्त हैं अब कहिये इस राज का कि जिसमें १६ लाख से कुछ ऊपर मनुष्य बसते हैं उनकी रक्षा और कल्याण का बड़ा भार आप लोग उठा रहे हैं सुधार और बिगाड़ आप ही तीनों महाशयों पर निर्भर है तथापि आप लोग अपने शरीर के आरोग्य रक्षण और आयु बढ़ाने पर बहुत कम ध्यान देते हैं कैसे शोक की बात है इस लिये मेरी इच्छा है कि आप लोग अपनी दिनचर्य्या मुझ से सुनकर सुधार लेवें जिस से मारवाड़ को क्या अपने आर्य्यवर्त देश भर का कल्याण करने में आप लोग प्रसिद्ध होवें आप सरीखे योग्य पुरुष जगत् में बहुत कम जन्मते हैं और जन्म के भी बहुत कम चिरंजीव रहते हैं और उत्तम पुरुषों के अधिक जीवन के बिना देश की उन्नति नहीं होसकी इस कारण इस ओर आप लोगों को अवश्य ध्यान देना चाहिये आगे जैसी आप लोगों की इच्छा होवे सो कीजिये। इस व्याख्यान और इस उपदेश से नन्हींजान बहुत अप्रसन्न हुई। उधर चक्रांकितों के खंडन करने से महता विजयसिंह रुष्ट हो गये। भैय्या फैजुल्ला खां तो पहिले ही विरुद्धता में ही तत्पर थे महता विजय सिंह ने नन्हींजान को और भी कह सुनकर क्रोधित किया, ब्राह्मण और पौराणिक पंडित भी स्वामी जी को कोसते थे यदि कुछ दिन और यहां पर रहगये तो हमें यहां रहना कठिन हो जायगा अब और भी अंधाधुँध हो गया एक करेला दूसरे नीम चढ़ा और फिर तीसरे कीड़े पड़ गये निदान सब प्रकार संकट ही संकट दिखाई देने लगा और सब लोग स्वामी जी के विरुद्ध उन के समाप्त करने के उपायों में तत्पर हो गये।

देश हितैषी समाचार पत्र में लिखाहै—कि इस राज्य में स्वामी जी महाराज ४ मास तक आनंद पूर्वक रहे परन्तु पांचवा मास निकृष्ट निकला कि ईश्वर किसी शत्रु को भी न दिखावे सब से पहिले स्वामी जी के रसोइये ब्राह्मण देवता को (जिस का नाम धौड़ मिश्र तथा जो शाहपुरे का रहनेवाला था) गांठा गया दूसरे कल्लू कहार जो भरतपूर का रहनेवाला था उस को अपनी पट्टियों में धरा जिस पर स्वामी जी का बड़ा प्रेम और विश्वास था और वह कहार भी बड़ी प्रीति से चाकरी करता था। यह ६ सात सौ रुपये का धन लेकर खिड़की की राहसे भागगया द्वितीय जिसस्थान में यह धन था उस स्थान के द्वार पर रामानन्द ब्रह्मचारी को सोने की आज्ञा थी परन्तु उस दिन वह भी वहां न सोया । तृतीय प्रातःकाल होते ही इस चोरी का कोलाहल सर्वत्र हो गया इतनी सी देर में एक विदेशी कहार जो इस राज्य के कठिन मार्ग और घाटियों से सर्वथा अज्ञान, जिस पर महाराजाधिराज की ऐसी आज्ञा कि उस कहार को पृथ्वी पर से ढूँढ़कर लाओ और तिस पर भी मेरे तेरे बीच में वह अन्तरध्यान हो गया। इस से अधिक और क्या आश्चर्य्य की बात होगी। इस के उपरान्त जब स्वामी जी महाराज पहरेवालों दारोगा आदि पर ताड़ना करते तो वह लोग स्वामी जी के सन्मुख हाथ जोड़ जो आज्ञा ऐसा कहते थे पश्चात् परस्पर हंसते थे स्वामी जी का भरोसा इन सब पर से उठ गया था निदान यह मन में निश्चय कर लिया था कि २७ सितम्बर को इस नगर को छोड़ देंगे परन्तु उस दिन किसी कारण चलना न हुआ उतने में आश्विनवदी एकादशी गुरुवार के दिन कुछ श्लेष्मा अर्थात् जुकाम हुआ चतुर्दशी की रात्रि को धौड़ मिश्र पाकाध्यक्ष से दूध पीकर सोये जिस में कि बहुत बारीक पिसा हुआ कांच मिला था उसी रात्रि को तीन वमन हुई परन्तु स्वामी जी ने किसी को नहीं जगाया और आप ही जल से कुल्ली कर सो गये स्वामी जी का प्रतिदिन यह नियम था कि प्रातःकाल उठ वन में शुद्ध वायु सेवनार्थ आया करते थे परन्तु आज यह बहुत दिन चढ़े उठे और उठते ही एक वमन फिर हुई इस पर स्वामी जी को कुछ सन्देह हुआ तो दूसरी जल पीकर आप वमन को और कहा कि आज हमारा जी उल्टा आता है तुम लोग शीघ्र अग्नि कुण्ड में धूप डाल सुगन्ध को फैलाकर कोठी से दुर्गन्ध निकाल बाहर करो वैसा ही किया गया इस के पश्चात् उदर में शूल चला तब डाक्टर सूरजमल जी को बुलाया उन्हों ने आकर वमन बन्द करने की औषधि दी और पूछा कि आप का मन कैसा है तब स्वामी जी ने कहा कि अत्यन्त वेग से समस्त पेट में शूल हो रहा है जिस से स्वामी जी को अत्यन्त क्लेश होने लगा इतने में राज्य की ओर से डाक्टर अलीमर्दान खां साहिब चिकित्सा के लिये नियत हुये महाराजा प्रतापसिंह जी की आज्ञा थी कि डाक्टर साहिब बड़े योग्य पुरुष हैं इन के इलाज से स्वामी जी को शीघ्र

आराम हो जावेगा उन्हीं ने जाकर पेट पर पट्टी बंधवाई और आज संध्या के आठ बजे श्रीयुत राव राजा तेजसिंह और कप्तान साहब और कई एक योग्य पुरुष स्वामी जी के देखने को गये और एक घण्टे तक बैठ बातचीत डाक्टर अलीमर्दाखां से करते रहे। पुनः १ अक्टूबर को ६ बजे उक्त डाक्टर साहिब आये और ग्लास लगाया जिस से स्वांस के साथ जो दर्द होता था बन्द हो गया परन्तु पीड़ा वैसी ही बनी रही और २ अक्टूबर को प्रातःकाल के सात बजे स्वामी जी ने डाक्टर साहिब से कहा कि अब हम जुल्लाब लिया चाहते हैं डाक्टर साहिब ने कहा कि बहुत अच्छा पर मेरी सम्मति में प्रथम बलगम का फूलना फिर दस्त आना उत्तम है स्वामी जी ने कहा कि जिस से रोग की निवृत्ति हो वैसा ही किया जावे तब डॉक्टर साहिब ने अपने घर जाकर गोलियां बनाकर भेजवीं और जिस प्रकार उन्हों ने कहा था वैसाही पान को। तीसरी अक्टूबर को जुलाब दिया जिस से नौ बजे तक कोई दस्त नहीं आया फिर दस बजे से दस्तों का आना आरम्भ हुआ रात्रि भर में तीस से अधिक पतले दस्त आये प्रातःकाल अर्थात् चौथी अक्टूबर को पुनः डाक्टर लोग आये तब स्वामी जी ने कहा कि आपतो कहते थे कि छै सात ही दस्त आवेंगे यहां तीस से भी अधिक हुये। इस कारण हमारा जी घबड़ाता है। इसके उपरान्त इस दिन भी अधिक दस्त हुए और सायंकाल को जो दस्त हुआ उस के पश्चात् स्वामी जी को मूर्छा आगई और आंखें निकालदीं तब सब मनुष्य डरगये फिर तो यह नियम होगया कि जब दस्त आवे तब ही मूर्छा होजावे। छै अक्टूबर को स्वामी जी ने कहा कि भाई अब दस्त बन्द होने चाहियें, क्योंकि मुझ को विना मूर्छा आये एक भी दस्त नहीं होता और मेरा जी घबड़ाता है शरीर में अग्नि लगरही है तब डाक्टर साहिब ने कहा कि दस्त बन्द होने से रोग की वृद्धि का भय है यदि दस्त धीरे २ आप से ही बन्द होजावें तो बहुत अच्छा हो ऐसा कह चले गये उसके पीछे डॉक्टर सूर्य्यमल जी आये और कहा कि इस जुलाब के देने की मेरी कदापि सम्मति न थी परन्तु क्या किया जावे बड़े तो बड़े ही होते हैं उदर से लेकर कण्ठ और मुख पर्यन्त छाले पड़ गये मस्तक और हस्त और पदों में फोड़े हो गये जिनकी पीड़ा के कारण बोलना कठिन होगया और दस्तों के साथ हिचकी भी उत्पन्न हो गई। परन्तु धन्य हैं स्वामी जी को इतनी पीड़ा होने पर भी हाय तक नहीं की। प्यारे मित्रो! जब हिचकियों ने बहुत सताया तब उन के निवारणार्थ दोदो घण्टे प्राणायाम चढ़ा लेते इस स्थान पर यह भी विचारणीय है कि यह जुलाब किस प्रकार का था इस पर बहुधा मनुष्य कई प्रकार की शङ्कायें करते थे कई पुरुषों और महाराजा प्रतापसिंह ने इस विषय में स्पष्ट कह दिया था परन्तु अब क्या होता है लाखों यत्न करो स्वामी जी महाराज अब नहीं आ सकते जो होना था सो हुआ परन्तु हमको यही शोक है ऐसे रोग की प्रबलता होने पर भी स्वामी जी

ने किसी आर्य्यसमाज को सूचना नहीं दी यदि यह वृत्तान्त उसी समय में जाना जाता तो यह रोग इतनी प्रबलता को प्राप्त न होता। बारह अक्टूबर को आर्य समाज अजमेर के एक सभासद ने राजपूताने गजट से जान आर्य्यसमाज अजमेर को खबर दी तब समाज ने यह विचार कर कि किसी शत्रु ने यह मिथ्या समाचार फैलादिया है क्योंकि इससे प्रथम इस नगर में यह मिथ्या खबर उड़ाई गई थी कि जोधपुर में स्वामी जी से फौजदारी होगई जब इस विषय में स्वामी जी से पूछा गया तो उत्तर में लिखा गया कि तुम लोग तनिक अपनी बुद्धि को भी काम में लाया करो यदि ऐसा होता तो अब तक कितने बार दौड़ जाते यह विचार, स्वामी जी के बीमार होने के समाचार सुनने पर भी विश्वास न किया परन्तु मन भी एक अद्भुत पदार्थ है इसको अनेकान् प्रकार से समझाया परन्तु उसने न माना और अधिक सन्देह बढ़ता गया इस कारण आर्य्यसमाज अजमेर ने अपने एक सभासद जेठामल जी को जोधपुर भेजा उसने स्वामी जी की यह दशा देखकर प्रार्थना की कि महाराज यह क्या हुआ और अधिकतर सोच इस बात का है कि आपने किसी समाज को सूचित नहीं किया स्वामी जी ने कहा कि बीमारी की दशा को क्या लिखते, यह तो शरीर का धर्म ही है कुछ अन्य बात होती तो लिखते, इसके उपरान्त तुम लोगों को भी क्लेश होता भ्रातृगणों ! ज्यों जेठा जी लौटकर अजमेर आये और सभासदों को सूचित किया त्यों समाज ने बम्बई, फर्रुखाबाद, मेरठ, लाहौर इत्यादि को तार दिये तो सर्वत्र कोलाहल मचगया इधर जब स्वामी जी को जोधपुर में रोग निवृत्ति की आशा न रही तो एक दिन रात्रि को पण्डित देवदत्त लेखक और लाला पन्नालाल मुदर्रिस जोधपुर ने स्वामी जी से कहा कि महाराज अब यह नगर शीघ्र छोड़ देने के योग्य है स्वामी जी ने प्रातः होते ही श्री १०८ महाराजा जोधपुराधीश को पत्र लिखा अब हम आबू को जायँगे श्रीमान् ने उत्तर दिया कि ऐसी दशा में मेरे राज्य से जाने में मेरी अपकीर्ति का कारण है परन्तु जब स्वामी जी का विचार ठहरने का न हुआ तो लाचार होकर चुप हो रहे इस के पश्चात् १५ अक्टूबर को जब स्वामी जी की दशा बहुत ही शोचनीय होगई तब डाक्टर एडम साहब भी इलाज में शरीक किये गये और उन्होंने भी यही सम्मति दी कि इन का आबू पहाड़ पर जाना बहुत अच्छा है निदान १६ अक्टूबर को स्वामी जी का जाना निश्चय हुआ और १५ अक्टूबर की सायंकाल को महाराजा साहब अपने बंधुओं और अमीर उमराव सहित स्वामी जी के पास आये और विनय किया कि महाराज आप ऐसी दशा में मेरे राज्य से पधारते हैं यह बात कुछ छिपी न रहेगी इस में मेरी बड़ी अपकीर्ति है परंतु आप की यह दशा देख कुछ नहीं कह सका हूं पश्चात् २५००) रु० दो दुशाले स्वामी जी के भेंट किये और स्वामी जी को गर्मी की व्याकुलता देख अपना खस का डेरा और खस का पंखा और कई एक सेवक और सिपाही साथ

सुभा के लिये साथ किये और आबू को तार दिया गया कि स्वामी जी आते हैं सब सामान ठीक रहे इस के अतिरिक्त स्वामी जी को पीनस में सवार करा श्रीमान् अपने भाई बंधुओं और अमीर उमराव सहित स्वामी जी की पीनस के साथ वाटिका तक पैदल पहुंचाने गये तत्पश्चात् वाटिका के द्वार पर पीनस को ठहराय महाराज साहब ने अपनी फलालैन की पट्टी स्वामी जी की कमर में बांधी। इस लिये कि पालकी में आराम करते हुए कुछ कष्ट न हो। इस के उपरान्त स्वामी जी से बहुत कुछ विनय कर के कहा कि महाराज आप ने श्रीमान् महाराणा साहब को तो पढ़ाया है परन्तु मुझ को भी किसी प्रकार उन से कम मत समझना और कहा कि अब आप आबू पर रोग से निवृत्त हों तो मुझ को तारद्वारा सूचित करना मैं पुनः आप को लेने आऊंगा और पीनस के कहारों से कहा कि यदि तुम स्वामी जी को प्रसन्नता पूर्वक पहुँचाकर स्वामी जीके हाथ की चिट्ठी लाओगे तो तुमको पारितोषिक मिलेगा और महाराजा साहब ने यह भी कहा था कि जो वैद्य स्वामी जी को चंगा करदेगा उस को २०००) राज्य की ओर से पारितोषिक दिया जावेगा ऐसा कह निज स्थान को पधारे। मार्ग में स्वामी जी को दस्त और हिचकी तो आती ही थी परन्तु एक दो वमन भी हुई इस के उपरान्त मार्ग में स्वामी जी जहां ठहरते थे वहां हवन भी कराया करते थे और बड़ी कठिनाई से आबू पहुंचे। यहां पर एक आर्य्य डाक्टर परिडत लक्ष्मणदास नामक मिल गये उन्हों ने स्वामी जी को औषधि दी उससे दस्त हिचकी बन्द होगई और विश्वास हुआ कि अच्छे होजायेंगे उक्त डाक्टर साहब ने बहुतेरा चाहा कि हम आबू पर ठहर कर स्वामी जी की औषधि करें परन्तु उन के साहिब ने न ठहरनेदिया और अजमेर आने की आज्ञा दी तब डाक्टर साहिब ने परवश दो चार दिन की औषधि बनाकर दी और कहा कि इस को नित्य प्रति देते रहना और जो स्वामी जी को अजमेर ले आओ तो मैं बड़ी सावधानी से औषधि करूंगा प्रथम तो स्वामी जी ने अजमेर का जाना स्वीकार ही नहीं किया परन्तु फिर बहुत कुछ कहने सुनने पर मान गये आबू पहाड़ पर महाराजा साहिब जोधपुर और शाहपुरे के दो दो मुलाहिम स्वामी जी के पास रहा करते थे और जोधपुराधीश की आज्ञानुसार डाक्टर एडम साहिब सिविलसर्जन और डाक्टर गुरुचरणदास असिस्टेन्ट सर्जन दो तीन बार स्वामी जी को देखने आते थे एक दिन स्वयं महाराजा साहब प्रतापसिंह जी जोधपुर से आबू पर स्वामी जी को देखने के लिये आये थे तारों का तो यह हाल था कि चारों तरफ से बराबर चले आरहे थे इस लिये तारघर वाले आश्चर्य में थे और कहते थे कि इतने तार तो श्रीमान् वाइसराय और गवर्नर जनरल हिन्द के पधारने पर भी नहीं आते थे अन्त को स्वामी जी यहां से २६ अक्टूबर सन् १८८३ ई० को प्रातःकाल चलकर उसी दिन रात्रि के ३ बजे अजमेर पहुंच गये जिनके लिये

आबू रोड से एक गाड़ी फर्स्ट क्लास की रिजर्व कराई गई थी मार्ग में कई आर्य पुरुष उनके समीप बैठे रहे और यथा अनुकूल उनको कष्ट नहीं होने दिया जब रेलवे स्टेशन अजमेर पर पहुंचे तो अजमेर समाज के सभासद पालकी समेत स्वागत के लिये उपस्थित थे रेल से उतारकर स्वामी जी को पालकी में लिटाकर सावधानी के साथ एक कोठी में ले आये जिस को प्रथम से इस कार्य्य के लिये विचार लिया था उस समय सब लोगों को सर्दी मालूम होती थी परन्तु स्वामी जी को गर्मी मालूम पड़ती थी इसके लिये कोठी के सब दर्वाजे खोल दिये गये तिस पर भी उनको शान्ति न हुई। दूसरे दिन से—बम्बई, फर्रुखाबाद, मेरठ, लाहौर, कानपुर इत्यादि के सभासदों की सम्मति से, जो यहां एकत्रित थे डाक्टर लक्ष्मणदास जी की औषधि होने लगी परन्तु उनकी दशा में कुछ अन्तर न हुआ। एक बार स्वामी जी ने अपने मनुष्यों से कहा था कि हमको मसौदा पहुंचा दो इस पर सबने कहा कि आराम हो जाने पर वहां आप को ले चलेंगे ऐसी दशा में बार बार यात्रा करना ठीक नहीं है। इस पर स्वामी जी ने कहा कि (दो दिन में हम को पूरा आराम पड़ जावेगा) यह बात स्मरण रखने योग्य है। इस में कुछ सन्देह नहीं कि डाक्टर लक्ष्मणदास जी ने जहां तक उन को विद्या और बुद्धि थी बड़े परिश्रम और योग्यता से औषधि की। परंतु उस समय में यह उचित था कि बड़े २ डाक्टरों की सम्मति से इलाज होता, लेकिन लक्ष्मणदास जी के इस कथन से कि स्वामी जी को अब कुछ सन्देह युक्त रोग नहीं है अर्थात् जो प्रथम भयानक दशा थी अब नहीं है अब तो केवल साधारण रोग रहगया है इस बात का हम तमस्सुक लिखे देते हैं जो स्वामी जी का कुछ बिगड़ जाय तीन दिन में अपने पैरों से चलने लगेंगे इस विश्वास पर सब सभासदों ने अन्य डाक्टरों को भी नहीं दिखलाया। २८ तारीख की आधी रात्रि से रोग की प्रबलता हुई शरीर अत्यंत निर्बल होगया उस समय श्वास बड़े वेग से चल रहा था परंतु स्वामीजी उसे रोक २ कर बल से फेंक ईश्वर के ध्यान में लगा रहे थे इसपर डाक्टर लक्ष्मणदास के भी छक्के छूटगये और कहने लगे इसको बुलाओ उसको बुलाओ यह करो वह करो .. अब क्या होसक्ता है ३० अक्टूबर को अजमेर के बड़े डाक्टर न्यूमन साहब बुलाया। स्वामी जी को देख डाक्टर साहब आश्चर्य युक्त कहने लगे कि .. है इस सत्पुरुष को। हमने आज तक ऐसे दिल का मनुष्य नहीं देखा कि नख से शिख तक अपार पीड़ा हो यह तनक भी आह तक न करे। उस उनके कण्ठ में कफ की बड़ी प्रबलता थी जिसके लिये उन्होंने कई उपाय .. परन्तु किसी से कुछ भी न हुआ इधर ११ बजे से श्वास बढ़ने लगा शौच की इच्छा प्रकट की तब चार महाशयों ने उठाकर चौकी पर .. दिया तब वह शौच गये आप ही पानी लिया और हाथ धो दातौन की आज्ञानुसार पलंग पर बिठाया गया किंचित् बैठकर लेट गये श्वास वेग

ल रहा था परन्तु वह उस को रोक ईश्वर का ध्यान कर रहे थे किसी ने उनसे पूंछा कि अब आप की तबियत कैसी है कहने लगे एक माह के पश्चात् आज का दिन आराम का है।

इस समय लाला जीवनदासजी ने "जो स्वामीजी के देखने के लिये लाहौर से आये थे" सन्मुख होकर पूंछा कि महाराज इस समय आप कहां हैं उत्तर दिया कि ईश्वरेच्छा में। उसी दिन अजमेर के सभासदों ने डाक्टर मुकुन्दलालजी आगरे वाले को तार दिया उन्हों ने उत्तर दिया कि हम आते हैं। चार बजे के समीप स्वामी जी ने आत्मानन्द "जो साथ में रहते थे" और स्वामी गोपालगिरि को बुलाया जो स्वामी जी से मिलने के लिये काशी से आये थे कहा कि अब तुम क्या चाहते हो उनके नेत्रों में जलभर आया उन्होंने अपना २ सिर नमस्कारार्थ झुकाया स्वामीजी ने उनके सिरपर हाथ रखकर कहा कि आनन्दित रहो फिर उन्हों ने कहा हम यही चाहते हैं आप का शरीर अच्छा होजावे इस पर उत्तर दिया कि शरीर का क्या अच्छा होगा जो अच्छा है वह तो सदा ही अच्छा बना रहता है शरीर का तो बनना बिगड़नाही धर्म है इस का तुम लोग कुछ शोक मत करो और आनन्द में रहो जब यह व्यवस्था देखी तो अन्य महाशय-गण जो अलीगढ़, मेरठ, लाहौर, फ़र्रुखाबाद, कानपुर इत्यादि से आये थे सब के सब आकर स्वामी जी के सन्मुख खड़े होगये जिन को श्रीमहाराज ने जिस कृपा दृष्टि से देखा उसका वर्णन नहीं करसक्ते वह समय वही था मानों स्वामी जी इन सब से कहते थे कि तुम क्यों उदास हो रहे हो धैर्य को धारण करो उस समय स्वामी जी ने दो दुशाले और २००) रुपये मंगाये जब लाये गये तब कहा कि आधा २ भीमसेन और आत्मानन्द को देदो निदान तुरन्त दियागया था। परन्तु उन्हों ने लौटा दिए उस समय महर्षि स्वामी दयानन्द के मुखड़े पर किसी प्रकार की घबराहट और शोक के चिन्ह दृष्टि नहीं आते थे वरन् वह बड़ी शूर वीरता के साथ प्राचीन ऋषियों की भांति उस कठिन दुःख को सहन कर रहे थे उस समय हम सब लोगों ने श्रीमान् से पूछा कि अब आप के चित्त की क्या दशा है उस समय बड़ी गम्भीरता के साथ कहा कि अच्छा है परन्तु तेज और अंधकार का अभाव है जिस को हम लोग उस समय कुछ न समझे साढ़े पांच बजे पर स्वामी जी ने कहा कि जो आर्य्य महाशय बाहर से आये हुए हैं पीछे खड़े कर दो तुरन्त ऐसा ही किया गया इसके उपरान्त उन्हों ने कोठी के सब द्वार खुलवा दिए उस समय पर पण्डा मोहनलाल विष्णुलाल भी श्री १०८ महाराना उदयपुर की आज्ञानुसार आगये फिर स्वामी जी ने पूछा कि कौनसा पक्ष क्या तिथि और क्या वार है किसी ने उत्तर दिया कि कृष्ण पक्ष का अन्त और शुक्ल पक्ष का आदि अमावस मंगलवार है यह सुन कोठी की छत और दीवारों पर दृष्टि की और द्वारों में से बाहर की ओर देखा और पहिले पहल वेद मन्त्र पढ़ संस्कृत में ईश्वर की उपासना की फिर भाषा

में ईश्वर के गुणों का कथन कर बड़ी प्रसन्नता और हर्ष पूर्वक गायत्री मन्त्र का पाठ करने लगे तत्पश्चात् प्रफुल्लित चित्त सहित कुछ देर कत समाधियुक्त रह नेत्र खोल यों कहने लगे कि हे दयामय ! हे सर्वशक्तिमान ईश्वर ! तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो ! आहा ! तैने अच्छी लीला की ! बस इतना कह स्वामी जी महाराज सीध लेटे थे फिर स्वयम् करवट ले एक प्रकार से श्वास रोक कर एकही बार निकाल दिया। **अर्थात् कार्तिक बदी अमावस्या मंगलवार सन्ध्या के ६ बजे दिवाली को दिन, विक्रमी सम्वत् १९४० तदनुसार ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० को स्वामी जी का भौतिक शरीर पंचतत्व को प्राप्त होगया।** जिस के समाचार रात्रि में भारत वर्ष के सम्पूर्ण नगरों में फैलगये।

प्रातःकाल होते ही समस्त आर्य्यवर्त शोकसागर में डूबगया। और इसी रात्रि में पण्डित सुन्दरलाल जी भी अजमेर पहुंचगये ज्यों त्योंकर अजमेर वालों की वह रात्रि व्यतीत हुई और प्रातः होते ही विमान रचने का प्रबन्ध कियागया इस के पश्चात् स्वामी जी के मृतक शरीर को अच्छे प्रकार स्नान कराकर चंदनादि सुगन्धित द्रव्यों का लेपन कर वस्त्र पहिनाय विमान में अच्छे प्रकार पधार दिया जो रेशमी वस्त्रादि से अच्छे प्रकार सजा सजाया गयाथा। उस समय स्वामी जी के दिव्य मुखड़े के अवलोकन करने के लिये सहस्त्रों मनुष्य इकट्ठे हुए जो उन के प्रकाशमय मुखड़े को देखकर शोक में डूब व्याकुल होरहे थे। प्रथम विमान के समीप सुयोग्य मंडली ने खड़े होकर उच्च स्वर से वेद मंत्रों का पाठ किया फिर १० बजे बड़े गाजे बाजे के साथ विमान को उठाया उस समय सब से आगे स्वामी जी के शिष्य रामानन्द ब्रह्मचारी, देवदत्त जी, गोपालगिरि और पंडित वृद्धिचन्द इत्यादि पंडित जन वेद मंत्रोंका पाठ करते जाते थे उसके चारोंओर आर्य्य पुरुषोंके यूथके यूथ उमड़ २ कर चले जाते थे जिन काप्रबंध रायबहादुर पंडित भागराम जी जज अजमेर व रायबहादुर पंडितसुन्दरलाल जी सुपरिन्टेन्डेंट वर्कशाप अलीगढ़ आदि बड़े २प्रतिष्ठित और भद्र पुरुष करते जाते थे इस प्रकार से आगरा दर्वाजे से हो बड़ा बाजार चौक धनमंडी और दरगाह बाजार इत्यादि स्थान पर ठहरते वेदध्वनि करते मलूसर सरोवर के श्मसान में विमान को आ उतारा जो नगर से दक्षिण भाग में एक पहाड़ी के नीचे था। जब सब मनुष्य बैठगये और संस्कार विधि में लिखे अनुसार वेदी बनने का आरम्भ हो गया तब उस महान दुःख के समय श्रीयुत पण्डित भागराम जी जज ने शोक समुद्र में डूबे हुए पुरुषों को धैर्य्य बंधाने के अर्थ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की विद्या, परोपकार, देश हितैषिता आदि अपूर्व अद्भुत गुणों के विषय में एक परमोत्तम

व्याख्यान सुनाकर सब एकत्रित मनुष्यों को भित्त लिखित चित्र सा करदिया। वास्तव में उपरोक्त परिडत जी का यह उद्योग, साहस और धैर्य सराहनीय था क्यों कि ऐसे कठिन समय में जब कि बात कहना ही दुस्तर हो फिर व्याख्यान देना कैसा! उस समय पाषाण हृदय भी दाड़िम वत् विदीर्ण हो फूट २ कर रो रहे थे इस के अनन्तर परिडत सुन्दरलाल जी ने अपना हृदय कठोर कर के कुछ व्याख्यान देना चाहा और आरम्भ भी किया परन्तु कहते नहीं बना। तब लाचार हो कर चुप बैठ गए। इतने में वेदी बन गई समस्त पुरुष उस के आस पास घिर आए फिर सब जनों ने मिलकर स्वामी जी के स्वीकार पत्र अनुसार २ मन चन्दन १० मन आम्रादि काष्ठ ४ मन घी ५ सेर कपूर, ढाई सेर बालछड़, आध सेर केशर दो तोले कस्तूरी इत्यादि संचित किये पदार्थ लगाकर तय्यार की हुई चिता को रामानन्द द्वारा प्रज्वलित कराया संस्कार विधि लिखित वैदिक रीत से अन्त्येष्टि की। उस समय चिता अन्य सुगन्धि से सम्पूर्ण प्रदेश और समुपस्थितों का मस्तक सुवासित हो गया था। इस प्रकार इस विधान को समाप्त कर के चिता पर पहरा चौकी बिठलाकर सब लोग सरोवर पर स्नानादि कर अति शोकातुर हो सायंकाल के समय सब सभासद् अपने २ स्थानों को पधारे। पश्चात् स्वामी जी का हिसाब किताब वस्त्र पुस्तक जितना कुछ वेदभाष्य किया था जो कि छपने के लिए तैय्यार था श्रीयुत परिडत मोहनलाल विष्णुदास जी को एक सूचीपत्र के अनुसार जो स्वामी जी की पुस्तकों में मिला था सम्हलवादिया और जो सभासद उस समय उपस्थित थे उन्हों ने उस सूचीपत्र पर अपने २ हस्ताक्षर कर दिये। महाराजा उदयपुराधीश स्वामी जी से अत्यन्त प्रेम रखते थे इस कारण उन्हों ने परिडत मोहनलाल विष्णुलाल से कहा था कि यदि स्वामी जी का शरीर छूटजावे और मृतक शरीर को किसी प्रकार चार पांच दिवस रक्खाजावे तो अति उत्तम हो क्योंकि इस समय हम और अन्यत्र महान पुरुषों को स्वामी जी के अंतिम दर्शन होजावें तो अहो भाग्य! परन्तु समाज ने परिडत जी के कथन को इस भय से स्वीकार नहीं किया कि यदि स्वामी जी का मृतक शरीर इतनी अवधि के लिये रक्खा जावेगा तो डाक्टर साहिब पेट चीर मल मूत्र पृथक् करेंगे इस लिये उनके शरीर का उसीदिन दाह करा दिया।

———:*:o:*:———

स्वामी जी की मृत्यु पर समाचारपत्रों और अन्य देशहितैषी विद्वानों व रिफार्मरों

की सम्मति का संक्षेप।

स्वामी जी की मृत्यु के समाचार अति शीघ्र ही सारे भारतखण्ड में फैल

गये जिन को मनुष्यगण सुन शोक समुद्र में डूब गए। प्रत्येक समाज, आर्य्य पुरुष व अन्य रिफ़ार्मरों ने तार द्वारा आर्य्यसमाज अजमेर को अपना शोक प्रकाशित किया। उस समय तार और पत्रों की इतनी बहुतायत थी कि तारबाबू लोग घबड़ा गये। और इसी विषय में देश हितैषी पत्र अजमेर लिखता है कि स्वामी जी की मृत्यु पर शोक प्रकाशक पत्र और तार इतने आये कि यदि मैं इन्हीं को मुद्रित करता रहूं तो मेरे समाचार पत्र के लिये एक साल से भी अधिक होंगे। इसके अतिरिक्त अनेकान् स्थानों पर शोक प्रकाशित करने के लिये सभायें हुईं। वक्तृता द्वारा बड़े २ विद्वानों ने शोक प्रकाशित किये महाराजाधिराज उदयपुर ने अपने राज्य में एक सभा की और आपने निम्न लिखित पद्य पढ़ा।

महद्राजसभा उदयपुर।

दो—मन चव ग्रह शीश (१६४०) दीप दिन दयानन्दसहसत्व।
वय उनसठ वत्सर विच, भयो तन पञ्चत्व॥

मन हरण छन्द—जाके जी है जोर ते प्रपञ्च फिलासिन को अस्त सो समस्त आर्य्य मण्डल ते मान्यों मैं। वेद के विरुद्धी बुद्धि सत्य के निरुद्धी सहानन्द भद्र आदित पै सिंह मनुमान्यों मैं। ज्ञाता षट् शास्त्रन को वेद को प्रणेता जेता आर्य्यविद्या अर्क गत अस्ताचल जान्यों मैं। स्वामी दयानन्द जूके विष्णु पद प्राप्त हु ते पारिजात को सो आज पतन प्रमान्यों मैं।

योग को अगर, गिरधार दृढ़ आसन को, शिक्षक महीपन को, शिविक्षि धाइगो। कुटिल कुराहिन को, ग्राम मत चाहिन को, हाय पशु हायन को, इष्ट विन आइगो। कहे जय करण चार वर्ण के विवरण को, धर्म निज दयानन्द परम गति पाइगो। तीन वेद शासन को, सुमति प्रकाशन को, आज सत्य भाषण को वासन विलाइगो।

और मीर आरस अनारस मिलान भए, पूरन परीक्षा पार क्यों न भिन्न करतो। विधि से विवेकी बुध संशय विद्या के बीच धारधन्य उत्तर हियमें सार भरतो॥ चारवाक हिंसक बचाय बुध २ जुगल में दयानन्द द्वन्द्व फन्द कबहुँ न परतो। रहते धरे न मोती मन्त्र वेद वारिध के राजहंस मण्डलन तरतो॥

(कविदास श्यामदास जी)

सार षट् शास्त्रनको निगम आधार, नित्य पार परलोक हर्ष असार जग करि गयो। पिशुनन को पाही, और कुटिल कुराही द्राही सत्यकी सदाही साही भाव नेह भरि गयो कहे कृष्ण दयानंद सुमति सुधामी नामी, नामचामी क्रूर कामिनको कालरूप टरि गयो हाय हित आर्यनको बहिके प्रवाह बीच आज वेदवारिधिको सेतु सो बिखरि गयो।

(२) पश्चिमोत्तर देशीय समाचार पत्रों की सम्मतियां।

अवध अखबार, लखनऊ।

स्वामी दयानंद भारत का एक बड़ा भारी विद्वान था इसके सुधार का कार्य सदा स्मरण रहेगा (उर्दू दैनिक ८ नवम्बर सन् ८३)

भारत बन्धु अलीगढ़।

हम को यह सुनकर बड़ा पश्चाताप है कि श्रीमान् दयानन्द जी महाराज वैकुन्ठ को पधारे क्योंकि ऐसे विद्वानों के इस समय भूतल पर रहने से भारतखंड का भाग्योदय दिन पर दिन बढ़ता चला जाता था अब कोई ऐसा प्रबल साहसी सभा चतुर-वायदूक सर्व शास्त्र कुशल इस भारत वर्ष में दृष्टि नहीं आता······ भारत-भूमि का भूषण स्वामी जी ही को समझना चाहिये।

हिन्दी प्रदीप, प्रयाग।

भारत के अभाग्य ही का कारण है कि पूर्ण देश हितैषी शीघ्र परलोक गमन कर गये जिनके इस समय यात्रा करने से केवल यही मूर्ख ब्राह्मण और कोरे पण्डित भले ही प्रसन्न हुए हों जो उनकी गुप्त नीति को नहीं जानते। आर्य्य-समाज की बांह टूट गई। सरस्वती का भण्डार लुट गया। यह इन्हीं का काम था कि धर्म्मपुस्तक वेद का मनुष्य मात्र के लिये उपदेश किया। आज वह वेद का सद्ग्रंथ गुप्त होगया। हा संसार पर सच्ची दया करनेवाले **स्वामी-दयानन्द** आज कहां चले गये। इस में कुछ संदेह नहीं कि इस अभागे भारत की भलाई और कल्याण के अर्थ इन्होंने अपने जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोया। वह निर्लेप, निःस्वार्थ और शिक्षाप्रदायक थे, यदि आप का सा महान् पुरुष युरुप देश में उत्पन्न होता तो वह देश का देश आपका सहायक और सहकारी बन आपके कर्तव्य कर्म को ऐसा चमकाता कि एक दयानंदरूपी मूल से सहस्रों दयानंद रूपी शाखा प्रशाखा प्रकट हो जातीं। आप इस उजाड़ बनको बिना सनाथ किये क्यों शीघ्र चले गये। सच तो यह है कि आप सरीखे देश हितैषी महात्माओं का जीवन बहुत काल तक नहीं होता।

इसी प्रकार हिंदोस्तानी, नसीमहिंद, दबदबाकैसरी, क्षत्री हितकार, अलीगढ़ गज़ट, बुद्धि कैशरी आदि ने भी लिखा है।

संपादक बनारस प्रेस कवि केदार शर्मा।

सोरठा—हाय! हाय!! हा!!! काल, तोसे बस कछुना चलै।
वड़ विक्रम दसभाल, ताहू कहँ तुम भक्षिगो॥ १॥

महा धनुर्धर धीर, अश्व कला महँ कोउन मे।
अस अर्जुन वर बीर, ताहू कहँ तुम भक्षिगो ॥ २ ॥
करण द्रोण कुरुराज, भोज परीक्षित विक्रम।
रघु नृप पाण्डु द्रराज, ताहू कहँ तुम भक्षिगो ॥ ३ ॥
ऐसे समय मँझार, युगल वीर प्रगटत भये।
सर जँग सर सालार, ताहू कहँ तुम भक्षिगो ॥ ४ ॥
दाया करै निधान, दायानन्द सरस्वती।
वक्ता वेद प्रधान, ताहू कहँ तुम भक्षिगो ॥ ५ ॥

दोहा—दायानन्द सरस्वती, गुर्जर कुल अवतंस।
अबही थोड़ी वय मैं, क्यों तन कियो विध्वंस ॥ १ ॥
कै प्रतिमा पूजन हिते, सुर पुर होत विचार।
ता खंडन करवे हिते, गये शक्र दरबार ॥ २ ॥
कै नर पुर सब जीतकै, सुर पुर जीतन हेत।
कैंचुलि इव तनु त्यागि कै, भागेउ कृपा निकेत ॥ ३ ॥
कै कुछ मन शंका भई, वेद अर्थ के माहिं।
सो पूछन हित चलि गये, सत्वर ब्रह्मा पाहिं ॥ ४ ॥
दायानन्द सरस्वती, 'देशोन्नति हित आप।
जितो परिश्रम करि गये, तितो तुम्हारो ताप ॥ ५ ॥
अबतो पण्डित अस अहंहि, लिखत व्यवस्था झूंठ।
धर्म धर्म्म गुनै नहीं, गथ चाहत हैं मूंड ॥ ६ ॥
तुमतौ चन्दाकरि किते, विद्यालय थित कीन्ह।
सज्जनसिंह महेन्द्र कहुँ, सभाध्यक्ष करि दीन्ह ॥ ७ ॥
गुण ग्राहक उपदेश वक्र, जस कीन्हेउ सन्मान।
खान पान द्रव्यादि ते, कोउ नृप नाहिं जहान ॥ ८ ॥
स्वामी अबलों थित रहै, भारत भूमि मँझार।
सिंह सरिस गर्जत रहे, शंकित शशक अपार ॥ ९ ॥
मूरख मुख भंजन किये, जग पक्का वक्र नाम।
कितने सम्मुख भे नहीं, समुझि शारदा धाम ॥ १० ॥
सज्जन मन रंजन करत, भंजन मत पाखण्ड।
दिन दिन कीरत गाइहैं, भल जन भारत खण्ड ॥ ११ ॥

कवित्त।

चारिहू दिशान नगरान महँ जाय २, पण्डितन हेरी वाद करि के प्रचारे हैं।
पंडित विवाद मांहि होगये परास्त जेते, तेते मन सोहैं करि सोहँ न निहारे हैं॥
बगरयौ अपार असं सारे नगरान माहिं, विजय वैजन्ती फहरात हिन्द भारे हैं।

विद्या चौदह निधानधका महान बेद, स्वामी दयानंद सम नाहिं होनेवारे हैं ॥ १ ॥

श्रीमान् विद्वद्वर पं० देवीदत्त जी मिश्र रचित ।

(स्थान रावतपुर जि० उन्नाव)

ओ३म् ।

यो वेद भाष्य मतुलं कुमहीधरादि । पूर्वोक्त भाष्य दलनं श्रुति भूमिकायाम् ॥ शाक्तादि दुर्मत सुखण्डन मुद्विघोष्य । प्रापत्स निर्वृतिपदं प्रविमुच्य देहम् ॥ १ ॥

अर्थ—जिन स्वामी दयानन्द ने अपनी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में शाक्तादि मतों और महीधरादि के भाष्य का खण्डन कर श्रेष्ठ वेदों का भाष्य बनाया हा ! आज वह श्री स्वामी दयानन्द जी भौतिक शरीर को छोड़ नित्य सुख पद को प्राप्त हुये ॥ १ ॥

यो मज्जमानमुदधौ विपदामनेकं । मूढ़ प्रवर्तित निरर्थमतोद्भवानाम् ॥ अभ्युज्ज हारदयया किल भारतार्घ्यं । प्रापत्स निर्वृतिपदं प्रविमुच्य देहम् ॥ २ ॥

अर्थ—अनेक मूढ़ों के प्रवृत्त किये हुए मतों से उत्पन्न विपत्ति रूपी समुद्र में डूबे हुए भारत को दया से उभारा हा ! आज वह श्री स्वामी दयानन्द जी भौतिक शरीर को छोड़ नित्य सुख पद को प्राप्त हुए ॥ २ ॥

यः ख्रीष्टया वन पुराण मतानुमामि । दुःप्रोक्त विश्वसित पञ्चजनान्समीक्ष्य ॥ तत्खण्डनेन निगमेजन यत्प्रतीतिम् । प्रापत्सनिर्वृतिपदं प्रविमुच्य देहम् ॥ ३ ॥

अर्थ—जिन स्वामी दयानन्द ने सांसारिक मनुष्यों को ईसाई मुसल्मान और पौराणिकादि निंदित मतों में विश्वासी देख उसका खण्डन कर उनकी प्रीति उनसे हटा सत् वेदों में प्रीति कराई हा ! आज वह भौतिक शरीर को छोड़ नित्य सुख पद को प्राप्त हुए ॥ ३ ॥

यो दर्शयत्स्फुटतरं निगमेषुसत्यम् । जीवत्पितृष्वनुविधिं सुतदत्तकादेः ॥ यज्ञेषुनैव पशुहिंसनमानुपूर्व्यात् । प्रापत्सनिर्वृति पदं प्रविमुच्य देहम् ॥ ४ ॥

अर्थ-जिसने वेदों में "पृश्रादि का दिया हुआ जलादि जीवित पिताओं को मिलता है अर्थात् जीते हुए माता पिता की सेवा से ही सुख मिलता है मरों को जलादि देने से नहीं और यज्ञादि में पशु हिंसा करना पाप है" यह स्पष्ट दिखलाया। हा आज वह श्री-स्वामी जी भौतिक शरीर को छोड़ नित्य सुख पद को प्राप्त हुए॥ ४॥

योब्रह्मचर्य्य करणं प्रथमाश्रमंहि। प्राधान्य तोऽस्युप दिशन्मनुजेभ्य एषः॥ श्रेयस्करंसमगदत्परमाश्रमश्च। प्रापत्स निर्वृतिपदं प्रविमुच्य देहम्॥ ५॥

अर्थ—जिन्हों ने यह बतलाया कि प्रथम आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य के धारण करने से ही सब आश्रमों में सुख की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं। हा! वह श्री स्वामी दयानन्द भौतिक शरीर को छोड़ नित्य सुख पद को प्राप्त हुए॥५॥

संसार दुःख दलनाय समाजमार्गः। संस्थापितः श्रुति पथेन समुन्नतेन॥ येनोक्ति युक्तिभिरसत्पथ खण्डनेन। प्रापत्स निर्वृति पदं प्रविमुच्य देहम्॥ ६॥

अर्थ- जिन्हों ने अच्छे प्रकार उन्नति युक्ति वेद मार्ग तथा अपनी उक्ति और युक्तियों से असत्मार्ग के खंडन से संसार का दुःख दूर होने के लिये समाज मार्ग का संस्थापन कराया। हा! आज वह श्रीस्वामी जी भौतिक शरीर को छोड़ नित्य सुख पद को प्राप्त हुए॥ ६॥

किंदुष्कृतं कृतमति प्रसितं यतोत्र। आप्तासि दुर्गतितरा वसुधे तथापि॥ दुर्दैव मेव तवदैव विकाशितं यत्। प्रापत्स निर्वृति पदं प्रविमुच्य देहम्॥ ७॥

अर्थ-हे भारतभूमि! तूने कौन बड़ा दुष्कर्म किया कि जिससे इस संसार में अत्यन्त दुर्गति को प्राप्त है तथापि तेरा विधाता ने दुर्भाग्य ही प्रकट किया कि जो आज श्रीस्वामी भौतिक शरीर को छोड़ नित्य सुख पद को प्राप्त हुए। ७।

हा! लोक शोक तमसावृति भारतीया। नुद्धारयिष्यति कथं तमसः परेशः। वेदोपदेश तरणिः शरणं नृणांयः प्रापत्स निर्वृतिपदं प्रविमुच्य देहम्॥ ८॥

अर्थ-हा! लोक के शोक रूपी अन्धकार से आच्छादित (ढकेहुए) भारत

निवासियों का इस अन्धकार से परेश परमात्मा कैसे उद्धार करेगा क्योंकि जो मनुष्य रक्षक वेदोपदेशक रूपी सूर्य्य श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती आज अपने भौतिक शरीर को छोड़ नित्य सुख पद को प्राप्त हुए ॥ ८ ॥

बंगाल देशीय समाचार पत्रों की संक्षेप सम्मतियां

(बंगाली, कलकत्ता)

स्वामी दयानंद सरस्वती साधरण कोटि के मनुष्य न थे। बहुधा लोगों ने उन के सतोपदेश और उन के वेदार्थ का सन्मान नहीं किया परन्तु धर्मोपदेश करने में उनकी शक्ति और उत्साह आदि अद्वितीय था। क्योंकि वह पूर्ण योगी थे और जैसा सर्वोत्तम ज्ञान उन में आया वैसा कदाचित् ही किसी अन्य में देखने मे आवें। उन की मृत्यु से केवल समाज ही को नहीं वरन् संपूर्ण भारत खंडको हानि पहुंची है।

हिन्दू पेट्रियट, कलकत्ता।

हम स्वामी जी के परलोक को सुन कर अत्यंत शोक में हैं वह बड़े वेदांती थे उन की संस्कृत भाषण की मिठाई और सुधाई चित्त को एक आनन्द देनेवाली थी।

इण्डियन क्रानिकल, कलकत्ता।

आर्य्य धर्मोपदेशक में जिन २ दिव्यगुणों की आवश्यकता है वह सब गुण स्वामी दयानन्द में विद्यमान थे उन का मुख्य हेतु हिन्दू धर्म में आधुनिक मतों को निकाल शुद्ध वैदिक धर्म फैलाने का था।

इण्डियन मैसेंजर, कलकत्ता।

अब तक कोई ऐसा मनुष्य उत्पन्न नहीं हुआ जो इस देश की मूर्तिपूजा व ब्राह्मणपूजा मर्य्यादा से इस से अधिक घृणा करता हो जैसी स्वामी दयानन्द करते थे। जिस ने बड़े धैर्य्य और साहस से विपक्षता की हो .... परमात्मा के उस सच्चे भक्त ने............अपनी अन्तिम प्रार्थना में, अपने नोवल मिशन को उत्पत्ति कर्त्ता की इच्छा पर छोड़दिया। ईश्वर करे हमारे समस्त कार्य्यों में उस की इस प्रार्थना की स्पिरट आजावे।

बंगाल पबलिक ओपीनियन कलकत्ता।

(८ नवम्बर सन् १८८३)

दयानन्द हमारे देश के भूषण और हमारे मान दाता थे।

लिबरल, कलकत्ता (११ नवम्बर ८३)

स्वामी दयानन्द का मन्तव्य हमारे प्रशंसा करने योग्य है।

इण्डियन एम्पायर, कलकत्ता।

आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध प्रचारक श्रीमान् दयानन्द जी के लोकान्तर गमन करजानेकी दारुण दुःखदाई वार्ता लिखते हुए हमको शोक और पश्चाताप होता है उनकी अगाध विद्वता खंडन मंडनादि अनुपम कोटिक्रम और परम प्रशंसनीय स्वातन्त्र्य प्रीति आदि अपूर्व गुण कर्मों किसी को भूलने वाले नहीं।

इङ्गलिश करानीकल, बांकीपुर।

स्वामी दयानंद संस्कृत के बड़े विद्वान् थे जो आर्यन् फिलासफी की हर एक शाख से पूर्ण भिज्ञ थे, उत्तम वक्ता और आचार व्यवहार में मिलनसार, कहने का प्रयोजन यह है कि उन में आचार्य के समस्त गुण विद्यमान थे।

मन्द्रास समाचार पत्रों की संक्षेप सम्मतियां

हिन्दु आब्जरवर, मद्रास।

संस्कृत के पूर्ण विद्वान् स्वामी दयानंद सरस्वती अपने सच्चे उत्साह से कार्य करनेवाले थे, उनका परलोक होने से भारतवर्ष को बड़ा ही धक्का लगा क्या यह थोड़ा शोक है?

थैन्कर मद्रास और अखबार हिन्दू ने भी इसी प्रकार नोट किया है।

५—बंबई

दीनबन्धु, बम्बई (४ नवम्बर)

स्वामी दयानन्द बड़े विद्वान् और विस्तृत धार्मिक ज्ञानवाले पुरुष थे।

गुजरात मित्र, सूरत।

हा! परम प्राचीन रीति की भांति धर्म का सुधार करने वालों में से आज एक भारत खंड का अनुपम चमकीला मुकटमणि खो गया। परम पवित्र वेदों का समाचीन विचार युक्त सत्यमान अर्थ का दिखलाने वाला स्वामी दयानन्द रूपी भास्कर का अस्त होगया। हा, इतिहास में निर्मल कीर्ति प्रकाश कराने वाले, पण्डित वर का आज शरीर समाप्त हो गया। इन में उपदेश करने की और अपने निश्चय किये हुए की प्रसन्नता पूर्वक बात की बात में अन्य के दिल में प्रवेश कर देने की पूर्ण शक्ति थी, इन के चित्त में स्वदेश को फिर से उन्नति के शिखर पर धर देने की प्रबल उत्कंठा आदि सद्गुण थे वह अब कहीं दृष्टिगोचर नहीं होने के, हा शोक!

सत्यवक्ता [अर्थात् रास्त गुफ़ार] बम्बई

स्वामी जी ने जिस परिश्रम से प्रचार किया इतना परिश्रम इस के पूर्व किसी रिफार्मर ने नहीं किया और जितना कार्य उन्हों ने किया वह सत्यता से पबलिक को लाभ पहुंचाने की नियत से था।

जामे जमशेद, बम्बई।

स्वामी दयानन्द उच्च वैदिक विद्वान् तथा भारत के बड़े हितैषी थे।

इस के उपरान्त गुजराती बम्बई सुबोध पत्रिका, सूर्य प्रकाश, सत्य मार्ग दीपिका बम्बई, केसरी पूना ने भी शोक प्रकाशित किये।

३—पञ्जाबदेशी समाचारपत्रों की संक्षेप सम्मतियां

ट्रिब्यून, लाहौर।

हा! हम को शोक सागर में डुबोकर आप परम धाम सिधारे। आप के उपदेशों का प्रभाव समस्त सम्प्रदायों पर पड़ा, जिस के कारण प्रत्येक सुधार में लग रहा है उन की बुद्धि अत्यन्त विशाल थी वह बड़े सुयोग्य पुरुष थे। इसी कारण से उन्हों ने समस्त मतों को उखाड़ डाला जिनको उनके आचार्यों ने शास्त्रों में मूल बना कर चलाया था। श्रीमान् का संसार में नाम रहे इस कारण उनके भक्त जनों ने लाहौर में एक दयानन्द ऐंगलो वैदिक कालिज स्थापित करने का विचार किया है।

देशोपकारक, लाहौर।

ऐ आर्यावर्त्त! तेरी मन्द भाग्यता पर मुझ को रोना आता है। ऐ आर्यावर्त्त! तेरी अनाथता पर मेरा मन कुढ़ता है। ऐ आर्यावर्त्त! तेरी दीनता पर मुझ को लाज आती है। ऐ आर्यावर्त्त! तेरी असामिग्रता पर मेरा मन कुम्हलाया जाता है, कैसी शीघ्रता से तेरे प्यार के स्रोत को बन्द कर दिया गया। ऐ ईश्वर! क्या यह आप को स्वीकार न था कि हम दूध पिवित बच्चे पाले जायें। ऐ ईश्वर! क्या यह आप को स्वीकार न था कि हम इन अनाप सनाप फन्दों से निकलें। हे परमेश्वर! क्या आप को यह अङ्गीकार न था कि हम अनुचित अकारण अनावश्यक और निरलाभ बन्धनों से मुक्ति पावें। हे ईश्वर! क्या आप को यह स्वीकार न था कि हम उन निरर्थक व्यवहारों के फन्दों से छूटें। हे ईश्वर! तुम को यह स्वीकार न था कि हम आपस के अन-मेल को दूर करें। हे परमेश्वर! क्या आप को यह अंगीकार न था कि हम मनुष्य जाति को अपना भाई जानकर उन से प्रेम करना सीखें। हे परमेश्वर! आप को क्या यह स्वीकार न था कि हम आप के ज्ञान की प्राप्ति करें। हे ईश्वर! क्या आप को यह स्वीकार न था कि हम सच्चे धर्म को फिर सीखें। हे ईश्वर! क्या आप को यह अङ्गीकार न था कि हम अपना खोया हुआ

नाम फिर प्राप्त करें। हे ईश्वर! क्या यह आप को स्वीकार न था कि हम इस निर्मल धर्म्म को सीख कर आप के अपूर्व पदार्थों के आनन्द उठावें जो आप ने अपने सेवकों के लिये विशेष कर बनाये हैं, नहीं नहीं यह सब कुछ तेरी इच्छा के अनुसार और तेरे मनोरथ के अनुसार हो रहा है। फिर क्यों तूने हम को अचानक इस प्रकार का दीन कर दिया, अर्थात् हमारे सच्चे सहायक और उपदेशक **स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराजको** जो हमें उपरोक्त प्रकार से शिक्षा देते थे तीस अक्टूबर सन् १८८३ ई० के ६ बजे सायंकाल को बुला लिया, दिवाली की रात्रि मानों कृत्रिम दीपकों से प्रकाशित थी, परन्तु यथार्थ सूर्य्य संसार का प्रकाशक अस्त हुआ, हम बिलकुल अज्ञान थे वह हमें प्रत्येक वस्तु की पहचान कराते थे। हम अशक्तिता के कारण उठ नहीं सकते थे परन्तु वह हम को उठाते थे। हम विद्या के न जानने के कारण बात नहीं कर सकते थे वे हम को बोलना सिखाते और स्थिरता पर लाते थे। हम अनुचित रीतों की बेड़ियां पैरों में और पक्षपात की हथकड़ियां हाथों में डाले हुये थे। वह उन से हम को निकालते थे हम अपने भाइयों से घृणा करते थे वह हम को मिलाप सिखलाते थे हम अपने नेत्रों को बन्द किये मन को रोके हुए थे वह उन को हटाते थे। हे परमेश्वर! हम आप से बहुत ही दूर हो गये थे वह हम को आप से मिलाना चाहते थे। परन्तु हे ईश्वर! तूही जाने तेरे मन में क्या आई कि तैने उनको हम से शीघ्र पृथक् कर दिया तेरी बातें तूही जानें अब भी दया कर।

टायम्स, पञ्जाब, रावलपिंडी।

१० नवम्बर के पत्र में यह लेख प्रकाशित हुआ कि "स्वामी दयानन्द" वास्तव में एक सच्चा और पूरा पैट्रियट (हितैषी) था और उस का इतनाही काम देश को कृतज्ञ होने के लिये बहुत है। इतनी बड़ी विद्वता और विवेक शक्ति जो कि शङ्कराचार्य के अनन्तर दो चार महात्माओं को ही प्राप्त हुई होगी। स्वामी जी में इस प्रकार की हिम्मत बुद्धिमत्ता और सहन शीलता के एकत्रित गुण थे कि जो ऐसे रहे सहे समय में अतीव दुर्लभ हैं। हमारी उस के मन्तव्यों और शिक्षा से चाहे कितनी विमुखता हो परन्तु फिर भी हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि स्वामी दयानन्द संसार के अतीवोच्च महा पुरुषों (One of the greatest man) में से था और हिन्दुस्तानियों को उचित है कि उस की मृत्यु पर अश्रुपात करें।

इसी प्रकार।

कोहनूर लाहौर, विक्टोरिया पेपर स्यालकोट, आफताब पञ्जाब,

अखबार और ज्ञान प्रदीपिनी पत्रिका लाहौर आदि २ में लेख प्रकाशित हुए थे।

श्री १०८ स्वामी जी के परलोक गमन समय के

श्लोक रामदास छबीलदास वर्मा कैम्ब्रज।

(यूरोप) लिखित ।

अहो नितांतर हृदयं विदूयते, निशम्य लोकांतरसुन्नताशयम्।
संप्रस्थितं वेद विदामनुत्तमं, श्रीमद्दयानंदसरस्वती मुनिम्॥१॥

भाषा-जिसका आशय ऊंचा था जो वेद जानने वालों में श्रेष्ठ थे ऐसे श्रीमान् दयानन्द सरस्वती मुनि का परलोक गमन सुन कर हमारा हृदय बहुत खिन्न हो रहा है यह शोक है॥ १॥

दीपपंक्ति चितभूतले सतिव्योम्नि तारक गणैः समुज्ज्वले।
शोकजाल तिमिरा कुलेतुमत्सुत् ससर्जसशरीर बंधनम् ॥२॥

भाषा-जिस समय भूतल दीपक की पंक्तियों से व्याप्त था और आकाश तारागणों से दीप्यमान था परन्तु शोक जाल रूप अंधेरे से घिरा हुआ था उस ने अपने देह बंधन को छोड़ा ॥ २ ॥

निःशेषपीता खिलशास्त्र सारः पूतान्तरात्मा निगमाग्नि जालैः।
ज्ञानोत्तमैः काञ्चनलिप्तनेत्रो ब्रह्मैक निध्यान विशुद्धचेतः॥३॥

भाषा-जिसने समस्त शास्त्रों के तत्व को पिया था और वेद रूपी अग्नि से जिसका अन्तरात्मा शुद्ध था और उत्तम ज्ञान रूपी अंजन से जिसका हृदय नेत्र लिप्त था जो ब्रह्म के असाधारण ध्यान से विशुद्ध चित्त था॥ ३॥

स्वकीय देशोन्नति साजलग्नः स्वप्नेऽपिन प्राप्त निजार्थबुद्धिः।
त्यक्त्वा समस्तंतुकथंनुकार्यंगन्तुंद्यु लोकंसमनश्चकार ॥ ४ ॥

भाषा-जो अपनी देशोन्नति में लगा हुआ था और जिसने स्वार्थ बुद्धि को स्वप्न में भी नहीं पाया उस ने सब कामों को छोड़ कर स्वर्ग में जाने को मन कैसे किया ॥ ४ ॥

विज्ञायतस्याद्भुत चारुवृत्तं दिवोकसो जात कुतूहलाः किम्।
तद्दर्शना यात्मनिकेतनं तमजूहवन्दिव्य गुणो रूपेतम् ॥ ५ ॥

भाषा-उसके आश्चर्य और मनोहर वृत्तान्त को जानकर क्या देवता लोगों को कुतूहल पैदा हुआ जिससे कि उस दिव्य गुणों से युक्त पुरुष को दर्शन के लिये अपने स्थान पर बुलाया॥ ५ ॥

यःपाखण्डमतैक खण्डन रतो वेदाख्य शस्त्रैः शुभैः।
शास्त्राणां बलवद्बलेन सततं संसेव्य भानो युधि॥
सत्पक्षः परिपक्वबलेन विजयस्तम्भान् समारोपयद्।
दिक्ष्वन्यःपुरुषो हितेन सदृशो लभ्येत कुत्राधुना॥ १२॥

अर्थ—वेद नामक ग्रन्थ शास्त्रों से जो पाखण्ड मत खण्डन में रत था और जो वाद रूपी युद्ध में शास्त्रों के अत्यन्त बल से सेवित था और जिस का पक्ष श्रेष्ठ था जिस ने सभाओं के ब्याज से विजय के स्तम्भों का आरोपण किया उस के सदृश पुरुष अब दश दिशाओं में कहां मिलेगा॥ १२॥

एक एव खलु पद्मिनी पति रेक एव द्विविशतिर्दीधितिः।
एक एव च सवेद विद्भुवि द्वित्वमन्त्र नकदा श्रुतंमया॥ १३॥

अर्थ—पद्मिनी पति अर्थात् सूर्य आकाश में चन्द्रमा, और वेद का जानने वाला भी एक ही है इन तीन में मैंने द्वित्व नहीं सुना॥ १३॥

स्यात्पुनस्तरणि रक्षिगोचरोदृश्यते नभसिचंद्रमापुनः।
यात एष तुसक्तसदाग्रणीर्नो भवीतिविषयोन नेत्रयोः॥१४॥

अर्थ—सूर्य फिर भी दृष्टिगोचर हो गया आकाश में चन्द्रमा फिर दिखलाई दे जाता है परन्तु सत्य पुरुषों में अग्रणी जो एक बार चला गया वह फिर नेत्रों का विषय बारं २ नहीं होगा॥ १४॥

इंद्रियार्थभवंज्ञानं सर्वथा न प्रमात्मकम्।
तच्च्युतस्समहात्मानम् स्मृतावेवनिधीयताम्॥ १५॥

अर्थ—इन्द्रिय से और अर्थ से प्राप्त हुआ ज्ञान सर्वदा प्रमात्मक नहीं होता इस लिये उस महात्मा को स्मृति में ही स्थापन कीजिये॥ १५

संस्कृता भारतीयेन वर्द्धिता पादनान्तरम्।
तस्यनामामरंयस्या दित्येतद्व्यवर्ण्यताम्॥ १६॥

अर्थ—जिस से संस्कृत वाणी निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो और उस का नाम अमर हो ऐसे निश्चित कीजिये॥ १६॥

ऋषयः कवयो नष्टा विद्वांसोऽपि तथैव च।
साधूनां मरणात्पश्चा भिधानंतु जीवति॥ १७॥

अर्थ—ऋषि, कवि, विद्वान्, साधु इन सब का देहान्त हो गया परन्तु नाम तो उन का पीछे जीता ही है ॥ १७ ॥

कोनाम श्रीदयानन्दात्साधीयान् दृश्यतेजनः ।
उज्जीवितार्ष विद्या येनास्माभिर्निरपेक्षिता ॥ १८ ॥

अर्थ—श्रीदयानन्द से कौन पुरुष अच्छा दिखलाई देता है जिस अर्थ विद्या को हमने छोड़ रक्खा था उस को जिसने जीवित किया ॥ १८ ॥

सैवैषानीपतपुष्टि स्वकीय हित वृद्धये ।
शास्त्रतत्त्वाव बोधेन यूनांसंस्क्रियतां च धीः ॥ १९ ॥

अर्थ—अपने हित की वृद्धि के लिये शास्त्रों के तत्व ज्ञान से जवान पुरुषों की वुद्धियों को संस्कृत (अर्थात् संस्कार से शुद्ध) किया जाय ॥ १९ ॥

अन्तरालाप ।

कःपद्मिनीवदतिम्मदीधितिधर्मःपरःकःकविवाचिकःस्थितः ।
काकंठभूषानयमाद्विभेतिकःस्वामीदयानन्दसरस्वतीयमी ।२०।

भाषा-१ कमलिनियों का सूर्य कौन है, २ उत्तम धर्म कौन है, ३ कवियों की वाणी में कौन स्थित है, ४ कंठ का भूषण क्या है, ५ यम से कौन नहीं डरता (क्रम से उत्तर देखिये)१ स्वामी-२दयानन्द-३आनंद-४सरस्वती-५यमी अर्थात् कमलिनियों का सूर्य स्वामी है । उत्तम धर्म दया है । कवियों की वाणी में आनन्द है । कण्ठ का भूषण सरस्वती है । यमराज यमी (यमों का धारण करने वाला) नहीं डरता ॥ २० ॥

सम्मति डाक्टर स्काट डी० डी० प्रिंसिपल थ्यालोजीकल कालिज बरेली जो उन्होंने चिकागो धार्मिक प्रदर्शनों में स्वामी दयानन्द के विषय में प्रकट की-

वर्तमान समय में संस्कृत का एक ही बड़ा विद्वान् साहित्य का पुतला वेदों के महत्व को समझनेवाला अत्यन्त प्रबल नैयायक यदि भारत वर्ष में हुआ है तो वह महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वी था ।

अन्य देशीय समाचार पत्रों की सम्मतियां ।

प्रोफेसर मैक्समूलर ।

स्वामी दयानन्द एक विद्वान् पुरुष थे जो अपने देश के धार्मिक लिटरेचर से पूर्ण अभिज्ञ थे उनके धर्म नियमों की

नींव ईश्वर कृत (इलहाम) वेदों पर थी उनको वेद कंठाग्र थे उनके मन व मस्तिक में वेदों ने घर किया हुआ था और जिसने ऋग् यजुर्वेद का बड़ा भारी भाष्य किया है।

मेडमब्लावटस्की

[थियोसाफीकल सुसाइटी की फाउंडर]

यह सत्य है कि स्वामी शंकराचार्य्य के अनन्तर भारत में स्वामी दयानन्द से अधिक संस्कृत का विद्वान् उससे बढ़कर प्रत्येक बुराई को उखाड़ने वाला उससे अधिक कथन शक्ति वाला व फिलास्फर उत्पन्न नहीं हुआ (वह भारत का लूथर था)

थियोसोफिस्ट।

हमारे पत्र प्रेरक आश्चर्य में हैं कि क्या स्वामी दयानन्द जैसे योगी को जिस में कि योग विद्या की शक्तियें विद्यमान थीं यह बात विदित न थी कि उनकी मृत्यु से भारतवर्ष को बड़ी हानि पहुंचेगी क्या वह योगी न थे? क्या वह महर्षि न थे? हम शपथ पूर्वक कहते हैं कि स्वामी जी को अपनी मृत्यु का ज्ञान दो वर्ष पहिले ही से था उनके अंतिम शिक्षा पत्र (वसीयतनामे) की दो प्रति (लिपि) जो कि उन्होंने कर्नेल अल्काट और मुझ सम्पादक के पास भेजीं (यह दो लिपियां, हमारे पास उनके पूर्व मित्रभाव का स्मार्क) हैं इस का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उन्होंने हमसे मेरठ में कई बार कहा कि हम सन् १८८४ नहीं देखेंगे।

जैनियों का पत्रव्यवहार व उनके प्रश्नों के उत्तर।

पाठक गणों! स्वामी जी अपने भ्रमण में जैनी, पुरानी, किरानी और कुरानियों का खंडन करते थे और इनका खंडन अति उत्तम प्रकार से सत्यार्थ प्रकाश में भी लिखा था जो प्रथम बार सन् ७५ ई० में मुद्रित हो चुका था इस पुस्तक के मुद्रित होने से एक अतिलाभ यह हुआ कि जहां स्वामी जी नहीं जाने पाये थे वहां के मनुष्य भी उसके पाठ से स्वामी जी के सिद्धांतों को जान लेते थे जैनियों की पुस्तकें गुप्त रक्खी जाती थीं सर्व साधारण उनको पढ़ नहीं सके थे और वह इसी में अपना मान समझते थे जब स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में जैनमत के विषय में लिखा तो उनकी आंखें खुल गईं और अपनी माया को खुलते देख अनेक प्रकार से स्वामी जी पर मिथ्या दोष आरोपण करने लगे परन्तु वह जानते थे जो कुछ स्वामी जी ने लिखा है वह सत्य

है यदि शास्त्रार्थ हुआ तो सब पोल खुल जावेगी इस कारण महर्षि के सामने आना उचित न समझ प्रत्येक प्रकार से बचने का प्रयत्न करते रहते थे। स्वामी जी को अपने भ्रमण में सम्पूर्ण मत वादियों से बात चीत करने का अवकाश प्राप्त हुआ था और सब को उपदेश कर उनके मत वादी भ्रमों को अनेक प्रकार से दूर किया था प्रत्येक मतवादी के बड़े २ और विख्यात पंडितों से शास्त्रार्थ करके उनके सिद्धान्तों को निर्मूल प्रतीत कर दिया। परन्तु जैनी सब चुप चापथे और सन् १८८१ ई० तक कोई भी उनके सामने न आया। इस कारण जिस प्रकार किसी समय में महर्षि को काशी जाकर मूर्ति पूजा वेद विरुद्ध सिद्ध करने की अति उत्कंठा थी उसी प्रकार अब यह इच्छा हो रही थी कि कोई विद्वान् जैनी उनके सामने आवे यद्यपि जैनी बहुत चुप रहे। परन्तु सत्य कब तक छुप सक्ता है। गुजरानवाला में जैनियों का अति प्रसिद्ध मंदिर है जब स्वामी जी के उपदेश से सन् ७८ में वहां पर समाज हो गया तो जैनियों को अति भ्रम हुआ तिस पर भी वह चुपरहे अंत को सन् १८८० ई० में गुजरान में जब पण्डित आत्माराम पूज्य "जो एक जैन मत के विद्वान् थे" आये तो उन्होंने अपना स्वामी जी के सन्मुख जाना उचित न समझा क्योंकि वह तो विद्वान् थे वह कब असभ्यता से बातें कर सकते थे जिस समय वादानुवाद होता स्वामी जी अच्छे प्रकार उनको शास्त्रों द्वारा समझा सक्ते थे। आत्माराम की इच्छा शास्त्रार्थ की न थी परन्तु वह चाहते थे कि किसी प्रकार जैनमत का मान सर्वसाधारण में रह जावे इस कारण उन्होंने लाला ठाकुरदास पुत्र लाला मुनराज ओसवाल जैनी को जिसने किसी भाषा को पढ़ा लिखा न था और अति झगड़ालू था स्वामी जी से पत्र व्यवहार करने को उद्यत किया और उसने ३ जौलाई सन् ८० को एक पत्र उर्दू भाषा में जिस में कई अशुद्धियें थीं चेलीराम से लिखवाकर स्वामी जी के पास भेजा जिसमें मुख्य प्रश्न यह था कि आपने सन् १८७५ ई० के सत्यार्थ प्रकाश के १२ वें समुल्लास के ३९६ पृष्ठ पर जो व्याख्यान जैनमत सम्बंधी लिखा है उसमें आप ने जैन मत के श्लोकों का प्रमाण दिया है आप कृपा करके लिखिये कि यह किस जैन शास्त्र के श्लोक हैं क्योंकि यह जैनमत के श्लोक नहीं हैं। स्वामीजी महाराज उन दिनों में भ्रमण करते फिरते थे इस कारण इसके उत्तर आने में विलम्ब हुआ तब लाला ठाकुरदास ने उस विषय का एक और पत्र 'जिसमें वह श्लोक भी लिखे थे और नालिश करने की धमकी थी' स्वामी जी के पास आगरे के पते से भेजा स्वामी जी आगरे से मेरठ चले गये थे इस कारण उन को यह पत्र मेरठ में मिला और फिर अखबार मित्र विलास में १६ जौलाई सन् ८० को यह मुद्रित कराया कि जैन लोगों ने मिलकर स्वामी दयानन्द पर अभियोग चलाने का बीड़ा उठाया है इस कारण लाला ठाकुर दास

गुजरानवाला निवासी ने एक पत्र भी उनके पास भेजा है इत्यादि। इसका उत्तर प्रथम आर्य्यसमाज गुजरानवाला ने दिया कि सत् असत् का निर्णय करने से ही देश की धार्मिक और शारीरिक उन्नति होती है इस लिये स्वामीजी ने इसी नियम के अनुसार सत्यार्थ प्रकाश को प्रकाशित किया है इस में किसी की निन्दा नहीं है परमेश्वर आप को भी बुद्धि दे कि आप भी सर्व साधारण में स्वामी जी के सदृश व्याख्यान दें और अपनी संपूर्ण पुस्तकों को सकल मनुष्यों के अवलोकनार्थ मुद्रित करायें। स्वामी जी ने यह विचार कि पण्डित आत्माराम गुजरानवाले के एक विद्वान् जैनी के होते हुए श्रावगी के मुंह कौन लगे उत्तर नहीं दिया होगा यदि आप को सत्य और झूठ का निर्णय करना है तो आप शास्त्रार्थ कर निश्चय कर लीजिये। स्वामी जी ने उस के पत्र देखने से जान लिया कि यह पढ़ा लिखा मनुष्य नहीं है और न जैनमत की भिन्न २ शाखाओं को जानता होगा इस कारण उन्होंने मुंशी आनन्दीलाल मेरठ आर्य्य समाजके मंत्री से यह लिखवा दिया कि तुम पढ़े लिखे नहीं प्रतीत होते न तुमने पढ़े लिखों का संग किया है देखो सत्यार्थ प्रकाश में भी लिखा है कि जैन लोग ऐसा कहते हैं फिर तुम्हारा प्रश्न ठीक नहीं रहता तुमने वेदादि सत् शास्त्रों की अति निन्दा की है चाहे सब जैनी अपना तन-मन-धन लगावें तो भी तुम्हारी डिगरी नहीं हो सकी हमारा पक्ष ठीक है यदि तुमको शंका हो तो अपने विद्वानों को खड़ा करके निश्चय करालो! स्वामीजी ने यह जान कर कि यह मूर्ख अंडबंड व्यवहार करता है इस कारण यह भी लिखवा दिया कि तुम अपने पत्र आर्य्यसमाज गुजरानवाला के द्वारा भेजो इस पर ठाकुरदास ने एक पत्र में अंडबंड फिर लिखा कि आपने अपनी विद्या की प्रशंसा करके व्यर्थ कागज़ काला किया है यह लिखिये कि आप ने यह श्लोक किस से सुने। फिर भी ठाकुर दास का वही प्रश्न था इस कारण आर्य्यसमाज गुजरानवाला ने इस पत्र को स्वामीजी के पास न भेजकर उसके उत्तर में लिख भेजा कि पत्रद्वारा शास्त्रार्थ में कुछ फल न निकलेगा आप पण्डित आत्माराम द्वारा शास्त्रार्थ करा लीजिये आप के कठोर वाक्य ठीक नहीं। इन्हीं दिनों में स्वामी जी का एक पत्र आर्य्यसमाज़ गुजरानवाला में आया कि आप आत्माराम जी से उन शङ्काओं को लेकर और हस्ताक्षर कराकर भेजदो जो वह सत्यार्थ प्रकाश पर करते हैं। हम उन का पूर्ण उत्तर उन के पास भेज देवेंगे आर्य्यसमाज ने यह पत्र पण्डित आत्माराम के पास कई सभासदों द्वारा भेजा तो पण्डित जी ने विचार शङ्कायें देने का प्रण किया जब बहुत काल तक पण्डित जी की शङ्कायें न आईं तो आर्य्यसमाज ने एक पत्र २३ अक्टूबर सन् ८० को पण्डित जी के पास फिर भेजा गया कि आप के उपदेश द्वारा आपके सेवक स्वामीजी के पास पत्र भेजते हैं इस कारण स्वामी जी का पत्र आया है कि तुम पण्डित आत्माराम जी से सत्यार्थ प्रकाश पर जो उन की शङ्कायें हों लिखकर भेजदो

इस के निमित्त आप के पास समाज के सभासद् गये थे आप ने विचार कर शङ्कायें भेजने का प्रण भी किया था परन्तु अभी तक नहीं भेजीं कृपा कर अब शीघ्र भेज दीजिये। इस पर पण्डित आत्माराम जी ने अपने संपूर्ण प्रश्न आर्य समाज गुजरानवाले के पास भेजे जो स्वामी जी के पास देहरादून भेज दिये गये। जब इस पत्र का समाचार ठाकुरदास को प्राप्त हुआ तो अति क्रोधित हो स्वामी जी को बहुत अपशब्द युक्त लम्बा चौड़ा पत्र भेजा कि आपने हमारे परम पूज्य आत्माराम के पास पत्र क्यों भेजा आप मेरे साधारण पत्र का तो उत्तर देलीजिये फिर पण्डित आत्माराम के पास पत्र भेजिये। आपने यह समझ लिया होगा कि मैं पण्डित आत्माराम को इधर उधर की बातें बनाकर समझा लूंगा और नालिश न होने दूंगा परन्तु यह आपका भ्रम है आत्माराम जी को इस वाद से कुछ सम्बन्ध नहीं जो कुछ करना होगा सो मैं करूंगा इस लिये आप उनको कष्ट न दीजिये यदि आपके पास उत्तर न हो तो आप मुझ से क्षमा मांग लीजिये और क्षमा पत्र नम्रता पूर्वक लिखिए हम शांत हो जायेंगे। अन्यथा न्यायालय में आप को उत्तर देना पड़ेगा। इसी समय में स्वामी जी ने ६ नवम्बर को पण्डित आत्माराम और ठाकुरदास के प्रश्नों के उत्तर लिख-कर आर्यसमाज गुजरानवाला में भेज दिये।

प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश में जो श्लोक लिखे हैं जैनियों के किस शास्त्र वा ग्रन्थ के हैं ?

उत्तर—यह सम्पूर्ण श्लोक बृहस्पतिमत अनुयायी चारवाक जिसके मत का उपनाम लोकायेन है इनके मत शास्त्र व ग्रन्थों के हैं।

नोट—यह सम्पूर्ण श्लोक जो सत्यार्थप्रकाश प्रथम बार सन् ७५ के पृष्ठ ४०२ व ४०३ पर हैं स्वामी जी से पूर्व सर्वदर्शनसंग्रह में सायणाचार्य ने और उनके टीका में तारानाथ वाचस्पति ने लिखे हैं जो जीवानन्द प्रेस कलकत्ता में मुद्रित हो चुकी है (देखो उसका प्रारम्भ)

आत्माराम जी के प्रश्नों का उत्तर ।

प्रश्न १—सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास १२ पृष्ठ ३६६ पंक्ति १६ में लिखा है कि जब प्रलय होता है तो परमाणु जुदे होजाते हैं ऐसा नहीं होता ?

उत्तर—मैंने उस पत्र में जो लाला ठाकुरदास जी के पास आर्य्यसमाज गुजरानवाला द्वारा भेजा है यह सिद्ध किया है कि जैन और बुद्ध एक ही है चाहे उनको बौद्ध कहो चाहे जैन, कई स्थलों पर महावीरादि तीर्थंकरों (जैन मत के आदि प्रचारकों का नाम) को बुद्ध और बौद्ध आदि शब्दों से पुकारते थे और अनेकान् स्थल पर जन जैन जनावर जन बंद आदि नाम से बोलते हैं जिनको चारवाक बुद्ध की शाखा में कहते हैं उन्हें लोग बुद्ध स्वयं बुद्ध और चार बौद्ध आदि कहते हैं आप अपने ग्रन्थों में देख लीजिये (ग्रन्थ बोधसार पृष्ठ ६५ पंक्ति १३) बुद्ध बौद्ध यह एक सिद्ध अनेक सिद्ध भगवान हैं (पृष्ठ

१३३ पंक्ति ७) नार की कथा (पृष्ठ १३७ पंक्ति ८) हर एक युद्ध की कथा (पृष्ठ १२८ पंक्ति २१) स्वयम् बुद्ध की कथा (पृष्ठ १५२ पंक्ति १४) चार बुद्ध एकसाथ मोक्ष को गये इसीप्रकार और भी आपके गृन्थों में कथा स्पष्ट हैं जिनको आप या और कोई जैन प्रामाणिक विरुद्ध न कह सकेंगे।

इतिहास तिमिरनाशक तृतीय खंड पृष्ठ ८ पंक्ति २१ से लेकर पृष्ठ ६ पंक्ति ३८ तक स्पष्ट रूप से लिखा है कि जैन और बौद्ध एक ही के नाम हैं बहुधा स्थान पर महावीर आदि तीर्थंकरों को बौद्ध कहते हैं उन्हीं को आप लोग जैन और जन आदि कहते हैं जैसे आप के यहां स्वेताम्बर, दिगम्बर, ढोंडिया आदि शाखाओं के भेद हैं कि उन में कोई शून्यवाद कोई क्षणिक कोई जगत् को नित्य मानने वाला-कोई अनन्त मानने वाला कोई स्वाभाविक सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय मानते हैं और उसका नाश हो जाना भी मानते हैं (देखो रत्नावली गृन्थ पृष्ठ ३२ पंक्ति १३ से ले पृष्ठ ४३ पंक्ति १० तक) कि उस स्थान पर सब जाति की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय भी लिखी है या नहीं। इसी प्रकार चार्वाक आदि भी कई शाखावाले जिस को आप पद्गल कहते हैं उस को अणु आदि नाम से लिखते हैं और उनको आपस में मिलने से जगत् की उत्पत्ति और अलग होने से प्रलय होना भी मानते हैं और वह जैन और बौद्ध से अलग नहीं हैं किन्तु जैसे पौराणिक मत में रामानुजी आदि वैष्णवों की शाखा और पाशुपतादि शैवों की और वाममार्गियों की दस महाशायास शाखें और ईसाइयों में रोमन केथोलिक आदि और मुसल्मानों में शिया और सुन्नी आदि शाखों के भेदानुभेद हैं और तिस पर भी वेद, बाइबिल और कुरान के फिर्कें में वह एक ही समझे जाते हैं वैसे ही आप के अर्थात् जैन और बौद्ध मत की शाखों के भेद यद्यपि अलग २ लिखे जा सकते हैं परन्तु जैन या बौद्ध मत एक ही हैं।

आपने बुद्ध अर्थात् जैन मत के प्रत्येक फिर्के के तंत्र सिद्धांत अर्थात् भेद वर्णन करने वाले गृन्थ देखे होते तो सत्यार्थप्रकाश में जो सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय के विषय में लिखा है उस पर शंका कभी न करते।

प्रश्न २-सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ३६७ पंक्ति २४ मनुष्य आदि को तो ज्ञान है ज्ञान से वे अपराध करते हैं इस से उनको पीड़ा देना कुछ अपराध नहीं यह बात जैन मत में नहीं है ?

उत्तर-गृन्थ धोकसार में पृष्ठ २२८ पंक्ति १० से ११ तक देख लीजिये क्या लिखा है अर्थात् गुनाभियोग और सूजन आदि सुमुद्री की आज्ञा जैसे विष्णुकुमार ने कच्छु की आज्ञा से बौद्ध रूप रचना कर के नमुची नाम पुरोहित को कि वह जैन के विरुद्ध था लात मार के सातवें नरक में भेजा और ऐसी ही और बातें हैं।

प्रश्न ३-सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३९९ पंक्ति ३ और उसके ऊपर (अर्थात् पद्म शिला पर बैठ के बराबर) का देखना।

उत्तर-पुस्तक रत्नसारभाग पृष्ठ २३ पंक्ति १३ से लेकर पृष्ठ २४ पंक्ति २४ पर्यन्त देख लीजिये कि वहां महावीर और गौतम की परस्पर चर्चा में क्या लिखा है।

प्रश्न ४-सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४०१ पंक्ति २३ में लिखा है कि जो उनके मत के न हों चाहे वह श्रेष्ठ भी हो तो भी उनको जल तक भी न देना चाहिये?

उत्तर-पुस्तक द्वैत सार पृष्ठ २२१ पंक्ति ३ से लेकर पंक्ति ८ पर्यंत लिखा है देखलीजिये कि अन्य मत की प्रशंसा या उन का गुण कीर्तन शिष्टाचार या उन से अधिक भाषण व न्यून भाषण या उनको खानपान की वस्तुयें सुगन्ध फूल देना या अन्य मत की मूर्ति के लिये चन्दन फूलादि देना यह छः बातें नहीं करनी चाहिये।

प्रश्न ५-सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ४०१ पंक्ति २७ में लिखा है कि जब साधू जन आते हैं तब जैनी लोग उस की डाढ़ी-मूंछ और सिर के बाल सब नोंच लेते हैं?

उत्तर-ग्रन्थ कल्प भाष्य पृष्ठ १०८ पंक्ति ४ से ६ तक देख लीजिये और प्रत्येक ग्रन्थ में दीक्षा के समय अर्थात् चेला बनने के समय लिखा है कि पांच मुट्ठी बाल नोचे यह कार्य अपने हाथ अथवा चेला व गुरु के हाथ से होता है और विशेष कर ढूंडियों में है।

प्रश्न ६-सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ४०२ पंक्ति २० से लेकर जो श्लोक जैनियों के बनाये लिखे हैं वह जैन मत के नहीं।

उत्तर-इस का उत्तर पूर्व पत्र में भेज चुका हूं आप के पास पहुंचा होगा देख लीजिये।

प्रश्न ७-सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ४०३ पंक्ति ११ में लिखा है कि अर्थ और काम दोनों पदार्थ मानते हैं?

उत्तर-यह मत जैन चारवाक नामी का है जिस ने ऐसे श्लोक कि जब तक जिये सुख से जिये मृत्यु लगी हुई नहीं शरीर भस्म हो जाने पर फिर आना नहीं होता इत्यादि अपने मत के बना लिये हैं इसी प्रकार नीति और कामशास्त्र के अनुसार अर्थ और काम दोही पदार्थ पुरुषार्थ और विधि से माने गये हैं।

इन उत्तरों को स्वामी जी ने आर्य्यसमाज गुजरानवाला द्वारा भेजते हुए पण्डित आत्माराम को यह भी लिखा कि किसी विषय की प्रश्न द्वारा पूरी व्याख्या नहीं हो सकती यदि संभव हो तो आप अम्बाला आकर मुझसे मौखिक शास्त्रार्थ कीजिये यदि आप को स्वीकृत हो तो आप मुझ को आगरा तार

द्वारा मुद्रित कीजिये जिस से मैं अम्बाला ठीक तिथि पर पहुंच जाऊं यदि आपको और शंकायें सत्यार्थ प्रकाश पर हों तो आप शीघ्र मुझ को लिखिये। फिर पंडित आत्माराम जी पूज्य ने ८ माघ सम्वत् १९३७ तदनुसार १९ जनवरी सन् १८८१ को एक पत्र स्वामी जी के पास भेजा जिस में कुछ बातों को माना और कई बातों पर फिर तर्क की उस का उत्तर स्वामी जी ने यह भेजा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का द्वितीयपत्र

लिखित २१ जनवरी सन् १८८१ ई०

आनन्द विजय आत्माराम जी नमस्ते! आप का पत्र ८ माघ का लिखा हुआ मेरे पास पहुंचा लिखित वृत्तान्त ज्ञात हुआ। मेरे प्रश्नों के उत्तर में जो आप ने लिखा है कि बुद्ध और जैन एक ही मत के मानने से हमारा कुछ अपमान नहीं इस के पढ़ने से अति प्रसन्नता हुई यही सज्जनों का काम है कि सत्य को मानें असत्य को न मानें परंतु यह बात जो आप ने लिखी है कि योगाचार इत्यादि चार सम्प्रदाय जैन बौद्ध मत के हैं सो वह बौद्ध मत जैन से एक न्यारे मार्ग का है इसका उत्तर मैं आप के पास भेजचुका हूं कि मत में शाखा, शाखा का अन्तर थोड़ी बातें न्यारी होने से होता है परन्तु मत की योग्यता में शाखायें एक ही मत की होती हैं लिखिये कि उन्हीं निरेश्वरियों में चारवाक इत्यादि निषेधी हैं और आप उन के इतिहास और जीवनचरित्र पूछते हैं सो इस का उत्तर भी मैं दे चुका हूं अर्थात् इतिहास तिमिरनाशक के तीसरे खण्ड में देख लीजिये और आप जिन बौद्ध को अपने मत से अलग कहते हैं वह आप के सम्प्रदाय से चाहे न्यारे हों परन्तु मत की योग्यता से कदापि अलग नहीं हो सकते जैसे कई जैनी श्वेताम्बर दूसरे जैनियों दिगम्बरी साधुओं पर तर्क करके उन्हें अलग और नष्टेन मानते हैं यह स्पष्ट रूप से "रोचक" नामी किताब में लिखा है इसी प्रकार आप लोगों ने उन पर बहुत सी तर्क करके उन के मत समयुक्त निर्णय पुस्तक लिखी है तो भी इस से वे या आप बौद्ध और जैन मत से न्यारे नहीं हो सकते और न कोई विद्वान् इन के मती सिद्धान्तों के अनुसार अलग मान सका है इन के सिद्धान्तों में विरुद्धता तो अवश्य होगी आप के इस वाक्य से कि इस में क्या आश्चर्य है कि महावीर तीर्थंकरों के समय में चारवाक मत था उस से पीछे नहीं हुआ इस से मुझ को आश्चर्य हुआ क्या जो महावीर तीर्थंकरों के पहिले २३ तीर्थंकर हुए उन सब के पहिले चारवाक मत को आप सिद्ध नहीं कर सकते यदि किसी प्रकार आपको संशय हो तो प्रश्नकर्ता पूछ सका है कि ऋषभ देव भी चारवाक मत से चले हैं फिर आप इस के उत्तर में क्या कह सकते हैं क्या चारवाक मत पन्द्रह प्रकार में से एक प्रकार का भी नहीं है। और उस में एक सिद्ध और मुक्त नहीं हुआ क्या वे आप के सिद्धान्तों

और पुस्तकों से अलग हो सकते हैं इस के अतिरिक्त आप ने भी अपने लेख में बौद्धमत को अपने मत में अंगीकार कर लिया है क्योंकि कल्कंठा इत्यादि को आप ने बौद्ध माना है और मैंने भी प्रथम पत्र में जैन और बौद्ध मत के एक मत होने का लिखा प्रमाण दे दिया है फिर आप का द्वितीय वार पूछना व्यर्थ निष्प्रयोजन है। जिस दशा में अपवादीकी साक्षी से अभियोग सिद्ध हो जाता है तो फिर न्यायाधीश को अन्य पुरुषों की साक्षी लेने की आवश्यकता नहीं होती, भला जिस की कई श्रेणी जैन मत में चली आई हों अर्थात् राजा शिवप्रसाद् की साक्षी को और जो वर्तमान में इंगलैंडीय लोग बड़े परिश्रम से इतिहास बनाते हैं उनकी साक्षी को आप अशुद्ध कह सक्ते हैं कि जिन्हों ने अपने इतिहासों में बौद्ध और जैन को एक ही लिखा है यह भी लिखा है कि कुछ बातें आर्य्यों की कुछ बौद्धों की लेकर जैन मत बना है।

प्रश्न २—के विषय में जो आप ने लिखा यह निमुची नास्तिक जैन मत की बुराई चाहने वाला साधुओं को निकालने वाला और दुखदाई था उस को मार कर सातवें नरक में भेजा गया यह लेख आप ने सत्यार्थ प्रकाश के उपर में नहीं समझा ध्यान दीजिये कि यह निमुची जैन मत का शत्रु था इस लिये मारा गया तो क्या उस ने जान बूझकर पाप नहीं किया था कितने पश्चात्ताप की बात है कि आप सीधी बात को भी उल्टा समझ गये। तीसरे प्रश्न के उत्तर में जो आपने प्राकृत भाषा का एक श्लोक लिखा है परन्तु उसके अर्थ आप ने वर्णन नहीं किये केवल मेरे ऊपर उसका समझना छोड़ दिया उसका यह प्रयोजन होगा कि मैं उस के तात्पर्य और अर्थ तक नहीं पहुंच सकूंगा हां मैं कुछ सब देशों की भाषाओं को नहीं जानता हूं केवल कई देशों की भाषा और संस्कृत जानता हूं परन्तु मतों और उन के सम्प्रदाई शास्त्रों के सिद्धांत अपनी विद्या और ज्ञान और विद्वानों की सम्मति के प्रभाव से जानताहूं आप और आप लोगों के अग्रगामियों ने ऐसी भाषा विगाड़कर अपनी भाषा बनाली है जैसे धर्मका वहम इत्यादि जैसे जिनकामत बुद्ध और पुस्तकों द्वारा सिद्ध नहीं हो सको है वे ऐसे २ नवीन शब्द बना लेते हैं जिस से कोई उन की विद्या समझ न सके जैसे मदिरा का नाम तीर्थ और मांस का नाम पुष्प इत्यादि बना लिया है। जिससे कि उनके अतिरिक्त कोई दूसरा न जान ले। जो राजा लोग न्यावी और न्यायकारी होते हैं वह तो ऐसे सीधे मार्ग बनाते हैं कि अंधा भी अभीष्ट को पहुंच जाय परन्तु उनके प्रतिवादी मार्गों को इस प्रकार विगाड़ते हैं कि कोई परिश्रम और प्रयत्नसे भी चल सके। आप रत्नसार भाग नामी पुस्तक को विश्वास के योग्य नहीं समझते तो क्या हुआ बहुत श्रावक और जैन लोग उसको सच्चा मानते हैं। देखिये! आप ऐसे विद्वान् हो कर मूर्ख को मुर्ख लिखते हैं और पत्र के शब्द के शुद्ध करने में बहुतसी हरताल भी लपेटते हैं कैसे पश्चात्ताप की बातें हैं कि संस्कृत तो दूर रहीं देशी भाषा

भी आप-लोग नहीं जानते परन्तु इस लेख के स्थान पर यह लिखना उचित था कि आप की अशुद्धता का कुछ नहीं क्योंकि मनुष्य बहुधा अशुद्धता किया ही करते हैं। चौथे प्रश्न के उत्तर में जो कुछ आपने लिखा है वह अति आश्चर्यकारक है विद्या के प्राप्त करने की इच्छा मनुष्य वहां प्रकट कर सका है जहां अपने से अधिक किसी विद्वान् को देखता है मैंने भी उन्हीं विद्वानों और चतुरों से शिक्षा पाई है जो मुझ से अधिक विद्वान् और चतुर थे कदाचित् आप भी इस को अंगीकार करते होंगे क्या आप लोग अन्य मत के विद्वानों को विद्वान् न समझकर शिष्य के विचार से और मुक्ति के फल का ध्यान न रखकर किसी अन्य धर्माग्र के प्राप्त करने की इच्छा से पुण्य करते हो और क्या यह बातें अविद्वानों की नहीं हैं कि अपने मत और उस के साधुओं का बड़प्पन का ध्यान रखना और अन्य मत के विद्वानों को उन के विपरीत जानना। यथार्थ में सर्व सृष्टि में से अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा मानना न्यायी धर्मात्माओं और महात्माओं का काम है और उस को ही हम मानते हैं और उचित है कि आप भी इस को अंगीकार करें। मेरे लेख का प्रयोजन ठीक २ आप उस समय समझेंगे जब कि मैं और आप मिलेंगे मेरा पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश के लेख से कोई मनुष्य यह फल नहीं निकाल सका कि जैन मत के लोगों को बहुत दिनों तक कष्ट देना और दान न देना और जैन मत अधर्म की जड़ है वरन् यह सिद्ध है कि अच्छे और धर्मात्मा लोगों और अनाथों की सहायता करना और बुरे लोगोंको समझाना। परन्तु इन पद् निषेधों का कलङ्क आपको ऐसा लिपट गया है कि जब ईश्वर की दया हो और आप लोग पक्षपातको त्यागकर प्रयत्नकरें तब धोयाजा सकताहैऔर नहींतो कदापि नहीं भला जब यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि अन्य मत की प्रशंसा न करना और अन्य को रोटी व पानी न देना तो फिर आप इस को अशुद्ध क्योंकर कर सकते हैं यह बातें आपके सहस्रों ग्रन्थों में लिखी हुई हैं और आप लोग इसको समझ लें कि मुझे ऐसा स्वप्न में भी ध्यान नहीं आया है। हां जो आप लोग कुछ भी विचार कर देखें तो उन का छोड़ना ही धर्म है आगे आप की इच्छा। पांचवें प्रश्न का उत्तर उसके विषय में जो आपने लिखा है उस से मेरे उत्तर का पलटना नहीं हो सकता क्योंकि जब बालों के नोचने का प्रमाण आप की पुस्तकों में लिखा है और मैंने उस के द्वारा सिद्ध करदिया फिर भला तर्क शास्त्र का आश्रय लेने से इस बात से निषेध हो सका है कदापि नहीं। छठे प्रश्न के उत्तर में अब मैं यह सिद्ध कर चुका हूं कि जैन और बौद्ध किस मत का नाम है उसकी शाखा चारवाक आदि हैं फिर यह कैसे झूंठ होसका है जो आपजैनलोगों के ग्रन्थों में हमारे मत के लिये लिखा है जिसका हमारे मत संबन्धी पुस्तकों में चर्चा नहीं पाया जाता उस से हमारे मत की हीनता प्रकट होती है इस लिये आप जैन लोगों से पूछा जाता है कि लौटती

डांक में शीघ्र उत्तर भेज दीजिये कि वह बातें हमारी किन मत संबन्धी पुस्तकों में लिखी हुई हैं।

प्रगट हो कि जिस व्याख्या और ठीक २ पता दिनामान के द्वारा पृष्ठ व पंक्ति इत्यादि मैंने आप के प्रश्नों का उत्तर दिया है इसी प्रकार आप भी उत्तर दें और जो नहीं देंगे तो आप लोगों की बड़ी हानि होगी इस बात को आप साधारण दृष्टि से न देखें वरन् एक भांति की सावधानी से देखें जिस से यह बढ़ न जाय उत्तर के भेजने में शीघ्रता करने से उत्तमता प्रगट है।

प्रथम–थोकसार ग्रन्थ पृष्ठ १० पंक्ति १ में लिखा है कि श्रीकृष्ण तीसरे नर्क को गया।

द्वितीय–थोकसार पृष्ठ ४० पंक्ति ८ से १० तक लिखा कि हरीहर–महादेव ब्रह्मा, रामकृष्ण आदि कामी, क्रोधी, अन्यायी स्त्रियों के रूपी पाषाण की नौका के समान आप डूबने और सब को डुबाने वाले हैं।

तृतीय–थोकसार पृष्ठ २२४ पंक्ति ६ से पृष्ठ २२५ की पंक्ति १५ तक लिखा है कि ब्रह्मा–विष्णु–महादेव संपूर्ण अदेवता और अपूज्य हैं।

चतुर्थ–थोकसार पृष्ठ ५५ पंक्ति १२ में लिखा है कि गंगा आदि तीर्थों और काशी आदि क्षेत्रों से कुछ परमार्थ सिद्ध नहीं होता।

पंचम–थोकसार पृष्ठ १३८ पंक्ति ३० में लिखा है कि जैन का साधू भ्रष्ट भी हो तो भी अन्य मत के साधुओं से उत्तम है।।

षष्ठम्–थोकसार पृष्ठ १ पंक्ति १ से लेकर कहा है कि जैनियों में बौद्ध आदि शाखें हैं इस से सिद्ध हुआ कि जैन मत के अंतर्गत बौद्ध आदि सब शाखें हैं।

जब पण्डित आत्माराम और स्वामी जी में इस प्रकार का पत्रव्यवहार हो रहा था। लाला ठाकुरदास ने अपनी मान हानि समझ स्वामी जी को २२ नवम्बर सन् १८८० को नोटिस भेजा कि आप का न्यायालय में सब भेद खुल जावेगा यदि आपको क्षमा मांगना हो मांग लीजिये। पीछे आप जैनियों को दयारहित न कहिये अम्बाला व गुजरानवाला के जैनियों ने सब प्रकार से अभियोग चलाने का प्रबन्ध कर लिया है परन्तु महात्मा जी ने जानबूझकर यह नोटिस अंबाला भेजा कि जहां स्वामी जी अब तक गये नहीं थे इस कारण यह नोटिस वापिस आया तो आपने फारसी अक्षरों में विज्ञापन प्रकाशित किया कि स्वामी दयानंद जी मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं देसकते इस कारण चुप हो रहे हैं मुझ को उनका पता बताया जावे इस के उत्तर में आर्य्यसमाज गुजरानवाला ने उसको पता बतला दिया। इस के पश्चात् ठाकुरदास ने फिर आर्य्य समाज गुजरानवाला को लिखा कि मैं स्वामी जी से सत्यासत्य का निर्णय करने को २० जनवरी से २३ जनवरी तक अम्बाला में रहूंगा आप स्वामी दयानन्द जी को बुलाइये। चूंकि स्वामी जी इस से पूर्व जैनियों के पण्डित

आत्माराम जी को लिख चुके थे कि यदि शास्त्रार्थ करना हो तो अम्बाला आइये परन्तु पण्डित आत्माराम ने कोई उत्तर न दिया और न कोई प्रतिष्ठित जैनी विद्वान् शास्त्रार्थ को तय्यार हुआ लाला ठाकुरदास से शास्त्रार्थ व्यर्थ था इस कारण शास्त्रार्थ न हुआ।

जैनियों के पत्र व्यवहार पर समाचार पत्रों की सम्मतियां।

आफ़ताब पंजाब लाहौर—१२ फर्वरी सन् ८० लिखता है कि जैनियों के विज्ञापन से प्रतीत होता है कि यह उन सूक्ष्म बातों का जिन को स्वामी दयानन्द जी ने अपने सत्यार्थप्रकाश में छपवाया है अदालत से न्याय कराना चाहते हैं यह स्वामी जी के लेख को अपना अपमान करने वाला बतलाते हैं परन्तु जब स्वामी जी ने उन के पास ६ दिसम्बर सन् ८० को प्रत्येक का प्रमाण व पता लिखकर भेज दिया तो यह कदापि अपमान नहीं वरन् सत्य आक्षेप हैं। इस कारण स्वामी दयानन्द जी ने जैनियों का अपमान नहीं किया वरन् सत्य का प्रकाश किया है क्या सम्भव है कि कोई मनुष्य स्वामी दयानन्द जी के लेख को कि जिन्हों ने अच्छे प्रकार छानबीन की है असत्य ठहरा सके।

यह किसी विशेष मत का मान अपमान नहीं करते किन्तु सत्य को प्रकाश करते हैं यह सम्पूर्ण वादविवाद इस कारण से है कि एक साधारण जैनी स्वामी जी से इस प्रकार का झगड़ा करके अपनी कीर्ति प्राप्त करना चाहता है अब हम प्रार्थना करते हैं कि जैनी महाशय अभियोग की धमकी न दें वरन् करके दिखलावें।

इसी प्रकार पञ्जाब अखबार १६ मार्च सन् ८१ अखबार आम के असत्य लेख का खण्डन करते हुये लिखता है कि स्वामी दयानन्दजी ने पण्डित आत्माराम जी के सम्पूर्ण प्रश्नों के उत्तर भेज दिये और यह भी लिख दिया कि यदि चाहते हो तो शास्त्रार्थ करलीजिये। पण्डित आत्माराम जी न तो उनको स्वीकार करते हैं और न शास्त्रार्थ को उद्यत होते हैं, या तो वह पराजित होगये या भविष्यत् में पराजित होजाने का भय रखते हैं।

इस के पश्चात् स्वामी जी से और जैनियों से शास्त्रार्थ ६ जौलाई से १६ जौलाई तक मसौदा में हुआ उसका वृत्तान्त निम्न लिखित है।

स्वामीजी का रियासत मसौदा में जैनियोंसे शास्त्रार्थ।

जब स्वामी जी धर्मोपदेश करते हुये १२ जून सन् १८८१ को मसौदा में

पहुंचे तब रावबहादुर सिंह साहब रईस मसौदा ने प्रतिष्ठित जैनियों को बुला कर कहा कि अपने किसी विद्वान् पण्डित को बुला कर स्वामी जी से शास्त्रार्थ करा कर सत्य और असत्य का निर्णय कर लीजिये। दैवयोग से चैत्र मास व्यतीत करने के लिये ६ जौलाई सन् १८८१ ई० को सिद्ध करण साधु चार साधुओं सहित जो जैनियों में बड़े विद्वान् और योग्य थे आ विराजे। जिन से ८ जौलाई को भ्रमण के समय स्वामी जी से कुछ वार्तालाप भी हुई फिर ११ जौलाई को निम्न लिखित प्रश्न स्वामी जी ने पण्डित छगन लाल कामदार और जोशी जगन्नाथ के द्वारा साधु सिद्ध करण के पास भेजे।

१ प्र०—मुख पर पट्टी बांधना विद्या और बुद्धि के विपरीत है और यदि तुम ऐसा मानते हो कि मुख की वायु से जीव मरते हैं यह भी ठीक नहीं क्योंकि वह अमर हैं और यदि यह कहो कि वह मरते नहीं हैं परन्तु उनको क्लेश होता है उसका पाप होता है यह भी सर्वथा ठीक नहीं। क्योंकि ऐसे बिना किये निर्वाह भी नहीं हो सकता यदि तुम कहो कि जहां तक हो सके रक्षा करो क्योंकि सर्व वायु आदि सब पदार्थों में जीव भरे हुये हैं इस लिये हम लोग मुख पर कपड़ा बांधते हैं कि मुख की भाप से बहुत से जीवों को दुःख पहुंचता है। यह भी तुम्हारा कहना ठीक नहीं क्योंकि अगर मकान का द्वार बन्द कर उस पर परदा डाल दिया जाये तो उस में गर्मी अधिक रहती है और खुला रहने से कम। इस से विदित होता है कि मुख पर कपड़ा बांधने से जीवों को अधिक पीड़ा होती है देखो जब तुम मुंह पर कपड़ा बांधते हो तो उसका वायु रुक कर नाक के छिद्रों द्वारा बड़े वेग से निकलता है जो जीवों को अधिक दुखदाई होता है इस लिये तुम सब को हिंसा का पाप लगता है यदि तुम कहो कि हम दोनों पर बांधेंगे तो और भी अधिक गर्मी उत्पन्न होकर जीवोंको हानिकारक होगी इसके उपरान्त आप दातौन और स्नान कम करते हैं जिसके कारण शरीर की आरोग्यता नष्ट होजाती है तथा बुद्धि और पराक्रम हीन होने से धार्मिक अनुष्ठानको यथावत नहीं कर सकते।

जिस भांति सन्डासोंके साफ करने वालोंकी बुद्धि न्यून होतीहै उसी प्रकार आप सब की बुद्धि नष्ट हो जाती है।

२ प्रश्न—तुम्हारे यहां जल गर्म करके पीते हैं यह भी भ्रम की बात है क्योंकि ठंढे जल के जीव गर्मी देने से अधिक दुख पाते हैं और उनके जीवित शरीर जल में घुल जाते हैं इस लिये वह गर्मजल पीने वाले मानों मांस जल पीते हैं इस के उपरान्त ठंढा जल पीने वालों के बहुधा जीव जठराग्नि में प्राप्त होकर बहुत से प्राण वायु के साथ बाहर निकल आते हैं इस लिये शीतल जल पीने वाले को तुम्हारी अपेक्षा कम पाप होता है और यदि तुम कहो कि न हम जल गर्म करतेहैं और न किसीको उसकी शिक्षा किंतु अपने लिये गर्म जल करते हैं तो भी तुम अपराध से नहीं छूट सकते क्योंकि यदि तुम

गर्मजल न पीते और न शिक्षा देते तो वे लोग जल कभी गर्म क्यों करते और यदि कहो कि पाप करने वालों को लगता है अन्य को नहीं। तो यह कथन ठीक नहीं क्योंकि चोरी करने वाला आप ही चोरी करता है परन्तु शिक्षा देने वाले अनेकों को चोर बना देते हैं। इस लिये तुम ही अधिक पापी हुये। इसके उपरांत पानी के गर्म करने में अग्नि जलाने और पानी से भाफ उड़ानेसे बहुत से जीवों को दुःख होता है इस लिये तुम्हारा कथन व्यर्थ है।

३ प्रश्न—तुम लोग भी कहते हो एक दैंत बराबर कुन्ड में अनन्त जीव रहते हैं यदि अब कोई यह प्रश्न करे कि कुन्ड का अन्त है तो उस में रहने वालों का अन्त क्यों नहीं इसका उत्तर आप न दे सकोगे।

इसी भांति तुम्हारे यहां बहुत सी बातें अयुक्त हैं इसने संक्षेपतः तुम्हारे सिद्धान्तों के दोष दिखलाये यदि सन्मुख बैठ कर वार्तालाप हो तो फिर अच्छे प्रकार तुम्हारे मत के दोष विदित हो जावें इसके उपरांत तुम्हारे मतके लोग संवाद करने में भी डरते हैं और अपने मत की पुस्तकों को भी गुप्त रखते और अन्य मत वालों को नहीं दिखाते भला जिसका रुपया अच्छा है उसको किसी के दिखलाने में क्या भेद। इस लिये तुम्हारा मत सर्वथा असत्य प्रतीत होता है।

जब यह प्रश्न लेकर एक परिडत साधू के पास गए तो वह बहुत से स्त्री पुरुषों के मध्य में बैठे उपदेश कर रहे थे तब उक्त परिडत जी ने सब प्रश्न पढ़ कर उत्तर चाहा, साधू ने कहा जब तक आप मुख पर पट्टी न बांधेंगे मैं उत्तर न दूंगा, परिडत जी ने कहा हम तो पट्टी बांधना पाप समझते हैं यदि आप पट्टी बांधना सिद्ध कर देंगे तो हम प्रसन्नता पूर्वक पट्टी बांधेंगे। यह सुनकर साधू जी उठकर चले गये और फिर १५ जौलाई को उन प्रश्नों का उत्तर स्वामी जी के पास भेजा।

उत्तर साधू सिद्धकरण जी।

जब मकान में अग्नि की ज्वाला निकलती है उस मकान के द्वार पर होकर हवा भीतर जाती है तो मकान के सब जीव मर जाते हैं जब द्वार बन्द किया जावे तो हवा की ओर से सब जीव बच सकते हैं और बाहर भी उस ज्वाला का तेज कपड़े की ओट से ठंडा होकर जाता है जैसे कि गर्म जल की भाफ बाहर होकर एक गर्म की हुई वस्तु की भाफ के निकलते समय कपड़े की ओट लगाओ तो फिर ओट से बचकर भाफ बाहर जावेगी वह फिर वैसी गर्म कभी न रहेगी आड़ा हाथ देकर देखो तो पहिले जो हाथ देगा उसका जलेगा वही जल की भाफ निकलेगी तो दूसरी ओर जो इधर उधर हाथ रहेगा वह वैसा नहीं जलेगा यह प्रत्यक्ष दीखता है दूसरे खुले मुख रखने से प्रत्यक्ष दोष

भी है अर्थात् जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से बात करने में एक दूसरे की दुर्गंध और थूक आदि एक दूसरे पर जो पड़ता है वह कपड़े बांधने से बचा रहता है। शोक है कि आप ऐसे विद्वान् ऐसा प्रश्न करते हैं। आप को भी तो वेदों की पुस्तकें खुले मुंह न बांचना चाहिये क्यों कि खुले मुंह बांचने से वह थूक आदिक के गिरने से अशुद्ध होती होंगी इस लिये आप को खुले मुंह रहना योग्य नहीं हम तो साधू हैं। बेफ़ायदा पक्षपात नहीं करते, सदा धर्म्म पूर्वक कार्य्य करते हैं।

उत्तर स्वामी दयानन्द सरस्वती।

बाहर का वायु सब पदार्थों का जीवन हेतु है बिना उस के संयोग के कोई प्राणी नहीं जी सकता और न अग्नि जल सकती है जैसे जलती हुई लकड़ी को वायु से अलग करें तो वह बुझजाती है इस लिये दीपक आदि भी बुझजाते हैं परन्तु इस के जलाने का कारण वायु है यदि न मानो तो बन्द कर देखलो यदि किसी मकान के द्वार और छिद्र बिलकुल बन्द किये जांय तो अग्नि न जलेगी। यदि एक ओर से ओट की जाय तो दूसरी ओर जहां मार्ग मिलता है वह वहां अति वेग से चल कर वही वायु के जीवों से उस का स्पर्श होता है और कपड़े की ओट से वह कभी ठन्डा नहीं हो सकता किन्तु एक ओर से रुककर दूसरी ओर से गर्म हो जाता है देखो सूरज की ओर हाथ करें तो वहां सूर्य्य की गर्मी घट जाती है और क्या जिस बर्तन में गर्म जल किया जाता है उस का मुख खुला रहने से अधिक गर्मी और आधा व चौथाई भाग बन्द करने से वायु अधिक वेग से निकल कर बाहर की वायु में नहीं फैलती और जो सम्पूर्ण मुख बन्द किया जाय तो बर्तन टूट फूट कर उड़ जावेगा क्या जिस ने अग्नि की ज्वाला के सामने आड़ की तो उस की ओर गर्मी कम होने से दूसरी ओर अधिक गर्मी नहीं होती, क्या हाथ की आड़ से किये हाथ में और कोई वस्तु हो तो वह अधिक तप्त नहीं होती और जब चारों ओर से आड़ कर अग्नि रोकी जावे तो गोलाकार हो कर ऊपर को क्यों नहीं चढ़ेगी और दूसरा हाथ भी पहले के समान जलेगा। जो वायु से शरीर वाले जीव गर्म वायु से मर जाते हैं तो क्या वैशाख ज्येष्ठ जब कि अत्यन्त लू चलती और पूष माह में जब अति शीत पड़ता है तब क्या सब जीव मर जाते हैं यह बात सृष्टि के क्रम से विपरीत होने के कारण मिथ्या है यदि ऐसा होता तो परमेश्वर सृष्टि में अग्नि सूर्य्य आदि को क्यों रचता इस लिए यथार्थ ज्ञान के लिए वेद आदि सत्यशास्त्रों को पढ़ मनुष्य जन्म को सफल कीजिए। यह बड़े आश्चर्य्य की बात है कि जीवों को अजर अमर मान कर फिर उन का मरना भी मानते हो जो तुम खुला मुख रखने में प्रत्यक्ष लिखते हो तो प्रतीत होता है कि आप प्रत्यक्ष के लक्षण आदि को नहीं जानते

इसी से किसी बड़े आदमी से बातें करने में पल्ला लगाना अच्छा समझते हो जो ऐसा है तो वैसा क्यों नहीं करते और छोटे आदमी के सम्मुख प्रति समय मुख बांधे रहते हो, क्या बड़े आदमी का थूक छोटे आदमी के साथ लग-जाना अच्छा समझते हो, क्या बड़े के मुख में कस्तूरी घुली होती है यदि बड़े छोटों का विचार है तो अपने चेलों के सम्मुख क्यों बांधे रहते हो अब किसी बड़े आदमी से बोला करो तब बांध लिया करो सदैव व्यर्थ बातें क्यों किया करते हो। बड़े आदमियों से वार्ता करने के समय पल्ला लगाने से यह प्रयोजन है कि सभा में गुप्त वार्ता करनी पड़ी है यदि मुख खुला रहे तो अवश्य अन्य मनुष्य जो निकट बैठे हों सुनलेंगे जहां कोई तीसरा मनुष्य नहीं वहां बातें करने में पल्ला नहीं लगाते, क्या तुम्हारे गुन्थ पुस्तकों के बनाने वालों ने मुख बांधकर लिखे थे हम खुले मुंह वेदों का पाठ इस लिए करते हैं क्यों कि मुंह बांधकर स्पष्ट और यथार्थ उच्चारण नहीं होता और यदि साधु बनते हैं तो उसके लक्षण क्या हैं? आप स्वार्थी हो या परमार्थी? यदि परमार्थी हो तो यह क्यों कहते हो कि हम निष्प्रयोजन नहीं बोलते। जो स्वार्थी हो तो साधु क्यों बनते हो? और यदि आपका यही नियम था तो आप हम से भ्रमण करते समय बिना पट्टी बांधे क्यों बोले थे और भोजन के समय मुख क्यों खोलते हो जब आप का धर्म सच्चा है तो किसी के सामने कहने में क्या डर? जब तुम इस छोटी बात का ही उत्तर नहीं दे सकते तो छोटे से कुन्ड में असम्भव जीव होने का कौन उत्तर दे सकता है। सत्य है कि जब से आपने वेदादि सत्य गुन्थों को छोड़कर कपोल कल्पित असत्य मत को गृहण किया है उसी समय से वेदरूपी प्रकाश से प्रथक् होकर अविद्यारूपी अन्धकार में प्रविष्ट हो गए इसी लिये ईश्वर जीव पृथिवी आदि तत्वों को यथार्थ नहीं जान सकते यदि आप यथार्थ में सत्यवक्ता हैं और आप का मत भी सत्य है तो सम्मुख आकर सत्यासत्य का यथार्थ निर्णय क्यों नहीं करते।

इसपत्रके पहुंचतेही साधूजीके छक्के छूटगये फिर उत्तर कैसा?

अन्त को उन्हों ने लोगों से स्पष्ट कह दिया कि हम तो साधू हैं हम से उत्तर नहीं बनता। इस लिखा पढ़ी और स्वामी जी के सारगर्भित उपदेशों का जैनियों पर यह प्रभाव हुआ कि उन्हों ने स्वामी जी से यज्ञोपवीत संस्कार कराने की इच्छा प्रगट की तब ६ अगस्त और १४ अगस्त सन् १८८१ को बड़े समारोह के साथ तैंतीस जैनियों ने यज्ञोपवीत धारण कर आर्य्य धर्म को स्वीकार किया-ऐसाही इन्हीं दिनों में भारत मित्र कलकत्ते ने इस समाचार को प्रकट किया है।

प्रश्नोत्तर स्वामी दयानन्द सरस्वती वा पादरी ग्रे साहब अजमेर।

प्रश्न—स्वामी दयानन्द जी—तौरेत उत्पत्ति की पर्व १ आयत २ में लिखा है कि पृथिवी वेडौल है अब देखना चाहिये कि परमेश्वर सर्वज्ञ है, सब विद्या उस में पूर्ण है. उस के विद्या के कार्य्यों में वेडौलता कभी नहीं होसकी जीव को पूरी विद्या और सर्वज्ञता नहीं है इस कारण उस के काम में वेडौलता आसकी है परमेश्वर के कार्य्य में नहीं।

उत्तर पादरी साहब—यहां वेडौल से प्रयोजन उजाड़ के हैं अयूब की किताब बाब १२ आयत २४ में लिखा है कि बिना मार्ग जंगल में जीन नहीं घूमता है यहां जिस शब्द का अर्थ जंगल है उस का अर्थ वहां वेडौल है।

प्रश्न स्वामी जी—इस से पहली आयत में यह बात आती है कि आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को सृजा। पृथिवी वेडौल सूनी थी गहराव पर अंधेरा था इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उजाड़ का अर्थ यहां नहीं लेसकते क्योंकि कहा था कि सूनी थी वेडौल के अर्थ उजाड़ के होवे तो सूनी थी इस शब्द की कुछ आवश्यकता न थी और जब कि ईश्वर ने ही पृथिवी को रचा है तो प्रथम ही से अपने ज्ञान से डौलवाली क्यों नहीं बनाई।

पादरी साहब—सब भाषाओं में एक ही अर्थ के दो शब्द एक दूसरे के पीछे हुआ करते हैं जैसाकि इब्रानी में। और फ़ारसी में वृहावाल यह सब एक ही अर्थ के वाची हैं इस प्रकार उर्दू में भी यह ठीक है कि पृथिवी वीरान और सुनसान थी।

प्रश्न स्वामी जी—वही पर्व वही आयत ईश्वर का आत्मा जल के ऊपर डोलता था, पहिली आयत से विदित होता है कि ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को रचा यहां जल की उत्पत्ति नहीं, तो जल कहां से होगया। ईश्वर आत्मस्वरूप है वा जैसे कि हम स्वरूपवाले हैं वैसा जो वह शरीरवाला है तो उसका सामर्थ्य पृथिवी और आकाश बनाने का नहीं हो सकता क्योंकि शरीरवालों के शरीर के अवयवों से परमाणु आदि को ग्रहण करके रचना में

नोट—इस पर स्वामी जी और प्रश्न करना चाहते थे कि पादरी साहब ने कहा प्रश्न बहुत आज न होसकेंगे इस लिये एक एक वाक्य पर दो २ प्रश्न उत्तर होने चाहिये स्वामी जी ने कहा यह आवश्यक नहीं कि आज ही सब प्रश्न समाप्त हो जावें वरन् जब तक हो अच्छे प्रकार विचार होता रहे और यदि यह संभव न हो तो एक वाक्य पर दश प्रश्न होनेचाहिये जब यह स्वीकार न किया तो स्वामी जी ने अन्त को पादरी साहब के कहने पर दो ही बार प्रश्न करने का नियम स्वीकृत कर दिया।

लाना असंभव है और वह व्यापक भी नहीं होसकता जब उसका आत्मज्ञान पर डोलता था तो उसका शरीर कहां था ?

पादरी साहब—जब पृथिवी को सिरजा तो पृथिवी में जलभी आगया दूसरी बात का उत्तर यह है कि परमेश्वर आत्मरूप है तौरेत के आरम्भ से इंजील के अन्त तक परमेश्वर आत्मरूप कहलाया।

स्वामी जी—ईश्वर का वर्णन तौरेत से लेकर इंजील तक बहुत ठिकानों में ऐसा ही है कि वह किसी प्रकार का शरीर भी रखता है क्योंकि आदम की वाड़ी को बनाया और वहां आना और ऊपर चढ़ जाना सनाइ पर्वत पर जा मूसा इब्राहीम और उनकी स्त्री सरह से बात चीत करना डेरे में जाना याकूब से मिल युद्ध करना इत्यादि बातों से पाया जाता है कि अवश्य वह किसी प्रकार का शरीर रखता है और उसी दम अपना शरीर बनालेता है।

पादरी साहब—यह सब बातें इस आयत से कुछ सम्बन्ध नहीं रखतीं केवल अनजानपने से कही जाती हैं इसका उत्तर यही है कि यहूदी, ईसाई और मुसलमान जो तौरेत को मानते हैं इसी पर एक सम्मति है कि खुदारूहहै।

स्वामी जी—पर्व वही आयत २६ तब ईश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें इस से स्पष्ट पाया जाता है कि ईश्वर भी आदम का स्वरूप जैसा था और जैसा कि आदम आत्मा और शरीर युक्त था ईश्वर को भी इस आयत से वैसा ही समझना चाहिये जब वह शरीर जैसा स्वरूप नहीं रखता तो अपने स्वरूप में आदम को कैसे बनासका ?

पादरी साहब—इस आयत में शरीर का कुछ कथन नहीं परमेश्वर ने आदम को पवित्र ज्ञानवान और आनन्दित रचा वह सच्चिदानन्द ईश्वर है आदम को अपने स्वरूप में बनाया अब आदम ने पाप किया तो परमेश्वर के स्वरूप से पतित होगया जैसा पहिले प्रश्नोत्तर के २४ व २५ प्रश्नों से विदित होता है।

कोलूसियों का पत्र तीसरा पर्व ६ आयत १० में है। कि एक दूसरे से झूठ मत बोलो क्योंकि तुमने पुराने फेसन को "उस के कार्य्यों समेत उतार फेंका है और नये फेसन को ज्ञान में अपने सिरजनहारे के स्वरूप के समान नये बन रहे हैं" पहना है इस से विदित होता है कि ज्ञान और पवित्रता में परमेश्वर के समान बनाया गया। और नये सिरे से हम लोगों को बनाया। कारीसियों बाब १७ आयत १८ पृथिवी आत्मा है और जहां कहीं प्रभु की आत्मा है वहां निर्बिघ्नता है और हम सब बिना परदा प्रभु के तेज को दर्पण में देख प्रभु के आत्मा के द्वार पर तेज से उस स्वरूप में बदलते जाते हैं इस से ज्ञात होता है कि विश्वासी लोग बदल के फिर परमेश्वर के स्वरूप में बन जाते हैं अथात् ज्ञान पवित्रता और आनन्द में क्योंकि धर्मी होने से मनुष्य के शरीर का रूप नहीं बदलता है।

स्वामी जी—परमात्मा के सदृश आदम के बनने से सिद्ध होता है कि ईश्वर भी शरीरवाला होना चाहिये, और जो परमेश्वर ने आदम को पवित्र और आनंद से रखा तो उसने ईश्वर की आज्ञा क्यों तोड़ी और जो आज्ञा तोड़ी तो विदित होता है कि वह ज्ञानवान नहीं था और जब उसने ज्ञान के पेड़ का फल खाया तो उसकी आंख खुल गई इस से सिद्ध होता है कि वह ज्ञानवान पीछे से हुआ जो पहिलेही से ज्ञानवान था तो फल खाने से ज्ञानवान हुआ यह बात ठीक नहीं बन सकी और प्रथम परमेश्वर ने उसको आशीर्वाद दिया था कि तुम फलो फूलो आनंदित रहो और फिर जब परमेश्वर की आज्ञा बिना उसने पेड़ का फल खाया तब उसकी आंख खुलने से उसको ज्ञान हुआ कि हम नंगे हैं और तब गूलड़ के पत्ते अपने शरीर पर पहिने, अब देखना चाहिये कि जो वह ईश्वर के समान ज्ञान और पवित्रता में होता तो उसको नंगा बरंगा रहना क्यों नहीं जान पड़ता क्या उस को इतनी भी सुध नहीं थी, उसको तो सर्वज्ञ और नित्य शुद्ध और दुःख से रहित होना चाहिये क्योंकि वह परमेश्वर के समान था और वह पतित कदापि नहीं होसका और जो वह पतित हुआ तो वह परमेश्वर के समान नहीं हुआ क्योंकि ज्ञान आदि गुणों से पतित कभी नहीं होता। फिर बतलाइये कि जैसे आदम प्रथम ज्ञानादि तीन गुणों में परमेश्वर के समान होके फिर उनसे पतित होगया वैसे ही विश्वासी लोग ज्ञानी पवित्र और आनंदित होंगे या न्यूनाधिक जो वैसेही होंगे तो फिर जैसे आदम पतित होगया वैसे ही विश्वासी भी होजायेंगे क्योंकि वह तीनों बातों में परमात्मा के समान होकर पापी होगया था।

पादरी साहब—कई बातों में पहिला उत्तर ठीक है, रहा यह कि यदि आदम पवित्र था तो आज्ञा क्यों तोड़ी। उत्तर यह है कि वह पहिले पवित्र था आज्ञा तोड़ने से पापी हुआ। फिर यह कहा कि ज्ञानवान पीछे से हुआ यह बात नहीं है जब भले बुरे के ज्ञान के पेड़ का फल खाया तब बुरा जान पड़ा पहिले न जानता था आंखें खुल गई तो उसको जान पड़ा कि मैं नंगा हूं। इस का उत्तर यह है कि पापी होकर इस को लज्जा आने लगी फिर कि यदि वह परमात्मा के समान होता तो पतित न होता। इस का उत्तर यह कि वह परमात्मा के समान बनाया गया न उसके तुल्य यदि परमात्मा के तुल्य होता तो पाप में न गिरता। अन्त में जो पूछा कि विश्वासी लोग आदम से अधिक पवित्र हो जायेंगे। इसका उत्तर यह है कि अधिक और कम पवित्र होने में प्रश्न नहीं है किन्तु स्वरूप के विषय में है कि परमेश्वर का रूप शरीर जैसा था वा नहीं। यदि वह स्वरूप जिसका कथन होता है शरीरक होता तो धर्मी लोग जब परमेश्वर के स्वरूप में नये सिरे से नहीं आते तो अपने शरीर को नहीं बदल डालते।

स्वामी जी—तौरेत का पर्व २ आयत ३ में उस ने सातवें दिन को आशीर्वाद दिया और उसे पवित्र ठहराया ईश्वर को सर्वव्यापक सर्व शक्तिमान सच्चिदानन्द स्वरूप होने से परिश्रम जगत् के रचने में कुछ भी नहीं हो सका। फिर सातवें दिन विश्राम करने की क्या आवश्यकता और विश्राम किया तो छः दिन तक बड़ा परिश्रम करना पड़ा होगा और सातवें दिन को आशीर्वाद दिया तो छः दिनों को क्या दिया। हम नहीं कह सकते कि ईश्वर का एक क्षण भी जगत् के रचने में लगे और कुछ भी परिश्रम हो।

पादरी साहब—अब समय हो चुका हम इस से अधिक नहीं ठहर सकते इसके उपरान्त जो कुछ कि हम कहते हैं उसको लिखाना भी पड़ता है जिससे देर बहुत लगती है इस लिये अब हम वार्तालाप नहीं करना चाहते यदि आप बिना लिखा पढ़ी के कार्यवाही करना चाहें तो हम वार्तालाप कर सकते हैं और यदि आप को लिख कर ही प्रश्नोत्तर करना है तो आप हमारे पास प्रश्न भेज दें हम लिखकर उत्तर देदेंगे इस पर **डाक्टर हस्वेंड साहब** के कहने पर सर्दार बहादुर अमीचन्द ने कहा मेरी भी यही सम्मति है यदि इसी प्रकार चर्चा होगी तो छः महीने में भी पूरी न होगी।

स्वामी जी—ने कहा प्रश्नोत्तर के लिखे बिना बहुत हानि है जैसे अभी थोड़ी देर के पश्चात् अपने में से कोई अपनी कही हुई बात के लिये कह सका है कि मैंने यह बात नहीं कही दूसरे इस तरह बात चीत होने में और लोगों को यथार्थ छुपाकर प्रकट नहीं कर सकते और यदि कोई छुपावे भी तो जिसके जी में जो आवे सो छुपा सका है और जो मकान पर प्रश्नोत्तर लिख २ किया करें तो उस में समय बहुत लगेगा और जो कहा गया कि इस प्रकार छः मास में पूरा न होगा सो मैं कहता हूं कि इस में छः महीने का कुछ काम नहीं है हां और जो मकान पर पत्र द्वारा करेंगे तो तीन वर्ष में भी पूरा न होगा और मनुष्य जो मेरे सामने सुन रहे हैं वे भी नहीं सुन सकेंगे इस लिये यही अच्छा है कि सब के सन्मुख प्रश्नोत्तर किये जावें और लिखाया भी जावे।

पादरी साहब—ने कहा कि आपने यह प्रश्नोत्तर करने में लोगों के सुनने का लाभ दिखाया परन्तु मैं जानता हूं कि आज की बातों को जो यहां इतने लोग बैठे हैं उन में से थोड़े ही समझे होंगे पादरी साहब की यह बात सुनकर हाफ़िज़ मुहम्मदहुसेन और बहुत से मुसलमान लोग कहने लगे कि हम कुछ भी नहीं समझे इस पर पादरी साहब ने कहा कि देखिये लिखने वाला ही नहीं समझा तो और कौन समझ सकता है इस पर—

स्वामी जी—ने जो दो दूसरे लिखने वाले थे पूछा कि तुम समझे वा नहीं उन्हों ने कहा कि हां हम बराबर समझे हमने जो कुछ लिखा है उसको अच्छे

प्रकार कह सकते हैं तब स्वामी जी ने कहा कि दो लिखने वाले तो समझे और एक नहीं समझा।

अन्त यह है कि पादरी साहब—ने दूसरे दिन शास्त्रार्थ का लिखा जाना स्वीकार नहीं किया।

स्वामी जी—ने पादरी साहब से कहा कि आज के प्रश्नोत्तर के तीन परत लिखे गये हैं उन पर आप हस्ताक्षर कर दीजिये और मैं भी करे देता हूं और प्रधान सभा से भी कराकर एक प्रति आप के पास और एक प्रधान के पास रहेगी और एक मेरे पास रहेगी।

पादरी साहब—ने कहा कि हम ऐसी बातों पर हस्ताक्षर नहीं करना चाहते इसके बाद सभा विसर्जन हुई और सब लोग अपने २ घरों को चले गये परन्तु स्वामी जी हमाराज सर्दार बहादुर अमीचन्द साहब पण्डित भागराम साहब सर्दार भगतसिंह जी के मकान पर कि जो सभा के मकान के पास था ठहरे उस समय शास्त्रार्थ की दो कापियों पर जो स्वामी जी के पास रही थीं (क्यों कि एक पादरी साहब साथ ले गए थे) इन दोनों साहबों ने हस्ताक्षर भी कर दिये और सब अपने मकानों को चले गये।

द्वितीय दिवस अर्थात् २६ नवम्बर।

२६ नवम्बर को पादरी साहब ने स्वामी जी के पास पत्र लिखकर भेजा कि आप प्रश्नोत्तर करेंगे या नहीं यदि करना हो तो कियाजाय परन्तु लिखा न जाय लिखना हो तो पत्र व्यवहार किया जाय।

स्वामी जी ने इसके उत्तर में लिख भेजा कि प्रश्नोत्तर सब के सन्मुख किये जावेंगे और लिखा भी जावेगा इस के विपरीत मुझको स्वीकार नहीं यदि आप को यह स्वीकृत न हो तो सर्दार भगतसिंह जी को लिख भेजिये कि अब शास्त्रार्थ न होगा जिस पर पादरी साहब ने प्रसन्नता पूर्वक सर्दार साहब को उक्त प्रकार लिख भेजा तब सर्दार साहब ने सब प्रबंध तोड़ दिया इसके उपरान्त स्वामी जी २ दिसम्बर को मसौदा की ओर चले गये।

इस के पश्चात् **स्वामी जी** मसौदा चले गये तो पादरी साहब ने एक दिन मिशन स्कूल में स्वामी जी के दो प्रश्नों के उत्तर सब को सुनाए कि जिससे प्रतिष्ठा बनी रहे फिर पूर्वोक्त रीत्यानुसार बाजार में उपदेश करने लगे तब बाजार के लोगों में से कई एक पुरुषों ने पादरी साहब से कहा कि आप यहां तो मूर्खों से घन्टों वार्तालाप करते हैं परन्तु जब स्वामी दयानन्द जी से प्रश्नोत्तर करते थे तब तो आपने यह कहा कि हम को इतना समय नहीं कि लिखाते जावें यदि आप स्वामी जी को अपने मत की किसी एक बात का भी निश्चय करा देते तो सहस्रों मनुष्य आप के अनुयाई हो जाते परन्तु

आप उन के आने के पीछे वृथा सिर पचाते हैं जिससे आपका कुछ प्रयोजन सिद्ध न होगा।

इस शास्त्रार्थ पर कर्नेल अल्काट साहब की सम्मति।

उपरोक्त शास्त्रार्थ से प्रकट है कि पादरी लोग भारतवर्ष में किस प्रकार हिकमत अमली से कार्य्य करते हैं। जहां तक सम्भव होता है सर्वसाधारण के सामने भारतीय विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ से बचते हैं और प्रायः कमीन और नीच कौमों में उपदेश करते हैं। पादरियों के स्कूलों और कालिजों में भी बुद्धिमान पाठक भारतीय विद्यार्थी के मत सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर देने से टाल कर कह दिया करते हैं कि हमारे निज गृह पर उपस्थित हो तो इन प्रश्नों के उत्तर दिये जा सकते हैं। जो पक्षपात रहित यूरोपियन आते हैं उन से यह बात छुपी नहीं रह सकती कि पादरियों की कार्य्यवाही को भारतवर्ष में बहुत असफलता प्राप्त हुई है और जो उदार चित्त पादरियों को दान देते हैं वह सचमुच अपने धन को व्यर्थ खोते हैं प्रायः प्राचीन इंगलैंडियन की भी यही सम्मति है।

मसौदा—इस स्थान पर बाबू बिहारीलाल ईसाई और राव बहादुरसिंह जी महाराज मसौदा से कुछ वार्त्तालाप हुआ जो निम्न लिखित है जिस के मध्यस्थ स्वामी दयानन्द जी थे।

प्रश्न रावसाहब—तुम्हारा ईमान (विश्वास) पूरा है व नहीं ?

उत्तर बाबू जी—हमारा विश्वास परमेश्वर पर है।

प्रश्न रावसाहब—तुम्हारा विश्वास पूरा है व अधूरा ?

उत्तर बाबू जी—हमारा विश्वास पूरा है।

प्रश्न रावसाहब—जो तुम्हारा विश्वास पूरा है तो इस पहाड़ को यहां से हटादो क्यों कि आप लोगों के नये अहदनामे के पर्व १० आयत २० में उपदेश करते हैं कि यदि तुम लोगों में राई बराबर विश्वास होवे तो इस पहाड़ को उठाकर दूर ले जासकते हो ?

उत्तर बाबू जी—विश्वास दो प्रकार का है उन में से आप कौनसा पूछते हैं।

प्रश्न रावसाहब—वे विश्वास कौन कौन से हैं।

उत्तर बाबू जी— प्रथम विश्वास यह है कि ईश्वर को अपना सिरजनहार समझें, दूसरा यह कि किसी की बड़ाई की ओर झुककर विश्वास करना जैसे एक मनुष्य ने कौसालस के पास आकर कुछ रुपये भेंट किये और कहा कि मुझ में यही शक्ति है उस ने कहा कि शक्ति ईश्वर की रुपये पैसे से नहीं मिलती।

रावसाहब—ने कहा कि आप उपरोक्त दोनों प्रकार के विश्वासों में से चाहे जिस विश्वास से इस पहाड़ को हटा दो यदि आप नहीं हटा सकते तो आप में राई बराबर भी विश्वास नहीं।

बाबू जी—इस प्रश्न का तात्पर्य हर एक ईसाई पर नहीं लग सकता इस लिये कि उस समय मसीह के शिष्यों ने अपना बड़प्पन पाने के लिए यह निवेदन किया तो भी उन का विश्वास प्रभु पर था और यह बात उन के बड़प्पन की थी और मसीह ने भी इस बड़प्पन पर उत्तर दिया कि अब मेरा विश्वास जैसा कि मैं पहिले कह चुका हूं प्रभु परमेश्वर पर पूरा है वह हमारा पैदा करने वाला और मुक्तिदाता है इस बात की हम अभिलाषा नहीं रखते कि हम करामाती हो जाँय।

राव साहब—प्रत्येक ईसाई का विश्वास एकसा माने वा अलग अलग जो एकसा है तो सब ईसाइयों में इस विश्वास के राई भर अंश का फल कहने मात्र से पहाड़ का हट जाना क्यों नहीं होता और परमेश्वर पर आपका पूर्ण विश्वास है तो क्यों इस विश्वास से वह सामर्थ्य नहीं और ईसा जिस विश्वास के बल से आश्चर्यजनक कार्य्य करते थे वही विश्वास आप का है जिस को आप मानते हैं वा दूसरा यदि दूसरा है तो जैसे मसीह ने आप लोगों से कपट किया कि किसी को अपना विश्वास न बतलाया और जो बताया तो उन में और आप लोगों में उस विश्वास का फल इस समय क्यों नहीं दृष्टि आता मुझ को तो यह निश्चय होता है कि ईसा मसीह में किसी को वह विश्वास पूरा प्राप्त कराने की सामर्थ्य नहीं है जो होता तो उन के साथ जो शिष्य वर्तमान थे अब उन का ही विश्वास पूरा न कर सका तो अब आप लोगों का विश्वास क्योंकर पूरा हो सकता वा करा सकता है जब ऐसा है तो तुम लोगों को ईसा मुक्ति आदि नहीं दे सकता जो आप उस के पैदा किये हुये हैं तो मरही जायेंगे क्यों कि जो पैदा होता है उस का नाश भी होता है जब नाश हुआ तो जिस पर आप विश्वास कर रहे हैं कि हम को मुक्ति देगा वह व्यर्थ हो जायगा क्यों कि मुक्ति का भोगना नाश धर्मवाला है जो नित्य सुख जो आप के मतानुसार हैं उनको कौन भोगेगा जो आप कहेंगे कि उत्पत्ति होती है नाश नहीं होता यह बात सृष्टि क्रम और विद्या विरुद्ध है कि जिस

की उत्पत्ति होवे और नाश न हो । प्रभु के पूरे विश्वास से बड़प्पन और करामात प्राप्त होती है वा नहीं जो होती हैं तो आप को उस पहाड़ का हटा देना अवश्य होगा और जो नहीं तो परमेश्वर के विश्वास में वैसा बड़प्पन नहीं रहा तो अब आप बतलाइये कि वह दूसरा विश्वास कौनसा है कि जिस से बड़प्पन और करामात सिद्ध होती है क्या परमेश्वर के विश्वास से किसी अन्य का विश्वास बड़ा है और क्या परमेश्वर से भी कोई वस्तु उत्तम है या परमेश्वर में करामात है वा नहीं जो है तो अपने ही विश्वास वा अन्य के और उसके विश्वासियों में भी ऐसा ही उचित होना है वा और कुछ जब स्वयम् ईसामसीह ने उन से कहा कि जो तुम में राई भर भी विश्वास होता तो इस पहाड़ से कहते कि यहां से चला जा तो चला जाता इस से सिद्ध होता है कि उन में राई भर भी ईमान न था तो इन्हें उस पर ईमान न करना चाहिये वा इंजील मनुष्य के विश्वास के योग्य नहीं क्योंकि सत् नहीं जो कहो कि ईसा के मरने के पश्चात् उन बारह शिष्यों का ईमान ठीक हो गया था पश्चात् इंजील बनी यह भी ठीक नहीं हो सका क्योंकि जो उस के सन्मुख अर्थात् उनको स्वयम् ईसामसीह ईमानदार बनाना चाहता और परिश्रम करता तो भी वह नहीं बन सकते थे तो पश्चात् कैसे बन सकते हैं।

बाबू जी—स्वामी जी महाराज मैं इसका उत्तर नहीं दे सका अब मैं जाता हूं फिर पादरी साहब से पूछकर उत्तर दूंगा फिर उन्हों ने उत्तर न दिया।

बम्बई में एक पादरी साहब से शास्त्रार्थ ।

३१ दिसम्बर से २ जून सन् ८२ तक जब अंतिम बार स्वामी जी बंबई में अरब के समुद्र के तट पर अपने धार्मिक कार्यों में लगे हुए थे उस समय का यह विचित्र समाचार है जिसे पढ़कर आप चकित होंगे कि सत्य के सन्मुख झूठ कितनी जल्दी गिर पड़ता है **रीवरण्ड जोस्फ कोक साहब** ने बम्बई टौनहाल में १७ जनवरी सन् १८८२ को एक व्याख्यान दिया जिस में उन्हों ने बतलाया कि केवल ईसाई दीन ही सच्चा है और परमेश्वर की ओर से है। यह सम्पूर्ण संसार में फैलेगा अन्य कोई मत परमेश्वर की ओर से नहीं है। स्वामी जी ने यह समाचार सुनकर चुप रहना उचित न समझा और पादरी साहिब के पास निम्न लिखित चिट्ठी भेजी।

(बम्बई बालकेश्वर १८ जनवरी सन् १८८२)

साहब आपने अपने व्याख्यानों में कहा है कि (१) ईसाई मत ईश्वर की ओर से है (२) यह सब भूगोल पर फैलेगा (३) और कोई मत परमेश्वर की ओर से नहीं है। मैं कहता हूं कि इन बातों में से कोई भी सच्ची नहीं है यदि

आप इन बातों को सिद्ध करने के लिये उद्यत हो और यह नहीं चाहते कि आर्यवर्त के निवासी आप की बातों को बिना प्रमाण के मान लें तो मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ आप से शास्त्रार्थ करूंगा और मैं आगामी रविवार की सायंकाल को साढ़े पांच बजे फराम्जी कावस इन्स्ट्यूट में व्याख्यान के लिये नियत करता हूं यदि यह आप को स्वीकृत न हो तो आप और कोई समय और स्थान बम्बई में नियत कर सकते हैं और चूं कि हम और आप में कोई भी एक दूसरे की भाषा को नहीं समझ सकते इस लिये यह आवश्यक है कि हमारे दोनों के मध्यस्थ एक दूसरे का प्रमाण और युक्तियों का अनुवाद करके सुनाते जावें और एक संक्षेप लेखक नियत किया जावे कि वह दोनों की कार्यवाही लिखता जावे और उस पर दोनों के हस्ताक्षर कराये जावें और यह शास्त्रार्थ उन प्रतिष्ठित पुरुषों के सन्मुख होगा जिन को दोनों पक्षवाले अपनी ओर से लायेंगे जिन तीन चार के हस्ताक्षर उस कार्यवाही पर होंगे फिर वह कार्यवाही छपाकर प्रकाशित की जायगी जिस से पाठकगण जानलें कि ईश्वरीय धर्म कौन है।

दयानन्द सरस्वती।

इस चिट्ठी का अंग्रेजी में अनुवाद कर्नैल अल्काट ने कर और स्वामी जी के हस्ताक्षर करा पादरी साहब के पास भेज दिया।

उत्तर बनाम कर्नैल अल्काट २० जनवरी सन् १८८२ ई० मैं इन चैलेंजों को स्वीकार नहीं करता क्योंकि इन का अत्यन्त प्रयोग कुफ्र (अधर्म) फैलाने का है (देखो थियोसोफिस्ट का ओड़पत्र फर्वरी जिल्द ३ नं० ५) इसके उत्तर आने के पश्चात् स्वामी जी ने २२ जनवरी इतवार सायंकाल के साढ़ेपांच बजे फराम्जी कावस इन्स्ट्यूट में कई सहस्र मनुष्यों के बीच ईसाई मत का प्रबल युक्तियों से खंडन किया जिस के कारण सम्पूर्ण बम्बई में ईसाइयों की पोल की सर्वत्र चर्चा होने लगी और उसी दिन कर्नैल अल्काट ने भी अंग्रेजी में ईसाई मत खण्डन के विषय में व्याख्यान दिया।

धर्म—चर्चा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती और फादर कानरीड साहब ओसी, बाय, बिरेट, विशप, सेट, पीटरसन, रोबन कैथोलिक साहब की चर्चा आगरा में स्वामी जी नास्तिक लोग उत्पन्न करनेवाले को नहीं मानते यदि हम और आप और अन्य धर्म के बुद्धिमान लोग मिलकर सब मतों में जो सत्य बातें हों उनका विचार कर जिन पर सब लोग एक होजावें तो नास्तिकों को प्रबल युक्तियों से आस्तिक बना सकते हैं। और जिस से सब को विशेष लाभ है ऐसी लाभदायक बातों में हम आप और सब को मिलकर काम करना चाहिये।

बिशप साहब—यह कार्य अत्यन्त कठिन है क्योंकि मुसलमान और

ईसाई मांसाहारी हैं, सब का बनाने वाला अवश्यमेव है परन्तु उसकी आकृति किसी ने नहीं देखी और न वह बोलता है इस लिये उसने अपना एक स्थानापन्न धर्म का बतलानेवाला संसार में भेजा जिस प्रकार मलिका विक्टोरिया अन्य मनुष्यों की सहायता के बिना भारतवर्ष का राज नहीं कर सकी इसी प्रकार परमेश्वर बिना सहायता ईसामसीह के संसार का प्रबन्ध नहीं करसका।

स्वामी जी—पहिले तो जो उदाहरण आप ने राजा और प्रजा का दिया है यह ठीक नहीं क्योंकि जीव और परमेश्वर का ऐसा संबन्ध नहीं है पहिले परमात्मा के गुण कर्म स्वभाव का वर्णन होना आवश्यक है, परमात्मा सर्वज्ञ है और सर्वत्र विद्यमान है नाश रहित अविनाशी सर्वशक्तिमान इत्यादि कहकर कहा कि उपरोक्त गुणवाले परमेश्वर को किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं वरन् स्वयम् प्रबन्ध करसका है और दूसरे की सहायता की उसको आवश्यकता नहीं। यदि हम मान भी लें कि ईसा कोई सज्जन पुरुष थे तो वह एक पुरुष थे परन्तु परमात्मा न्यायाधीश है वह एक मनुष्य के अनुरोध से अन्याय नहीं करसका अर्थात् जैसा जिसका कर्म होगा उस को वैसा ही फल देगा यह असम्भव है कि परमात्मा किसी के अनुरोध से कर्मानुसार फल न देवे इस लिये परमेश्वर को अपने स्थानापन्न भेजने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि वह स्वयम् सर्वज्ञ सब कार्यों का अधिष्ठाता और द्रष्टा है।

बिशप साहब—क्योंकर प्रबन्ध कर सका है?

स्वामी जी—शिक्षा अर्थात् ज्ञान से।

बिशप साहब—वह पुस्तक ज्ञान की कौनसी है?

स्वामीजी—चारों वेद।

बिशप साहब—क्या अठारह पुराण भी धर्म पुस्तक हैं?

स्वामी जी—नहीं।

बिशप साहब—चारों वेद कैसे आये परमेश्वर ने किसे दिये किसने संसार में पहिले समझाये?

स्वामी जी—अग्नि वायु आदित्य अंगिरा इन चारों ऋषियों के आत्माओं में ईश्वर ने वेदों का ज्ञान दिया उन्हों ने समझाया।

बिशप साहब—वेद परमेश्वर की ओर से नहीं किंतु वेद का बनाने वाला एक ब्राह्मण है जिस का नाम इस समय स्मरण नहीं रहा?

स्वामी जी—ऐसा नहीं वेद सृष्टि की आदि में परमात्मा ने प्रकाश किये किसी ब्राह्मण ने नहीं बनाये वरन् वेद के पढ़ने से मनुष्य ब्राह्मण बन सका है और जिसने वेद को न पढ़ा वह कदापि ब्राह्मण नहीं होसका।

बिशप साहब—वह चारों मरगये या जीवित हैं ?

स्वामी जी—मर गये हैं।

बिशप साहब—उनके पीछे उनका स्थानापन्न कौन हुआ और अब कौन है ?

स्वामी जी—उन के पश्चात् यथुधा ऋषिजन उन के स्थानापन्न होते रहे जैसे ६ शास्त्रों के कर्ता ६ ऋषि उपनिषदों वा ब्राह्मणों के कर्ता ऋषि मुनि लोग इन के अतिरिक्त हर एक समय में जो ऋषियों के नियत नियमों का पालन करे शुद्ध आचारी हो वह स्थानापन्न होसक्ता है परन्तु आप बतलायें कि ईसा के पश्चात् आप के यहां अब तक कौन हुआ ?

बिशप साहब—हमारे यहां ईसा के पश्चात् पोप रूप अर्थात् जब से उच्च श्रेणी के पादरी जो परमेश्वर का नायब माना जाता है और जो कुछ भूल हम लोगों से होती है उस का सुधार पोपरूप करते हैं।

स्वामी जी—और जो भूल पोपरूप से हो उसका सुधार किस प्रकार हो सक्ता है आप को पोप के अन्याय और धार्मिक उपद्रव जो लूथर के पूर्व और उस के समय में होते थे और बहुधा अब भी हो रहे हैं आप उनको अच्छे प्रकार से जानते होंगे और इसी प्रकार ईसाइयों की आदि सभाओं का विवरण या मत संबन्धी उपद्रव वा कतल भी आप से छुपे हुए न होंगे। इनका संशोधन वह पोप जो स्वयम् इन रोगों में फंसा हुआ है कर सक्ता है यह बात ठीक वैसी ही है जैसे हमारे पौराणिक महाशयों की गप्पें।

बिशप साहब—इस का कोई उचित उत्तर न दे सके और चलेगये।

स्वामी जी के शास्त्रार्थ का फल।

१३ ईसाइयों ने ईसाई मत को घृणित जान कर छोड़ दिया और सनातन आर्य्य धर्म को स्वीकार किया।

(देश हितैषी अजमेर जि० २ नं० ३)

मिस्टर दारजन लूथर ने जो कि रुड़की ईसाई अनाथालय में पाठक थे ईसाई मत त्याग कर अपने परिवार सहित आर्य्य धर्म को ग्रहण किया।

(आर्य्य समाचार मेरठ जि० २ नं० ३)

पश्चिमोत्तर देश के पुलिस गजट में प्रकाशित हुआ कि जानमेन्ट गुमरी मिसरदन साहिब इन्सपेक्टर ने आर्य्य धर्म स्वीकार करके अपना पूर्व नाम मुन्नलाल रक्खा।

थियोसाफीकल सुसाइटी और स्वामी दयानन्द सरस्वती।

जिस साल स्वामी जी ने बम्बई में आर्य्यसमाज स्थापित किया था उसी साल अमेरिका के अन्तर्गत न्यूयार्क देश के निवासियों ने ईसाई मत की शिक्षा से "जो ईश्वरीय नियम और बुद्धि के विरुद्ध है" अशान्त होकर अपनी आन्तरिक उदासि और देश का अन्धकार दूर करने के लिये सन् १८७५ ई० में थियोसाफीकल सोसाइटी के नाम से एक सभा नियत की। कुछ काल तक यह सभा आनन्द पूर्वक कार्य्य करती रही उस के पश्चात् सभासदों में परस्पर झगड़ा होगया और सन् १८७८ ई० में इस के चलाने वाले केवल कर्नैल अल्काट और मेडम ब्लिवट्स्की ही थे। इस कारण यह अति दुर्बल थी। इस समय तक इस सभा का स्वामीजी को नाम भी ज्ञात न था। इन्हीं दिनों जब स्वामी जी बम्बई में व्याख्यान देरहे थे तो बहुत से अमरीकन उन के व्याख्यान को सुनने के लिये आते थे जब वह अमरीका पहुंचे तो उन्हों ने स्वामी जी का वृत्तान्त मिस्टर अल्काट से वर्णन किया। उस पर मिस्टर अल्काट ने अपनी सभा का वृत्तान्त लिखकर बाबू हरिश्चंद चिन्तामणि प्रधान आर्य्यसमाज बम्बई को भेजा। और उक्त बाबू साहिब ने इस पत्र के उत्तर में स्वामीदयानन्द सरस्वती और आर्य्यसमाज का वृत्तान्त लिखा। इसके उत्तर में मिस्टर अल्काट ने लिखा कि मुझको आर्य्यसमाज और अपनी सभा का सिद्धान्त एक ही ज्ञात होताहै थोड़े दिनों पीछे हरिश्चन्द्र चिन्तामणि थियोसाफीकल सुसाइटी के सभासद् बन गये और उनके द्वारा कर्नैल अल्काट ने स्वामी जी से पत्रव्यवहार आरम्भ किया उन का कथन है कि मेडम बिलवट्स्की ने उन्हें यह प्रतीत कराया कि स्वामी दयानन्द उन महात्माओं में से हैं जो हिमालय पर्वत पर रहते हैं। कर्नैल अल्काट के पत्रों से विदित होता है कि वह वेदों की बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं और स्वामी दयानन्द को अपना गुरू मानते हैं वह लिखते हैं कि मेरा सिद्धान्त नास्तिकता को दूर करने और वेद विद्या के प्रचलित करने का है। कर्नैल अल्काट अपने पत्र १८ फर्वरी सन् १८७८ ई० में स्वामी जी को लिखते हैं कि तीन वर्ष व्यतीत हुए कि हम कई एक मनुष्यों ने मिल कर एक थियोसाफीकल सभा नियत की है सभासदों की इच्छा है कि आप से सत्य विद्या का अनुभव ज्ञान प्राप्त करें जब हम ने ईसाई धर्म में कोई ऐसी बात न पाई जो बुद्धि द्वारा शांतिदायक हो तब उस से विरोध कर पूर्व की ओर ध्यान दिया है हम बच्चों की भांति आप के चरणों पर गिरते हैं आप बतलाइये हम क्या करें जिस से सम्पूर्ण ईसाई देश में वेद विद्या का प्रचार होजावे हमारी इच्छाहै कि वेद और शास्त्रके सत्य अनुवादजो बुद्धिमान्पण्डितों द्वारा निर्मित हों छपवाये जावें और हम आपको शिक्षा मानने के लिये सन्नद्ध हैं। इसके अतिरिक्त कर्नैल अल्काट साहब और मेडम बिलवट्स्की ने अपनी

चिट्ठियों में आर्य्यसमाज को रुपये और पुस्तकों से सहायता करने की प्रतिज्ञा की उन्होंने भारतवर्ष में अपनी सुसाइटी के प्रवेश का कर १०) नियत किया और यह पूंजी आर्य्यसमाज के व्यय के लिये दी मेडम साहब ने ५०० भिन्न २ पुस्तकें बाबू हरिश्चन्द चिंतामणि के पास भेज कर लिखा कि यदि मैं दैवयोग से मार्ग में मृत्यु को प्राप्त होजाऊं तो यह सारी पुस्तकें आर्यसमाज की किसी लाइब्रेरी में दे देना इसके साथ ही उन्होंने अपनी सुसाइटी का नाम थियोसाफीकल सुसाइटी........रक्खा है निदान इसी तरह के पत्र व्यवहार परस्पर होते रहे स्वामी जी ने २१ अप्रैल सन् १८७८ ई० को उपरोक्त चिट्ठी का उत्तर दिया फिर २६ जौलाई सन् १८७८ को यह लिखा कि परमेश्वर का धन्यवाद है कि जिसकी कृपा से अमरीका वालों के साथ सम्बन्ध होने वाला है और जिस प्रकार ईश्वर एक है उसी प्रकार सब मनुष्यों का धर्म भी एक ही होना उचित है इस हेतु एक ईश्वर की उपासना करना और आज्ञा माननी पक्षपात का त्याग धर्म का ग्रहण आत्मा से प्रीति करनी सब मतों की सत्य बातों को मानना इत्यादि सब के सुख इनके अतिरिक्त छल अविद्या अधर्म इत्यादि दुखदाई हैं मनुष्य को उचित है कि सुखदाई गुणों का ग्राहक हो और दुखदाई को त्याग दे ईश्वर को कोटानिकोट धन्यवाद है कि उसने आप सरीखे सज्जन पुरुषों को वेद में जो सत्य विद्या का भण्डार है, प्रीति उत्पन्न करदी सब मनुष्यों को ईश्वर की उपासना करनी योग्य है जिसका व्योरेवार वृत्तान्त ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिख दिया है इस पत्र में भी संक्षेपतः स्वामी जी ने वेद मन्त्रों की साक्षी देकर ईश्वर प्रार्थना और उपासना की युक्ति लिख दी और आप जो हम से शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं वह परमार्थ व्यवहार विषय में है वह मैं पत्र द्वारा लिखने में असमर्थ हूं यह मेरी बनाई पुस्तकों में संक्षेप रूप से लिखे हैं वेद शास्त्र में पूर्णतयः रीति से लिखे हैं इसी हेतु मैंने हरिश्चन्द चिन्तामणि को लिख दिया है कि वह आर्य उद्देश्य रत्नमाला का अंग्रेजी में अनुवाद कर के कर्नैल अल्काट साहब को भेज दें जिसकी पहुंच उनकी पांच जून की चिट्ठी से विदित होती है थियोसाफीकल सुसाइटी वाले स्वामी जी के सिद्धान्तों को पूर्णतयः जानते थे और बहुत विचारांश के पीछे उन्होंने स्वामी जी को अपना गुरु माना जिस समय वह हिंदुस्तान में आये तो उन्होंने इन्डियन स्पेक्टेटर नामी समाचार पत्र में स्पष्ट प्रकट कर दिया कि हम न तो बुध और न ब्राह्मणी शिक्षा को मानते हैं हमारा सिद्धान्त वही है कि जो पण्डित स्वामी दयानन्द कर रहे हैं शनैः २ कर्नैल अल्काट साहब और मेडम बिलवट्स्की और कई एक सभ्य पुरुष सन् १८७९ की आदि में बम्बई आये और वहां आते ही अपनी सुसाइटी नियत की इन दिनों स्वामी जी हरिद्वार के मेला कुम्भ पर प्रचार का कार्य कर रहे थे कर्नैल साहब ने तार द्वारा स्वामी जी को अपने आने की सूचना दी और कुम्भ पर पहुंच कर दर्शन

करना चाहा स्वामी जी ने उत्तर दिया कि यहां विशूचिका रोग फैलने का डर है आप यहां न आइये दैवयोग से स्वामी जी हरिद्वार में रोग ग्रसित हो गये तब वहां से देहरादून को स्वास्थ्य प्राप्ति के लिये जाना पड़ा जहां प्रथम बार कर्नैल अल्काट साहब को स्वामी जी से भेंट हुई आर्यसमाज की ओर से बड़े आदर सत्कार किये तदुपरांत कर्नैल साहब बम्बई और स्वामी जी छलेसर पधारे भेंट समय दोनों को प्रतीत हो गया था कि वह एक दूसरे के सिद्धांत को सत्य समझते हैं एक पत्र स्वामी जी ने ८ मई सन् १८७९ ई० को मन्त्री आर्य समाज के नाम भेजा उसमें स्वामी जी लिखते हैं कि कर्नैल अल्काट और मेडम बिलवटस्की से हमारा १ मई को सहारनपुर में समागम हुआ दोनों बड़े बुद्धिमान और सज्जन प्रतीत होते हैं-व्याख्यान भी हुए-थ्योसाफीकल सभा ने सब पर विदित कर दिया कि सब सत्य विद्याओं का भण्डार वेद ही है जितने मत वेद विरुद्ध हैं सब असत्य हैं बम्बई में आकर अल्काट साहब ने थियोसाफिस्ट एक मासिक पत्र अङ्गरेजी भाषामें मुद्रित किया उससे प्रतीत होता था कि इस मासिक पत्र के द्वारा वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार अन्य देशोंमें होगा परन्तु थोड़े ही दिनों में ज्ञात हुआ कि थियोसाफीकल सुसाइटी उन मिथ्या जालों को देश में फैलाना चाहती है जिनको स्वामी दयानन्द सरस्वती जड़ काट रहे हैं परन्तु कोई मनुष्य इस बात से इनकार नहीं कर सका कि वह आर्य नकलचर का एक लायक शोमोपयम है और अपने देश की तन मन धन अर्पण करने वाला शुभचिंतक है इसके लिये हमारे सम्बन्ध की परवाह करनी इतनी आवश्यकीय नहीं है जितनी कि भारतवर्ष की शुभचिंतकता की जब ऐसी बातें उनकी मासिक पत्रिका में छपने लगीं तब स्वामी जी ने कर्नैल अल्काट जी को बहुत कुछ इस विषय में लिखा परन्तु वहां से स्पष्ट उत्तर न मिला वरन् यह लिखा कि हम शीघ्र आपको मिलेंगे उसी समय सब वार्ता का न्याय होजायगा दूसरी बार बनारस में १५ दिसम्बर सन् १८७९ ई० को जब कर्नैल अल्काट और मेडम बिलवटस्की जी से भेंट हुई इस समय तक परस्पर कुछ विरुद्धता न थी परन्तु तीसरी बार ६ सितम्बर सन् १८८० को जब कर्नैल साहब और लेडी साहब शिमला जाते हुए स्वामी जी को मेरठ में मिले तो इन का सारगूढ़ तत्व प्रकट होगया वार्तालाप से मालूम हुआ कि वह परमेश्वर का होना नहीं मानते स्वामी जी ने ईश्वर विषय में बहुत समझाया परन्तु वह नहीं समझे बम्बई आर्यसमाज के बहुत सभासदों को तोड़ लिया यहां तक कि इसकी चर्चा स्वामी जी के कान तक पहुंची तब स्वामी जी को बम्बई अवश्य जाना पड़ा वहां जाकर कर्नैल अल्काट साहबको ईश्वर विषयक वार्ता पर आरूढ़ करते रहे परन्तु उन्होंने स्वीकार न किया। सन् १८८२ ई० के मार्च मास के अंत में स्वामी जी ने कर्नैल अल्काट और मेडम बिलवटस्की जी के नाम एक पत्र भेज कर लिखा कि मेरठ में ज्ञात हुआ कि आप लोगों को ईश्वर

के होने में सन्देह है इस कारण आपकी और हमारी मित्रता हो चुकी आप बहुत ही शीघ्र मेरे पास आकर या मुझे बुलाकर इसका निर्णय करलें मैंने बम्बई आते ही इसका निर्णय करना चाहा था इस पत्र के पहुंचते ही कर्नेल अल्काट जैपुर चले गये थे तब स्वामी जी ने लेडी जी को फिर लिखा कि २७ मार्च तक इसका निर्णय न कर लिया तो २८ मार्च को फाम्जी हाल में व्याख्यान देकर सारा वृत्तांत सर्व साधारण पर विदित करदूंगा नियत समय पर लेडी जी भी न आईं तब स्वामी जी ने अपने एक व्याख्यान में थियोसाफीकल सुसाइटी का सारा वृत्तान्त कह सुनाया और थियोसोफिस्टों की गोलमाल पोलखाल के नाम से एक छोटा सा ट्रैक्ट बांट दिया और इसका अनुवाद वहां के अंगरेजी और गुजराती समाचार पत्रों में भी छपवा दिया।

थियोसोफिस्टों की गोलमाल का ब्योरा।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती को इन के प्रथम पत्र व्यवहार और बातों से ज्ञात हुआ था कि यह भारतवर्ष का उपकार करेंगे क्योंकि इन्होंने पहिले लिखा था कि थियोसाफीकल सुसाइटी आर्यसमाज में सम्मलित हो गई और हम वेदोक्त सनातन धर्म के ग्रहण करने और संस्कृत विद्योपार्जन के निमित्त विद्यार्थी बनकर आते हैं और यह भी कहा था कि इस सुसाइटी के सभासदों से जो फीस मिलेगी वह आर्यसमाज के लिये होगी और बहुत सी पुस्तकें भेंट देंगे। इन में से इन्होंने अपना एक भी वचन पालन न किया परन्तु हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के पास जो ७००) रुपये भेजे थे वह भी इस लिये पुस्तकों का देना तो अलग रहा सहस्रों रुपया उनके आदर सत्कार में व्यय होगया इस पर भी यह नहीं कहते रहे कि हमने स्वामी जी को सहायता की। पहिले उन्होंने यहां आने पर ईश्वर को माना फिर मेरठ में स्वामी जी और कई प्रतिष्ठित पुरुषों के सन्मुख न माना और स्वामी जी से वादानुवाद पर भी आरूढ़ न हुए पहिले जब बम्बई में आये तो इण्डियन स्पेक्टेटर में मुद्रित किया कि हम बौद्ध और ईसाई धर्म के मानने वाले नहीं हैं और न पौराणिकों के मानने वाले ब्राह्मण हैं हमारा सिद्धान्त वही है जो स्वामी दयानन्द का है और उसके विरुद्ध विज्ञापन दिया कि यहां हम अट्ठारह वर्षों से बौद्ध मत को मानते थे और अब भी मानते हैं निदान इसी प्रकार जितनी प्रतिज्ञा की थी एक पर भी आरूढ़ न रहे यह इनका मिथ्या जाल नहीं था तो क्या था जब इस प्रकार की बातें स्वामी जी ने देखीं तो मेरठ आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में व्याख्यान दिया कि इनकी सुसाइटी में किसी आर्य को सम्मिलित होने की आवश्यकता नहीं क्योंकि इस सुसाइटी के सिद्धांत आर्यसमाज के विरुद्ध हैं। जब स्वामी जी बम्बई पधारे तब आर्यसमाज ने एक विज्ञापन मुद्रित कराया कि पहिले आर्यसमाज और थियोसाफीकल सुसाइटी का क्या सम्बन्ध था और अब क्या है? इस विषय पर स्वामी

जी व्याख्यान देते तब भी अल्काट इत्यादि में से किसी ने कुछ वार्ता न की और स्वामी जी के व्याख्यान देने पर अपने समाचार थियोसाफिस्ट में लिखते हैं कि उस से पिछे कहे स्वामी जी ने व्याख्यान दिया यह सुसाइटी भूत प्रेत इत्यादि को भी मानती है स्वामीजी ने सब के सन्मुख उनकी पोल खोलदी जो चिट्ठी पादरी कोक साहब के नाम लिखी गई वह अल्काट साहब के हाथ से स्वामीजीने लिखवाई थी उसमें यह भी लिखा था कि कौनसा धर्म ईश्वरसे अधिक प्रेम रखता है यह स्वामी जी के मत के विरुद्ध था इस कारण अल्काट साहब से यह शब्द कटवा दिया गया और उस जगह लिखवाया गया था कि जब आप का और मेरा वादानुवाद होगा तो सर्व साधारण पर विदित हो जायगा कि कौन सा धर्म ईश्वर की ओर से है और कौनसा नहीं. इस पर भी उन्हों ने इस शब्द को अशुद्ध छाप दिया यद्यपि उनको ऐसा उचित था कदापि नहीं इधर लिखते हैं कि थियोसाफिस्ट के मानने वालों से फीस नहीं ली जाती उधर (१०) फीस लिये जाते हैं बुद्धिमानों पर प्रगट हो गया होगा कि इन की सुसाइटी और इन के साथ आर्यावर्त और आर्यसमाजों की बड़ी हानि है नहीं मालुम कि इन लोगों का सिद्धान्त क्या है जब यह नास्तिक और स्वार्थी आदमी हैं तो आर्यसमाजिक पुरुषों को उनका त्याग ही करना उचित है उनकी चतुरता का कहां तक वर्णन किया जाय पहिले स्वामी जी का नाम लेते थे जब स्वामी जी इनके फंदे में न फंसे तो कोट हौमीसिंह लाल का नाम लेते हैं कि जिस को न किसी ने देखा न पहिले सुना था और यदि इससे भी काम न चलेगा तो जोधपुर हौमीसिंह नाम लेंगे और कहते हैं कि इनके द्वारा खोई हुई वस्तु मिल जाती है यदि मिल जाती तो कर्नैल अल्काट और मेडम ब्लिवट्स्की ने जब उनके पत्र बम्बई में चोरी गये तो पुलिस में क्यों रिपोर्ट दी कोट हौमी के द्वारा क्यों न मंगवा लिये यह बातें उन के असत्य को प्रतिपादन करती हैं इस हेतु उन से पृथक् रहना ही लाभदायक है जब स्वामी जी ने बम्बई में व्याख्यान दिया और ढूंढ़ ढांढे तो थियोसोफिस्टों की पूरी २ पोल खुल गई तो वह सीधे मद्रास चले गये बहुत से अंग्रेज उनकी बातों से अचम्भित हो रहे थे जब उन्हों ने सुना कि स्वामी दयानन्द नामी एक विद्वान् ने थियोसोफिस्टों की पोल खोल कर भगा दिया तो बहुत से प्रतिष्ठित अंग्रेज कर्नैल जनरैल उन के दर्शन को आये और दर्शन कर उनकी वीरता को देख अति प्रसन्न हुए मेडम ब्लिवट्स्की के लेख से जो उन्हों ने अपनी पुस्तकों (१) फ्रामदी, क्यूनाल, जगलाफ, हिन्दुस्तान (२) रूलसबीलड में लिखा सिद्ध होता है कि उन्हों ने स्वामी जी के उपदेश को भारतवर्ष में आने से प्रथम ही समझा था किन्तु वह इस के बड़े उत्साही थे कर्नैल अल्काट इत्यादि स्वामी जी के सिद्धान्तों के विरुद्ध अपने पत्र समाचार थियोसाफिस्ट में लेख लिखते रहे परन्तु स्वामी जी की बुराई इस में कदापि न होती किन्तु उनका नाम प्रतिष्ठा के साथ लिया जाता

इसी समाचार पत्र के सम्पादक के लिखने पर स्वामी जी ने अपना हस्तलिखित जीवन चरित्र उस में मुद्रित कराया बहुत दिनों तक इन के वेद का नोटिस छपता रहा जब स्वामी जी ने सुसाइटी से संबंध तोड़ दिया तो कर्नल अल्काट प्रेसीडेण्ट थियोसाफीकल सुसाइटी ने सभ्यतापूर्वक अपने हस्ताक्षरों से निम्न लिखित नोटिस मुद्रित कराया।

पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामी जी के विरोधियों को हम प्रथम ही से सूचित किये देते हैं कि हमारे थियोसाफिस्ट समाचार पत्र में किसी मनुष्य का कोई लेख जो स्वामी दयानन्द सरस्वती या आर्य्यसमाज के विरुद्ध होगा मुद्रित नहीं किया जायगा जब हम अपने झगड़ों को प्रकाशित नहीं करते तो दूसरे के झगड़ों को मुद्रित कराना हमारा धर्म नहीं है हमको इस बात का शोक है कि ऐसा बड़ा विद्वान् हमारे विषय में भ्रम में पड़ कर रुष्ट होजाय परन्तु थोड़े ही दिनों बाद स्वामी जी के विरुद्ध विज्ञापन उनके समाचार-पत्रों थियोसाफिस्ट में मुद्रित हुए। और अंत मार्च सन् १८८३ ई० के समाचार पत्र में मिस्टर एओहोम साहब ने बड़ी आधीनता के साथ एक लेख इस प्रकार लिखा कि मैं इस योग्य नहीं कि स्वामी दयानन्द की रज के बराबर होसकूं और वेदों के ईश्वरीय वाक्य होने पर शंका करके लिखा कि स्वामी जी की शिक्षा से कि वेद ईश्वरीय वाक्य है देश की अवनति होती है किसी ने इस लेख का अनुवाद भारतमित्र कलकत्ता में हिंदी भाषा में और इंजीनिट्रर आफ आर्यावर्त्त में अंग्रेजी भाषा में दिया कि जिसका अनुवाद निम्न लिखित है।

आप के समाचार पत्र संवत् १९४० में किसी ने वेदों पर शंकायें की हैं लिखने वाले ने लिखा है कि वेद ईश्वरीय वाक्य नहीं हैं परन्तु उसने अपनी इतनी ही सम्मति प्रकट की है और उसको किसी तर्क से प्रतिपादन नहीं किया अगर वह वेदों में किसी मंत्र पर तर्क करता तो तुरन्त ही उसका उत्तर दिया जाता परन्तु उस के इतने कथन से वेदों में कुछ दोष नहीं आसक्ता जैसे कोई कहे कि इस थैली में १०००) खोटे भरे हैं तो उसका उत्तर सिवाय इस के कुछ नहीं होसक्ता कि जब तक रुपयों को खोटा सिद्ध न किया जावे हम तुम्हारा कहना नहीं मान सकते यही दशा मिस्टर ओहोम और उस मनुष्यकी है कि जिसने उस चिट्ठी को भारत मित्र में मुद्रित कराया है दोनों महाशयों को उचित था कि वह स्वयम् किसी मंत्र के अर्थ लिखकर वेद के मंत्र और अध्याय की साक्षी देकर सिद्ध करते कि वेद दोष रहित ईश्वरीय वाक्य नहीं है ऐसी दशा में उन के आक्षेप ठीक थे यदि अब भी उन को अपनी शंकाओं का समाधान करना है तो वह ऐसा ही करें नहीं तो उनकी सब शंकायें व्यर्थ हैं यदि वह सच मुच वेदों के विषय को समझना चाहते हैं तो मेरी बनाई हुई वेद भाष्य की भूमिका के देखने से सब बातें भली प्रकार प्रगट होजायंगी अगर इस पर भी वह सन्तुष्ट न हों तो मुझ से मिलकर वह अपनी शंकाओं

का समाधान कर सकते हैं क्योंकि चिट्ठी पत्री में एक तो समय व्यर्थ होगा दूसरे वेद भाष्य के मुद्रित कराने के कारण मुझे अवकाश भी नहीं है यदि मिस्टर ह्यूम वेदों पर तर्क कर सकें हैं तो वह समाचार पत्र में मुद्रित करें और मेरे वेद भाष्य से कोई ऐसा मंत्र लेलें जिसमें उन्हें शंका हो और उसका अर्थ लिख कर उस शंका को प्रगट करें फिर मैं ऐसी तर्कों का उत्तर वहीं समाचार पत्र में पूर्ण रूप से दूंगा यदि थियोसाफीकल सुसाइटी के मेम्बर निर्योभी तर्क करें तो उन से कुछ प्रयोजन नहीं क्योंकि वह आप ही बोधमत के चेले हैं और भूत चुड़ैलों को मानते हैं सच है जोकि एक सच्चे ईश्वर को छोड़ेंगे वह कोरा होमीलाल जैसी कल्पनाओं में फँसेंगे, समाचार पत्रों में बहुत से नोटिसों में मुद्रित है कि कर्नेल अल्काट ने अनगणित अनहोनी बातें दिखाई अगर यह सत्य है तो वह मेरे सन्मुख किसी रोगी की दया करके उन नोटिसों की सचाई का विश्वास करावें मैं थियोसाफीकल सुसाइटी को बड़ा धन्यवाद दूंगा अगर वह ऐसे किसी रोगी मनुष्य को जिसको मैं बतलाऊं चंगा करें मैं पूर्ण विश्वास से कहता हूं कि मेरे सन्मुख उसकी वही दशा होगी जो उस के चेले की लाहौर में हुई मैं सुसाइटी को चेलेंज देता हूं कि वह मुझे अपनी विद्या की सिद्धियां बताये कि उनकी योग की सिद्धियां जो अब तक मुझे दृष्टिगोचर हुई वह विश्वास के योग्य नहीं उन्हों ने कोई नवीन बात नहीं सीखी यह सब उन का भ्रम है।

आर्य्य सन्मार्ग समदर्शनी सभा कलकत्ता और श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती।

जब स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदों का प्रचार करना चारों ओर प्रारम्भ करदिया तो पण्डित लोगों को भय उत्पन्न हुआ कि अब हमारी पौराणिक शिक्षा का पता न रहेगा इस कारण उन्हों ने अपने अभिप्राय के सिद्ध करने के लिये अनेक उपाय किए और उन में एक उपाय यह सोचा कि यदि सम्पूर्ण भारत के प्रसिद्ध पण्डित यह निश्चय करदें कि जो कुछ स्वामी दयानन्द जी का उपदेश है वह वेद विरुद्ध और अमाननीय है तो अवश्य कार्य्य सिद्ध होजावेगा इस कारण उन्होंने २२ जनवरी सन् १८८१ ई० को कलकत्ते में एक सभा की जिसके प्रधान पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न थे और जिसमें लगभग ३०० के भारत के भिन्न २ प्रान्तों के पण्डित उपस्थित थे। उक्त पण्डित ने सभा का अभिप्राय सुनकर निम्न लिखित प्रश्न किये:—

(१) वेद का संहिता भाग जिस प्रकार माना जाता है उसी प्रकार ब्राह्मण भाग भी माननीय है वा नहीं और मनुस्मृति धर्मशास्त्र की नाई अन्य स्मृतियां माननीय हैं या नहीं ?

इसका उत्तर पं० रामस्वरूप जी ने इस प्रकार दिया कि यजुर्वेद संहिता में लिखा है कि "यद्वै किञ्चन मनुरवदत् तद् भेषजम्" अर्थात् जो कुछ मनु ने लिखा है वह माननीय है, इस वेद वचन के अनुसार सम्पूर्ण मनुस्मृति मानने योग्य है। यदि सम्पूर्ण मनुस्मृति न मानी जावे तो इस मन्त्र में जो किञ्चन शब्द आया है कि जिसके अर्थ जो कुछ के हैं वह निरर्थक हो जावेगा, यदि मनुस्मृति को न माना जावे तो जिस वेद में मनुस्मृति के मानने की आज्ञा है वह मानने योग्य नहीं रहता स्वामी दयानन्द ने भी मनुस्मृति को माना है और सत्यार्थ प्रकाश में अनेक स्थान पर उसका प्रमाण भी दिया है।

मनुस्मृति के अध्याय ६ में लिखा है कि—

एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन्।
विविधाश्चौपनिषदीरात्म संसिद्धये श्रुतीः ॥ २९ ॥

इससे ज्ञात होता है कि ब्राह्मण भाग के अतिरिक्त उपनिषद् भी वेदों के समान मानने चाहियें यजुर्वेद के आरण्यक अध्याय १ के प्रपाठ में लिखा है कि "स्मृतिः प्रत्यक्षमैतिह्य मनुमानश्च तुष्टयंसपतैरादि" इस प्रमाण से श्रुति के समान ही सम्पूर्ण स्मृतियां भी मानने के योग्य हैं और पण्डित तारानाथ वाचस्पति ने भी ऐसा ही लिखा है "वेदोखिलो धर्म मूलं स्मृति शीलेश तद्विदाम्" इस मनु के वचन के अनुसार भी यह सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण स्मृतियां मानने के योग्य हैं इसी प्रकार बहुत से प्रमाणों से यह बात सिद्ध होती है कि संहिता के समान, ब्राह्मण भाग और मनुस्मृति के समान सम्पूर्ण स्मृतियां मानने योग्य हैं और ऐसा ही सम्पूर्ण पण्डित मानते हैं।

इसका उत्तर आर्यसमाज की ओर से इस प्रकार दिया गया।

मनु का वचन हमको माननीय है यह जो बतलाया जाता है कि "यद्वै-किंचन मनुरावदत्तद्भेषजम्" इस का जो अभिप्राय है वह हम को स्वीकार है परन्तु यह वाक्य सम्पूर्ण यजुर्वेद संहिता में नहीं पाया जाता इसी कारण उसका पूरा पता नहीं दिया गया, मनुस्मृति में जो अनेक स्थानों पर वेद का प्रमाण दिया गया है और उसके पढ़ने पढ़ाने का उपदेश किया गया है इससे प्रत्यक्ष प्रकट है कि वह वेद मनु के समय से प्रथम उपस्थित थे फिर समझ में नहीं आता कि किस प्रयोजन से और किस अभिप्राय से यह वचन यजुर्वेद संहिता का बतलाया गया है। वेदों में मनुस्मृति का वर्णन क्यों किया जाता है क्या वेद अपूर्ण थे कि जिनके पूर्ण होने का भार मनुस्मृति पर डाला जाता। शोक है कि इस सभा ने इन प्रमाणों पर कुछ भी विचार नहीं किया।

वास्तव में यह प्रमाण साम ब्राह्मण का है जिसमें यह बतलाया गया है कि कर्मकांड के विषय में जो कुछ मनु ने बतलाया है वह औषधि की भी औषधि

है हम मनु को मानते हैं परन्तु मनुस्मृति में मनु के बाद जो श्लोक लोभी पुरुषों ने बढ़ा दिये हैं उसको हम नहीं मानते। मनु में बहुत सी ऐसी बातें हैं जो एक दूसरे के विरुद्ध हैं अब रहा यह प्रश्न कि वेद का संहिता भाग जैसा माना जाता है ब्राह्मण भाग भी वैसा ही मानने के योग्य है या नहीं, इस प्रश्न में एक न्याय सम्बन्धी धोखा दिया गया है इससे मुख्य अभिप्राय प्रतीत नहीं होता वास्तव में प्रश्न यह है कि ब्राह्मण ग्रन्थ संहिता के समान वेद हैं या नहीं इसी विषय में राजा शिवप्रसाद ने भी एक पुस्तक लिखी है इस लिये उनके प्रश्नों का भी उत्तर इसी स्थान पर दिया जाता है राजा शिवप्रसाद ने इस प्रमाण में कि ब्राह्मण वेद का भाग है पूर्व मीमांसा के दो सूत्र निम्नलिखित दिये हैं।

तच्चोदकेषु मंत्राख्यःशेषे ब्राह्मण शब्दः।

इस का अर्थ यह किया गया है कि वेद का मन्त्रों से शेष जो भाग है वह ब्राह्मण है परन्तु राजा साहिब ने बीच के सूत्र लिये हैं और आदि व अंत के सूत्रों पर कुछ विचार नहीं किया इसी कारण ठीक अभिप्राय उनको समझ में नहीं आया इन दोनों सूत्रों में ब्राह्मण शब्द नहीं आया और इससे राजासाहिब का अभिप्राय भी सिद्ध नहीं होता यदि राजा साहिब पूर्व मीमांसा के सूत्र ३० से ३७ तक पर विचार करते जो कि नीचे लिखे हैं यह प्रमाण देते।

विधिमंत्रयो रैकार्थ्य मैकशब्दात् [३०] अपि वा प्रयोग सामर्थ्यान्मन्तोऽविधान वचस्यात् [३१] तच्चोदकेषु मंत्राख्य [३२] शेषे ब्राह्मण शब्दः [३३] अनाम्नीतेष्वमन्तत्व मांम्नातेषुहिं विभागः [३४] तेषामृग्यत्रार्थवशेनपाद व्यवस्था [३५] गीतेषु समाख्या [३६] शेषेयजुः शब्दः।

इसमें से पहिले सूत्र का यह अभिप्राय है कि विधि अर्थात् ब्राह्मण और मन्त्र अर्थात् संहिता इन दोनों का क्या एक ही अर्थ है क्योंकि दोनों में एक ही प्रकार के शब्द आते हैं यह वचन वादी का है सूत्र ३१ में इसका उत्तर जैमुनी जी देते हैं कि मन्त्र और विधि दोनों एक नहीं फिर अगले सूत्र (३२) में मन्त्र की परिभाषा लिखी है अर्थात् मन्त्र वह है जो मनुष्य के दिल में किसी वस्तु विशेष या कर्म विशेष का निश्चित ज्ञान उत्पन्न करता है।

फिर ३४ वें सूत्र में ब्राह्मण की परिभाषा लिखी है। इन सूत्रों में कहीं अब तक वेद का शब्द नहीं आया परन्तु संकेत से और अभिप्राय से यह सिद्ध होता है क्योंकि मंत्रों अर्थात् संहिता में पूर्ण ज्ञान और सांसारिक दशा का यथार्थ वर्णन है इस कारण संहिता ही वेद है और वेद के अर्थ भी निश्चय ज्ञान के हैं शेष रहा विधि शब्द सो इस का प्रयोग ब्राह्मणों के लिये होता है। जब ब्राह्मण

शब्द के अर्थ पर भी विचार किया जाता है तो भी यही सिद्ध होता है क्योंकि ब्राह्मण शब्द के अर्थ ब्रह्म के बनाने वाले के हैं और ब्रह्म के अर्थ वेद या परमात्मा के हैं और जो ब्रह्म अर्थात् वेद को जानता है या जिस से वेद जाना जाता है या जिस में वेद के विषयों की व्याख्या होती है उसको ब्राह्मण कहते हैं वेद की आदि व्याख्या करने वाले ब्रह्म वादनिया कहलाते हैं और उन्हीं के नाम पर उनकी व्याख्या का नाम ब्राह्मण रक्खा गया है और यह अर्थ ठीक है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण के अर्थ ब्राह्मणों के समूह के भी हैं। प्राचीन काल में यह परिपाटी थी कि जब कोई धर्म्म अधर्म की नीति संबंधी कोई पुस्तक लिखी जाती थी या कोई व्याख्या तयार की जाती थी या उस में कोई परिवर्तन होता था तो वह विद्वानों की सभा में वादानुवाद के पश्चात् स्वीकार होती थी और यह प्रथा अब भी है। महाराजा कशमीर ने जो धर्म्म शास्त्र प्रकाशित किया है वह भी इसी प्रकार से किया है, इससे ज्ञात होता है कि शायद ब्राह्मण ग्रन्थ भी इसी प्रकार ब्राह्मणों की सभा में प्रविष्ट होकर स्वीकृत हुए हों और इसी कारण ब्राह्मण कहलाये हों और इस लिये वह अब तक प्रमाणी माने जाते हैं और इनकी प्रतिष्ठा वेदों के समान होती है और सर्व साधारण उनको वेद का एक भाग समझते हैं परन्तु यह बातें किसी प्रकार समझ में नहीं आती कि वेद का एक भाग संहिता और द्वितीय भाग ब्राह्मण हो ऐसा विभाग प्रत्यक्ष में अनुचित प्रतीत होता है, इस कारण ब्राह्मण शब्द के कोष सम्बन्धी और शब्दार्थ संबंधी अर्थों को छोड़कर ब्राह्मण शब्द जो वेद के वास्ते बोला जाता है उसके लिये कोई अति उत्तम प्रमाण होना चाहिये और वह उपस्थित नहीं है अब आगे चलकर सूत्र ३७ से यह प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि जो कुछ वैदिक है वही मन्त्र है अर्थात् मन्त्र ही वेद है, इसके पश्चात् जो ऋग्वेद की परिभाषा की गई है वह किसी ब्राह्मण ग्रन्थ से कुछ संबन्ध नहीं रखती इस के अगले सूत्र में सामवेद की परिभाषा की गई अर्थात् जो गाया भी जाता है वह सामवेद है ऊपर लिखे हुए प्रमाणों से और ब्राह्मण ग्रन्थों के स्वयं विषयों से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं किन्तु संहिताही वेद है।

इस संबन्ध में पूर्व मीमांसा के सूत्र ३१ से ५३ तक पाठ करने के योग्य है इन सूत्रों में वादी ने वेदों पर अनेक आक्षेप किये हैं और जैमुनी जी ने उनका उत्तर दिया है इन में से आक्षेप यह किया है कि मंत्रों के अर्थ नहीं समझे जा सकते हैं इस कारण वह निरर्थक और निष्प्रयोजन है इसका उत्तर जैमुनी जी यह देते हैं कि चूंकि ब्राह्मण ग्रन्थ उपस्थित हैं इस कारण उनके अर्थ अच्छे प्रकार समझे जा सकते हैं—इस से भी यही सिद्ध होता है कि संहिता ही ईश्वरीय वाक्य है और ब्राह्मण ग्रन्थ उसकी व्याख्या है हां ब्राह्मण ग्रन्थ भी प्रामाणिक और माननीय हैं परन्तु वह वहीं तक माननीय और प्रामा-

णिक हो सकते हैं जहां तक कि उनकी वेद मन्त्रों से विरुद्धता न हो इसी प्रकार जैमुनी जी ने भी पूर्व मीमांसा अ० ५ पाद १ सूत्र १६ में लिखा है कि जब विरुद्धता हो तो मन्त्र अर्थात् संहितामात्र ही प्रामाणिक हैं और वही माननीय है इस से भी ज्ञात होता है कि मन्त्र ही मुख्य हैं। इसी कारण हमारे आचार्य्यों ने मन्त्र को अन्तरंग और ब्राह्मण को वहिरंग कहा है, और सभा में जो मनु से यह प्रमाण दिया गया है कि ब्राह्मण भाग का उपनिषद् भाग वेद है यह ठीक नहीं।

एताश्चान्याश्च सेवेनंदीक्षा विप्रोवने वसन विविधाश्चौपनिषदीरात्म संसिद्धयेश्रुतीः।

इस श्लोक का अर्थ यह है कि वन में रह कर इस दीक्षा और और भी दीक्षा का सेवन करे और मन की शुद्धता के लिये उपनिषदों में श्रुति अर्थात् वेद के मन्त्र हैं या जो ब्रह्म विद्या से सम्बंध रखते हैं उस को पढ़े और विचारे। यह श्लोक वानप्रस्थ आश्रम के अध्याय में है, चूंकि वानप्रस्थ आश्रम आत्मा की शुद्धि और मोक्ष के लिये गृहण किया जाता है और उपनिषदों में विशेष कर ऐसे ही मंत्र होते हैं इस कारण मनुजी ने विशेषकर इस ओर ध्यान दिलाया है।

इस विषय में कि मनुस्मृति की भांति और स्मृतियां भी मानने के योग्य हैं। दो प्रमाण दिये गये हैं उन में से एक (स्मृतिः प्रत्यक्ष मैतिह्या०) इस में यह कहीं नहीं लिखा कि कौनसी स्मृतियां मानने योग्य हैं इस श्लोक में जो स्मृति शब्द आया है उसके अर्थ स्मरण शक्ति के हैं यदि इस स्मृति शब्द के अर्थ सम्पूर्ण स्मृतियों के लिये जावें तो यह वचन सब स्मृतियों से पीछे का बना हुआ ठहरता है परन्तु ऐसा नहीं है।

इसके अतिरिक्त द्वितीय श्लोक "वेदोऽखिलोधर्म"........में भी उन स्मृतियों का वर्णन नहीं हो सकता जो कि मनु के पश्चात् बनी हुई हैं। मनु यह तो उपदेश करते हैं कि वेद सम्पूर्ण धर्म का मूल है और जो वेद को जानते हैं उनका जो उपदेश वेदानुकूल हो वह मानने के योग्य है।

इसके अतिरिक्त पूर्व मीमांसा अ० १पाद ३ सूत्र३ "विरोधेत्वनुपेक्षंस्याद सेतिह्यनुमानम्" में लिखा है कि श्रुति के विरुद्ध जो स्मृति है वह छोड़ने के योग्य है और जो उसके अनुसार हो वह मानने योग्य है इसके अतिरिक्त इन स्मृतियों में भी बहुत विरुद्धता मालूम होती है और मनु० अ० १२ श्लोक ६५ वा ६६ में लिखा है कि जो स्मृतियां वेद के विरुद्ध हैं वह मानने के योग्य नहीं हैं यथा—

या वेद वाह्याः स्मृतयोयाश्चकाश्चकुदृष्टयः। सर्वा स्तानि-

ष्फलाः प्रेत्यतमोनिष्ठाहितः स्मृताः । ९५ । उत्पद्यन्तेच्यव-न्तेच यान्यतोनृन्यानिकानिचित् । तान्यर्वाक्कालिकतयानि-ष्फलान्यनृतानि च ॥ ९६ ॥

दूसरा प्रश्न पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न ने यह किया कि शिव, विष्णु, दुर्गा आदि देवताओं की मूर्ति की पूजा, मरने के पश्चात पितरों का श्राद्धादि, गंगा और कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों में स्नान और वास, शास्त्रों के अनुसार ठीक है वा नहीं ?

इसका उत्तर प० रामसु ब्राह्मण शास्त्री ने यह दिया कि यह सब शास्त्रानुसार ठीक हैं क्योंकि ऋग्वेद में लिखा है कि:—

तवश्रियै मारूतो मार्ज्जयति रुद्रयन्ते जनिमचारु चित्रम् ।

इसके अनुसार शिवलिङ्ग की मूर्ति की पूजा स्थापना आदि से पूजन का फल होता है और रामतापनीय उपनिषद् में भी लिखा है कि:—

अविमुक्ते तवक्षेत्रे सर्वेषा मुक्तिसिद्धये । अहं सन्निहित स्तत्र पाषाण प्रतिमादिषु । क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्च्चयेद्भक्त्या मंत्रे णानेन मांशिव । ब्रह्महत्यादि पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः ।

रामचन्द्र जी शिव जी से कहते हैं; कि हम तुम्हारे क्षेत्र अर्थात् काशी में सब की मुक्ति के लिये पत्थर की मूर्ति में उपस्थित हैं जो हमारी पूजा पत्थर की मूर्तियों में करते हैं उन को ब्रह्महत्यादि पापों से मोक्ष सिद्ध होती है इसमें कुछ संशय नहीं समझना चाहिये और जाबाला उपनिषद् के इस पद से भी कि "शिवलिङ्ग त्रिसन्ध्यमभ्यर्च्यति" शिवलिङ्ग की पूजा स्पष्ट सिद्ध होती है और मनुस्मृति, देवलस्मृति और ऋग्वेद के गृह्य परिशिष्ट में और बौधायन सूत्र में भी लिखा है कि शिव, विष्णु, दुर्गा आदि की पूजा उचित है, और पूजन करने से पाप होता है जैसा कि गौतमस्मृति में लिखा है कि:—

यदिविप्रः सनत्सन्ध्ये हे वतार्चन जादरात् सयाति नरकं घोरं यावदाचन्द्रतारका । सकशम विप्रवेषा च चिदमुद हतम् ब्रह्मकूर्च चरेद्वदिने कौसम् द्विजोत्तमः ॥

प्रर्णकृच्छं वर्षत्यागे उदुम्बरम् । शालग्राम शिला नास्ति यत्र चैवा मृतोद्भवा श्मशान सदृशनेहं पंक्ति दूषिकः ॥

इस से स्पष्ट प्रकट होता है कि जो मूर्ति का पूजन न करेगा उस को जब तक कि सूर्य, चांद, सितारे स्थित रहेंगे तब तक नर्क में रहना होगा।

यदि कोई एक दिन छः मास या सालभर मूर्तिपूजा न करे तो उस को इस श्लोक में बतलाया हुआ ब्रह्मकूर्च आदि प्रायश्चित्त करना चाहिये और जिस के घर में सालिगराम की मूर्ति वा शंख नहीं है वह घर श्मशान के समान है।

यदि स्वामी जी इन वाक्यों को इस कारण से न मानें कि यह उपनिषद् क्षुद्र उपनिषद् में नहीं है तो देखो स्वामी जी ने अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये सत्यार्थप्रकाश में "कैवल्य उपनिषद्" का प्रमाण दिया है यह भी क्षुद्र उपनिषदों से बाहर है जब उन्हों ने कैवल्य उपनिषद् को माना है तो उनको रामतापनी और ब्रह्मबाला उपनिषद् को भी मानना पड़ेगा।

इस के अतिरिक्त सामवेद के प्रपाठ २६ ब्राह्मण के पांचवें अनुवाक्य के दूसरे खण्ड में स्पष्ट लिखा है।

"सपर न्दिव मन्वा वर्तते अथ यदास्या शुक्लानियानानि। प्रवर्तन्ते देवता यतनानि कम्पति देवतां प्रतिमां हसंति रूदंति गायंतीत्यादि"

इन से देवताओं के मंदिर और उनमें देवताओं की मूर्ति सिद्ध हुई।

और मनुस्मृति में भी लिखा है कि:—

"सीमा संधिषु कार्याणि देवतायतनानि च सं०" इत्यादि।

इन श्लोकों के अनुसार दो गांवों के बीच में एक देवता का मंदिर बनाना चाहिये और जो कोई पत्थर आदि की मूर्ति उस में न रक्खे उस पर ५०) जुर्माना होना योग्य है।

यजुर्वेद संहिता में श्राद्ध के विषय में लिखा है कि:-

"त्रिवीत स्मनुष्यां प्राचीनावीनं पितृणाम।"

इस से जनेऊ को दहिने कांधे पर करके पितृकर्म करना प्रतीत होता है। इस में जो शब्द "पितृणां" बहुवचन में आया है इस से मरे हुये मा बाप का श्राद्ध पाया जाता है जब एक मनुष्य जीवित है तो उसका केवल एक बाप उस समय होता है परन्तु मरने के पश्चात् बाप के दादा परदादा को भी पितृणां शास्त्रानुसार कह सकते हैं इस कारण इस वेद के वचन में जो पितृणां शब्द आया है उससे मरेहुओं का ही श्राद्धादि पाया जाता है।

देखो-[मृता हंसमतिक्रम्य चाण्डालः कोटि जन्मसु]

स्मृतियों में भी इसका यह अभिप्राय है कि जो मरेहुये लोगों का मरने के दिन श्राद्ध आदि नहीं करता वह सहस्रों पीढ़ियों तक चाण्डाल के वंश में उत्पन्न होता है और मनुजी लिखते हैं कि:—

"पितृयज्ञन्तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान्। पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम्।"

अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को अमावस के दिन अपने मां बाप का श्राद्ध करना अत्यन्त आवश्यकीय है और—

"अनीत पितृकोद्विजः इंदुक्षये मासि मासि प्रायश्चितो भवेत्तुसः।"

के वचन के अनुसार जो श्राद्ध नहीं करता वह पापी होता है इन प्रमाणों से स्पष्ट प्रकट है कि मरे हुए पितरों का श्राद्ध करना श्रुति और स्मृति दोनों के अनुकूल है ऋग्वेद संहिता में तीर्थ के विषय में लिखा है कि—

"सितासिते सरितौयत्रसंगते तत्राप्लुत्पसोदिवमुत्पतंति येवैनन्वाविसृजन्तिधीराः तेजनासोऽमृतत्वं भजन्ते यत्र गङ्गा च यमुना च यत्र प्राची सरस्वती"

इसमें गंगे यमुने आदि शब्द से प्रतीत होता है कि गङ्गादि तीर्थ के स्नान करने से पाप से मनुष्य छूट कर स्वर्ग सुख को प्राप्त होता है और मनुस्मृति में भी लिखा है कि:—

यमो वैवस्वतोदेवो यस्तवैश्चहृदिस्थः तेनचेद विवादस्ते मागंगां माकुरुन् गमः।

झूंठ बोलने के पाप से छूटने के लिये गंगा स्नान और कुरुक्षेत्र वास करना चाहिये।

आर्य्य समाज की ओर से उत्तर।

शिवलिंग व मूर्तिपूजन।

तवाश्रियै मरुतो—इस में शिवलिंग की पूजा का पता भी नहीं है इस का सीधा सांधा यह अर्थ है कि हे रुद्र तेरी सृष्टि अर्थात् मन के लुभानेवाली और आश्चर्य्यदायक है। इस लिये देवता लोग तेरी महिमा का गान कर रहे हैं। फिर इस में शिवलिंग की पूजा का क्या विधान है? प्राचीन ऋषियों ने कदापि मूर्तिपूजा का उपदेश नहीं किया वह केवल परमात्मा ही की पूजा को अपने मोक्ष का कारण जानते थे हां यदि शिवलिंग से कल्याण या कल्याण रूप परमात्मा का अनुमान कराने वाला गायत्री आदि मन्त्र या कोई और साधन जो वेद और बुद्धि के अनुसार हो अभिप्राय लिया जावे तो उस का सेवन तीन काल क्या दिन भर करो तो कुछ अयोग्य नहीं परन्तु यह नहीं कि जिस वस्तु के नाम लेने से सभ्यगण घृणा करें उसका चिन्ह बनाकर व्योपार के लिये उस की पूजा की जाये मूर्तिपूजा के विषय में जो स्मृति और उपनिषदों के प्रमाण दिये गये हैं वह मिलाये हुये हैं ऋषियों के लिखे हुये नहीं हैं। इस के अतिरिक्त इन पुस्तकों में मूर्तिपूजा के खण्डन में भी अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। इस के अतिरिक्त मनु और पूर्व मीमांसा के प्रमाण से यह सिद्ध किया

गया है कि जो शेष स्मृति आदि में वेदों के विरुद्ध हो वह माननीय नहीं है। यह वार्ता कि जिस गृह में शिवलिंग की मूर्ति नहीं है वह मसान के समान है बुद्धि विरुद्ध है और कभी माननीय नहीं हो सकती।

सभा का यह आक्षेप कि चूंकि स्वामी ने कैवल्य उपनिषद् को माना है जो कि दस उपनिषदों में नहीं है इस लिये उन को और भी उपनिषद् माननीय हैं यह संकुल न्याय है। यदि कोई मनुष्य पुराणों से मूर्तिपूजा के खण्डन विषय में कोई प्रमाण दे तो क्या उस पर पुराणों का मानना आवश्यकीय हो जाता है। कदापि नहीं और जो बौधायन सूत्र का प्रमाण दिया गया उस के शब्दों से महादेव महापुरुष अर्थात् परमात्मा की पूजा प्रकट होती है उस में शिवलिंगादि का कुछ भी वर्णन नहीं और सामवेद का जो सुपर्णं वि० मंत्र है उससे मूर्तिपूजा कदापि सिद्ध नहीं होती और न उसमें मूर्तिपूजा का कुछ वर्णन है आपने जो परिदेव का अर्थ भूलोक में रहने वाले विष्णु आदि किये हैं वह कब माने जा सकते हैं ऐसा अर्थ इस शब्द का किसी पुस्तक में नहीं लिखा। यदि सभा इस शब्द का अर्थ विष्णु का करती है तो अन्य मतवाले जैसे शिव, शक्ति, गणपति भैरों आदि के उपासक इस के अर्थ शिवशक्ति, गणपति, भैरों आदि के कर सकते हैं। जो असम्भव है। यदि यह कहाजावे किसी श्लोक में देवता की मूर्तियों का वर्णन है तो भी इस से मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं होती। यदि उन को मूर्तिपूजा का उपदेश करना था। तो दो एक शब्द बढ़ाकर अपने अभिप्राय को स्पष्ट कर देते यदि कहा जावे कि केवल शब्द मात्र से ही मूर्तिपूजा सिद्ध होती है तो मूर्ति के शब्द तो उन की पुस्तकों में भी आते हैं जिनमें यहां मूर्तिपूजा करना महा पाप समझा जाता है जैसे कुरान व बाइबिल में खननात् दहनात् इत्यादि में भी जो पृथ्वी आदि के खोदनेका उपदेश है उस से भी मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं होती। मनुस्मृति में जो लिखा है कि गांव की सरहद पर देवस्थान बनाना योग्य है उससे पाठशाला आदि का अभिप्राय है। इससे मूर्तिपूजा सिद्ध करना महर्षि मनु की हंसी करना है।

"प्रतिमानाञ्च भेदकः" में प्रतिमा का अर्थ बांट और पैमाने के हैं। और यही अर्थ उस समय में ठीक रहते हैं जब कि आगे के श्लोकों को भी पढ़ा जाता है यदि यही मान लिया जावे कि मूर्ति के तोड़ने का दण्ड शास्त्रों में लिखा है तो इस से भी मूर्तिपूजा का करना आवश्यकीय नहीं प्रतीत होता किन्तु इस से भी यही सिद्ध होता है कि जैसे हमारी बृटिश गवर्नमेंट मूर्तिपूजा करना अधर्म समझती है परन्तु किसी की मूर्ति के तोड़ने का उपदेश नहीं करती किन्तु जो ऐसे कर्म करते हैं उन के लिये ताजीरात हिन्द में दण्ड लिखा है। इसी प्रकार हमारे आर्य राजे भी मूर्तिपूजा करना अपना धर्म न समझते थे परन्तु जो जन अज्ञान वश मूर्ति पूजा करते होंगे उनको भय वा दण्ड द्वारा इस

कर्म से हटाने का ही उद्योग नहीं करते थे वरन् अनेक उपदेश देना अपना धर्म समझते थे कि जिससे यह रोग उन के दिल से बिलकुल हट जावे और मनु ने यह आज्ञा इस लिये लिखी कि जब तक वह न समझें मनुष्य उनको दण्ड न दें जिससे वह आनन्द पूर्वक उन कर्मों को करते रहें—इससे भी चित्त की उदारता प्रगट होती है।

यदि मूर्तिपूजा का करना धर्म होता तो इसका वर्णन सम्पूर्ण ऋषि कृत ग्रन्थों में होता परन्तु किसी में भी नहीं है इसके अतिरिक्त यजुर्वेद अ० ३२ में लिखा है कि "नतस्य प्रतिमा अस्तियस्यनाममहद्यशः" अर्थात् उस परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं है इसी प्रकार अ०४० में लिखा है कि परमात्मा शरीर धारण नहीं करता और जो उत्पन्न हुए पदार्थों की पूजा करते हैं वह नर्क को जाते हैं इसके अतिरिक्त यह भी लिखा है कि स्वर्ग उन्हींको प्राप्त होता है जो सांसारिक पदार्थों को छोड़कर एक परमेश्वर की उपासना करते हैं।

इसके अतिरिक्त "त्वमेव विदित्वाऽतिमृत्यु मेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" अर्थात् स्वर्ग के प्राप्त करने का केवल परमेश्वर की उपासना के कोई और द्वार नहीं है।

शतपथ ब्राह्मण में जहां तैंतीस देवताओं का वर्णन है वहां भी केवल परमेश्वर की उपासना के और किसी का वर्णन नहीं किया गया है किन्तु उस में खण्डन किया गया है जैसा कि शतपथ कांड १४ अ० ४ में लिखा है।

आत्मेते ओपासीत्-सयो न्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं।

परमेश्वर जो सब का आत्मा है उसी की उपासना करनी चाहिये जो परमेश्वर के अतिरिक्त किसी और को उपासना के योग्य समझते हैं उनको अनेक प्रकार के दुख उठाने पड़ते हैं और जो देवताओं की उपासना करते हैं वह सचाई को नहीं जानते वह मनुष्यों में पशु के समान हैं।

इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत में भी लिखा है कि—

मृच्छिला धातुदार्वादि मूर्तावीश्वर बुद्धयः क्लिश्यन्तितपसामूढाः परां शान्ति नयान्तिते।

मिट्टी, पत्थर, धातु, लकड़ी आदि की मूर्ति में जो ईश्वर को मानकर उपासना करते हैं वह ऐसी उपासना से केवल कष्ट ही उठाते हैं और किसी प्रकार का सुख नहीं पाते। और देखिये श्रीमद्भागवत में लिखा है।

यस्यात्मबुद्धिः कुणपेत्रिधातुकेस्वधीः कलत्रादिषुभौमइज्यधीः यत्तीर्थं बुद्धिः सलिलेनकर्हिचित्जनेष्वभिज्ञेषुसएवगोखरः।

अर्थात् जो मिट्टी की मूर्ति को उपासना के योग्य और पानी को तीर्थ समझता है वह निश्चय पशुवत है ।

मृत्यु के पश्चात् पितरों के श्राद्धादि पर किए हुए प्रश्नों का उत्तर ।

त्रिवीतामनुष्याणां०—में मरे हुये मा–बाप का कुछ भी वर्णन नहीं है और न कहीं श्राद्ध शब्द आया है श्राद्ध और तर्पण का जो मुख्य अभिप्राय है उस से हम को कुछ विरुद्धता नहीं है। हमारा आक्षेप तो केवल यह है कि मुर्दों के लिए श्राद्ध और तर्पण करना और किसी जाति विशेष के मनुष्यों को विना इस विचार के कि वह अधिकारी है या नहीं भोजन या उत्तम २ पदार्थ देना शास्त्र और बुद्धि के विरुद्ध है। हां यदि मुर्दों की यादगार में कोई सर्वसाधारण को लाभ पहुंचाने वाला कार्य इस लिये करे कि मृत्यु की हमको याद बनी रहे जिस से हम बुराइयों से बचे रहें तो कुछ चिन्ता नहीं ।

"पितृणाम्" शब्द के विषय में जो वर्णन किया गया है कि वह बहुवचन है, इस कारण मरे हुये मा–बाप के लिये बोला जाता है, यह ठीक नहीं। वास्तव में पितृणाम् शब्द एक उपाधि थी जो कि प्राचीनकाल में विद्वानों को दीजाती थी जैसे कि फादर शब्द जो कि पितृ शब्द से बिगड़कर बना है पादरियों के लिये बोला जाता है।

श्राद्ध और तर्पण पितृ यज्ञ के भेद हैं श्राद्ध वह कर्म्म है जो श्रद्धा पूर्वक किया जाता है जैसे देव ऋषि और पितरों की सेवा करना और तर्पण से यह अभिप्राय है कि इनको खुश रखना, प्रसन्न करना और सुख पहुंचना चाहिये और मनुस्मृति में जो ऊपर यह बतलाया गया है कि अग्निहोत्री ब्राह्मण हर माह की अमावस्या में पितरों का श्राद्ध करे। यह श्लोक मनु का कहा हुआ नहीं प्रतीत होता तिस पर भी उस से कुछ सिद्ध नहीं होता यदि प्रत्येक माह में विशेषता से ऊपर लिखा हुआ श्राद्ध होम के साथ किया जावे तो कुछ हानि नहीं है। स्मृतियां चूंकि इस विषय में माननीय नहीं हैं इस कारण हम उनका खंडन नहीं करते ।

अब हम अपने कथन की पुष्टि में नीचे लिखे हुए प्रमाण देते हैं, मनु अ० ४ श्लोक २३६ से २४१ तक लिखा है कि:—

नामुत्रहि सहायार्थं पितामाताच तिष्ठतः। न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः। एकः प्रजायतेजन्तुरेक एवप्रलीयते। एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेकएवचदुष्कृतम्। मृतंशरीर

मृतशरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ। विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति।

अर्थात्–परलोक में मा-बाप, पुत्र-स्त्री और भाई-बन्धु इन में से कोई भी सहायता नहीं कर सकता केवल धर्म ही सहायक होता है। क्योंकि मनुष्य अकेला ही उत्पन्न होता, अकेला मरता और अकेला ही अपने किये हुये अच्छे बुरे कर्मों का फल पाता है। लकड़ी और मिट्टी के ढेले की भांति मृतक शरीर को पृथ्वी पर छोड़कर भाई बन्धु अलग होजाते हैं केवल धर्म ही उसके साथ जाता है।

इस से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि मरने के पश्चात् उसी के किये हुये कर्म से उस को सुख प्राप्त होता है किसी और का कर्म उस को सुख नहीं दे सकता और संसार में भी नहीं दीखता कि एक के खाने से दूसरे की भूख शांत होती हो। गंगादि तीर्थों में स्नान और वास करने से पाप की निवृत्ति होती है वा नहीं।

इस विषय में सभा से "सितासिते सरितौ" श्लोक दिया गया है इस में जो गंगा शब्द आया है उस के अर्थ नदी के बतलाए गये हैं जो किसी प्रकार ठीक नहीं हैं यदि इस शब्द के अर्थ गंगादि नदियों के मानलिये जावें तो सत् वा असत् जो इन का विशेषण प्रथम वर्णन हुआ है वह इन नदियों से किसी प्रकार संबंध नहीं रख सकता वास्तव में गंगा शब्द के अर्थ इड़ा पिंगला सुषुम्नादि नाड़ियों के हैं। यह योग साधन की नाड़ियां हैं इनके द्वारा योगी पुरुष मन की शुद्धता प्राप्त करते हैं और समाधि में स्थित होकर आनन्द सुख को प्राप्त होते हैं। तीर्थ के अर्थ हैं तारने का द्वार। यह तारने का द्वार कदापि नहीं हो सकते यदि डूबने का द्वार कहा जावे तो ठीक है, सतशास्त्रों में तीर्थ से परमेश्वर, गुरु, विचार, सत् शास्त्र, भक्ति उपासना योगादि से अभिप्राय लिया गया है और सचमुच इन्हीं के द्वारा स्वर्ग मिल सकता है यदि मान लिया जावे कि गंगा के स्नान से ही मुक्ति होती है तो यह बतलाइये कि जो मनुष्य भागीरथ के गंगा के लाने से पूर्व मरे उनकी मुक्ति किस प्रकार हुई होगी–

द्वितीय यह भी विचारणीय है कि जब वेद सनातन है और गंगा को भागीरथ किसी समय में लाये तो यह गंगा शब्द वेदों में इन अर्थों में किस प्रकार लिया गया इसका कोई उत्तर गंगा शब्द से नदी का माननेवाला नहीं दे सकता यह वाक्य ऋग्वेद का नहीं है किन्तु एक व्याख्या का है मनुस्मृति का जो श्लोक **यमोवैवस्वतो०** बतलाया गया है उससे आपके पक्ष की कुछ पुष्टता नहीं होती इसमें स्पष्ट रूप से यह लिखा है कि गंगा और कुरुक्षेत्र मत जाओ यह श्लोक मनु का नहीं है किन्तु उनके पश्चात् का मिला हुआ है इस श्लोक के अतिरिक्त और किसी स्थान पर मनुस्मृति में गंगा शब्द नहीं आया है। अब

कि मनु जी ने छोटी से छोटी बातों की अति उत्तमता से व्याख्या की है तो क्या मूर्तिपूजा और गंगा स्नान के विषय में कुछ भी न लिखते। वास्तव में मनु आदि ऋषियों का यह मन्तव्य नहीं।

इन तीर्थों का खण्डन तो भागवत से ही होता है जैसा ऊपर वर्णन हुआ कि जो मनुष्य पानी को तीर्थ समझता है वह पशु है इसके अतिरिक्त यह भी लिखा है कि:—

इदं तीर्थ मिदं तीर्थ भ्रमंतितामसाजनाः। आत्म तीर्थं नजानन्ति कथंमुक्तिर्वरानने।

अर्थात् यह तीर्थ है और यह तीर्थ है बुद्धि हीन और तमोगुणी मनुष्य ऐसा कहते हैं-वह आत्मा के तीर्थ को नहीं जानते उनकी मोक्ष किस प्रकार होसकी है अर्थात् नहीं हो सकी और मनुजी ने भी लिखा है कि:—

अद्भिर्गात्राणिशुध्यन्ति।

जल से शरीर शुद्ध होता है और मन सत्य से शुद्ध होता है, उपासना से आत्मा शुद्ध होती है, विद्या से बुद्धि शुद्ध होती है।

यदि गंगा स्नान से ही मुक्ति मिल सकी है तो फिर उपासना आदि सत् कर्मों का कष्ट उठाना व्यर्थ है, इधर व्यभिचार किया, चोरी की, उधर गंगा स्नान कर लिया मोक्ष होगई। इन से पापों से छूटना तो कठिन है किन्तु और पापों की ओर चला जाता है और पापों के करने का अधिक साहस होता है।

तृतीय प्रश्न।

अग्नि मीळे पुरोहितम् में जो अग्नि शब्द आया है उस से अभिप्राय परमात्मा से है अथवा अग्नि से।

उत्तर।

इसका उत्तर पं० रामस्वरूप ब्राह्मण ने यह दिया कि अग्नि से अभिप्राय जलाने की अग्नि है यदि इस के पारमार्थिक अर्थ करें तो वह पूर्व मीमांसा के रथकाराधिकरण वत् इस सूत्र के विरुद्ध होते हैं इस कारण इस मन्त्र में अग्नि से ही अभिप्राय है।

आर्य समाज की ओर से उत्तर।

उपरोक्त मंत्र में अग्नि शब्द का अर्थ जलाने की अग्नि नहीं है किन्तु उस से अभिप्राय परमेश्वर है एक शब्द के अर्थ सब स्थानों पर एक ही नहीं होते। यह नहीं बतलाया गया कि कहीं भी अग्नि शब्द के अर्थ परमेश्वर के आये हैं वा नहीं देखिये निघन्टु अ० ५ में लिखा है कि अग्निर्द्रविणोदा

अश्वोवायुः श्येतो श्विनोपधि इति । अर्थात् अग्नि आदि सभी शब्द परमेश्वर वाचक हैं इसी प्रकार शतपथ में लिखा है ब्रह्माग्निः और आत्मा अग्निः ।

चतुर्थ प्रश्न ।

अग्निहोत्रादि यज्ञ करने से केवल जल वायु की शुद्धि होती है अथवा स्वर्ग की प्राप्ति ?

उत्तर ।

पण्डित रामस्वरूप ब्राह्मण शास्त्री ने कहा कि अग्नि होत्रं जुहुयात् स्वर्ग कामः ज्योतिष्टो मेन स्वर्ग कामोजयत् ।

इस यजुर्वेद के मन्त्र से स्पष्ट प्रगट है कि अग्निहोत्रादि यज्ञ के करने से स्वर्ग प्राप्त होता है ।

आर्यसमाज की ओर से उत्तर ।

यदि स्वर्ग से प्रयोजन सुख का प्राप्त होना है तो हम स्वीकार करते हैं और यदि उस से प्रयोजन हूर व गुलमां की आराम के स्थान और इन्द्रियों के सुख भोग करनेवालों की शरणालय से हैं तो हम उसको नहीं मानते । होम आदि से ही स्वर्ग नहीं मिलसका किन्तु यह शारीरिक सुख और सांसारिक प्रसन्नता और परोपकार के द्वार हैं और ऐसा ही सम्पूर्ण ऋषि मुनि मानते रहे जिन से स्पष्टता से प्रगट होता है कि अग्निहोत्र आदिक यज्ञ करने से जल वायु औषधी द्वारा सुख होता है हां यदि यह कहो कि जो वेद मन्त्र होम में पढ़े जाते हैं उन से प्रार्थना उपासना और प्रार्थना उपासना से ईश्वर की प्राप्ति होती है तो निःसंदेह क्रमानुकूल स्वर्ग का कारण हो सका है या आत्मिक होम ! जैसा कि मनु आदि सत्शास्त्र और उपनिषदों में लिखा है कि इन्द्रियों का होम मन में और मन का आत्मा में और आत्मा का परमात्मा में करें और ऐसा ही महात्मा व्यास जी ने भी लिखा है ।

पांचवां प्रश्न ।

वेद के ब्राह्मण भाग की अप्रतिष्ठा करने से पाप होता है या नहीं ?

इस का उत्तर पं० रामस्वरूप ब्राह्मण शास्त्री ने यह दिया कि यह तो हम प्रथम प्रश्न के ही उत्तर में बतला चुके हैं कि ब्राह्मण भाग भी वेद ही है फिर ब्राह्मण भाग की अप्रतिष्ठा करना वेद की अप्रतिष्ठा करना है । और मनु ने वेद की निन्दा के विषय में भी लिखा है ।

आर्यसमाज की ओर से उत्तर ।

जो श्लोक पण्डित जी महाशय ने बतलाया है उस का अर्थ यह है कि पढ़े हुये वेद को भूलजाना वेद की निन्दा करनी, झूंठी साक्षी देनी, मित्र को दुःख पहुंचाना अभोज्य भोजन करना, मदिरा पान करना यह छओं एक से पाप हैं, हमारी मान्य सभा जो मदिरापान का पाप बतलाती है वही पाप वेद की निन्दा करने का बतलाती है यह हम को स्वीकार है, अब निश्चय यह करना है कि वेद की निन्दा सभा करती है या स्वामी दयानंद सरस्वती ?

स्वामी दयानंद सरस्वती वेदों को ईश्वरीय विद्या बतला कर उसके नित्यप्रति पठन पाठन का उपदेश करते हैं। उनकी शिक्षा है कि वेद सर्व श्रेष्ठ है मनुष्य मात्र को उसी के अनुसार चलना चाहिये और केवल एक परमेश्वर के और किसी की उपासना नहीं करना चाहिये ।

इस कारण वेदों की निन्दा स्वामी दयानन्द सरस्वती कदापि नहीं करते किन्तु वेदों की निन्दा सभा कर रही है जोकि वेदों को भी अन्य शास्त्रों के तुल्य मानती है और एक परमेश्वर के स्थान पर अनेक देवताओं के पूजने का उपदेश करती है ।

प्रश्नोत्तर

स्वामी दयानन्दजी व मौलवी मुहम्मद अहसन

उर्फ वलीमुहम्मद पितारवी से

जो जालन्धर शहर में हुए ।

जब स्वामी जी भ्रमण करते हुए २३ सितम्बर सन् १८७७ ई० को जालन्धर पधारे उस समय एक मनुष्य "फ़क़ीर मुहम्मद मिर्ज़ा" ने इस लिये अति परिश्रम किया कि स्वामी जी और मौलवी मुहम्मदहसन का शास्त्रार्थ किसी विषय पर होजावे, जिसका अन्तिम परिणाम यह निकला कि स्वामी जी और मौलवी साहिब ने स्वीकार कर लिया कि २४ सितम्बर के सात बजे प्रातःकाल से आवागमन और करामात पर शास्त्रार्थ हो, अर्थात् स्वामी जी आवागमन का मण्डन करें और मौलवी साहिब इसका खण्डन करें और मौलवी साहिब अहल अल्ला की करामात का मण्डन और स्वामी जी उसका खण्डन करें। इस के अतिरिक्त यह भी निश्चित हुआ कि कोई भी असभ्य वार्तालाप न करे और कोई भी इस वार्तालाप के समाप्त होने पर जय पराजय न समझे और यदि

कोई ऐसा करे तो वह पक्षपाती और मूर्ख समझा जावे। परन्तु मौलवीसाहिब ने इसके विरुद्ध और विद्वानता के विपरीत यह कर्म किया कि आप इमामनासिरउद्दीन के धर्मशाला के द्वार पर आकर और कुछ उपदेश सुनाकर अपनी असत्य प्रतिष्ठा के अभिलाषी हुए। बुद्धिमान् और प्रतिष्ठित जन तो इसको मूर्खता का कर्म समझ कर चले गये परन्तु बुद्धिहीन पुरुषों ने जो कि मुर्गे और बटेरादिकों को लड़ा यश के अभिलाषी रहा करते थे उन्होंने मौलवी साहिब को विजयी प्रसिद्ध कर घोड़े पर चढ़ाकर शहर के गली और कूचों में अच्छी प्रकार घुमाया और जय जय की धूम मचाई परन्तु प्रतिष्ठित पुरुषों ने इस को तुच्छ कर्म समझा।

करामात के विषय में वार्त्तालाप।

प्रश्न स्वामी जी—करामात आप किसको कहते हैं?

मौलवी—मनुष्य शक्ति से अतिरिक्त कार्य करने का स्वभाव जो किसी मनुष्य में पाया जावे उसे करामात कहते हैं।

स्वामी जी—स्वभाव आप किस को मानते हैं?

मौलवी—स्वभाव वह है जिसमें मनुष्य की प्रवृत्ति बिना कारण हो।

स्वामी जी—जो मनुष्य शक्ति में नहीं है वह किस प्रकार हुआ?

मौलवी—वह कर्म जिन का करने वाला मनुष्य को बतलाया जाता है दो प्रकार के हैं। एक वह जिनका मनुष्य को प्रकाशक कहा जाता है और द्वितीय वह जिन में मनुष्य करने वाला उन कर्मों का कहा जाता है। प्रथम प्रकार के कर्मों में मनुष्य यथार्थ कर्त्ता नहीं समझा जाता जैसा कि कठपुतली के तुल्य अर्थात् ऐसे कर्म परमेश्वर की ओर से उसके द्वारा प्रकट होते हैं।

स्वामी जी—सम्पूर्ण मनुष्यों में यह दोनों प्रकार के कर्म हैं वा किसी एक में?

मौलवी—प्रत्येक में नहीं किसी में होते हैं।

स्वामी जी—ईश्वर उलटे कर्म करा सकता है वा नहीं?

मौलवी—करा सकता है विपरीत स्वभाव मनुष्य के और वह कर्म विरुद्ध स्वभाव परमेश्वर के नहीं होता और स्वयं अपने स्वभाव के विरुद्ध नहीं करता।

स्वामी जी—ईश्वर के कर्म विपरीत होते हैं वा नहीं?

मौलवी—ईश्वर के कर्म उसके स्वभाव के विपरीत नहीं होते मनुष्य अपने स्वभाव से उनको विपरीत जानते हैं।

स्वामी जी—करामात सृष्टि के स्वभाव के विपरीत होती है वा नहीं?

क्योंकि जैसा ईश्वर का स्वभाव जैसा सृष्टि का कर्म प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध है और अनन्त विद्या का प्रकाश निर्दोषतादि यह ही ईश्वरीय सब मुहरें हैं और जो आप कहें कि किसी और प्रकार की मुहरें चाहियें तौ पृथ्वी, सूर्य्य चन्द्रमादि है और मनुष्य पर ईश्वर के न्यायकी मुहर क्या है ? फिर जब मुहर से ही ईश्वर की सिद्धि ठहरी तौ मुहर कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती। ईश्वर का स्वभाव क्या है ? जो ईश्वर मनुष्य के स्वभाव से उलटा करासका है तौ किसी मनुष्य को पैर से खिलाया और पिलाया है और मुख से पैर का कार्य्य लिया है या लिवाया है, मुझ को यह प्रतीत होता है कि सब मतवादियों ने यह करामात भविष्यत्‌वाणी जैसे कि रसायनादि का लोभ दिखाकर बहुत से मनुष्यों को फँसाया है। परमेश्वर कृपा करे, सब की आत्मा में विद्या का प्रकाश हो कि जो मनुष्य ऐसे जाल फंदों से छूटकर सत्य को मानें और असत्य से दूर रहें।

मोलवी सा०—हम प्रथम ही कह चुके हैं कि कर्म करामत विपरीत स्वभाव मनुष्य के कराना यह असंभव नहीं है जिससे कहाजावे कि परमेश्वरीय शक्ति के बाहर है यदि कोई करामात देखना चाहे तो मक्काशरीफ और स्याम देश में जाकर देखले जहां चालीस मनुष्य करामात दिखलानेवाले हैं। वेद के अतिरिक्त गुलिस्तां बोस्तां आदि उपदेश संबन्धी अनेकान् पुस्कें हैं। जो मनुष्य स्वभाव के विपरीत हैं। अब रहा यह कि इस में सम्पूर्ण विद्यायें हैं सो यह प्रत्यक्षादि हेतुओं से शून्य है।

क्योंकि इसमें इल्म **इजतराव** और अकर इल्म **बदीय** और **बियान** आदि विद्यायें नहीं हैं। और यह पुस्तक निश्चय तौरेत से पूर्व की है जिस में वह समाचार हैं जो वर्तमान समय में पाए जाते हैं। "दानयाल" पुस्तक के अध्याय ११ दरस (पाठ) १० से १६ तक भी यही प्रमाण मिलता है कि यह भविष्यत् वाणी जो सहस्रों वर्षों से लिखी गई थी अब पूर्ण हुई। द्वितीय कुरान की उत्पत्ति के विषय में जो १३०० वर्ष से मुसलमानों का सम्पूर्ण मतवादियों के विरुद्ध यह कथन है कि इस कुरान के सदृश एक पंक्ति बनाकर कोई मनुष्य दिखावे जैसा कि "फातुआ बिसूरतिन मिसलही" अर्थात् ऐसा वाक्य अबतक किसी से न बना न बनेगा यदि पण्डितजी इस करामात को अस्वीकार करें तो इसके सदृश एक पंक्ति बनाकर दिखायें, इस लिये करामात हमने इस सभा में दिखलादी, अब हम शुद्ध पवित्र परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि सम्पूर्ण संसार के मनुष्यों को सत्य मार्ग पर लावे और पक्षपात को मन से दूर करे।

प्रश्नोत्तर आवागमन के विषय में।

मोलवी साहिब—शरीर का होना बिना वर्तमान आकृति के संभव

होगा क्योंकि कार्य के देखे बिना कारण का या कारण के देखे बिना कार्य का ज्ञान नहीं होता।

मौलवी—जब यह सिद्ध हो चुका कि करामात एक परमेश्वर का कर्म है यद्यपि वह मनुष्य की अपेक्षा असम्भव होता है परन्तु परमेश्वर की अपेक्षा वह असम्भव नहीं, क्योंकि यदि परमेश्वर के लिये असम्भव होजाय तो उड़ना पशुओं का कदापि न पाया जावे। इसीप्रकार सम्पूर्ण अद्भुत कर्म यद्यपि यह मनुष्य की अपेक्षा असम्भव जान पड़ते हैं, परन्तु परमेश्वर के लिये असम्भव नहीं हैं जब परमेश्वर एक के लिये यह दशा उत्पन्न कराता है। तो वह दूसरे शरीर के लिये उत्पन्न कर सकता है। अब इसको अस्वीकार करना अर्थात् परमेश्वर की शक्ति को न मानना है। यदि समाचार प्रत्येक पदार्थ का असत्य हो तो कलकत्ता और लण्डनादि नगरों का होना कि जिनको हमने अपने नेत्रों से नहीं देखा उनका भी विश्वास न करना चाहिये। अतः प्रमाण करामात का इस प्रकार है जैसे आप के मत में वेद का प्रमाण अर्थात् जिससे आप यह कह सकते हैं कि यह वेद वही पुस्तक है जो परमेश्वर की ओर से आया क्योंकि उसके ऊपर कोई परमेश्वर की मुहर तो लगी ही नहीं जिससे कहा जावे कि यह वेद वही पुस्तक है। जो युक्ति आप वेदों के विषय में देवेंगे वही युक्ति करामात के विषय में भी है।

स्वामी जी—मैं ने इस बात का प्रमाण चाहा कि परमेश्वर ने किस २ मनुष्य के द्वारा करामात दिखलाई, उन का क्या प्रमाण? करामात परमेश्वर अपने स्वभाव के विपरीत नहीं करता इस का दृष्टान्त यह है कि सृष्टि का धारण कर्ता, प्रलयकर्ता, न्यायी, दयालु, अनन्त विद्यावाला वही है। वह कभी अपने स्वभाव से विपरी नहीं करता। इस का उदाहरण सब सृष्टि है जैसे इस समय मनुष्य का पुत्र मनुष्य ही होता है पशु नहीं होता, इसी प्रकार परमेश्वरके कार्य्य में कभी भूल नहीं रहती इस कारण परमेश्वर की शक्ति मानना करामात पर निर्भर नहीं और जो कोई करामात मानता है वह इस समय अर्थात् वर्तमान काल में किसी करामाती को बतलादे और परमेश्वर की शक्ति की भी कुछ सीमा है जैसे ईश्वर मर नहीं सक्ता मूर्ख नहीं होसक्ता, बुराकर्म नहीं करसक्ता, क्योंकि वह न्यायकारी है, अविनाशी है, यह उदाहरण करामात पर नहीं घट सक्ता। क्योंकि कोई कहे कि बम्बई नहीं तो दिखला सक्ता है, ऐसे ही जो यह दृष्टान्त सच्चा हो तो बम्बई के समान करामात को भी दिखलावे, वेद का ईश्वर कृत होना असम्भव नहीं क्योंकि वह अंतर्यामी और पूर्ण विद्वान् दयालु और न्यायकारी है। वह सदैव जीवात्मा में अंतर्यामी रूप से अपना प्रकाश करसक्ता है जैसा इस समय में भी सदैव अन्यायकारी की आत्मा में भय और लज्जा और न्यायकारी की आत्मा में उत्साह और प्रकाश करता है। इस कारण वेद का उदाहरण करामात से संबंध नहीं रखता।

क्योंकि जैसा ईश्वर का स्वभाव जैसा सृष्टि का कर्म प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध है और अनन्त विद्या का प्रकाश निर्दोषतादि यह ही ईश्वरीय सब मुहरें हैं और जो आप कहें कि किसी और प्रकार की मुहरें चाहियें तो पृथ्वी, सूर्य्य चन्द्रमादि है और मनुष्य पर ईश्वर के न्यायकी मुहर क्या है? फिर जब मुहर से ही ईश्वर की सिद्धि ठहरी तो मुहर कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती। ईश्वर का स्वभाव क्या है? जो ईश्वर मनुष्य के स्वभाव से उलटा करामात है तो, किसी मनुष्य को पैर से खिलाया और पिलाया है और मुख से पैर का कार्य्य लिया है या लिवाया है, मुझ को यह प्रतीत होता है कि सब मतवादियों ने यह करामात भविष्यत्‌वाणी जैसे कि रसायनादि का लोभ दिखाकर बहुत से मनुष्यों को फँसाया है। परमेश्वर कृपा करे, सब की आत्मा में विद्या का प्रकाश हो कि जो मनुष्य ऐसे जाल फंदों से छूटकर सत्य को मानें और असत्य से दूर रहें।

मौलवी सा०—हम प्रथम ही कह चुके हैं कि कर्म करामत विपरीत स्वभाव मनुष्य के कारना यह असंभव नहीं है जिससे कहाजावे कि परमेश्वरीय शक्ति के बाहर है यदि कोई करामात देखना चाहे तो मक्काशरीफ और स्याम देश में जाकर देखले जहां चालीस मनुष्य करामात दिखलानेवाले हैं। वेद के अतिरिक्त गुलिस्तां बोस्तां आदि उपदेश संबन्धी अनेकान् पुस्कें हैं। जो मनुष्य स्वभाव के विपरीत हैं। अब रहा यह कि इस में सम्पूर्ण विद्यायें हैं सो यह प्रत्यक्षादि हेतुओं से शून्य है।

क्योंकि इसमें इल्म **इंजतराव** और अकर इल्म **वदीय** और **वियान** आदि विद्यायें नहीं हैं। और यह पुस्तक निश्चय तौरेत से पूर्व की है जिस में यह समाचार है जो वर्तमान समय में पाए जाते हैं। "दानयाल" पुस्तक के अध्याय ११ दरस (पाठ) १० से १६ तक भी यही प्रमाण मिलता है कि यह भविष्यत् वाणी जो सहस्रों वर्षों से लिखी गई थी अब पूर्ण हुई। द्वितीय कुरान की उत्पत्ति के विषय में जो १३०० वर्ष से मुसलमानों का सम्पूर्ण मतवादियों के विरुद्ध यह कथन है कि इस कुरान के सदृश एक पंक्ति बनाकर कोई मनुष्य दिखावे जैसा कि "फातुआ विसूरतिन मिसलही" अर्थात् ऐसा वाक्य अबतक किसी से न बना न,बनेगा यदि पण्डितजी इस करामात को अस्वीकार करें तो इसके सदृश एक पंक्ति बनाकर दिखायें, इस लिये करामात हमने इस सभा में दिखलादी, अब हम शुद्ध पवित्र परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि सम्पूर्ण संसार के मनुष्यों को सत्य मार्ग पर लावे और पक्षपात को उन से दूरकरे।

प्रश्नोत्तर आवागवन के विषय में।

मौलवी साहिब—शरीर का होना बिना वर्तमान आकृति के संभव

नहीं, जब आकृति उत्पन्न होती है तो प्रकृति भी अवश्य उत्पन्न होने वाली होनी चाहिये क्योंकि प्रकृति का होना आकृति द्वारा है और कारण कार्य्य से पूर्व होता है तो अब आवागमन के माननेवाले पर आवश्यक है कि जगत् अन्य हो परन्तु उन्होंने उसको अनादि माना है।

स्वामी जी—आकृति दो प्रकार की होती है, एक ज्ञान से ग्रहण होती है एक नेत्रादि से, सो कारण में आकृति है परन्तु वह इन्द्रियों से ग्रहण नहीं होती क्योंकि जो सूक्ष्म पदार्थ है जब वह स्वयं ही नहीं दिखाई देता तो उस की आकृति क्या दिखलाई देगी और जो इस कारण कि किसी प्रकार की आकृति न हो तो कार्य्य में नहीं आसकती क्योंकि जो कारण के गुण हैं वही कार्य्य में आते हैं, जैसे एक तिल के दाने में तैल होता है वह करोड़ दाने में भी होता है, लोहे के एक अणु में तैल नहीं होता तो मनभर में भी नहीं होता। जो वस्तु नित्य है उस के गुण भी नित्य हैं, कारण का होना न होना नहीं कहा जासकता वह तो नित्य है और जो वस्तु नित्य है जैसे आकृति उस के कारण की दशा में नित्य है, आकृति वस्तु के बिना अलग नहीं रहसकती। वह आकृति उसी वस्तु की है, इसी से सिद्ध है कि कारण सनातन अर्थात् अनादि है।

मौलवी—जो पदार्थ दूसरे पदार्थ के बिना न पाया जावे वह उस पदार्थ का स्वरूप है यह बात ठीक नहीं। जैसे हाथ और कुंजी की गति, कुंजी की गति बिना गति हाथ के नहीं पाई जाती किन्तु जब हाथ की गति होगी तो कुन्जी की भी गति होगी और जब कुंजी की गति होगी तो हाथ की भी गति होगी अर्थात् इन दोनों गतों में कोई गति एक दूसरे के पूर्व वा पश्चात् नहीं होती और बुद्धिमान् पुरुष निश्चय पूर्वक जानते हैं कि कुंजी की गति हाथ के बिना नहीं होती अर्थात् कुंजी की गति हाथ की गति के आश्रित है, यद्यपि वर्तमान समय में एकत्रित है, इसी प्रकार आकृति जगत् और उस की आकृति हैं यद्यपि संसार में एकत्रित हो परन्तु बुद्धि इस बात को जानती है कि प्रकृति आकृति से पूर्व की है क्योंकि गुण गुणी से और स्वीकार करने वाला स्वीकार करने वाली वस्तु से पूर्व होता है और प्रकृति का ज्ञान किसी वस्तु के छूने और दिखलाई देने से होता है वह ज्ञान या तो स्वरूप के लगाने से हो या किसी और वस्तु के लगने से। प्रत्येक दशा में जब कि वह वस्तु जिस के लगाने से वह प्रकृति संसार में इस प्रकार उपस्थित हुई कि मालूम हो और दिखाई दे वह किसी ऐसे गुण से जो प्रकृति को पश्चात् प्राप्त हुआ और यह जो उत्तर में लिखा गया कि कारण का होना या न होना नहीं कहा जाता आश्चर्यदायक यह वस्तु कि जिस के उपादान कारण में होना या न होना नहीं कह सकते वह वस्तु कि जिस का उपादान कारण ऐसा हो उस का होना किस प्रकार हो सकता है अर्थात् अभाव से भाव नहीं हो सकता और यदि उस के अनादि होने से कोई मनुष्य यह कहे कि वह उपस्थित भी होगा तो यह अभाव से

रञ्जक है। विशेष कर जैसे ऊधो की प्रत्येक मतानुसार अनित्यता है अर्थात् ऊधो की प्रकृति को एक आकार विशेष प्राप्त हुआ है कि जिस के कारण उस का ऊधो नाम रक्खा गया हो यह आकार विशेष और यह व्यक्ति विशेष इसी व्यक्ति से पूर्व कभी उपस्थित न थी इस कारण उसको अर्थात् उसके अभाव को अनादि कहा जावेगा रूप के जो दो भाग किये एक वह जिस को आकार कहते हैं और एक और इस के अतिरिक्त, इस से ज्ञात हुआ कि आकृति प्राकृतिक नहीं।

स्वामी जी—स्वाभाविक गुण आदि वस्तु के पश्चात् कदापि नहीं होते और जो पीछे हों उसे स्वाभाविक नहीं कहते जैसे अग्नि के परमाणुओं का स्वाभाविक अति छुपी रूप अर्थात् नेत्र से न मालूम होना स्वाभाविक कारण दिन उस के साथ है जब निमित्त कारण के संयोग पर परमाणुओं के संयोग करने से स्थूल कार्य होने से उसकी इन्द्रिय ग्राहीय इन्द्रियों द्वारा मुझको ज्ञात हुआ जैसे जल के परमाणु आकाश में उड़कर ठहरते हैं और जब तक बादल नहीं होते तब तक नहीं दीख पड़ते। हमारा अभिप्राय यह नहीं कि यह प्रकृति नहीं है या प्रकृति के स्वाभाविक गुण जिस प्रकार लड़के का होना और लड़के का नहीं होना जैसे कार्य्य में यह होना या न होना गुण है ऐसा ही कारण में नहीं है, जो कारण और कारण के स्वाभाविक गुण हैं वह अनादि कार्य्य जो है उसका संयोग से होना और वियोग से पीछे न रहना यह एक प्रकार की आकृति संयोग जन्य जो है वह कार्य की आकृति कहाती है उसका प्रवाह से अनादिपन है स्वरूप से नहीं और ईश्वर की जो कि सर्वज्ञ है उस की निमित्त कारण अर्थात् बनानेवाला उसके ज्ञान में सदा है और रहेगा। (अन्त के वाक्य का उत्तर पूर्व में आ गया)।

मोलवी साहिब—आदि में होना दो प्रकार का है एक जातीय द्वितीय सामयिक। जातीय जैसे हम वर्णन कर चुके हैं कि हाथ और कुन्जी की गति और ऐसे ही पूर्वता जातीय का अपने मुख्य गुणों पर जैसे पूर्वता जातीय जल की उस की शीतलता पर बुद्धि जानती है कि शीतलता जल के साथ है इस पूर्वता को जातीय पूर्वता कहते हैं मुख्य अभिप्राय यह है किजातीय पूर्वता का उन गुणों पर जो उसके मुख्य गुण हैं जातीय पूर्वता है क्योंकि गुणी अपने गुणों से अवश्य पूर्व का होता है और शंकायें उस समय उत्पन्न होती हैं जब कि सामयिक पूर्वता हो और द्वितीय सामयिक पूर्वता जैसा कि बाप की पूर्वता अपने बेटे पर, अब जात का खाली होना अपने मुख्य गुणों पर उस समय आवश्यकीय होता है जब कि पूर्वता सामयिक हो इसी प्रकार प्रकृति की पूर्वता अपनी प्रकृति पर जातीय पूर्वता है क्योंकि स्वीकार करनेवाला स्वीकार की हुई वस्तु से पूर्व होना चाहिये।

स्वामीजी—जो गुण क्रिया संयोग वियोग होने का स्वभाव रक्खे उसको द्रव्य कहते हैं परन्तु जो द्रव्य परिछिन्न अर्थात् पृथक् २ है उनका यह लक्षण है जो विभु या व्यापक द्रव्यहै वहीसंयोग वियोग स्वभावसे अलग रहतेहैं और किसी व्यापक में गुण ही रहते हैं क्रिया नहीं, जैसे कि परमेश्वर जिसमें संयोग वियोग नहीं होता परन्तु क्रिया और गुण है और आकाश दशा, काल यह व्यापक है परंतु इन में क्रिया नहीं गुण है।

मोलवी—मुख्य अभिप्राय यह है कि यह उत्तर पूर्व प्रश्न से कुछ सम्बंध नहीं रखता क्योंकि इस उत्तर में जातो और सामयिक का कुछ अन्तर नहीं दिखलाया गया। फिर मोलवी साहिब ने कई एक उदाहरणों से सिद्ध किया कि जो वस्तु इन्द्रियों से नहीं जानी जाती है उस का भाव नहीं माना जा सकता अतः अनादि वस्तु से विना देखे असत्य और झूंठी प्रतीत होती हैं और रहा पानी के परमाणुओं का भाफ हो जाना जो प्रत्यक्ष दिखलाई नहीं देता परन्तु तौ भी किसी न किसी इन्द्रिय से अवश्य ज्ञात होता है और पुनर् जन्म भी इस कारण झूंठा सिद्ध होता है जैसे किसी मनुष्य का जीव कुत्ते वा गधे के शरीर में चला आवे तो उसके पिछले जन्म की कमाई व्यर्थ जावेगी अब आप को प्रथम ज्ञान प्राप्त की रीतियां नियत करनी चाहिये फिर उनपर तर्कना की जावेगी।

स्वामीजी—दश इन्द्रियों से मोलवी साहिब का यह कथन ठीक नहीं जैसे जीवात्मा किसी इन्द्रिय से नहीं देखा जाता परन्तु वह है। जो मोलवी साहिब ने कहा कि अनादि वस्तु झूंठी है यह किसने कहा है क्या यह बात आपने अपने ही मन से जोड़ली है क्योंकि जब मैं लिखवाचुका कि परमेश्वर और जीव और जगत् का कारण यह तीन संनातन हैं इस से अनादि तौ सिद्ध है और अभाव से भाव कभी नहीं होता और जो कोई कहे उस का प्रमाण नहीं है जो गदहे और कुत्ते के शरीर में मनुष्य का जीव जाने से मोलवी साहिब कहते हैं कि बड़ी हानि होती है क्योंकि सब कमाई की हुई चली जाती है जो मोलवी साहिब ऐसा मानते हैं तौ मौलवी साहिब को सोना कदापि न चाहिये क्योंकि निद्रा आनेपर जागृत की सब कमाई नष्ट होजाती है, यदि मोलवी साहिब कहें कि जागृत होने पर वह सब ज्ञान फिर आजाता है तौ कुत्ते और गधे के शरीर में भी आजावेगा और फिर ज्ञान प्राप्त कर सकता है जिसप्रकार मनुष्य सोने से जागकर, अब बुद्धिमान स्वयं मेरे और मोलवी साहिब के कथन को विचारकर निर्णय कर लेंगे परन्तु मेरी सम्मति में एक जन्म उपरोक्त कथन से सिद्ध नहीं होता किन्तु पुनर जन्म ही सिद्ध है।

संक्षेप नियम व्यवस्था शास्त्रार्थ श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती व मौलवी क़ासिम साहिब द्वितीय बार स्थान रुड़की प्रान्त सहारनपुर ।

स्वामी जी पंजाब देश में प्रचार करते हुए २५ जौलाई ७८ ई० को **रुड़की** नगर में पधारे लाला शंभूनाथ जी के बँगले में उतरे और सत्य धर्म का प्रचार करना आरम्भ किया । इसके पश्चात् १४ अगस्त ७८ से विज्ञापन देकर **आरमन्स स्कूल** के पास व्याख्यान देने आरम्भ किये । इस स्थान पर चार व्याख्यान प्रबल युक्ति सहित हुए जिन से सर्व साधारण की अनेक शंकायें निवृत्त होगईं और उन का ध्यान सत् धर्म की ओर होगया । मुसलमानों ने भी स्वामी जी के आक्षेपों से घबड़ाकर **मौलवी मुहम्मद क़ासिमजी प्रधानाध्यापक मदर्सा देवबंद को** बुलाया जो १८ अगस्त ७८ को आ गये और आते ही विज्ञापन शहर में इस विषय का लगाया कि स्वामी दयानन्द सरस्वती दीन इस्लाम पर बहुत से झूठे आक्षेप करते हैं जिनको बहुत से मुसलमान तो जानते भी न होंगे मैंने इन बातों को जानकर अपने मित्रों द्वारा स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने के अर्थ तिथि नियत करने का अति उद्योग किया परन्तु वह टालमटोल करते हैं और यह कहते हैं कि मैं **मौलवी कासिम अली** से ही वार्तालाप करूंगा और जब वह आजायेंगे तो सब निश्चय हो जावेगा-मैं समझता हूँ कि यदि स्वामी जी अपने आक्षेप सब को सुनावें तो सब ही उन का उत्तर भी दे सकते हैं । न जाने मेरे लिये क्यों आग्रह करते हैं, अब मैं भी आगया हिन्दू भाई अति शीघ्र शास्त्रार्थ की तिथि नियत करें और एक पत्र रजिस्टरी द्वारा स्वामी जी के पास भी भेजा कि जिसमें कुछ शास्त्रार्थ के नियम भी थे ।

इसके उत्तर में स्वामी जी के अनुयाइयों ने एक विज्ञापन दिया कि जिस किसी ने हमसे शास्त्रार्थ के लिये आकर कहा हमने उससे बातचीत की और फिर वही हमसे यह कह कर चले गये कि हम आप को फिर उत्तर देवेंगे । हमारी ओर से कभी टोल टाल नहीं हुई, मौलवी साहिब का यह कथन कि हमने शास्त्रार्थ की तिथि नियत की असत्य है । वह हमारे सामने किसी ऐसे पुरुष को लावें कि जिसने मुझ से शास्त्रार्थ के विषय में वार्तालाप की हो और हमारी ओर से उत्तर न मिला हो, कई महाशयों ने आकर शास्त्रार्थ के नियम निश्चय किये सब निश्चित होगये केवल एक के लिये कह गये कि हम फिर आकर उत्तर देंगे जिस का उत्तर अब तक प्राप्त नहीं हुआ । अब रहा यह

कथन कि यदि आक्षेप सब को सुनाये जावें तो उत्तर भी सब ही दे सकते हैं यह अद्भुत फिलास्फी है जिसको आप ही समझ सकते हैं। यदि यह कहा जाता तो सत्य भी था कि यदि आक्षेप सबको सुनाये जाते तो सबको उत्तर देने का अधिकार होता सब तो किसी तुच्छ से तुच्छ धर्म को भी नहीं कर सकते यह तो धर्म सम्बन्धी विषय है जो विद्वानों के लिये भी कठिन है, स्वामी जी सदा शास्त्रार्थ को उद्यत हैं और इसी कारण से वह यहां बहुत समय से टिके हुए हैं।

इसके अतिरिक्त स्वामीजी ने भी एक पत्र मौलवी साहिब के नाम भेजा जिस में उन्होंने लिखा कि मैंने किसी मनुष्य को कभी प्रश्न करने या कभी किसी आक्षेप का उत्तर देने से मने नहीं किया। मैंने केवल अपने व्याख्यान के समय यह कह दिया था कि जिन महाशयों को मेरे कथन पर आक्षेप हो वह उस आक्षेप को लिखते जावें व्याख्यान की समाप्ति पर मुझ से पूछलें क्योंकि व्याख्यान के समय में वार्तालाप ठीक२ नहीं हो सकता—जिसको आप भी स्वीकार करेंगे। इसके अतिरिक्त मैंने एक विज्ञापन यह भी दिया कि जिस किसी को मुझ से कुछ पूछना हो पूछे पर लिस पर भी कोई न आया। मैं केवल ऐसे पुरुषों से शास्त्रार्थ करना चाहता हूं कि जो अपने दीन के सिद्धान्तों से भली भांति परिचित हों। वर्तमान समय में आपको मनुष्य ऐसा बतलाते हैं इस कारण मैंने आप का नाम लिया। जब आप मुझ से शास्त्रार्थ करने ही को पधारे थे तो आप ने विज्ञापन क्यों दिया। आप तो मेरे पास आ सकते थे। यदि आप मेरे पास आना अनुचित समझते तो पत्र द्वारा सूचितकर सकतेथे। विज्ञापन देने से आप अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं परन्तु वास्तव में समय नष्ट होता है। मेरे अनुयायियों ने जो आप की देखा देखी विज्ञापन दिया, यह भी ठीक नहीं परन्तु उनके आग्रह करने पर उसकी एक प्रति आपकी सेवा में भेजता हूं। रजिस्टरी के द्वारा पत्र न भेजिये इसमें देरी होगी। जो नियम शास्त्रार्थ के आप उचित समझते हों उनको लिखकर मेरे पास भेज दीजिये और जो नियम मेरी सम्मति में उचित प्रतीत होंगे वह मैं लिख भेजूंगा।

इसके पश्चात् मौलवी साहिब ने हाफ़िज़ रहीम उल्लाह साहिबको भेजकर लिखा कि इनसे नियम निश्चय कर लीजिये वह मुझको स्वीकार होंगे परन्तु यह उचित न समझा गया और मौलवी साहिब को लिखा गया कि आप ही पधारिये तब ही उत्तम कार्य बनेगा। इस प्रार्थना को मौलवी साहिब ने स्वीकार किया और आपही पधारे। उसी दिवस ११ अगस्त ७८को कर्नैल मान्सल साहिब और कप्तान स्टुआर्ट साहिब अफ़सरान छावनी रुड़की और तीस पैंतीस मनुष्यों के सामने स्वामी जी और मौलवी साहिब में अन्य नियमों के अतिरिक्त यह नियम भी निश्चित हुए।

१—दोनों ओर से चार सौ मनुष्यों से अधिक न होंगे।

२—शास्त्रार्थ गृह में प्रबंध के लिये बुद्धिमान और विचारशील पुरुषों को टिकट वितीर्ण किए जायँगे।

३—शास्त्रार्थ लेख बद्ध होगा अर्थात् जो कोई कुछ कहेगा वही लिखवाता भी जायगा, जिससे पीछे से कोई उसको अस्वीकार न कर सके और मुद्रित कराने के लिये सुगमता होगी।

४—दोनों ओर से शास्त्रार्थ विद्वानों की भांति होगा।

५—शास्त्रार्थ के समय मेरे और आपके अतिरिक्त और कोई बीच में नहीं बोलेगा।

६—स्वामी जी वेदानुकूल उत्तर देंगे और कुरान पर शंकाएं करेंगे और मौलवी साहब कुरान की पुष्टता करते हुए वेदों पर शङ्कायें करेंगे।

७—शास्त्रार्थ उस स्थान पर होगा जहां स्वामी जी इस समय रहते हैं।

८—शास्त्रार्थ ६ बजे से ६ बजे तक होगा।

९—और शास्त्रार्थ १८ अगस्त से आरम्भ होगा।

इन नियमों को मौलवी साहिब ने उपरोक्त सभ्यगणों के सामने तो स्वीकार कर लिया पर मन में बहुत घबड़ाए और सोचने लगे कि अब मेरी प्रतिष्ठा का अन्त आ गया, जिस प्रकार अति प्रवीण स्वर्णकार मैली वस्तु का मैल दूर कर उसका शुद्ध स्वरूप लोगों को दर्शा देता है इसी प्रकार यह सन्यासी मेरी बनी हुई झूंठी विद्वानता की प्रतिष्ठा को नष्ट करके मेरी योग्यता को प्रकट कर देंगे। जिससे मेरी अति अपकीर्ति होगी, इससे इस सन्यासी के सामने न आना चाहिये।

ऐसा विचार करते हुए मौलवी साहिब ने स्वामी जी को निम्न लिखित आशय का पत्र लिखा कि मैंने नुमाज पढ़ने का समय निकट आजाने के कारण से और इस भय से कि बातचीत अधिक न बढ़े उन नियमों को स्वीकार कर लिया। वास्तव में स्वीकार करने योग्य नहीं थे। मुझ को स्थान शास्त्रार्थ इस कारण स्वीकार नहीं कि वहां के मुसलमान उस को स्वीकार नहीं करते, इस के अतिरिक्त वहां नुमाज पढ़ने की बड़ी कठिनाई होगी, दो सौ मनुष्यों को तो वहां जल भी प्राप्त न होगा, खाने जाने में भी कठिनाई होगी, हमारे मनुष्यों के खान पान में भी बड़ा क्लेश होगा। और यह भी आप को प्रकट होगा कि अन्य मतवादियों के अतिरिक्त पंडित लोग भी आप से अप्रसन्न हैं सम्भव है कि कोई घटना होजावे तो मैं उन सब का अग्रगामी समझा जाऊंगा। अंधेरी रात्रि होगी सम्भव है कि आप पर कोई हाथ न चलावें इस कारण आप ही हमारे स्थान पर पधारें हम सब प्रबन्ध करलेंगे।

इस के अतिरिक्त सुनने वाले शास्त्रार्थ के बहुत हैं किस को छोड़ा जावे किसको लिया जावे। इस कारण यही उचित मालूम देता है कि सर्वसाधारण

को आने की आज्ञा दीजावे इस के अनन्तर मैं लिखित शास्त्रार्थ करना भी उचित नहीं समझता हूँ और न समय ही शास्त्रार्थ का ठीक है। या तो आप इन नियमों को बदल दीजिये अथवा शास्त्रार्थ करने से अस्वीकार लिख भेजिये कि मैं लौट जाऊं इस के अतिरिक्त उन्हों ने अनेक अंडबंड आक्षेप भी असभ्य शब्दों में किये कि आप पूर्व की समान तीनों वेदों को क्यों नहीं मानते, चारों वेदों को आप एक समान क्यों नहीं मानते, वेदों के भाष्यों पर आप क्यों आक्षेप करते हैं। यह पत्र १२ अगस्त को स्वामी जी के पास आया।

इस के उत्तर में स्वामी जी ने १३ अगस्त ७८ ई० को लिखा कि जैसा आपने असभ्यता पूर्वक मुझ को लिखा ऐसी आप से आशा कदापि न थी और न यह कर्म किसी विद्वान् के करने योग्य है जो नियम मुझ में और आप में कप्तान स्टुआर्ट व कर्नल मानसल के सामने निश्चित होगये हैं उनमें मैं उस समय तक कोई परिवर्त्तन नहीं कर सकता जब तक कि वह उपस्थित न हों। यदि कोई और नियम निश्चित करना हो तो लिखिये। आप को इन नियमों को स्वीकार करके उनसे न हटना चाहिये यह कर्म बुद्धिमानता के बिलकुल विपरीत है। यह आप को किस प्रकार ज्ञात हुआ कि मैं इस समय केवल एक ही वेद को मानता हूँ। मैं तो चारों वेदों में एक अक्षर पर भी कोई आक्षेप नहीं रखता। अब रहा भाष्यों के विषय में सो यह तो सम्पूर्ण जन जानते ही हैं कि उर्दू फारसी अर्बी में कोई वेदों का भाष्य नहीं केवल अंग्रेजी भाषा में वेदों के कुछ भाग का भाष्य है। उन में मुझ को भाष्य करने वालों की योग्यता पर आक्षेप है उन की ऐसी धार्मिक और विद्या सम्बन्धी योग्यता नहीं थी कि वेदों का ठीक भाष्य कर सकते शास्त्रार्थ करना न करना आपके आधीन है मैं किसी प्रकार का आप पर भार नहीं डालता।

इस के उत्तर में मौलवी साहिब ने १३ अगस्त को दो पत्र भेजे जिन में यह लिखा था कि विज्ञापन देने में मेरी भूल हुई क्षमा कीजिये। मैं प्रतिज्ञा का अभिलाषी नहीं। आप छुपे हुए शब्दों में शास्त्रार्थ को अस्वीकार करते हैं यह उचित नहीं, स्पष्ट शब्दों में लिखिये। मैं तो शास्त्रार्थ का अति अभिलाषी हूँ। मुझ में और आप में यह नियम कब निश्चित हुए थे। और यदि यह भी मान लिया जावे कि यह नियम निश्चित भी हुए थे तो उन नियमों के परिवर्तन में आप को क्या शङ्का हो सकती है जिन में सर्व साधारण का लाभ हो। मेरा इन नियमों के परिवर्तन कराने में क्या लाभ है कि सब को आने की आज्ञा दीजावे और शास्त्रार्थ न लिखा जावे। इस में तो सर्व साधारण ही का लाभ है, विद्वानों की तो यह रीति होती है कि यदि कोई बात निश्चित भी हो जावे और यदि उस में कोई अच्छी भी बात निकले कि जिस में सब का लाभ हो तो उस को तत्काल बदल देते हैं और किसी प्रकार का आग्रह नहीं करते। इस में मेरा क्या लाभ है यदि लाभ है तो सर्व साधारण का।

आप मेरे लिये तो लिखते हैं कि प्रतिज्ञा कर लौटना विद्वानों का कर्म नहीं परन्तु आप अपने लिये नहीं कहते कि कभी आप चारों वेदों को मानते हैं कभी एक को और अंग्रेजों के सामने एक को भी नहीं कभी आप इक्कीस शाखों को मानते हैं कभी ब्राह्मण भाग को अस्वीकार कर के मन्त्र भाग ही को मानते हैं। और कभी दोनों को। प्रण तो उसे कहते हैं जिस से उन मनुष्यों को जो उस से सम्बन्ध रखते हों हानि लाभ का भय हो जैसे खरीदना बेचना यह प्रण नहीं। इस कारण आप हठ को त्याग शास्त्रार्थ कीजिये। आप ने कहा कि मैंने असभ्य लेख लिखा। आप ही विचार कीजिये कि प्रथम किस ने आरम्भ किया। जिस पद को आप असभ्य कहते हैं वह असभ्य नहीं आप ने उस के अर्थ ठीक नहीं समझे। इस का उत्तर स्वामी जी ने मोलवी साहिब को लिखा कि आप झूठ न बोलिये मैंने कभी एक वेद को नहीं माना शोक है कि आप मेरे अभिप्राय को न समझे मैंने यह कहा था कि मैं केवल एक कुरान ही पर आक्षेप करूंगा और आप भी केवल एक वेद ही पर आक्षेप कीजिये। लीजिये इस में संख्या का विषय नहीं था केवल यह अभिप्राय था कि और पुस्तकों को छोड़ कर केवल वेद ही पर आप आक्षेप कीजिये अब आप का यह लेख कि आप मेरे अभिप्राय को नहीं समझे इस कारण असभ्य कहते हैं मैं तो वही अर्थ समझ सकता हूं जो कि शब्दों से प्रकट होता है। ऐसा ही सब जन भी जान सकते हैं सिवाय उन के जिन को आप ने समझा दिया हो कि हमारे इस लेख का यह अभिप्राय होगा।

वास्तव में मेरा यही विचार है कि जो बात मानने योग्य हो उस को ही मानना चाहिये। मेरी सम्मति में थोड़े मनुष्यों का होना आवश्यक है। इस कारण मैं इसको परिवर्त्तन करना नहीं चाहता इसके अतिरिक्त करने से मैं अति हानि समझता हूं।

चूंकि मोलवी साहिब को शास्त्रार्थ करना न था किन्तु यही कहना था कि हम शास्त्रार्थ को उद्यत थे स्वामी जी ने शास्त्रार्थ न किया, इस कारण जब स्वामी जी उन के धोखे में न आये तो उन्हों ने रुड़की के कुछ मुसलमानों से १६ अगस्त को साहिब मजिस्ट्रेट बहादुर छावनी रुड़की के यहां एक दरख्वास्त दिलवाई कि हम को स्वामी दयानन्द जी के साथ सर्वसाधारण में शास्त्रार्थ करने की आज्ञा प्रदान कीजिये इस पर यह आज्ञा हुई कि हम इस शास्त्रार्थ के होने की न रुड़की में और न सिविल स्टेशन में न छावनी में कहीं आज्ञा नहीं दे सकते।

इस के पश्चात् इसी विषय में एक दरख्वास्त कर्नैल मानसल साहिब को भी दी कि स्वामी दयानन्द सरस्वती मोलवी मुहम्मद कासिम से शास्त्रार्थ करने के लिए बार बार आग्रह करते हैं और मजिस्ट्रेट साहिब ने हम को इस के लिये आज्ञा नहीं दी। आप ही आज्ञा प्रदान कीजिये कि

हम स्वामी जी के निवास स्थान पर ही आकर शास्त्रार्थ करें परन्तु यह भी स्वीकृत न हुई।

अब मोलवी साहिब ने देखा कि दोनों स्थानों से निवेदन पत्र अस्वीकृत तो हो ही चुके हैं। इस कारण शास्त्रार्थ तो हो ही नहीं सकता। अब उन्हों ने स्वामी जी को एक पत्र लिखा कि सर्व साधारण में शास्त्रार्थ होने की आज्ञा मजिस्ट्रेट साहिब और कर्नैल साहिब ने नहीं दी हमने तो बहुत उद्योग किया, इस कारण अब रुड़की छावनी और आपके निवास स्थान पर तो शास्त्रार्थ हो ही नहीं सकता। इस कारण आप ईदगाह-पर आइए वहां सब प्रबन्ध होजावेगा या आप अपने ही निवास स्थान के लिये आज्ञा मंगा लीजिये हम शास्त्रार्थ को उद्यत हैं।

यह पत्र स्वामी जी को १७ अगस्त को मिला और उन्होंने उसका उसी दिन उत्तर दिया कि आप ने नियम तो स्वीकार कर लिये परन्तु यह नहीं लिखा कि लेखबद्ध शास्त्रार्थ करना आप स्वीकार करते हैं या नहीं, हमने आज्ञा के लिये लिखा है कल उत्तर देंगे।

इसी समय स्वामी जी ने एक पत्र अंग्रेज़ी में पं० उमरावसिंह जी से लिखवाया कि मोलवी मुहम्मद क़ासिम स्वामी दयानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। इसके लिये मजिस्ट्रेट और कर्नैल मानसल ने आज्ञा नहीं दी आप स्वामी जी के निवास स्थान पर शास्त्रार्थ होने की आज्ञा प्रदान कीजिये। इसके उत्तर में पेठन साहिब ने लिखा कि कर्नैल मानसल साहिब ने कहा है कि थोड़े मनुष्यों की सभा में जो फ़िलास्फ़रों की रीत्यानुसार अपना कार्य करना चाहें उनको कोई रोक नहीं है इस कारण मेरा तो यही विचार है कि आर्य्य और मुसलमान दोनों इस समय स्वामी जी के निवास स्थान ही पर शास्त्रार्थ कर लें।

जिस समय मौलवी साहिब के पास स्वामी जी का इस विषय का पत्र आया कि हमने शास्त्रार्थ की आज्ञा के लिये पत्र लिखवाया है तब ही से आप ने बातें बनाना प्रारम्भ करदीं और लिखा कि आप का पत्र लिखना व्यर्थ है आज्ञा नहीं मिल सकती और जब केपटेन साहिब के पत्र की लिपी भेजी गई तो लिख दिया कि केपटेन साहिब को कोई अधिकार नहीं और स्थान भी आप का छोटा है उसमें ८ वा १० मनुष्यों से अधिक नहीं समा सकते मेरी ओर के ४ या ५ से अधिक मनुष्य बैठ सकेंगे जब सब लिखा ही जावेगा तो यही उचित ज्ञात होता है कि शास्त्रार्थ लेख द्वारा ही होजावे, मौलवी साहिब इस प्रकार लिखते रहे परन्तु किसी प्रकार शास्त्रार्थ को न उद्यत हुए जब यह उत्तर १८ अगस्त को आगया तब स्वामी जी ४ दिन और निवास कर आर्यसमाज स्थापन करके पश्चात् २२ अगस्त को मेरठ पधारे।

संक्षेप नियम व्यवस्था शास्त्रार्थ
श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती व मौलवी कासिम साहिब
तृतीय बार स्थान मेरठ ।

१७ मई सन् ७६ को सायंकाल के समय स्वामी दयानन्द सरस्वती व मौलवी क़ासिम अपनी सम्मति से शास्त्रार्थ के नियम निश्चय करने के लिये बाबू शिवनारायण मुमाश्ता कमसरियट की कोठी पर एकत्रित हुए चूंकि सर्व साधारण का अति समारोह था इस कारण मौलवी साहिब व स्वामी जी की ओर से दस २ मनुष्य शास्त्रार्थ के नियम निश्चय करने के लिये अलग कमरे में जा बैठे इनके अतिरिक्त मिस्टर केपसन साहिब हेडमास्टर हाई स्कूल मेरठ भी थे प्रथम मौलवी साहिब ने १० नियम पढ़े जिनमें से ६ को स्वामीजी ने स्वीकार किया परन्तु चार के विषय में वार्तालाप आरम्भ हुई. मौलवी साहिब ने कहा कि शास्त्रार्थ लिखा न जावे । परन्तु स्वामी जी कहते थे कि शास्त्रार्थ अवश्य ही लिखा जावेगा क्योंकि प्रायः मनुष्य पराजय होने पर लोकलाज से अपने पूर्व कथन के विरुद्ध कहने लगते हैं, जिससे शास्त्रार्थ का कुछ फल नहीं निकलता, द्वितीय जब शास्त्रार्थ लिखा जाता है तो मनुष्य बहुत सोच समझ कर बोलते हैं और अंडबंड नहीं बकते । इससे समय भी बचता है और जय पराजय का भी निश्चय हो जाता है और किसी को इसके विरुद्ध कहने का साहस नहीं होता लिखे हुए शास्त्रार्थ को मुद्रित कराने में अति सुगमता होती है कि जिस से वह जन भी जो शास्त्रार्थ में उपस्थित नहीं होते आनन्द उठा सकते हैं । इस पर मौलवी साहिब ने कहा कि लिखने से वक्तृता शक्ति रुक जाती है और तबीयत कुन्द हो जाती है । इसपर मिस्टर केपसन साहिब ने कहा कि जिनको लिखाने से कथन शक्ति रुक जाती है और तबीयत कुंद हो जाती है, ऐसी विद्वानता का परमेश्वर ही सहायक है. फिर मौलवी साहिब ने कहा कि यदि लिखा ही शास्त्रार्थ करना है तो हम और आपको एक स्थान पर एकत्रित होने की क्या आवश्यकता, घर बैठे एक दूसरे पर आक्षेप कर सकते हैं और उनका उत्तर दे सकते हैं इसका उत्तर स्वामी जी ने यह दिया कि सामने होने से महीनों का कार्य क्षणमात्र में समाप्त हो जाता है, और मनुष्य पराजय भी मान जाता है, घर बैठे लिखा पढ़ी से कुछ फल नहीं निकलता देखिये मुन्शी इंद्रमण ने कैसे २ आप के मत पर आक्षेप किये हैं कि जिनका आप उत्तर कदापि नहीं दे सकते, पर तिस पर भी शास्त्रार्थका साहस रखते हो।

मौलवी साहिब का द्वितीय नियम यह था कि शास्त्रार्थ में सर्वसाधारण को आने की आज्ञा हो-इस पर स्वामी जी ने कहा कि शास्त्रार्थ सर्व साधारण में न होना चाहिये । शास्त्रार्थ में जब कि एक मनुष्य दूसरे का खण्डन करता है

तो बहुत से बुद्धिहीन मनुष्य उसको न समझ कर झगड़ा करते हैं जिस का फल अच्छा नहीं होता शास्त्रार्थ तो विद्वानों ही की मण्डली में होना चाहिये। कि जो वार्ता को समझ सकें और किसी प्रकार से झगड़ा भी न करें इसके अतिरिक्त वह यह भी जान सकते हैं कि कौन सत्य कहते हैं और कौन असत्य कहता है-धुना जुलाहों के शास्त्रार्थ में आने से क्या लाभ। इस पर मौलवी साहिब ने कहा कि न जाने अब आप सर्व साधारण में शास्त्रार्थ न करने के लिये क्यों आग्रह करते हैं। पहले तो आप नहीं करते थे, चांदापुर में शास्त्रार्थ सर्वसाधारण में हुआ था तब स्वामी जी ने कहा कि सर्व साधारण ही के कारण तो चांदापुर में शास्त्रार्थ न हुआ और सात दिन का मेला दो ही दिवस में समाप्त होगया। यदि चांदापुर ही में शास्त्रार्थ होजाता तो हम को और आप को फिर शास्त्रार्थ करने की आवश्यकता न होती। आप जानते हैं कि सर्वसाधारण ने वहां किस प्रकार के असभ्य व्यवहार किये थे-हमारे भक्तों के बैठने के स्थान पर जूते रक्खे थे-इस के अतिरिक्त आपका सर्व साधारण से क्या अभिप्राय है। यदि आपका अभिप्राय सारे संसार के मनुष्यों से वा केवल मेरठ ही के मनुष्यों से हो तो वह सब मनुष्य किसी एक स्थान पर एकत्रित नहीं हो सकें, न वह सब एकत्रित होकर हमारे आप के संभाषण को सुन सकते हैं। इस कारण शास्त्रार्थ मेरठ के विद्वान् पुरुषों ही की मंडली में होना चाहिये।

तृतीय मौलवी साहिब कहते थे कि मुबाहसा के लिये कोई समय नियत न किया जावे और यदि किया भी जावे तो एक घंटा अपने पक्ष के सिद्ध करने वाले के लिये और आध घंटा उस के खंडन करने वाले के लिये नियत किया जावे। इसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा यदि समय नियत न किया जावेगा तो संभव है कि कोई मनुष्य वार्तालाप दो चार दिन तक समाप्त न करे और अपनी ही कहता जावे। इस के अतिरिक्त ऐसा कोई विषय नहीं कि जिसका मंडन एक घंटे में हो और उसका खंडन आध घंटे में होजावे और यदि ऐसा समय नियत किया जावेगा तो दिनभर में केवल एक दोही प्रश्नोत्तर हो सकेंगे और शास्त्रार्थ वर्षों में भी समाप्त न होगा। मेरी सम्मति में एक प्रश्न के लिये ५ मिनट और उसके उत्तर के लिये १५ मिनट होना चाहिये। इस पर राय बख्तावरलाल व मुन्सिफ सा० मेरठ व पंडित गैंदनलाल ने डिप्टी साहिब से जो मौलवी साहिब की ओर से वहां उपस्थित थे कहा कि यदि आप प्रबन्ध कर सकें तो शास्त्रार्थ सर्वसाधारण ही में होजावे इस पर मौलवी साहिब ने कहा कि मैं प्रबन्ध नहीं कर सकता। पुनः मौलवी साहिब ने कहा कि स्वामी जी प्रश्न व उत्तर के लिये बहुत ही थोड़ा समय देते हैं। इतने समय में प्रश्नोत्तर समाप्त नहीं होसकते, इस कारण कि मजमून की फ़साहत व बलागत थोड़े समय में दब जाती रहती है। इसपर मिस्टर केम्बल साहिब ने कहा कि

आप शास्त्रार्थ करेंगे व सनापसदायें काम में लावेंगे सनापसदायें में अवश्य फ़ुलाहत व बलागत की आवश्यकता होती है। शास्त्रार्थ में सनापसदायें की क्या आवश्यकता।

इस पर मुन्सिफ साहिब ने कहा कि प्रथम किसी को पंच नियत कीजिये तब यह नियम निश्चय होंगे। इसपर यह निश्चय हुआ कि जो नियम सबजज साहिब मुंसिफ साहिब मिस्टर केम्सन साहिब व पण्डित गैंदलाल साहिब सर्व सम्मति से निश्चय करदें वही मानेजावें, स्वामी जी ने इस को स्वीकार किया और कहा कि आप अलग कमरे में बैठकर नियम निश्चत करदीजिये। इस पर मुसलमानों ने कहा कि इस समय नियमों का निश्चित करना मुलतवी किया जावे, मिस्टर केम्सन साहिब ने पूछा क्यों ?

इस पर डिप्टी साहिब ने उत्तर दिया कि हम जब तक मौलवी साहिब का अन्तरीय भाव न जानलें कुछ नहीं कह सकते फिर ११ तारीख नियत की गई उस दिन आदित्यवार होने के कारण मिस्टर केमसन जी नहीं आ सकते थे इस कारण १२ नियत हुई उस दिन इन्सपेक्टर मदारिस आ गये इस कारण हेड मास्टर न आसके इस कारण जलसा भी न हुआ इस के पश्चात् जब सबजज साहिब स्वामी जी से मिलने को आये तो कहा कि मैं तो सर्व साधारण में और न मौखिक शास्त्रार्थ करना उचित समझता हूं और यह दोनों नियम मौलवी साहब को स्वीकार नहीं वरन् नियम प्रथम ही निश्चित हो जाते इस पर सब लोग जान गये कि मौलवी साहिब शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते किन्तु टाल बाराई करते हैं फिर किसी ने इस विषय में कुछ न कहा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती व मौलवी अब्दुल रहमान जी सुपरिन्टिन्डेन्ट पुलिस जज अदालत उदयपुर मेवाड़ के शास्त्रार्थ का संक्षेप वर्णन ११ सितम्बर सन् १८८२ ई० ।

प्रश्न मौलवी साहिब-ऐसा कौन मजहब है जिस की मुख्य पुस्तक सम्पूर्ण मनुष्यों की बोलचाल और सम्पूर्ण स्वाभाविक रीतियों को सिद्ध कर सके। जब मैं बड़े २ मजहबों पर विचार करता हूं तो उनके सिद्धांत ऐसे बनाये गए हैं कि एक दूसरे से नहीं मिलते वरन् अति विरुद्ध हैं और उन सिद्धान्तों का प्रचार एक ही देश में है जिनको वह बड़ा मान रहे हैं।

स्वामी जी का उत्तर—मजहबी पुस्तकों में से विश्वास के योग्य कोई भी नहीं। कारण यह है कि वह पक्षपात से भरे होते हैं। जो विद्या पुस्तक बिना पक्षपात के हो वह मेरी सम्मति में ठीक है और ऐसी पुस्तक का संपूर्ण

स्वाभाविक नियमों से विरुद्ध न होना भी आवश्यकीय है। मैंने जो इस समय तक निश्चय किया है उसके अनुसार वेदों के अतिरिक्त और कोई ऐसी पुस्तक नहीं जो सर्वसाधारण की सम्मति में विश्वास के योग्य हो। क्योंकि सम्पूर्ण पुस्तक किसी न किसी देश की भाषा में लिखी गई हैं और वेद किसी देश की भाषा में नहीं लिखा गया केवल वेद विद्या पुस्तक है। इसी कारण किसी विशेष मजहब से सम्बन्ध नहीं रखती। यही पुस्तक सम्पूर्ण देशीय भाषा की मूल जड़ है जिसमें सम्पूर्ण विधि और निषेध वाक्य उपस्थित हैं जो सृष्टि क्रम के अनुकूल हैं।

प्रश्न मौलवी साहिब—क्या वेद मजहबी पुस्तक नहीं है ?

उत्तर—वेद मजहबी पुस्तक नहीं है, वरन् विद्या पुस्तक है।

प्रश्न मौलवी साहिब—मजहब का क्या अर्थ मानते हैं ?

उत्तर—पक्षपात सहित को मजहब कहते हैं, इसी कारण मजहबी पुस्तकें सर्वथा मान्य नहीं होसकतीं।

प्रश्न मौलवी—हमारे पूछने का यह अभिप्राय है कि सम्पूर्ण मनुष्यों की भाषा और मनुष्यों के आचारों और स्वाभाविक नियमों पर कौनसी पुस्तक व्यापक है सो आपने वेद बतलाया वह इसके योग्य है या नहीं ?

उत्तर स्वामी जी—हां।

प्रश्न मौलवी—आपने कहा कि वेद किसी देश की भाषा नहीं, जो किसी देश की भाषा नहीं वह सम्पूर्ण भाषाओं पर कैसे व्यापक होसकती है ?

उत्तर स्वामी जी—जो किसी देश की भाषा होती है वह दूसरे देशीय भाषाओं में व्यापक नहीं होसकती क्योंकि इसी में दृष्टि परमित है।

प्रश्न मौलवी साहिब—जब भाषा एक देश के होने से वह दूसरे देश में नहीं मिलती जब वह किसी देश की ही नहीं तो वह सब पर किस प्रकार से व्यापक होसकती है ?

उत्तर स्वामी जी—जो एक देश की भाषा है उसका व्यापक कहना सर्वथा विरुद्ध है और जो किसी देश विशेष की भाषा नहीं वह सम्पूर्ण भाषाओं में व्यापक "जैसे आकाश किसी विशेष का नहीं है" इसी कारण सब देश में व्यापक है। इसी प्रकार वेद की भाषा भी किसी देश विशेष से सम्बन्ध न रखने से व्यापक है।

प्रश्न मौ०—यह भाषा किसकी है।

उ० स्वामी—विद्या की।

प्रश्न मौ०—इसका बोलने वाला कौन है ?

उ० स्वामी—इसका बोलने वाला सर्व देशी है।

प्रश्न मौ०—तो वह कौन है ?

उ० स्वामी—वह परब्रह्म है।

प्रश्न मौ०—इनके सुनने वाले कौन हैं ?

उ० स्वामी—आदि सृष्टि में इसके सुनने वाले चार ऋषि थे जिन का नाम अग्नि वायु आदित्य और अंगिरा था। इन चारों ने ईश्वर से शिक्षा पा कर दूसरों को सुनाया।

प्रश्न मौ०—विशेष कर इन चारों को ही क्यों सुनाया था ?

उत्तर स्वामी—ये चार ही सब में पुण्यात्मा और उत्तम थे।

प्रश्न मौ०—क्या इस बोली को वह जानते थे ?

उत्तर स्वामी—इस जानने वाले ने उसी समय उनको भाषा भी जना दी थी अर्थात् उसी समय उस भाषा का उनको बोध करा दिया था।

प्रश्न मौ०—इस को किस प्रमाण से सिद्ध करते हो ?

उ० स्वामी—बिना कारण के कार्य नहीं हो सकता।

प्रश्न मौलवी साहिब—बिना कारण के कार्य होता है या नहीं ?

उत्तर स्वा०—नहीं।

प्रश्न मौ०—इसका प्रमाण क्या है ?

उत्तर—ब्रह्मादिक अनेक ऋषियों की साक्षी इस में प्रमाण है और उन के पुस्तक भी विद्यमान हैं।

प्रश्न मौ०—यह साक्षी ठीक नहीं और शंका युक्त है। इस का कारण बतलाइये ?

उत्तर स्वा०—वेद की साक्षी स्वयं वेद से प्रकट होती है।

प्रश्न मौ०—इसी प्रकार सम्पूर्ण मतवाले अपनी अपनी पुस्तकों में भी कहते हैं ?

उत्तर—ऐसी बात अन्य मतवादी पुस्तकों में नहीं है। न वह सिद्ध कर सकते हैं।

प्रश्न मौ०—पुस्तकवादी सब ही सिद्ध कर सकते हैं ?

उत्तर—मैं प्रथम ही कह चुका हूँ कि मतवाले यह सिद्ध नहीं कर सकते और यदि कर सकते हैं तो बतलाइये कि मुहम्मद साहिब के पास कुरान कैसे पहुंचा।

उत्तर मौ०—जैसे चार ऋषियों के पास वेद आया था।

(पं० लेखराम जी का कथन)

यह मौलवी साहिब का कथन सर्वथा असत्य है क्योंकि न तो कुरान वेदों की भांति आदि सृष्टि में मुहम्मद साहिब की आत्मा में प्रकाशित हुआ और न उस की कहानियां ही-आदि सृष्टि की हैं और न उस की भाषा मुहम्मद साहब और खुदा के बीच में जिबराइल और असंख्य फ़रिश्तों की चौकीदारी और पहरा और आसमान से आना आदि सम्पूर्ण बातें ऐसी ही हैं कि जिसे कोई मुसलमान अस्वीकार नहीं कर सकता इस कारण कुरान में यह गुण कदापि नहीं हो सकते।

द्वितीय प्रश्न।

मौलवी०—सम्पूर्ण संसार के मनुष्य एक जाति के हैं या कई जाति के ?

उ० स्वा०—भिन्न २ के।

प्रश्न मौ०—किस प्रमाण से ?

उ० स्वा०—सृष्टि की आदि में ईश्वरीय सृष्टि में उतने जीव मनुष्य शरीर धारण करते हैं जितने गर्भ सृष्टि में शरीर धारण करने योग्य नहीं होते और वह जीव अनेक हैं।

प्रश्न मौ०—इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है ?

उ० स्वा०—अब भी सब अनेक मा बाप के पुत्र हैं।

प्रश्न मौ०—इसके विश्वास दिलाने वाले का प्रमाण कहिये ?

उ० स्वा०—प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण।

प्रश्न मौ०—वे कौन से हैं ?

उ०—प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द ऐतिह्य, सम्भव, उपमान, अभाव अर्थापत्ति।

प्रश्न मौ०—इन आठों से एक २ का उदाहरण देकर सिद्ध कीजिये।

उत्तर स्वा०—इनके उदाहरण आर्य उद्देश्य रत्नमाला में देख लीजिये।

प्रश्न मौ०—यह जो आकृति मनुष्यों की है इन के शरीर एक प्रकार के बने हुए हैं या भिन्न प्रकार के ?

उ० स्वा०—मुख्य अवयवों में एक परन्तु रंगों में कुछ भेद है ।

प्रश्न मौ०—रंगों में किस २ में क्यों २ भिन्नता है ?

उ० स्वा०—लुटाई बड़ाई में कुछ अंतर है।

प्रश्न मौ०—यह भेद एक देश या एक जाति में एक ही प्रकार के हैं या भिन्न देशों में अनेक प्रकार के हैं ?

उ०—एक देश में अनेक हैं जैसे एक मा बाप के लड़के भी अनेक प्रकार के होते हैं।

प्रश्न मौ०—हम जब संसार की दशा पर दृष्टि डालते हैं तो आप के कथनानुसार नहीं पाते एक ही देश में कई जाति जैसे हिन्दी हबशी चीनी आदि प्रत्येक भिन्न २ मालूम होते हैं अर्थात् चीनवाले डाढ़ी नहीं रखते और तिकोने मुंह वाले होते हैं हबशी मलंगी आदि ऐसे ही तीनों की आकृति नहीं मिलती सो यह भिन्नता कुल देशों में क्योंकर है ?

उ० स्वा०—उन में भी अन्तर है ।

प्रश्न मौ०—डाढ़ी नहीं निकलने का क्या कारण है ?

उ० स्वा०—देश काल और मां बापादि के शरीरों में कुछ२ भेद है । संपूर्ण रज वीर्य के अनुसार बनते हैं और बात पित्त कफादि धातुओं के संयोग वियोग से भी कुछ भेद होते हैं।

प्रश्न मौ०—हम सम्पूर्ण संसार के मनुष्य तीन प्रकार के देखते हैं (१) डाढ़ी वाले (२) बेडाढ़ी वाले (३) घुंघरवाल वाले । डाढ़ी वाले भारतवासी, फिरंगी अर्बी, मिश्री आदि। बेडाढ़ी वाले, चीनी जापानी, कमरकट या घुंघरू बाल वाले हबशी और इन तीनों की बनावट व भेष में अन्तर है अर्थात् एक दूसरे से नहीं मिलता और आप का कथन ऊपर वाले कारणों से है और यह तीनों प्रकार के एक देश वाले दूसरे देश में आकर रहें तो कदापि भेद नहीं होता नस्ल बराबर है तो इस दशा में संसार के आदि पुरुष आप के कथनानुसार तीन हुए अधिक नहीं ।

उ० स्वा०—यदि आप का यह कथन सत्य है तो भूटियों को आप किस में मिलाते हैं क्योंकि वह तीनों में किसी से नहीं मिलते इसी प्रकार तीन से अधिक सम्मति विदित होती हैं।

उ०—जैसा भेद इन तीनों में है वैसा दूसरे में नहीं, इस किंचित् भेद का कारण तीनों जातियों के आपस में मिल जाने का है परन्तु इन तीनों की सूरत सम्पूर्ण प्रकार से एक दूसरे से नहीं मिलती।

तृतीय प्रश्न।

प्रश्न मौलवी—पुरुष की उत्पत्ति कब से है और अन्त कब होगा ?

उ० स्वामी—एक अरब ६६ करोड़ और कितने लाखादि वर्ष उत्पत्ति को हुए और दो अरब वर्ष से कुछ ऊपर तक रहेगी।

प्रश्न मौ०—इस का क्या प्रमाण है ?

उ० स्वामी—इसका हिसाब विद्या और ज्योतिष शास्त्र से है।

प्रश्न मौ०—वह हिसाब बतलाइये ?

उ० स्वा०—भूमिका के प्रथम अंकमें लिखा है और हमारे ज्योतिष शास्त्र से सिद्ध है देख लो।

चतुर्थ प्रश्न।

प्रश्न मौलवी—आप धर्म के प्रचारक हैं या विद्या के अर्थात् आप किसी मज़हब के अनुयायी हैं या नहीं ?

उ० स्वा०—जो मज़हब विद्या से सिद्ध होता है उसके अनुयाई हैं।

प्रश्न मौ०—आप ने किस प्रकार से जाना कि ब्रह्मा ने चारों ऋषियों को वेद पढ़ाया।

उ० स्वामीजी—श्रुति और आप्त विद्वानों की साक्षी से।

प्रश्न मौलवी—यह साक्षी आप तक किस प्रकार से पहुंची ?

उ० स्वामीजी—वचन और उनके पुस्तकों द्वारा।

प्रश्न मौलवी—शास्त्रार्थ आरम्भ होने से प्रथम परसों यह निश्चय हुआ था कि उत्तर युक्ति पूर्वक होंगे न शब्द प्रमाण द्वारा अब आप इसके विपरीत उत्तर देते हैं ?

उ० स्वामीजी—युक्ति वह है जो विद्या से सिद्ध हो चाहे वह मौखिक हो वा लिखित जिसको सम्पूर्ण विद्वान् मानते हैं और आप भी।

प्रश्न मौ०—इस कथन के अनुसार ब्रह्मा का चारों ऋषियों को वेद का पढ़ाना विद्या या बुद्धि से किस प्रकार सिद्ध होता है ?

उ०—बिना कारण के कार्य नहीं हो सकता। इस हेतु विद्या का भी कोई कारण चाहिये और विद्या का कारण यह है जो आदि सृष्टि से है और यह आदि कारण परमेश्वर है, उसकी कारीगरी के देखने से सिद्ध होना है कि जिस प्रकार वह सम्पूर्ण संसार का निमित्त कारण है उसी प्रकार उसकी विद्या भी सम्पूर्ण मनुष्यों की विद्या का कारण है यदि वह ऋषियों को वेद विद्या का उपदेश न करता तो यह जो विद्या पुस्तक है और ईश्वरीय नियमों के अनुसार है इसका ज्ञान न कराता।

प्रश्न मो०—ब्रह्मा ने वेद चारों ऋषियों को अलग २ पढ़ाए या मिला कर अर्थात् एक के पश्चात् दूसरे को या साथ साथ?

उ० स्वा०—ब्रह्म सर्वव्यापक है इसकारण चारों को पढ़ाया गया क्योंकि इन चारों की परिमित बुद्धि के कारण एक ही समय में अनेक विषयों का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते। और प्रत्येक की विद्या बुद्धि की भिन्नता से कभी चारों एक समय में और कभी २ अलग २ समझ के सम्मिलित होकर पढ़ते रहे। वेद चारों अलग २ हैं उन्हीं प्रकार प्रत्येक को एक एक वेद पढ़ाया।

प्रश्न मो०—शिक्षा का समय कितना है?

उ० स्वा०—जो समय उनकी बुद्धि के अनुसार आवश्यकीय था।

प्रश्न मो०—यह पढ़ाना मौखिक हुआ या लेखबद्ध?

उत्तर स्वामी—सार्थक शब्द जो वेद में हैं वही पढ़ाये गए।

प्रश्न मो०—सार्थक शब्दों के लिये मुंह जिह्वादि चाहिये पढ़ाने वाले में यह है या नहीं?

उत्तर स्वा०—उसमें यह नहीं हैं क्योंकि वह निराकार है परमेश्वर शिक्षा देने के लिये बोलने वाले अवयव नहीं रखता।

प्रश्न मो०—शब्द कैसे बोला गया?

उ० स्वा०—जैसे आत्मा और मन में बोला, सुना और समझा जाता है।

प्रश्न मो०—भाषा के बिना जाने हुए शब्द किस प्रकार उनके मनमें आये?

उ० स्वा०—ईश्वर के डालने से क्योंकि वह सर्वव्यापक है।

प्रश्न मो०—इस सम्पूर्ण वार्ता में दो बातें निश्चय के विरुद्ध हैं प्रथम यह कि ब्रह्मा ने केवल चार ही मनुष्यों को ऐसी भाषा में वेद की शिक्षा दी कि जो किसी देश व जाति की भाषा नहीं। द्वितीय यह कि सार्थक शब्द जो प्रथम से जाने हुए नहीं थे दिल में डाले गये और उन्होंने सही समझे यदि यह मान लिया जावे तो सम्पूर्ण बुद्धि विरुद्ध बातें जैसे मोजिजे (अक्ल व चमत्कार) आदि सम्पूर्ण मजहबों की ठीक मानने चाहियें।

उ० स्वा०—यह दोनों बातें बुद्धि विरुद्ध नहीं, क्योंकि यह दोनोंही सत्य हैं जोकुछ

जिह्वा या आत्मासे बतलाया जावे वही धना शब्द नहीं होसका उन्होंने जब उन को शब्द बतलाये तो उनको धारण करनेकी शक्ति दी उसके द्वारा उन्होंने परमेश्वर के स्वीकार करानेमें अपनी योग्यतानुसार स्वीकार किया बोलने वाली इंद्रियोंकी आवश्यकता बोलने और सुनने वालेको जुदाईमें होतीहै क्योंकि जो वक्ता मुंहसे न कहे और श्रोताके कान न हों तो न कोई उपदेशकर सकताहै और न कोई सुन सकता है परमेश्वर चूंकि सर्वत्र व्यापक है इस कारण उनकी आत्मा में भी उपस्थित था अलग न था परमेश्वर ने अपनी आदि विद्याके शब्दों को चारों ऋषियों की आत्मा में प्रकट किया और सिखाया। उन्होंने उसके सिखाने से जैसे किसी अन्य भाषा का विद्वान् किसी दूसरे देश के अनभिज्ञ पुरुष को जिसने उस भाषा का कोई शब्द नहीं सुना सिखा देता है इसी प्रकार परमेश्वर ने जिस की विद्या सब पर व्यापकहै और उस विद्याको भी जान तथा उसीने सिखा दिए यह वार्ता बुद्धि विरुद्ध नहीं जो उनको बुद्धि विरुद्ध कहे वह इसका प्रमाण दे (या सिद्ध करे) पुराण जो पुराणी पुस्तकें हैं अर्थात् वेद के चार ब्राह्मण हैं वे वहां तक ठीक हैं जहां तक वेद विरुद्ध न हों और जो नवीन पूराणादि भागवतादि हैं वह ईश्वरीय नियम और विद्या के विरुद्ध होने के कारण ठीक नहीं बिलकुल झूठे हैं।

प्रश्न मौ०—पुराण मजहबी पुस्तक है या विद्या पुस्तक ?

उ० स्वा०—प्राचीन पुराण ब्रह्मादि विद्या सम्बन्धी और नवीन भागवतादि मजहबी हैं जैसे कि दूसरी मजहबी पुस्तकें।

प्रश्न मौ०—जब वेद विद्या पुस्तक है और पुराण मजहबी पुस्तक है और आप के कथनानुसार असत्य है तो आर्य्यों का मजहब क्या है ?

उत्तर स्वा०—धर्म वह है जिस में निर्पक्षता, न्याय ग्रहण करना और झूंठ का त्याग वेदों में भी उसी का वर्णन है और वही आर्य्यों का सनातन धर्म है और पुराण केवल पक्षपाती मत अर्थात् शिव मतादि वादियों की पुस्तक हैं।

प्रश्न मौ०—पक्षपात आप किसको कहते हैं ?

उत्तर स्वा०—जो अविद्या, काम, क्रोध, लोभ, मोह, कुसंगति से किसी अपने अभिप्राय के अर्थ न्याय को त्याग कर असत्य और अन्याय को ग्रहण किया जावे उसी को पक्षपात कहते हैं।

प्रश्न मौ०—यदि कोई इन गुणों से रहित हो और आर्य्य न हो तो आर्य्य लोग उसके साथ आपना सा वर्ताव खान-पान व व्याह आदि में करेंगे या नहीं ?

उत्तर स्वा०—कोई विद्वान् खाने और व्याह को धर्म या अधर्म से विशेष सम्बन्ध नहीं जानते किंतु इसका सम्बन्ध विशेष कर देश के आचार और निकटवर्ती जाति से है न इस पर चलने से धर्म की उन्नति और न ध्यान देने

से धर्म की हानि होती है परन्तु किसी देश व समुदाय में रहकर किसी अन्य मतवाले के साथ दोनों कर्मों में सम्मति होना हानिकारक है। इस कारण करना अनुचित है क्योंकि जो मनुष्य खाने और ब्याह पर ही धर्म, वा अधर्म को निर्भर रखते हैं उनका संशोधन आवश्यकीय है और यदि कोई विद्वान् अलग होजावे तो समुदाय को उससे घृणा होगी और यह घृणा उसको शिक्षा के लाभ उठाने से दूर रखती है और सम्पूर्ण विद्याओं का फल यह है कि अन्य को लाभ पहुंचाया जावे हानि पहुंचाना ठीक नहीं।

पंचम प्रश्न।

१७ सितम्बर सन् १८८२ ई०।

प्रश्न मो०—सम्पूर्ण मतवादी अपनी धर्म पुस्तक को सर्व श्रेष्ट और उस भाषा को सब से उत्तम कहते हैं और यह इस कारण को कार्य्य कहते हैं और जो वह हार्दिक प्रमाण देते हैं वही आपने भी वेद के विषय में दिये-कोई अन्य प्रमाण प्रकट नहीं किया फिर वेद में क्या विशेषता है?

उत्तर स्वा०—प्रथम भी इसका उत्तर दियागया है कि जिस में प्रत्यक्षादि प्रमाणों और ईश्वरीय नियम के विरुद्ध विषय न हो वह पुस्तक ईश्वरीय पुस्तक होगी और कार्य्य विना कारण नहीं हो सकता चार मजहब जो कि मुख्य कुल मजहबों में हैं पुराणी, जैनी, इंजील तौरेत वाले किरानी, कुरानी इन की किताबें मैंने कुछ देखी हैं और इस समय में भी मेरे पास हैं और मैं कुछ कह सकता हूं और पुस्तकें भी दिखला सकता हूं। जैसे पुराण वाले एक शरीर से संसार की आदि मानते हैं यह भी असत्य है क्योंकि शरीर मिश्रित है इस कारण वह उत्पन्न हुआ है उस को उत्पन्न करने वाले की आवश्यकता है। जिन्होंने इस संसार को सनातन इस कारण से माना है कि कोई उसका बनाने वाला नहीं यह भी असत्य है क्योंकि मिश्रित स्वयम् नहीं बनता। इंजील और कुरान में न होने से होना माना है यह चारों बातें नमूने के तौर पर विद्या के नियम के विरुद्ध हैं। इस कारण इन को वेद से नहीं मिला सकते। वेदों में कारण से कार्य्य को माना है और कारण अनादि है। जगत्, प्रवाह से अनादि है परन्तु यह अनेक बार बनता और बिगड़ता रहता है इस को सम्पूर्ण विद्वान स्वीकार करते हैं। मैं सत्य और असत्य वचनों के कारण वेद की सत्यता और अन्य मजहबी पुस्तकों की असत्यता को मानता हूं यदि कोई महाशय प्रत्यक्ष देखना चाहें तो एक दिन तीन घन्टे में तो मैं इन मजहबी पुस्तकों को ईश्वरी नियमों के विरुद्ध दिखा सकता हूं और यदि विपक्षी वेद में ईश्वरीय नियमों के विरुद्ध दिखलावें या तो उसका विचार करनेके पश्चात् केवल उसका अज्ञान ही मालूम होगा। इस कारण वेद ठीक पुस्तक है न कि किसी मत विशेष की।

षटम अध्याय ।

प्रश्न मौ०—प्रकृति अनादि है ?

उत्तर स्वा०—उपादान कारण अनादि है ।

प्रश्न मौ०—अनादि आप कितने पदार्थों को मानते हैं ?

उत्तर स्वा०—तीन—परमात्मा, जीव और संसार का कारण यह तीनों स्वभाव से अनादि हैं । इन संयोग वियोग कर्म और उनका फल भोग प्रवाह से अनादि हैं । कारण का उदाहरण जैसे घड़ा, उपादान कारण मिट्टी, निमित्त कारण—कुम्हार—चक्र दंड, साधारण कारण—काल व आकाश समवाय कारण से संबंध रखती है।

प्रश्न मौ०—वह पदार्थ जिसको हमारी बुद्धि समझ नहीं सकती उसको अनादि क्योंकर मान सकते हैं ?

उत्तर स्वा०—जो वस्तु नहीं है वह कदापि नहीं हो सकती और जो है वही होती है ऐसे इस सभा के सभ्यगण जो थे तो यहां आए यहां हैं तो भी कहीं होंगे बिना कारण कार्य को मानना बांझ के समान संतान का जनना है कार्य से चारों कारण जिनका वर्णन ऊपर हुआ पूर्व मानने पड़ेंगे संसार में कोई कार्य नहीं जिसके उपरोक्त वर्णित चार कारण न हों ।

प्रश्न मौलवी—सम्भव है कि जगत् का कारण जिसे आप अनादि कहते हैं शायद वह भी किसी अन्य वस्तु का फल हो जैसे कि बिजली के बनने में कई छोटी २ वस्तुयें मिलकर ऐसी प्रबल शक्ति उत्पन्न होती है जो बहुत बड़ी है इस से प्रकट होता है कि प्रत्येक वस्तु के लिये कोई न कोई कारण चाहिये तो कारण के लिये भी कोई कारण अवश्य होगा ?

उ० स्वामी—अनादि कारण उसका नाम है जो किसी का कार्य्य न हो जो किसी का कार्य हो उस को अनादि कारण नहीं कह सकते किन्तु वह परम्परा और पूर्व पर सम्बन्ध से कार्य कारण नाम वाला होता है यह सब विद्वानों को जो पदार्थ विद्या को यथार्थ जानते हैं स्वीकार है वह किसी पदार्थ को चाहे जहां तक अवस्थान्तर विभाजित करते जावें चाहे सूक्ष्म चाहे स्थूल। जिसकी अन्त में अवस्था हो उसको कारण कहते हैं और जो बिजली का दृष्टान्त दिया वह भी निश्चित और यथानुसार कारण से होता है जो उस के लिये आवश्यक है दूसरों से वह नहीं हो सकती ।

सप्तम प्रश्न ।

प्रश्न मौलवी—यदि वेद ईश्वर का बनाया हुआ होता तो दूसरे परमेश्वरीय पदार्थ जैसे सूर्य, जल, वायु आदि सम्पूर्ण संसार के सब मनुष्यों को उसका लाभ पहुंचना चाहिये था ?

उत्तर—सूर्यादि सृष्टि के समान ही वेदों से सब पदार्थों को लाभ पहुंचता है क्योंकि सम्पूर्ण मजहबों और विद्या की पुस्तकों का आदि कारण वेद ही है और इन पुस्तकों में विद्या के विरुद्ध जो बातें हैं वह अविद्या का कारण हैं क्योंकि यह सब पुस्तकें वेद के पश्चात् बनी हैं प्रमाण वेद के प्रागादि होने का यह है कि सम्पूर्ण प्रत्येक मतवादी पुस्तक में वेद की वार्ता संकेत से या प्रत्यक्ष पाई जाती है और वेदों में किसी का खण्डन मण्डन नहीं जैसे सृष्टि विद्यावाले सूर्य आदि से अधिक उपकार लेते हैं वैसे ही वेद के पढ़ने वाले भी वेद से अधिक उपकार लेतेहैं और न पढ़ने वाले कम ।

प्रश्न सोलहवीं—और इस कथन को स्वीकार नहीं करता कि किसी समय में वेद को सम्पूर्ण मनुष्यों ने स्वीकार किया हो और न किसी मत सम्बन्धी पुस्तक में संकेत व प्रत्यक्ष रूप से वेदों का खण्डन व मण्डन पाया जाता है ।

उत्तर स्वामी जी—वेद का खण्डन मण्डन पुस्तकों में है जैसे कुरान में है बुतपरस्त वाले और एक अद्वितीय ईश्वरको मानने वाले जैसे बाइबिलमें बिना पुत्र परमात्मा होना की बात ईश्वर की प्रिय व बड़ा महायज्ञ आदि शब्द और जितनी मजहबों के रचे हुए हैं वे नवीन हैं इस समय के इतिहास से सिद्ध है कि मुसलमान, ईसाई आदि जङ्गली थे जो अंगलियों को विद्या से क्या कार्य और पहले विद्वान् पुरुष वेदों को मानते थे और वर्तमान समय में भी शब्द विद्या के परीक्षक मोक्षमूलर विद्वान् भी संस्कृत ऋग्वेदादि को सब की जड़ और सब भाषाओं का मूल निश्चय करते हैं और जब बाइबिल कुरान नहीं बने थे तो वेद के अतिरिक्त द्वितीय मानने के योग्य पुस्तक कोई भी न थी जिस समय परमात्मा ने ऋषियों को वेदों का उपदेश किया वही सृष्टि की उत्पत्ति का समय है जिसे १९६०८५२९६७ वर्ष हुए इस से पूर्व की कोई पुस्तक नहीं ।

नोट।

इस शास्त्रार्थ में प्रथम दिवस महाराणा साहब सुशोभित नहीं हुए थे परंतु उन्हों ने शास्त्रार्थ लिखित होना स्वीकार किया था, अन्त दिवस महाराजा जी भी सुशोभित हुए और मौलवी साहिब का आग्रह देख करकहा कि जो कुछ स्वामी जी ने कहा वह ठीक है फिर शास्त्रार्थ नहीं हुआ ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती वा मुन्शी इन्द्रमणि वा जगन्नाथ दास मुरादाबादी।

मुसलमानों के शासन काल में वैदिकधर्म के स्थान पर कुरानी धर्म तल-वार के जोर से फैलता जाता था परन्तु जब से बृटिश गवर्नमेन्ट का राज्य हुआ तो यह तलवार आदि से मुसलमान न कर सके तो भी वैदिक धर्म के विरुद्ध अनेक पुस्तकें मुसलमानों ने लिखीं जिन से लोग भ्रम में पड़जायें। सन् १०२७४ हिजरी में तो फेतुल हिन्द नाम की एक पुस्तक छपी जिसमें हिन्दुओं के देवताओं और पूर्वजों की अति निन्दा लिखी थी। उस समय मुंशी इंद्रमणि जी मुरादाबादी ने आपत्तियों का विचार न करके तोफहतुलइसलाम उपरोक्त पुस्तक के उत्तर में छपवाई फिर मुरादाबाद और बरेली के कई मुसलमानों ने हिन्दुओं के खण्डन की कई पुस्तकें लिखीं जिनका भी उत्तर मुन्शी जी ने यथोचित दिया। सन् १८७६ में स्वामी दयानन्द जी धर्मोपदेश करते हुये मुरादाबाद आये। मुन्शी इन्द्रमणि जी स्वामी जी से मिले और सनातन धर्म को छोड़ स्वामी जी के उपदेश से मुन्शी जी आर्य समाज के मेम्बर और मुन्शी जी के शिष्य जगन्नाथदास आर्य समाज के पुस्तकाध्यक्ष बने। इधर मुसलमान साहबान जब मुन्शी जी की पुस्तकों का जवाब न लिख सके तो १६ मई सन् ८० के अखबार जामजमशेद में एक आर्टीकल निकाला कि मुन्शी इन्द्रमणि जी ने जो तीन पुस्तकें छापी हैं उस में इस्लामी पैगम्बरों को गालियां दी हैं इसलिये गवर्नमेन्ट इन पुस्तकों को जब्तकरादे। गवर्नमेन्ट ने मजिस्ट्रेट को लिखा और कलक्टर ने इमदादअली डिप्टीकलेक्टर के सुपुर्द यह मामला किया जिसमें मुंशी जी पर ५००) रुपिया जुर्माना किया गया और कितावें सब फड़वाडाली गईं। मुंशी जी घबड़ाकर स्वामी जी के पास मेरठ गये और सब वृत्तान्त सुनाया स्वामी जी ने उनको ढाडस बंधाया और सहायता करने का प्रण किया और समाजों को भी उनकी सहायता के लिये लिखा और इस की एक कमेटी भी बनाई। ला० रामशरण जी जिसके सभापति हुए। रुपया ला० रामशरणदास वा इन्द्रमणि जी के पास आने लगा। जजी में अपील हुई। ४००) रु० मुआफ होगये और फिर हाईकोर्ट में इसकी अपील हुई जिसमें भी जज साहब का फैसला बहाल रहा फिर गवर्नमेन्ट को लिखापढ़ी की गई जिस में १००) रु० भी मुआफ कर दिये गये। चूंकि रुपया मुंशी इन्द्रमणि और ला० रामशरण दास जी के पास आया स्वामी जी ने दोनों से हिसाब मांगा। ला० रामशरण दास जी ने तो ब्योरेवार हिसाब स्वामी जी के पास भेज दिया परन्तु मुंशी जी कोई हिसाब न बतलासके तब स्वामी जी ने नियम विरुद्ध चलने के कारण मुरादाबाद समाज की मेम्बरी से उनको पृथक करा वैश्याहितैषी ३० मई ८३ ई० को विज्ञापन दे दिया जिसको देख मुंशी जी वा उनके चेले समाज

के विरुद्ध लेख लिखने लगे। जो रुपया बचा था उसको स्वामीजी ने समाजों को ही लौटा दिया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती और रमाबाई।

स्वामी जी महाराज पूर्ण ब्रह्मचारी होने के कारण स्त्रियों को उपदेश ही देते थे परन्तु यह उन्हों ने अनुभव कर लिया था कि जब तक स्त्रियों को सतोपदेश न होगा तब तक देश का उद्धार होना कठिन है और स्त्रियों का सुधार स्त्रियां ही कर सकती हैं इस लिये यह चाहते थे कि कोई विदुषी-ब्रह्मचारिणी जी इस भार को अपने ऊपर ले तो अति उत्तम है थोड़े दिनों के पश्चात् स्वामी जी ने सुना कि रमाबाई (जो संस्कृत विद्या पढ़ी हैं और अपने योग्य वर की तलाश में है) को लिखा कि जिसमें उस के वंशादि के समाचार पूछने के अतिरिक्त यह भी लिखा कि जिस प्रकार आर्यावर्त में विदुषी और सती गार्गी आदि ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर स्त्रीजनों का बड़ा उपकार किया उनका तुल्य आप विवाह कर के अनेक विघ्नों के कारण नहीं उठा सकेंगी यदि आप उपदेश का काम करें तो सब मार्ग व्यय आर्य्य समाज देगा। रमा ने इनके उत्तर में लिखा कि मेरा जन्म मैसूर राज्य के गर्ना नामक स्थान में हुआ है मेरी आयु २३ वर्ष की प्रारम्भ हुई है यावत मैं कुमारी हूं और जिस प्रकार गार्गी आदि विदुषी स्त्रियां आजन्म ब्रह्मचारिणी रहीं वह मुझ से असम्भव है। रमा ने स्वामी जी के दर्शन मेरठ जाकर किये और समाजों में व्याख्यान भी दिया। स्वामी जी ने प्रचार करने के लिये भले प्रकार समझाया परन्तु उस ने स्वामी जी की इच्छानुसार कार्य्य करना स्वीकार नहीं किया।

जीवन आदर्श।

जिस प्रकार स्वामी दयानन्द एक महान् पुरुष थे उसी भांति उनका जीवन आदर्श भी आदर्श के योग्य है जिसका प्रमाण उन्होंने अपने जीवन के कार्य्यों से भले प्रकार दे दिया।

जिस प्रश्न के उत्तर देने के लिये नेपोलियन बोनापार्ट जिसने समस्त योरुप को डामाडोल कर दिया था और सिकन्दर और महमूद जिन्होंने तलवार के बल से संसार में रक्त की नदियां बहाईं। चंगेज़ खां और नादिरशाह भी उसी लोहू की लहरों में बह गये परन्तु उस प्रश्न का उत्तर किसी ने भी न दिया कि मृत्यु पर किस प्रकार विजय पा सकता है। हां इस प्रश्न का उत्तर दिया तो इसी एक सच्चे शूर **स्वामी दयानन्द सरस्वती** ने जिस प्रश्न की उच्च-

ता और आवश्यकता उसके रोम २ में समागई थी, इस उत्कण्ठारूपी ज्वाला का बुझाने वाला कोई कार्य नहीं था। माता का पूर्ण स्नेह, पिता का धन उस की दृष्टि में कुछ भी न था, क्योंकि उसका उद्देश्य महान् था जिसके पूर्ण करने में उपरोक्त वस्तुयें कुछ भी सहायता नहीं कर सकती थीं। हां उनके माता-पिता बांधव आदि विवाह की कोमल और सुन्दर रज्जु से बांधने का उपाय कर रहे थे। परन्तु जब विवाह मृत्यु के जीतने के प्रश्न का समाधान नहीं कर सकता तो वह क्योंकर इस जंजीर में फंसते इस लिये जब गृह में कोई साधन अपने उच्च मनोरथ के सिद्धार्थ न देखा तो जिस प्रकार पानी की धारा समुद्र में पहुंचने के लिये अपने स्वभाविक वेग से मार्ग के बंधक चट्टानों इत्यादि को काटती तथा अपना मार्ग बनाती हुई बिना रुकावट के समुद्र में पहुंचे बिना नहीं ठहरती ठीक उसी भांति स्वामी दयानन्द जी की आत्मारूपी धारा सत्य की आकर्षण शक्ति को अपना आदर्श बनाती, लोभ, ईर्षा, द्वेष, भ्रांति अज्ञान की कठोर चट्टानों को स्वयं काटती और उनमें से अपना मार्ग बनाती हुई बिना किसी स्थान पर ठहरे हुए दृष्टि न आई जब तक उसने परमानन्द के सागर को प्राप्त न कर लिया।

विज्ञान के तत्व का खोज लगाने वाले वीर पुरुषों ने अपनी समाधिस्थ बुद्धि के उदाहरण संसार में समय २ पर दिये हैं, प्रश्नों के समाधान करने वाले ज्ञानियों के समीप से बहुधा सेनायें निकल गईं परन्तु उनको अन्तरध्यान होने के कारण कुछ भी बोध नहीं हुआ. सन् सत्तावन के भयङ्कर उपद्रव का कोलाहल उनके पास होता रहा परन्तु उनकी अन्तरध्यान वृत्ति ने आंख उठा कर उसकी ओर न देखा।

इस समय यह सब साधन स्वामी दयानन्द ने जन्म से धारण किये थे जिस से बढ़िया साधन संसार के इतिहास में कहीं नहीं मिल सकते। यह बालब्रह्मचर्य्य का ऐसा दृढ़, उत्तम, महान् आश्चर्यजनक साधन था जिस की प्रशंसा करते हुए. मनुष्य जाति के परीक्षक. महान् प्रतिष्ठित महर्षि भीष्म पितामह जी युधिष्ठिर महाराज से कहते हैं कि जो जन्म से मरण पर्यन्त बाल-ब्रह्मचारी रहता है उसके लिये कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसको वह प्राप्त न कर सके जिसने अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण किया उसके सन्मुख शारीरिक, आत्मिक उन्नतियां सम अवस्था में अपना स्वरूप प्रकाश कर देती हैं।

यह महान् पुरुष गुप्त रूप से. अखण्ड ब्रह्मचर्य को धारण किये हुए कठिन और अगम स्थानों में योगियों और ऋषियों की टोह में बर्फी चट्टानों पर नंगे पैर और नग्न शरीर केवल एक कोपीन धारण किये हुए ब्रह्मचर्य के तेज के बल से कांटों और झाड़ियों के अगम मार्ग को रुधिर के बिन्दुओं से सींचता हुआ आदित्य ब्रह्मचारी की भांति अमर जीवनके लाभ करने के लिये नर्मदा के स्रोत

और हिमालय के जंगल तथा आबू के शिखर पर "योगियों और ऋषियों के परम धन योग की प्राप्ति के लिये गये" जहां उन्होंने योगविद्या में प्रवीणता प्राप्त की। क्योंकि बिना इस विद्या के ईश्वर दर्शन और बिना ईश्वर दर्शन के मृत्यु पर विजय नहीं मिल सकती इस कारण उनके प्रश्न का अन्त में समाधान उनकी योग समाधि पर निर्भर था। जो उन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य्य का सेवन कर योग समाधि सिद्ध किया उच्चश्री शूरवीरता परोपकार धार्मिक जीवन के साथ निष्काम सन्यास धारण कर, महान् आत्मिक बल से पाखण्ड का खंडन करते हुए, निष्पक्ष होकर वेदोक्त धर्म का प्रचार कर अन्त को मृत्यु पर विजय पाते हुए और क्लेश की जड़ को योगबल से काटते हुए पवित्र ऋषि जीवन का दृष्टान्त दिखला कर आप परम धाम को चले गये।

जिस प्रकार स्वामी शङ्कराचार्य्य के जीवन आदर्श पर महान् से महान् शत्रु ने भी व्यभिचार का दोषारोपण नहीं दिया, उसी भांति स्वामी दयानन्द के प्राणघातक भी उनके जीवन आदर्श पर इस प्रकार का कोई धब्बा न लगा सके। जिन्होंने अपने जीवन में कभी भी स्त्रियों को अपने पास आने की आज्ञा नहीं दी वह कहा करते थे कि वह ब्रह्मचारी के नेत्रों में घुस जाती है इनके पैर का शब्द मनुष्य के चित्त को दिवागी कर देता है, उनका भौतिक शरीर ६ फुट लम्बा, सुडौल, बलिष्ठ महान् योद्धाओं की भांति, शरीर वीर्य रक्षा से युक्त, मांस मदिरा से रहित, पुष्टिकारक दूध अन्नादि शुद्ध भोजनों की उत्तमता पूर्ण रीति से दर्शा रहा था, आंखें तेज और शांति की भरी हुई, मुखड़े पर ब्रह्म तेज चमकता हुआ सब के मनों को मोहित करने वाला, आवाज़ सुरीली, उच्चारण स्पष्ट स्वर सहित, वक्तृता सरल मधुर और प्रभावशाली, तर्क शैली अत्यन्त विचित्र जिनको सैकड़ों प्रमाण वेदादि शास्त्रों के कण्ठाग्र थे अर्थात् स्मरण शक्ति स्वामी विरजानन्द की भांति अपूर्व थी। विरोधियों के कटु वाक्यों से उनका हृदय कभी विदीर्ण नहीं होताथा न वह उनको अपना शत्रु कभी समझते थे वरन् उनकी विरुद्धता को उनकी मूर्खता का कारण समझ सहनशीलता और प्रेम के साथ उनको सन्तुष्ट कर दिया करते थे जिसके कारण अनेक शत्रु वैदिक धर्म के अनुयायी बन गये। इनके संस्कृत भाषण की शैली को देख सम्पूर्ण भारत के विद्वान् चकित होजाते थे।

उनके ऋषि होने में अनेक प्रमाण हैं-देखो मनुष्य अल्प विद्या होने पर पूर्ण विद्यावान बनते हैं और अपनी भूल को सरलता से मानने के बदले उस को नाना झूठे बलों से छिपाते हैं, क्योंके महान् विद्वान् झूठे वाक्य की सिद्धि के लिये अपनी सारी विद्या बल व्यय कर धर्म का भय छोड़ संसारी प्रतिष्ठा के लिये आत्मा को दबा कर विचित्र दम्भ रचते रहे, परन्तु स्वामी दयानन्द ने जगत् प्रसिद्ध होने पर भी अपनी बाल्यावस्था की निर्बलताओं को अपने

मुख से पूना नगर में वर्णन किया, यही नहीं किन्तु जब वह मुरादाबाद में धर्म का उपदेश कर रहे थे उस समय भूल से एक शब्द मुँह से अशुद्ध निकल गया, एक लड़के ने कहा कि स्वामी जी आपने भूल की, क्या कोई ऐसा विद्वान् प्रतिष्ठित पुरुष लड़के की बताई हुई भूल को सभा के मध्य में स्वीकार करने का साहस कर सकता है, परन्तु महर्षि स्वामी दयानन्द ने तुरन्त ही सरलवाणी से कहा कि हां मैंने भूल की, अब दूसरे दिन फिर उस लड़के ने कहा तो फिर उसको स्वीकार करलिया, जब तीसरे दिन उसने कहा तो स्वामी जी ने उत्तर में कहा कि मैंने तो अपनी भूल उसी समय मान ली, परन्तु तुम तिस पर भी बाल लीला किये जाते हो। वर्तमान समय के पण्डित अपने समान वाले पण्डितको मूर्ख और अपनेसे बढ़िया पण्डितको विक्षिप्त बतलाते हैं। विद्वानों के हृदय दग्ध हो जाते हैं और पण्डितों की आंखें लाल हो जाती हैं जब वह अपने सन्मुख किसी और पण्डित की बड़ाई सुनतेहैं परन्तु ऋषि जीवन ईर्षा द्वेषसे रहित होते हैं, ऋषि लोग दोषों को निवारण करने और दूसरे के गुणों को ग्रहण करने में सदा तत्पर रहते हैं। वह किसी की प्रतिष्ठा सुनकर दुखित नहीं होते किन्तु प्रसन्न होकर गुणी जन के निकट उसके गुण की भिक्षा मांगने जाते हैं। महर्षि स्वामी दयानन्द की यात्रा बतला रही है कि उन्होंने जिस पण्डित व योगी की बड़ाई सुनी तुरन्त ही श्रद्धा की भेट लेकर वहां पहुंच उनकी सेवा में तत्पर रह अपनी न्यूनता पूर्ण करने का यत्न किया और फिर जीवन पर्यन्त अपने शिक्षा देने वाले गुरुओं को—

"आबू के भवानीगिर और हिमालय की केदार घाटी के गंगागिरी की जिन्हों ने उन को योग विद्या के गूढ़ रहस्य सिखलाये थे और मथुरा के स्वामी विरजानन्द जी कि जिन के समीप रह कर व्याकरण आदि विद्या पढ़ी थी"

सदा प्रशंसा करते रहे और जब आपने ग्रन्थ रचना की तो उक्त **श्रीमान् स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी का** शिष्य लिखते रहे और जिस समय स्वामीजी महाराजके परलोक गमनके समाचार सुने उस समय उपस्थित पुरुषों से कहा कि **आज विद्या का सूर्य्य छिप गया।** कहने का तात्पर्य्य यह है कि वे जिसमें जितना गुण देखते थे उसकी सदा प्रशंसा करते थे चाहे वह मनुष्य विद्यादि गुणों में उनसे न्यून भी क्यों न हो। एक समय की बात है कि मुरादाबाद में आप रोग की दशा में पलँग पर लेटे हुए थे, एक वैद्य शाहजहांपुर के चरक सुश्रुत के जानने वाले को साहू श्यामसुन्दर जी उन के यहां ले गये और वहां वह फर्श पर बैठ गये। जब स्वामी से वार्तालाप हुआ तो उनकी योग्यता से स्वामी जी महाराज बहुत प्रसन्न हुए और अस्वस्थ होने पर भी पलँग से उठ पास के कमरे से स्वयं कुरसी

लाकर उनको यह कहते हुए कुरसी पर बिठा, हमें मालूम न था कि आप ऐसे विद्वान् हैं।

एक बार स्वामी जी कन्नौज गये वहां पण्डित हरीशंकर जी से शास्त्रार्थ हुआ एक स्थान पर शास्त्री जी ने कहा कि मीमांसा में ऐसा लिखा है, स्वामी जी ने कहा कि ऐसा कदापि नहीं, इस पर शास्त्री जी के मुंह से निकल गया कि यदि ऐसा न हो तो हम शिखा सूत्र त्याग संन्यास ग्रहण कर लेंगे नहीं तो आप को संन्यास त्यागना होगा. स्वामी जी ने मान लिया, पण्डित जी ने घर जाकर पुस्तक देखी तो ठीक २ वैसा ही पाया जैसा स्वामी जी ने कहा था तब पण्डित जीने सब प्रतिष्ठित पुरुषों से कहा कि हम स्वामी जी से हार गये अब हम संन्यास धारण करते हैं। तब सब मनुष्यों ने एक सम्मति होकर कहा कि ऐसा न करना चाहिये वरन् आप स्वामी जी से चल कर कहिये कि जैसा तुम कहते थे वैसा ही लिखा है. इस पर हम ढुंढ मचादेंगे और आप की जय बोलदेंगे, परन्तु पण्डित जी ने यह स्वीकार न कर कहा हम झूठ कदापि न बोलेंगे और तुरंत स्वामी जी के पास जाकर अपनी भूल स्वीकार कर कहा कि हम को संन्यास दीजिये हम हार गये, इस पर स्वामी जीने सब के सम्मुख कहा कि मैं ने आज तक ऐसा सत्यवादी धार्मिक विद्वान् पण्डित नहीं देखा, यह प्राचीन समय के पण्डितों का दृष्टांत है।

प्यारे मित्रो मान तरंग संसार में बड़ी ही प्रबल है जिस में बड़े राजे महाराजे—विद्वान् और पण्डित मूर्छित हुए चले जाते हैं। हां कोई २ सुकरात और न्यूटन से मान पर लात मारने वाले, सेक्सपियर और ग्लेडस्टोन से डिगरियों और उपनामों को तिलांजुली देने वाले दिखलाई देते हैं परन्तु ऋषि श्रेणी में कोई प्रविष्ट नहीं हो सकता, जब तक कि उसने लोक-ऐषणा वित्तैषणा और पुत्रैषणा को न त्याग दिया हो। स्वामी दयानन्द जी ने इन तीनों ऐषणाओं को पूर्ण रूप से त्याग दिया था जिसके कारण वह ऋषि श्रेणी में प्रविष्ट हुए। एक बार लाहौर आर्य्यसमाज की अंतरंग सभा के अधिवेशन में आप को परम सहायक बनाने का विचार प्रविष्ट हुआ तो उस समय आपने उसके विरुद्ध पूर्ण रूप से खण्डन कर कहा कि जिस गुरुडम अर्थात् गुरुपन की जड़ को मैं मेटना चाहता हूं उसी को तुम समाज में प्रवेश करना चाहते हो यदि मुझ को परम सहायक बनाओगे तो परमात्मा को क्या कहोगे? इसके उपरांत एकबार स्वामी जी से किसी सज्जनने प्रश्न किया-आप इतने विद्वान् हैं फिर क्यों नहीं एक शास्त्र रचकर संसार में अपना नाम छोड़ जाते उस समय ऋषि श्रेणी का उत्तम आत्मा उत्तर देता है कि आगे जो शास्त्र बने हुए हैं उनमें कौनसी न्यूनता है जिसको पूरा करने के लिये मैं अपना नया शास्त्र रचूं और केवल नाम छोड़ने की आशा से पुस्तक बनाने में अपना समय व्यर्थ गँवाऊं।

प्यारे मित्रवर्गों, एक योग्य प्रोफेसर ने अपने मित्र से कहा—यदि मुझ को संसार का केन्द्र मिलजाय तो संसार को हिला सकता हूं। अब यह जानना कि जगत् का केन्द्र क्या है उस का उत्तर ऋषि दयानन्द का जीवन है। जिस समय उस लंगोटबन्द महात्मा ने सत्यमेव जयति नानृतं का नाद बजाया, अपस्वार्थियों के उच्चासनों को कम्पायमान कर दिया। ऋषि को जान से मारने की धमकी दी, लाखों वरन् करोड़ों की गद्दियों का लालच दिया। गंगा के तट पर अनेक इकट्ठे हुए अपस्वार्थी अवतार की घूंस देने की उपस्थि. परन्तु ऋषि जिसके साथ कोई शिष्य न था राज्य की ओर से कोई प्रबन्ध और हाथ में कोई खड्ग न था, तिस पर भी उस महान् पुरुष ने सत्य की अपूर्व शक्ति से जगत् को हिलादिया। देखिये जब स्वामी जी महाराज उपदेश करते हुए ग्वालियर राज्य में पहुंचे जहां महाराजा जीवाजी राव उन दिनों में भागवत के सप्ताह का प्रबन्ध बड़े समारोह के साथ कर रहे थे, आप ने भागवत का खण्डन करना आरम्भ किया जब महाराजा ने श्रीमान् से भागवत के सप्ताह के सुनने का फल पुछवाया तो उस सत्यव्रत धारी ने "जिस की आत्मा इस व्रत के धारण करने से अत्यन्त बलवान् होरही थी जो वित्तैषणा पर भी लात मार चुके थे" स्पष्ट कह दिया कि हानि के अतिरिक्त कुछ न होगा। प्यारे मित्रों, ऋषि का वाक्य सत्य ही हुआ अर्थात् सप्ताह समाप्त नहीं होने पाया था कि नगर में विसूचिका का रोग फैल गया जिस से हजारों मनुष्य मरने लगे और छोटे महाराज का "कि जिन की चिर आयु के लिये यह कार्य्य किया गया था" देहान्त होगया जिसमें राजा और प्रजा को बड़े क्लेश हुये।

एक बार जब कि बरेली में उपदेश कर रहे थे कि जिस में जिले के बड़े २ अफसर भी सम्मिलित थे उस में आप ने प्रथम पुराणों का अच्छे प्रकार चित्र खींचा जिस को सुन कर यूरोपियन साहिब बहुत प्रसन्न हुये परन्तु एक थोड़ी देर के पश्चात् जब इञ्जील की बारी आई और मसीह की उत्पत्ति का वर्णन किया फिर क्या था सब के सब अंग्रेजों के मुखड़ों पर उदासी छा गई। दूसरे दिन साहब कमिश्नर ने 'जो स्वयं व्याख्यान में उपस्थि थे' कहला भेजा कि पण्डित साहिब से कह देना कि बहुत कठोरता से काम न लिया करें यदि मूर्ख हिंदू मुसलमान रुष्ट हो गये तो व्याख्यान बन्द कर दिये जायंगे। जब स्वामी जी को यह ज्ञात हुआ तो आपने दूसरे दिन व्याख्यान देते समय कहा कि लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो कलेक्टर क्रोधित और कमिश्नर अप्रसन्न होगा गवर्नर पीड़ा देंगे, परन्तु प्यारे सज्जन पुरुषो चक्रवर्ती राजा क्यों न अप्रसन्न हो **मैं तो सत्य ही कहूंगा।**

जालंधर में सर्दार साहब विक्रमसिंह के अतिथि होने पर एक सभा के बीच "जिसमें कि सर्दार साहिब उपस्थित थे" कहा कि लोग किसानों को

मूर्ख कहते हैं परन्तु आज तक उनको किसी ने नहीं देखा कि उन्हों ने अपने बीज को अन्य खेत में बोया हो, परन्तु जो मनुष्य वीर्यरूपी बीज को मिथ्या ही खोते हैं वह कितने मूर्ख हैं। बहुधा लोगों ने स्वामी जी से एकान्त में कहा कि आप सर्दार साहिब के अतिथि हैं फिर भी आप उन की निन्दा करते हैं तो उस समय स्पष्टरूप से आप ने कह दिया कि मैं भांडों की भांति कार्य्य नहीं करता। इस से बढ़कर जोधपुर में महाराजा के अतिथि होते हुए जब कि उनको यह ज्ञात हुआ कि राजा का प्रेम नन्हींजान से है तो आपने अपने व्याख्यान में जिस में महाराजा जोधपुराधीश और उनके सर्दार, भाई बन्धु बैठे हुए थे बड़े गम्भीर शब्दों में कहा कि जब तक तुम इस कुतिया को महलों से न निकालोगे तब तक राज्य का प्रबन्ध होना असम्भव है, इसी प्रकार लाहौर में नव्वाब नवाजिश अलीखां साहब के यहां आप कुरानशरीफ़ के विरुद्ध उपदेश कर रहे थे और नव्वाब साहब भी टहलते हुए उपदेश सुन रहे थे। कई एक मनुष्यों ने स्वामी जी से कहा कि कोई हिन्दू आप के व्याख्यानों के लिये स्थान नहीं देता, एक प्रतिष्ठित मुसलमान ने स्थान दिया है सो आप वहां भी इसका बिना खण्डन किये नहीं रहते, इस पर स्वामी जी ने कहा कि मैं जानता था कि नव्वाब साहब टहलकर उपदेश सुन रहे हैं इस लिये उन के कानों में सत्य अर्थात् वेदों के महत्व को पहुंचा रहा था स्थान के लिये सचाई के प्रकाश करने से मैं कदापि नहीं रुक सकता।

प्यारे सज्जन पुरुषो! एकबार महाराजा उदयपुर ने आप से बड़ी नम्रता पूर्वक निवेदन किया कि यदि आप मूर्त्तिपूजा का खण्डन न करें तो आप इस बड़े राज के स्वामी होजावें क्योंकि यह राज्य केवल एक लिंगेश्वर महादेव के आधीन है यह सुन उक्त महात्मा ने उत्तर दिया कि आप का राज्य जिस का आप मुझ को स्वामी बनाना चाहते हैं उस परमात्मा के अखण्ड राज्य के सन्मुख कुछ भी नहीं है फिर मैं क्यों ईश्वर की अटल आज्ञा के विरुद्ध कार्य्य करूं। स्वामी जी के इस कथन का राना साहिब के चित्त पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसी दिन से उन के सच्चे भक्त हो गये।

इस के उपरान्त उन को देश सुधार और वैदिक धर्म्म के प्रचार की इतनी उमंग थी कि वह बहुधा उसी उमंग में कहा करते थे कि यदि इस जन्म में देश का सुधार और वैदकि धर्म्म का पूर्ण प्रचार न हुआ तो दूसरे जन्म में मैं इसी कार्य्य को करूंगा इन के जीवनचरित्र के पाठ करने से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि उपरोक्त कार्य्य की सिद्धि के लिए भारत के मुख्य २ नगरों में पर्य्यटन कर मिथ्या कपोल कल्पित रीतों का खण्डन और वेदों के महत्व का प्रचार किया क्योंकि उनका यह पूर्ण विश्वास था कि जब तक भारत के नाना मत मतान्तर दूर न होंगे तब तक यह उन्नति के शिखरपर नहीं पहुंच सकता इसी नियम को अपनी आयु में पालन करने के अर्थ कठिन से कठिन घोर आप-

त्तियों को ही सहन नहीं किया वरन् प्राणों को भी नौछावर कर दिया, परन्तु अपनी सत्य प्रतिज्ञा का भङ्ग नहीं किया। देखिये एकवार स्वामी जी अजमेर से जोधपुर जाने का विचार कर रहे थे उस समय किसी सभासद ने उन से कहा कि अभी आप उस प्रान्त में न जाइये वहां के लोग बड़े उजड्ड गंवार हैं जिन का स्वभाव और वर्ताव अच्छा नहीं। यह सुन सच्चे शूर महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने कहा कि यदि वह लोग मेरी उंगलियों की बत्तियां बना कर जलायें तो भी मुझ को वहां जाने में कुछ शंका नहीं मैं वहां अवश्य जाकर वैदिक धर्म का प्रचार करूंगा, इस पर दूसरे सभासद ने कहा कि आप वहां मधुरता से कार्य करें क्योंकि वहां के रहने वाले बड़े कपटी और कठोर हृदय होते हैं इस पर आपने कहा कि मैं पाप के बड़े २ वृक्षों की जड़ें कटाने के लिये तीक्ष्ण कुल्हाड़ों से काम लूंगा न कि उनको बढ़ाने के लिये कैंचियों से उस की कलम करूंगा।

यह कह वहां उपदेश को पधारे और डंके की चोट उपदेश किया जहां गुप्त रूप से उन को विष दिया गया जिससे प्राणों का बलिदान होगया परन्तु अपने सत्य व्रत से नहीं डिगे।

धन्य है ऐसे महात्मा परोपकारी को। आप मनुष्यों की प्रशन्सा और स्तुति और निन्दा पर कुछ ध्यान नहीं देते थे हालांकि मन से यह चाहते थे कि भारत के सम्पूर्ण राजे, महाराजे, सेठ साहूकार वैदिक धर्म्म के अनुयायी बन जावें-तो भी उनकी प्रसन्नता केलिए अपने सिद्धान्तों को ढीला नहीं करते थे।

स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार को भी वह मन से चाहते थे, उनकी सम्मति थी कि सम्पूर्ण देश में देशी वस्त्र देशी औषधि की उन्नति हो, मनुष्य विदेशी वस्त्रों के पहनने को छोड़ देशीय वस्त्रों आदि को काम में लावें। इसी भांति शुद्धी के भी सहायक थे, देश के अनाथों के पालन का भी विशेष ध्यान रहता था इस कारण अपने स्वीकार पत्र में उन के पालन पोषण के लिए परोपकारिणी सभा का ध्यान दिलाया है। आप के हृदय में वेदों का महत्व कूट कूट कर भरा हुआ था इस कारण जो कोई वेदों की निन्दा करता उस को बड़े प्रेम से समझा कर वेदों का महत्व उस के हृदय में कर देते थे। आप अपने समय के अद्वितीय विद्वान् थे परन्तु तिस पर भी अभिमान पास न था, एक बार मिस्टर होम ने वेदों को ईश्वरीय पुस्तक होने पर तर्क करते हुए पूछा कि आप का वेद भाष्य भी ईश्वरीय है उस समय आपने स्पष्ट रूप से कहा कि मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार वेदों का भाष्य किया यदि कोई मनुष्य मेरे भाष्य को अप्रमाणीक सिद्ध कर दे तो मैं उस के मानने के लिये उपस्थित हूं।

इतना ही नहीं वरन् वह ब्रह्मा से लेकर जैमुनि पर्यन्त जितने ऋषि हुए

उनकी वह बड़ी प्रशंसा किया करते थे-और उनके विचारों में पृथकता होने पर भी पृथककता को बड़ी प्रतिष्ठा के साथ विलोकन करते थे, अपने सम्पूर्ण जीवन में कभी ऋषि निन्दा नहीं की वरन् अपनी सम्पूर्ण रचना को उन्हीं के अनुसार लिखा।

एक बार संयुक्त प्रदेश आगरा अवध के एक प्रसिद्ध नगर में किसी सज्जन ने उन से कहा कि स्वामी जी आप तो ऋषि हैं उत्तर में मान पर लात मारने वाले सच्चे शूर वीर ने कहा कि आप मुझको ऋषियों के अभाव में ऋषि कह रहे हैं यदि मैं कणाद ऋषि के समय में उत्पन्न होता तो उस समय के विद्वानों में भी कठिनता से सम्मिलित होता।

आपके जीवनचरित्र के पाठ करने से प्रकट होता है कि लोग आपकी विद्या की बड़ी प्रशंसा किया करते थे क्योंकि स्वयं परमयोगी थे जिनके विषय में धर्मदिवाकर समाचार पत्र कलकत्ते ने महान् योगी लिखा था परन्तु महर्षि ने कभी भी अपने को योगी प्रसिद्ध करने का यत्न नहीं किया। रुड़की में जब एक आर्य्य महाशय ने योग की महिमा सुन स्वामी जी से सीखने की इच्छा प्रकट की तो उन्होंने उससे कहा कि तुम प्रथम इस विद्या के सीखने के अधिकारी बन आओ, इसी भांति अन्य स्थानों पर भी अनेकान् पुरुषों ने प्रार्थना की तिस पर जहां कहीं उनको जैसे २ अधिकारी मिले उनकी योग्यता के अनुसार साधनों के द्वारा उनको अभ्यास कराया, परन्तु संसार में बड़ाई प्राप्त करने के अर्थ खेल और तमाशों की भांति योग विद्या का प्रचार नहीं किया।

बहुधा बने योगी यह भी कहते हैं योगी जो चाहे सो कर सकता है। परंतु स्वामी दयानन्द योग की यथार्थ महिमा करते हुए कहते थे कि ईश्वर कृत सृष्टि क्रम को कोई नहीं तोड़ सकता जैसा कि ईश्वर ने नेत्रों से देखने और कानों से सुनने का प्रबंध किया है उसको कोई योगी नहीं पलट सकता इसी भांति जीव योग के द्वारा उन्नति करता हुआ परिमित ज्ञान और सामर्थ्यवाला हो सकता है परन्तु अनंत ज्ञान और सामर्थ्यवाला अर्थात् जीव कभी ब्रह्म नहीं हो सकता। महर्षि ने अपने ग्रन्थों में जहां अनेक विद्याओं का वर्णन किया है वहां उन्होंने योग विद्या का वर्णन करते हुए कहा है कि योग विद्या से आत्मा बलवान हो चेतन स्वरूप परमात्मा में स्थिर हो जाता है अन्यथा किसी प्रकार से परमात्मा के दर्शन नहीं होते।

गंगा के तट पर स्वामी जी का मगरमच्छ के पास निर्भय बैठे रहना बतला रहा है कि उन्होंने अहिंसा को सिद्ध कर लिया था। उनके जीवन वृत्तान्त के विचारने से इस बात के पुष्ट प्रमाण मिलते हैं कि वह पूर्ण योगी थे मृत्यु के भय को योग बल से काटने का दृष्टान्त अपनी मौत से देना पूर्ण योगी होने पर सिद्धियां देखने और कौतुक रचने से भागना-ईश्वर दर्शन की विधि प्रत्यक्ष प्रमाण से सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में दर्शाना इत्यादि बातें

उनके पूर्ण योगी और पूर्ण ब्रह्मचारी होने का बोधन करा रही हैं। तिस पर आपने अखंड ब्रह्मचर्य्य का पूर्ण पालन किया।

इसके उपरांत उन्होंने कई हजार ग्रन्थों का अवलोकन किया था जिस से उनका बोध अत्यंत विशाल और गम्भीर हो गया था वह व्याकरण, ज्योतिष, गणित, पदार्थविद्या, कविता, आयुर्वेद आदि विद्याओं के ज्ञाता और तत्वशास्त्र के बड़े से बड़े संस्कृत के ग्रन्थों को पढ़े हुए थे। क्योंकि कोई मनुष्य बिना पूर्ण विद्या के यथार्थ रीति से वेदों का भाष्य नहीं कर सकता जबकि उन्होंने ऋषियों की रीति पर वेदोंका भाष्य किया। अतः वह निसंदेह पृथ्वी से लेकर ईश्वर प्रार्थना सब विद्याओं के मूल सिद्धांतों को योग दृष्टिसे भ्रांतिरहित जानते थे। जिसके कारण वह ज्ञान, कर्म और उपासना के शिर पर बैठे हुए, संसार को स्वर्गधाम बनानेका यत्न जीवन पर्यन्त करते रहे।

प्यारे पाठकगणो, मैं स्वामी महाराज के जीवन आदर्श को उदाहरणों से कहां तक दिखलाऊँ क्योंकि उनके सम्पूर्ण जीवन के वृत्तान्तों से एक अपूर्व और आश्चर्यजनक दृश्य प्रकट होता है जो हमारी वर्तमान और आगे आने वाली संतानों को एक सांचे में ढालने के लिये परम उपयोगी है, इस लिये आओ प्यारे सज्जन पुरुषों और सुयोग्य स्त्रियों महर्षि के इस जीवन का नियम पूर्वक पाठ कर अपने जीवन और आने वाली सन्तानों को इस जीवन आदर्श में ढालने का यत्न कीजिये जिसको महर्षि ने पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्ण योग बल से प्राप्त किया था।

मृत्युञ्जय की मृत्यु पर यूरोप और अमेरिका के प्रतिनिधि का संशय मिटाना।

स्वामी जी के प्रचार और उपदेश ने जहां सर्व साधारण और संस्कृत जानने वालों पर प्रभाव डाला वहां उसने कई अंग्रेजी जानने वालों को भी आर्य बनाया परन्तु उनमें से मृत्युंजय की मृत्यु का पं० गुरुदत्त से अंग्रेजी सायंस के पूर्ण विद्वान के संशयात्मिक काया को बिन बोले पलटा देना अत्यन्त आश्चर्यदायक बात थी। यूरुप और अमेरिका के वर्तमान उच्च विचारों का प्रतिनिधि यदि हम पं० गुरुदत्त को कहें तो भी उचित है जिसने रात दिन मिलहेक्सले और टेन्डिल डार्विन् स्पेन्सर इत्यादि अनेक योरोपियन विद्वानों के ग्रन्थों को विचार पूर्वक पढ़ उनके विचार हृदय में धारण किये हुए उसको योगीराजदयानन्द की मृत्यु से इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिला कि किस प्रकार एक सच्चा आस्तिक और पूर्ण योगी मृत्यु के भय से रहित होकर ईश्वर उपासना के परम बल से क्लेश की जड़को काटता हुआ प्रसन्नता

पूर्वक परलोक गमन करता है। इस आश्चर्यजनक मृत्यु ने पण्डित गुरुदत्त को ईश्वरकी सत्ताका अति प्रबल प्रमाण देदिया और स्पष्टरूपसे उनको बतला दिया कि योगी ही मृत्यु पर विजय पा सकते हैं और उन के मुंह से यह भी कहला दिया कि वर्तमान पश्चिमी सायन्स और फिलासफी की जहां समाप्ति होती है वहां वेदों का आरम्भ होता है। इस से यह नहीं समझना चाहिये कि पण्डित गुरुदत्त को ही ऋषि की मृत्यु ने पूर्ण आर्य बना दिया किन्तु गम्भीर भाव से देखने से पता लगता है कि योरप और अमेरिका के विद्वानों के भी संशय मिट गये अर्थात् उन्होंने भी मान लिया कि हमारी सायन्स और फिलास्फी वेदों के सन्मुख कुछ भी नहीं है इस लिये वेद रूपी सूर्य्य के प्रकाश का आसरा लेना चाहिये।

महर्षि के पूर्ण योगी होने में अमेरिका के एक विद्वान् की निर्पक्ष सम्मति।

प्रेम से चित्त को आकर्षण करने वाले परोपकारी महात्मा की मृत्यु के समाचार सुनकर कौन पुरुष था जो सचमुच रुधिर के आंसू न बहाता हो जिन लोगों ने उन के दर्शन किये या उन का उपदेश सुना या उन के रचित ग्रन्थों को देखा वे सब उन की मृत्यु के समाचार सुनने पर आश्चर्य और शोक के समुद्र में डूब रहे थे पांच सहस्र वर्ष के पश्चात् संसार की पुरानी राजधानी आर्यावर्त को महर्षि के उत्पन्न होने से सौभाग्य प्राप्त हुआ था परन्तु कर्मगति ने इस सौभाग्य को छीन लिया, कहां बूढ़ा भारतवर्ष अपने सुपुत्र के यश को सुनकर प्रफुल्लित हो रहा था और कहां उस के वियोग का दिन देखना पड़ा महर्षि की मृत्यु कोई साधारण मृत्यु न थी किन्तु चारों ओर से तार और शोकपत्र उड़ुग से अजमेर पहुंच रहे थे। जिन की इतनी बहुतायत थी कि सिगनेलरों को एक क्षण का अवकाश नहीं मिलता था और थियोसाफिस्ट पत्र ने उन के परलोक गमन होने पर जो पत्र प्रकाशित किया जिस को हम शोक समाचार में लिख चुके हैं उस से स्पष्ट प्रकट होता है कि महर्षि पूर्ण योगी थे और उन को अपनी मृत्यु का ज्ञान दो वर्ष पहले से था क्योंकि जो दो प्रति लिपि उन्हों ने हम को और अल्काट साहब को दी उन से इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है और उन्हों ने हम से मेरठ में कई बार कहा कि हम १८८४ ई० नहीं देखेंगे।

अमेरिका के परम विद्वान् ऐंड्रो जक्सन डेविस की सम्मति।

मुझे एक आग दृष्टि पड़ती है जो सम्पूर्ण संसार में फैली हुई है अर्थात् असीम प्रेम की अग्नि जो द्वेष को भस्म करने वाली है और प्रत्येक वस्तु को

जलाकर शुद्ध पवित्र कर रही है, अमेरिका के शीतल मैदान, अफ्रीका के विस्तृत देशों, एशिया के प्राचीन पहाड़ों, और योरुप के विस्तृत राज्यों पर मुझे यह सब को जलाने वाली और सब को एकत्र करने वाली अग्नि दृष्टि आ रही है इसकी चर्चा निकस्थ देशों से प्रारम्भ हुई है अपने सुख और उन्नति के लिये मनुष्यों ने इसे स्वयम् जलाया है, भू तल पर मनुष्य ही ऐसा है जो अग्नि को जला कर स्थाई बना सकता है जो कि पार्थिव सृष्टि में (जगदीश) नास्तिक भी यही है इस कारण अपने गृहों में नरक की अग्नि भड़काने में सब से प्रथम है हां प्रोमिथस की भांति नरकीय गृहों को प्रेम से शुद्ध और बुद्धि से प्रकाशित करने वाले ईश्वरीय अग्नि को लाने के लिये भी यही अवसर है इस असीम अग्नि को देखकर जो निश्चय राज्यों सम्राज्यों और संसार भर के प्रबन्ध और नीति सम्बन्धी बुराइयों को पिघला देगी मैं अति प्रसन्न होकर एक उत्साहमय आयु व्यतीत कर रहा हूं सब ऊंचे ऊंचे पहाड़ जल उठेंगे घाटियों के शोभायमान शहर भून जावेंगे। प्यारे घर और प्रेम पूर्ण आत्मायें साथ साथ पिघलेंगी, पाप और पुण्य संयुक्त होकर यों अंतर्हित होंगे जैसे सूर्य्य की सुनहरी किरणों से ओस, असीम उन्नति की बिजली से मनुष्य का हृदय हिल रहा है, आज उस की केवल चिंगारियां आसमान की ओर उड़ती हैं वक्ताओं, कवियों, और ग्रन्थकर्त्ताओं की शिक्षाओं में इधर उधर ज्वालायें दीख पड़ती हैं यह अग्नि सनातन आर्य्य धर्म्म को स्वाभाविक पवित्र दशा पर लाने के अर्थ एक भट्टी में थी जिसे आर्यसमाज कहते हैं और यह आग भारतवर्ष के एक परम योगी दयानन्द सरस्वती के हृदय में प्रकाशित हुई थी।

हिन्दू और मुसलमान सर्व संसार को जलाने वाली अग्नि को चारों ओर से अति शीघ्रता से बुझाने के अर्थ दौड़े परन्तु यह आग ऐसी वेग से बढ़ती गई कि इस वेग का इस के प्रकाशक दयानंद को ध्यान भी न था और ईसाइयों ने भी जिन के धर्म की आग और पवित्र मसाले प्रथम पूरब में भी प्रकाशित हुए थे। एशिया के इस नये प्रकाश के बुझाने के लिये हिंदू और मुसलमानों का साथ दिया परन्तु यह ईश्वरीय आग और भी भड़क गई और फैल गई। सम्पूर्ण दोषों का समूह नित्य के शुद्ध करने वाली भट्टी में जलकर भस्म हो जायगा, यहां तक कि रोग के स्थान पर आरोग्यता, मूर्त्तियों के स्थान में परमेश्वर, पोप के स्थान पर तर्क, पाप के स्थान पर पुण्य, अविद्या के स्थान में विज्ञान, द्वेष के स्थान में प्रेम, वैर के स्थान पर समता, नर्क के स्थान पर स्वर्ग, दुःख के स्थान पर सुख, भूत प्रेतों के स्थान में परमेश्वर और प्रकृति का राज्य हो जायगा। मैं इस अग्नि का धन्यवाद देता हूँ जब यह अग्नि सुन्दर पृथिवी को नवीन जीवन प्रदान कर देगी तो सार्वत्रिक सुख अभ्युदय और आनंद का युग प्रारम्भ होगा।

——:०——

आर्य्य-समाज ही महर्षि का स्मारक है।

पांच सहस्र वर्ष व्यतीत हुए कि पाताल देश के आर्य लोग ही आर्यवर्तीय आर्य्यों से सम्बन्ध रखते थे, परन्तु जब अविद्या अंधकार के बढ़ने पर मनुष्यों ने जल यात्रा करनी छोड़दी तो अमरीका वाले आर्यवर्त और यूरोप आदि देशों को इन देशों के निवासी अमरीका वालों को भूल गये और ऐसे अंधकार में पड़े कि एक दूसरे की स्थिति से भी अनभिज्ञ हो बैठे, परंतु अंधकार में पुरुषार्थ करने वाले कोलम्बस ने प्राचीन यूनानियों के विचारों पर कार्य कर के अमरीका की सूचना यूरोप को दी. यद्यपि कोलम्बस ने अमरीका को नया नहीं बनाया परंतु भूले हुए को बतलाया। तौ भी आज कोलम्बस के नाम के साथ अमरीका का सम्बन्ध है और अमरीका कहते हुए कोलम्बस का स्मरण होजाता है। पांच सहस्र वर्ष पूर्व आर्य्यधर्म सभायें संपूर्ण पृथ्वी पर उपस्थित थीं क्योंकि वेदों में आर्यधर्म सभाओं के नियत करने की आज्ञा है परन्तु अब समय ऐसा आया कि मनुष्य आर्य नाम के साथ आर्यसमाज को भूल गये आज कैसा शुभ समय है कि महर्षि दयानन्द के उपकार से मनुष्य अपने आर्य नाम को पाता हुआ आर्यसमाज को विद्यमान देखते हैं। मुसल्मान, ईसाई, नास्तिक, जैनी, पौराणिक आदि किसी पुरुष के सामने आप आर्यसमाज का नाम कह दीजिये वह सुनते ही तत्काल दयानन्द का नाम सुना देगा, यदि कोई अमरीका से कोलम्बस के नाम को अलग नहीं कर सकता तो क्या आर्यसमाज से उसके पुनर्जन्म दाता स्वामी दयानन्द के नाम को पृथक कर सकता है, यदि आर्यसमाज का नाम लेते ही स्वामी दयानन्द सरस्वती का स्मरण हो जाता है तो वास्तव में आर्यसमाज से बढ़ कर कोई स्वामी जी का स्मरण चिन्ह नहीं हो सकता यदि आप अमरीका से भी दूर देशों में यात्रा करें तो वहां भी आर्यसमाज के साथ स्वामी दयानन्द और स्वामी दयानन्द के साथ आर्यसमाज का नाम मिला हुआ पाइयेगा। अमेरिका के विद्वान् डेविस अपने लेख में स्वामी दयानन्द को आर्यसमाज से अलग नहीं कर सकते, जहां वह स्वामी को शुद्धि अग्नि से जलाने वाले की महान् पदवी देते हैं। उसके साथ ही आर्यसमाज को उस अग्नि की भट्ठी बतलाते हैं। यदि अमरीका में बैठे हुए थियोसाफिस्ट स्वामीजी को अपना सहायक बनाते हैं तो वह थियोसाफी-कल सोसायटी को स्वामी दयानन्द के आर्यसमाज की शाखा साथ ही ठहराते हैं मोक्ष मूलर अपनी पुस्तक में स्वयं ही यह प्रश्न उत्पन्न करता है कि दयानन्द सरस्वती कौन था और फिर स्वयं ही उत्तर देता है-दयानन्द सरस्वती आर्यसमाज का स्थापक और आचार्य था, संसार में बहुधा मनुष्य कुए, तालाब, सराय और मकान बनवाते हैं इस कारण से कि ईंट और पत्थर उनके नाम को स्मरण कराते रहें। जो वस्तु किसी के नाम को स्मरण करा सके वही

उसकी स्मारक समझी जाती है और इस दशा में आर्यसमाज से बढ़कर स्वामी दयानन्द का कोई स्मारक नहीं हो सकता, यह नियम नहीं कि जो वस्तु किसी के नाम को किसी प्रकार स्मरण करासके वही उस का स्मारक समझा जावे किन्तु वास्तव में स्मारक वह है जो किसी महान आत्मा के उद्देश्य और सिद्धान्त के प्रचार करने से उसका स्मरण करासके। स्मारक से केवल किसी का साधारणतः नाम ले लेना ही पर्याप्त नहीं होता किन्तु, विशेष रूप से उस मुख्य उद्देश्य का प्रचार करना स्मारक का मुख्य अभिप्राय होता है कि जिस कार्य्य को कोई महान् पुरुष अपने जीवन में करता रहा हो। जैसे कि यदि कोई प्रोफेसर टैंडल के नाम पर एक सदाव्रत अथवा मनुष्यों को लड्डू बांटने प्रारम्भ करदे तो वह कार्यालय जिस में लड्डू बनते या बटते हों सर्व साधारण चाहे उसे टैंडल के नाम का स्मारक समझें और सम्भव है कि उस कार्यालय में टैंडल का चित्र भी हो, परन्तु विचारशील उस को टैंडल का स्मारक कदापि नहीं कह सकते। इस में कुछ शङ्का नहीं कि लड्डू बांटना शुभ कर्मों में से है परन्तु यह कार्य सायंस के प्रचारक टैंडल के उद्देश्य से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता हुआ उस का स्मारक नहीं कहला सकता। स्मारक वह वस्तु होनी चाहिये कि जो अपने उद्देश्य द्वारा उस का बोधन करासके जिस का कि वह स्मारक है या यों कहिये कि स्मारक में उस महान् पुरुष का उद्देश्य पूर्ण होना चाहिये। यदि कोई ऐसी शाला हो जिस में यह शिक्षा दी जावे कि मनुष्य शनैः २ लंगूर से मनुष्य के रूप में बदलता गया तो निश्चय मनुष्य कहेंगे कि यह शाला डारविन को यथार्थ स्मारक है—किसी महात्मा के उद्देश्य के विरुद्ध या उद्देश्य को न पूर्ण करने वाला स्मारक इस महात्मा के जीवन को कलंकित करता है— जैसे यदि कोई गिर्जा त्रिरेडिला के नाम से बनाया जावे तो सर्वतः यह गिर्जा विरेडिला का स्मारक कहला सकता है परन्तु विचार कर देखें तो यह स्मारक जो कि विरेडिला के सिद्धांत के विरुद्ध है उस का कलंकित करने वाला है मनुष्य उस शिक्षा से जो गिर्जा में दीजावे सुन कर किस भांति से कह सकते हैं कि त्रैडिला भी इसी प्रकार जीवन में बाइबिल का प्रचार करता रहा होगा यद्यपि वह बाइबिल की शिक्षा का अति विरोधी था इसी प्रकार यदि कोई कणाद या पातञ्जलि महर्षि के नाम पर कोई अंग्रेजी शाला जारी करे तो यह शाला कणाद या पातंजलि की स्मारक नहीं कहला सकती यद्यपि इन महर्षियों का नाम इन शालाओं के साथ क्यों न न लगा हो।

किसी महात्मा के उद्देश्य को पूर्ण करता हुआ कोई कार्यालय उस महात्मा का स्मारक कहला सकता है। अन्यथा कदापि नहीं—यह आवश्यकता नहीं कि इस कार्यालय के साथ महात्मा का नाम भी हो। यदि नाम नहीं और

उद्देश्य पूर्ण हो रहा है तो संसार निश्चय उस को स्मारक कह सकता है जैसे कि आर्यसमाज यद्यपि इस के साथ महर्षि दयानन्द का नाम नहीं लगा हुआ है परन्तु महर्षि के उद्देश्य पूर्ण करने से उस का स्मारक बन रहा है। परन्तु दयानन्द प्रेस, दयानन्द हास्पटाल, दयानंद बाजार, दयानंद स्कूल, दयानन्द साबुन और ऐसी ही अनेक वस्तुयें जो कि महर्षि के उद्देश्य को पूर्ण नहीं कर सकतीं कदापि महर्षि का स्मारक कहलाने के योग्य नहीं, यद्यपि इन के साथ महर्षि का नाम क्यों न लगा हो।

स्थूलदर्शी पुरुषों ने संसार के इतिहास में स्थूल वस्तुओं को स्मारक माना है, जैसे कि मुसलमान मदीना को अपने पूर्वजों का स्मारक समझते हैं, ईसाई लोग सूली की मूर्ति को अपने गुरु का स्मारक बतलाते हैं, बौद्ध लोग बुद्ध की मूर्ति उसका स्मारक ठहराते हैं, संसार की मूर्खजातियों के आचार विचार को इकट्ठा किया जाय तो इस से सार यह निकलता है कि वह किसी स्थूल पदार्थ को अपने किसी महात्मा का स्मारक बनाते हैं, परन्तु वह स्थूल पदार्थ भी भिन्न २ हैं जो कि उन के विचार में स्मारक का कार्य देते हैं, यही नहीं कि संसार स्मारक के सिद्धान्त पर धोखा खा रहा हो किन्तु साधारण बातों को भी भ्रम के कारण कुछ का कुछ समझे, दृष्टान्त के लिये स्वरूपता ही को ले लीजिये और देखिये कि किस प्रकार एक दूसरे के विरुद्ध लोगों ने स्वरूपता को मान लिया है यथा चीन के निवासी उस स्त्री को रूपवान मानते हैं जिस के पांव अति छोटे हों और जिससे नियम पूर्वक चलाही न जावे, यूरोपियन लोग उस औरत को रूपवती मानते हैं जिस की कमर पतली हो, हबशी जिस के होठ उभरे हुए हों; परन्तु विद्वान् और डाक्टर बतलाते हैं कि समता या पूर्ण आरोग्यता का नाम स्वरूपता है, ठीक इसी प्रकार संसार ने स्मारक के भिन्न २ पैमाने घड़ लिये हैं, परन्तु स्मरण रखना योग्य है कि कोई स्थूल पदार्थ किसी चैतन्य महात्मा का स्मारक नहीं हो सकता। यदि मान भी लें कि कोई स्थूल पदार्थ किसी महात्मा का स्मारक हो सकता है तो यह स्मारक अति थोड़ा प्रसन्नता और लाभ देने वाला है और उस की अपेक्षा वह स्मारक जिस से उस के उद्देश्य की पूर्ति हो अति हर्ष और महान् लाभ देने वाला सिद्ध होता है। यथा दो मनुष्य स्वामी दयानन्द का स्मारक बनाते हैं एक तो चित्र बनाकर बेचता है दूसरा लोगों केलिये गुरुकुल खोलकर ब्रह्मचर्याश्रम की नींव डालता है यदि चित्र या फोटो मनुष्यों को उसके स्मरण करने से कोई लाभ पहुंचा सकती है तो यह लाभ उस लाभ की अपेक्षा जो कि गुरुकुल पहुंचा सकता है बहुत ही तुच्छ समझना चाहिये। विचार पूर्वक देखें तो महात्मा जन अपने रूप, अपने नाम, अपने चित्र और अपने परिवार की बड़ाई बेचने नहीं आते परन्तु वह पवित्र उद्देश्यों का आचार करते हुए अपने नाम तक की परवाह नहीं करते, वह चाहते हैं कि सच्चे,

अखण्ड अटल नियमों की महिमा जानकर मनुष्य आनन्द उठायें, इस कारण उन का सच्चा स्मारक वही कहला सकता है जो कि उन नियमों या उन के उद्देशरूपी सिद्धान्तों की महानता कर मनुष्यों को उन के समान ही बोधन कराता रहे, स्मारक किसी उद्देश्य की पूर्ति का साधन है, उस को हिन्दू पौराणिक जन भी वाचिक ही नहीं किन्तु कार्मिक रीति पर मानते हैं पौराणिक जन यदि यह समझते हैं कि उन की काली देवी हिन्सा करने वाली थी तो वह उस के स्मारक में जो कलकत्ते में उन्हों ने एक मन्दिर के रूप में नियत किया है अब तक भी सैंकड़ों निरअपराध प्राणियों के गले काटते हुए मनुष्यों को एक अपवित्र उद्देश्य की शिक्षा देते हुये प्रकट कर रहे हैं. कि हम काली के उद्देश्य को उस के स्मारक से उस मंदिर में पूरा कर रहे हैं इस के अतिरिक्त विष्णुमतानुयायी अपने मन्दिर में कभी शाक्तिक मत की शिक्षा नहीं देते, जैनी अपने मन्दिरों में जिस को वह अपने पूर्वजों का स्मारक जानते हैं कभी पुराणों की शिक्षा नहीं देते, बुद्ध के पैगोदों (मंदिरों) में कभी पौराणिकों की मूर्तियां नहीं रक्खी जातीं, शङ्कराचार्य के मठों में कभी नवीन वेदान्त के विरुद्ध प्रचार नहीं किया जाता किन्तु उस स्मारक को उस के उद्देश्य की पूर्ति का चाहे वह उद्देश्य कैसा ही अपवित्र व भ्रम युक्त क्यों न हो, साधन बनाता है ।

स्वामी जी उस कार्य्यालय से सम्बन्ध रखते थे जिस से उन को उद्देश्य पूर्ण होता रहे । यदि वह देखते थे कि कोई कार्य्य हमारे उद्देश्य को पूर्ण नहीं करता तो वह उस कार्यालय से स्वयं ही विरुद्ध और तोड़ने वाले होजाते थे-फर्रुखाबाद आदि स्थानों की पाठशालायें इस बात को सिद्ध करने के लिये पूर्ण दृष्टान्त हैं यद्यपि इन पाठशालाओं में अष्टाध्यायी महाभाष्य आदि आर्षग्रंथ उत्तमता से पढ़ाये जाते थे परन्तु जब विद्यार्थी आर्षग्रन्थ पढ़ने पर भी पौराणिक के पौराणिक ही बन कर निकलने लगे तो स्वामी जी ने इन शालाओं को स्वयं ही तोड़ देना उचित समझा । इस से हम को जानना चाहिये कि कोई कार्यालय जो स्वामी जी के उद्देश्य को पूर्ण करने का साधन नहीं है वह उन का कदापि स्मारक चिन्ह नहीं हो सकता । सम्भव है कि मनुष्य किसी कार्यालय के नाम को सुनकर उसको महर्षि का स्मारक समझले परंतु इस बात का निश्चय करने के लिये कि यही स्मारक है मनुष्य को उस कार्य्यालय का उद्देश्य या कार्यवाही की पड़ताल कर लेनी चाहिये । हम ब्राह्मण का नाम सुनकर किसी विशेष पुरुष की प्रतिष्ठा करने को उद्यत होजाते हैं, परन्तु उसके ब्राह्मण नाम को छोड़कर उसके काम की पड़ताल करें तो फिर निश्चय होसकता है कि आया यह ब्राह्मण है या नहीं ।

इसी प्रकार किसी महात्मा का सच्चा स्मारक चिन्ह जानने के लिये हमें उसके नाम को छोड़कर उसके उपदेश व शिक्षा को देख लेना चाहिये जो उस में ही आवे । इस वर्णन से यह सिद्ध है कि सच्चा स्मारक किसी उद्देश्य की

ॐ

जन्म संवत् १८६४ ई० } श्रीमान् पं० गुरुदत्त जी, एम. ए. विद्यार्थी। { मृत्यु संवत् १८८९ ई०

ANGLO-ORIENTAL PRESS, LUCKNOW.

पूर्ति का साधन होता है और इस सिद्धान्त को विचारते हुए हम पाते हैं कि आर्यसमाज जहां महर्षि के नाम को स्मरण करानेवाला है वहां उनके उद्देश्य की पूर्ति का निश्चय प्रबल और सर्व श्रेष्ठ साधन है ।

पं० गुरुदत्तजी अपने व्याख्यानों में कहा करते थे कि ईंट पत्थर पर किसी ऋषि का नाम खुदवा देने से ऋषि का स्मारक नहीं बन सकता किन्तु यदि ऋषि का स्मारक बनाना चाहते हो तो उनके सिद्धान्तों का प्रचार करके दिखलाओ, जिन सिद्धान्तो का प्रचार वह ऋषि स्वयं करते थे। स्वामी दयानन्द का स्मारक यही है कि वेद के सिद्धान्तों का संसार में प्रचार किया जावे। तथा जैसे कि उन्होंने अपने शिक्षा पत्र (वसीअतनामे) में प्रथम वेद वेदाङ्गादि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने कराने पढ़ने पढ़ाने और सुनने सुनाने छापने छपवाने आदि–द्वितीय वैदिक धर्म के उपदेश तथा शिक्षा के लिये उपदेशक मण्डली नियत करके देश देशान्तर, द्वीप द्वीपान्तर, भेज कर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग कराना तृतीय आर्यवर्त के अनाथ और दीन मनुष्यों की शिक्षा और पालन में इस सभा को अपना धन तथा पुरुषार्थ करना लिखा है पस उसकी पूर्ति करना ही महर्षि का स्मारक हो सकता है।

महर्षि के इस उद्देश्य की पूर्णता के लिये आर्यसमाज विद्यमान है चूंकि महर्षि ने स्वयं अपने हाथों से इसका बुनियादी पत्थर रखा है अतः समाज के अतिरिक्त महर्षि का स्मारक और कोई नहीं हो सकता। महर्षि ने अपने जीवन में भी प० गौरीशंकर शर्मा को वैदिक धर्म सभा जयपुर का वैतनिक उपदेशक रख वैदिक धर्म के प्रकाश और अविद्यांधकार के दूर करने का यत्न किया था उस समय सरविलियम जोन्स, वेलफिन्सन, आदि एसियाटिक सोसाइटी के सभासदों ने संस्कृत का पता लेश मात्र पश्चिम निवासियों को दिया जिस से वहां वाले उक्त सुसाइटी के कृतज्ञ हैं परन्तु शीघ्र वह समय आने वाला है कि पश्चिम निवासियों को ही क्या और दूर देश निवासियों को महर्षि के लगाए हुए वृक्ष की वृद्धि से सत्य शास्त्रों की महिमा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होगा और सम्पूर्ण देश निवासी सम्पूर्ण सुसाइटियों से बढ़कर आर्यसमाज तथा उस के जन्मदाता महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के कृतज्ञ होंगे ।

हे परमात्मा ! हमको पुरुषार्थ दीजिये कि हम आर्यसमाज की उन्नति करते हुए, वैदिक धर्म की पताकाओं को द्वीप द्वीपान्तरों में फहराते हुए, आप के प्रदान किये हुए वेदों के प्रकाश से देश देशान्तरों को प्रकाशित करते हुए तथा आर्यसमाज को ही महर्षि का स्मारक बनाते हुए और ऋषिऋण से उद्धरित होते हुए ऋषि संतान कहलाने के अधिकारी बनें ।

पूर्ति का साधन होता है और इस सिद्धान्त को विचारते हुए हम पाते हैं कि आर्यसमाज जहां महर्षि के नाम को स्मरण करानेवाला है वहां उनके उद्देश्य की पूर्ति का निश्चय प्रबल और सर्व श्रेष्ठ साधन है।

पं० गुरुदत्त जी अपने व्याख्यानों में कहा करते थे कि ईंट पत्थर पर किसी ऋषि का नाम खुदवा देने से ऋषि का स्मारक नहीं बन सकता किन्तु यदि ऋषि का स्मारक बनाना चाहते हो तो उनके सिद्धान्तों का प्रचार करके दिखलाओ, जिन सिद्धान्तों का प्रचार वह ऋषि स्वयं करते थे। स्वामी दयानन्द का स्मारक यही है कि वेद के सिद्धान्तों का संसार में प्रचार किया जावे। तथा जैसे कि उन्होंने अपने शिक्षा पत्र (वसीयतनामे) में प्रथम वेद वेदाङ्गादि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने कराने पढ़ने पढ़ाने और सुनने सुनाने छापने छपवाने आदि-द्वितीय वैदिक धर्म के उपदेश तथा शिक्षा के लिये उपदेशक मण्डली नियत करके देश देशान्तर द्वीप द्वीपान्तर, भेज कर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग कराना तृतीय आर्यवर्त के अनाथ और दीन मनुष्यों की शिक्षा और पालन में इस सभा को अपना धन तथा पुरुषार्थ करना लिखा है पस उसकी पूर्ति करना ही महर्षि का स्मारक हो सकता है।

महर्षि के इस उद्देश की पूर्णता के लिये आर्यसमाज विद्यमान है चूंकि महर्षि ने स्वयं अपने हाथों से इसका बुनियादी पत्थर रखा है अतः समाज के अतिरिक्त महर्षि का स्मारक और कोई नहीं हो सकता। महर्षि ने अपने जीवन में भी पं० गौरीशंकर शर्मा को वैदिक धर्म सभा जयपुर का वैतनिक उपदेशक रख वैदिक धर्म के प्रकाश और अविद्यान्धकार के दूर करने का यत्न किया था उस समय सरविलियम जोन्स, वेलकिन्सन, आदि एशियाटिक सोसाइटी के सभासदों ने संस्कृत का पता लेश मात्र पश्चिम निवासियों को दिया जिस से वहां वाले उक्त सुसाइटी के कृतज्ञ हैं परन्तु शीघ्र वह समय आने वाला है कि पश्चिम निवासियों को ही क्या और दूर देश निवासियों को महर्षि के लगाए हुए वृक्ष की वृद्धि से सत्य शास्त्रों की महिमा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होगा और सम्पूर्ण देश निवासी सम्पूर्ण सुसाइटियों से बढ़कर आर्यसमाज तथा उस के जन्मदाता महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के कृतज्ञ होंगे।

हे परमात्मा! हमको पुरुषार्थ दीजिये कि हम आर्यसमाज की उन्नति करते हुए, वैदिक धर्म की पताकाओं को द्वीप द्वीपान्तरों में फहराते हुए, आप के प्रदान किये हुए वेदों के प्रकाश से देश देशान्तरों को प्रकाशित करते हुए तथा आर्यसमाज को ही महर्षि का स्मारक बनाते हुए और ऋषिऋण से उऋण होते हुए ऋषि संतान कहलाने के अधिकारी बनें।

स्वामी दयानन्द की शिक्षा।

अर्थात्

स्वमन्तव्यामन्तव्य।

आपकी इच्छा किसी नये मत के चलाने की न थी क्योंकि आप सत्यार्थ-प्रकाश में स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि मैं उसी धर्म को मानता हूं जिसको सदा से सब मानते आये हैं और मानेंगे जिसको सनातन नित्य धर्म कहते हैं जिसका विरोधी कोई धर्म नहीं और उसी को आप्त अर्थात् सत्यवादी परोपकारी पक्षपात रहित विद्वान् मानते हैं वही सब को मन्तव्य है और जिसको वह नहीं मानते वही अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता।

अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वर रचित पदार्थ हैं जिनको कि मैं भी मानता हूं सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूं कि जो तीन काल में सब को एकसा मानने योग्य है मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसे मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छोड़वाना मुझको अभीष्ट है यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यवर्त्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो २ आर्यवर्त्त वा अन्य देशों में धर्मयुक्त चाल चलन हैं उनको स्वीकार और जो अधर्म युक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता न करना चाहता हूँ क्योंकि ऐसा करना मनुष्य धर्म से बहिः है। मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे; अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से डरता रहे इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ निर्बल गुणरहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ. महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे. इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक कभी न होवे इसमें श्रीमान् महाराजा भर्तृहर.जी आदि ने श्लोक कहे हैं उनका लिखना उपयुक्त समझ कर लिखता हूं—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वास्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्। अद्यव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदंनधीराः ॥१॥ (भर्तृहरिः)

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः । धर्मो नित्यो सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥ २ ॥ महाभारते ।

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥ (मनु ३)

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः । येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ४

नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् । नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥ ५ ॥ (उ० नि०)

इन्हीं महाशयों के श्लोकों के अभिप्राय के अनुकूल सब को निश्चय रखना योग्य है । अब मैं जिन २ पदार्थों को जैसा २ मानता हूं उन २ का वर्णन संक्षेप से यहां करता हूं कि जिनका विशेष व्याख्यान इस ग्रन्थ में अपने २ प्रकरण में कर दिया है. इनमें से:—

१—ईश्वर जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम हैं जो सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त है जिसके गुण, कर्म स्वभाव पवित्र हैं जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान, दयालु, न्यायकारी सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है उसी को परमेश्वर मानता हूं ।

२—चारों वेद (विद्या धर्मयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मन्त्रभाग) को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूं वे स्वयं प्रमाण रूप हैं कि जिनका प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं जैसे सूर्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं और चारों वेदों के ब्राह्मण, छः अंग, छः उपाङ्ग, चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सत्ताइस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इन में वेद विरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूं ।

३—जो पक्षपात रहित, न्यायाचरण, सत्यभाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उसको "धर्म" और जो पक्षपात सहित, अन्यायाचरण, मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञा भङ्ग वेद विरुद्ध है उसको "अधर्म" मानता हूँ ।

४—जो इच्छा द्वेष, सुख दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसी को "जीव" मानता हूँ ।

५—जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न है अर्थात् जैसे आकाश से मूर्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था न है न होगा और न कभी एक था, न है न होगा, इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य व्यापक उपासक और पिता पुत्र आदि सम्बन्धयुक्त मानता हूँ।

६—अनादि पदार्थ तीन हैं एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण इन्हींको नित्य भी कहते हैं उनके गुण कर्म स्वभाव भी नित्य हैं।

७—प्रभाव से अनादि जो संयोग से द्रव्य गुण कर्म उत्पन्न होते हैं वे वियोग के पश्चात् नहीं रहते परन्तु जिससे प्रथम संयोग होता है वह सामर्थ्य उनमें अनादि है और उस से पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीनों को प्रभाव से अनादि मानता हूं।

८—सृष्टि उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान युक्तिपूर्वक मेल होकर नाना रूप बनना।

९—सृष्टि का प्रयोजन यह है कि जिस में ईश्वर के सृष्टि निमित्त गुण कर्म स्वभाव का साफल्य होना जैसे किसी ने किसी से पूछा कि नेत्र किस लिये हैं? उस ने कहा देखने के लिये, वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग करना आदि भी।

१०—सृष्टि सकर्तृक है इसका कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर है क्योंकि सृष्टि की रचना देखने और जड़ पदार्थ में अपने आप यथायोग्य बीजादि स्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का कर्त्ता अवश्य है।

११—बन्ध सनिमित्तक अर्थात् अविद्या निमित्त से है जो २ पाप कर्म ईश्वर भिन्नोपासना अज्ञानादि सब दुःख फल करने वाले हैं इसी लिये यह बन्ध है कि जिसकी इच्छा नहीं और भोगना पड़ता है।

१२—मुक्ति अर्थात् सर्व दुःखों से छूटकर बन्ध रहित सर्व व्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुनः संसार में आना।

१३—मुक्ति के साधन ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्ति, आप्त विद्वानों का सङ्ग, सत्य विद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं।

१४—अर्थ वह है कि जो धर्म ही से प्राप्त किया जाय और जो अधर्म से सिद्ध होता है उसको अनर्थ कहते हैं।

१५—काम वह है कि जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाय।

१६—वर्णाश्रम गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूं।

१७—राजा उसी को कहते हैं जो शुभगुण कर्म स्वभाव से प्रकाशमान् पक्ष-

पात रहित न्याय धर्म का सेवी प्रजाओं में पितृवत् वर्त्तें और उस को पुत्रवत् मान के उसकी उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न किया करें।

१८-प्रजा उसको कहते हैं कि जो पवित्रगुण कर्म स्वभाव को धारण करके पक्षपात रहित न्याय धर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राजविद्रोह रहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्त्ते।

१९-जो सदा विचार कर असत्य को छोड़ सत्य का ग्रहण करे अन्यायकारियों को हटावे और न्यायकारियों को बढ़ावे अपने आत्मा के समान सब का सुख चाहे सो न्यायकारी है उस को मैं भी ठीक मानता हूं।

२०-देव विद्वानों को और अविद्वानों को असुर पापियों को राक्षस अनाचारियों को पिशाच मानता हूं।

२१-उन्हीं विद्वानों, माता-पिता, आचार्य अतिथि, न्यायकारी राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री, और स्त्री व्रत पति का सत्कार करना देवपूजा कहाती है, इस से विपरीत अदेव पूजा, इनकी मूर्त्तियों को पूज्य और इतर पाषाणादि जड़ मूर्त्तियों को सर्वथा अपूज्य समझता हूं।

२२-शिक्षा जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रितादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उसको शिक्षा कहते हैं।

२३-पुराण जो ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं उन्हीं के पुराण, इतिहास, गाथा और नाराशंसी नाम से मानता हूँ अन्य भगवतादि को नहीं।

२४-तीर्थ जिससे दुःखसागर से पार उतरें कि जो सत्य भाषण, विद्या, सत्सङ्ग, यमादि, योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म हैं उन्हीं को तीर्थ समझता हूं इतर जलस्थलादि को नहीं।

२५-पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा इसलिये है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है।

२६-मनुष्य को सबसे यथायोग्य स्वात्मवत् सुख दुःख, हानि, लाभ में वर्त्तना श्रेष्ठ अन्यथा वर्त्तना बुरा समझता हूं।

२७-संस्कार उसको कहते हैं कि जिससे शरीर मन और आत्मा उत्तम होवें वह निषेकादि श्मशानान्त सोलह प्रकार का है इसको कर्त्तव्य समझता हूं और दाह के पश्चात् मृतक के लिये कुछ भी न करना चाहिये।

२८-यज्ञ उस को कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या उस से उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान अग्निहोत्रादि जिन से वायु वृष्टि जल औषधी की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाना है, उसको उत्तम समझता हूं।

२९-जैसे आर्य श्रेष्ठ और दस्यु दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं वैसेही मैं भी मानता हूँ

३०-आर्य्यावर्त्त देश इस भूमि का नाम इस लिये है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य लोग निवास करते हैं परन्तु इसकी अवधि उत्तर में हिमालय दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक और पूर्वमें ब्रह्मपुत्र नदी है इन चारों के बीच में जितना देश है उसको **आर्य्यावर्त्त** कहते हैं और जो इन में सदा रहते हैं उनको भी आर्य कहते हैं।

३१-जो सांगोपांग वेद विद्याओं का अध्यापक सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह **आचार्य** कहाता है।

३२-शिष्य उसको कहते हैं कि जो सत्य शिक्षा और विद्याको ग्रहण करने योग्य धर्मात्मा विद्या ग्रहण की इच्छा और आचार्य का प्रिय करने वाला है।

३३-गुरू माता पिता और जो सत्य का ग्रहण करावें और असत्य को छुड़ावें वह भी **गुरु** कहाता है।

३४-पुरोहित जो यजमान का हितकारी सत्योपदेष्टा होवे।

३५-उपाध्याय जो वेदों का एक देश वा अंगों को पढ़ाता हो।

३६-शिष्टाचार जो धर्माचरण पूर्वक ब्रह्मचर्य से विद्या ग्रहण कर प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना है यही शिष्टाचार और जो इसको करता है वह शिष्ट कहाता है।

३७-प्रत्यक्षादि **आठ प्रमाणों** को भी मानता हूं।

३८-आप्त जो यथार्थवक्ता, धर्मात्मा, सब के सुख के लिये प्रयत्न करता है उसीको **आप्त** कहता हूं।

३९-परीक्षा पांच प्रकारकी है इसमेंसे प्रथम जो ईश्वरउसके गुण कर्म स्वभाव और वेद विद्या दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण तीसरी सृष्टिक्रम चौथी आप्तों का व्यवहार और पांचवीं अपने आत्मा की पवित्रता विद्या इन पांच परीक्षाओं से सत्याऽसत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करना चाहिये।

४०-परोपकार जिससे सब मनुष्यों के दुराचार दुःख छूटें श्रेष्ठाचार और सुख बढ़े उसके करने को परोपकार कहता हूं।

४१-स्वतन्त्र परतन्त्र जीव अपने कामों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि काम करने में स्वतन्त्र है।

४२-स्वर्ग नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है।

४३-नरक जो दुःख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति होना है।

४४-जन्म जो शरीर धारण कर प्रकट होना सो पूर्व पर और मध्य भेद से तीनों प्रकार का मानता हूँ।

४५-शरीर के संयोग का नामजन्म और वियोगमात्र को मृत्यु कहते हैं।

४६-विवाह जो नियम पूर्वक प्रसिद्ध से अपनी इच्छा करके पाणिग्रहण करना है वह **विवाह** कहाता है।

४७-नियोग विवाह के पश्चात् पति के मर जाने आदि वियोग में अथवा नपुंसत्वादि स्थिर रोगों में स्त्री, वा आपत्काल में पुरुष स्ववर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ स्त्री वा पुरुष के साथ सन्तानोत्पत्ति करना।

४८—स्तुति गुणकीर्त्तन श्रवण और ज्ञान होना इसका फल प्रीति आदि होते हैं।

४६-प्रार्थना अपने सामर्थ्य के उपरान्त के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उनके लिये ईश्वरसे याचना करना और इसका फल निरभिमान आदि होता है।

५०—उपासना जैसे ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना ईश्वर को सर्वव्यापक अपने को व्याप्य जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहाती है इसका फल ज्ञानकी उन्नति आदि है।

५१-सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना जो २ गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त और जो २ गुण नहीं हैं उनसे पृथक मानकर प्रशंसा करना सगुण निर्गुण स्तुति शुभगुणों के ग्रहण की इच्छा और दोष छुड़ाने के लिये परमात्मा का सहाय चाहना सगुण प्रार्थना और सब गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मानकर अपने आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना सगुण निर्गुणोपासना कहाती है।

ये संक्षेप से स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं इन की विशेष व्याख्या 'सत्यार्थ प्रकाश' के प्रकरण २ में है तथा ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका आदि ग्रन्थों में भी लिखा है। अर्थात् जो २ बातें सब के सामने माननीय हैं उनको मानना अर्थात् जैसे सत्य बोलना सब के सामने अच्छा और झूठ बोलना बुरा है ऐसे सिद्धांतों को स्वीकार करता हूं और जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उनको मैं पसंद नहीं करता क्योंकि इन मतवालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं इस को काट सर्व सत्य का प्रचार कर सब को ऐक्यमत में करा द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त कराके सब से सब को सुख लाभ पहुंचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है सर्व शक्तिमान परमात्मा की कृपा सहाय और आप्त जनों की सहानुभूति से "यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में प्रवृत्ति हो जाये जिस से सब लोग सहज से धर्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नति और आनन्दित होते रहें" यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की शिक्षा का फल।

स्वामी जी के कार्य्य आरम्भ से प्रथम भारत देश की धर्म सम्बन्धी दशा बड़ी डांवाडोल थी। सच्चे वैदिक शिक्षा के स्थान पर मूर्तिपूजा और पुराणों की महिमा फैली हुई थी—जहां मान्य पुरुष परमेश्वर का अवतार मानकर पूजे जाते थे। वेदों का नाम ही शेष रह गया था—इसके गम्भीर विषयों को समझने और विचार करने का किसी को ध्यान भी न था। पुराणों के श्लोकों को वेद-मन्त्र समझा जाता था—उनके अद्भुत और अनोखे कर्त्तव्य कर्मों को परमेश्वरी लीला कहा जाता था। पञ्चयज्ञों के स्थान पर एकादशी महात्म और बनावटी सत्य नारायण का सुनना बड़ा ही पुण्य कार्य समझा जाता था देश की इस कुदशा को देखकर प्रथम मुसल्मान भाइयों ने अपना कार्य आरंभ किया और राज्य भी उन्हीं का था अतः बहुधा आर्य मुसल्मान हो गये। इस समय इस देश में अनुमान ८ करोड़ मुसल्मान हो गये थे जिनमें से ८५ फी सदी आर्य्य से मुसल्मान होगये हैं। परन्तु मुसल्मानी धर्म पर भी बिगड़े हुए हिन्दू धर्म ने कुछ प्रभाव डाला जिससे इनमें भी कबरपरस्ती ताजियेदारी इत्यादि बातें प्रवेश होगईं जिसके कारण ऐसा समय होगया जिसमें हिन्दू और मुसल्मान कुछ बातों में मिलकर चलने लगे जैसा कि चेचक अर्थात् माता की बीमारी में दोनों देवता को पूजते, गोगापीर की पूजा भी दोनों करने लगगये और हिंदू अपने रुपये से ताजिये बनाने लगे।

इतने में ईसाई साहिब यहां पधारे और देश की कुदशा को देखकर ईसाई भाइयों ने खूब ठोककर काम करने का आरम्भ किया अर्थात् स्थान २ पर स्कूल खोल उनमें आर्य सन्तान को इंजील की शिक्षा देनी आरम्भ करदी और प्रतिदिन देश के गिरे हुए धर्म का खाका खींच २ दिखलाने लगे-इधर बिचारे अपने धर्म से बेसुध हो ईसाइयों की शङ्काओं का समाधान न कर, बिगड़े हुए धर्म को भी मन में तुच्छ समझने लगे यहां तक उन्हों ने अपने धर्म को तिलाञ्जुली दे बैठे और बहुधा खुल्लमखुल्ला ईसाई हो गये—अनेकान् ऐसे होगये जो न ईसाई और न हिन्दू रहे और पक्के नास्तिक बन गये, देश की ऐसी बिगड़ी हुई दशा में **स्वामी महाराज ने कार्य्य आरम्भ किया।** सैकड़ों वर्षों से जिन कुरीतियों ने अपना घर भारत में कर लिया था उनकी काया को पलट देना कोई सहज कार्य्य न था। जिस समय स्वामी दयानंद जी ने अपनी विद्या और ब्रह्मचर्य के पूरे बल से वेदों के अद्वितीय अर्थों को प्रकट करके मनुष्यों को यह बतलाया कि मूर्तिपूजा करना वेदों की आज्ञा के विरुद्ध है। तीर्थों में स्नान करने से मुक्ति नहीं होती तथा परमात्मा कभी अवतार नहीं लेता इत्यादि बातों का प्रचार किया तब नास्तिक उक्त बातों को ईसाइयों की बातें जान

स्वामी जी को भी ईसाई समझ यह कहते थे कि यह दयानंद भी जर्मन से संस्कृत पढ़ इस देश में ईसाई मत का उपदेश करने को आये हैं ईसाई लोग इस को मासिक देते हैं। उस समय ईसाइयों ने भी इन बातों से लाभ उठाने में न्यूनता नहीं की संन्यासियों का बाना धारण कर गांव २ नगर २ ईसा के गीत गाने का ढंग निकाल मनुष्यों को विश्वास दिलाया कि स्वामी दयानंद सच मुच ईसाई मत का उपदेश कर रहा है।

सच तो स्वामी जी के सच्चे उपदेश ने उस समय के धर्म की जड़ को हिला दिया और लोग अपने २ कंठ की कंठियों को उतार २ कर फैंकने लगे उस समय पर इस देश के ब्राह्मणोंने भी उनके उपदेश के विरुद्ध नाना प्रकार से कार्यवाही की और अपना पूर्ण बल लगा दिया परन्तु उनको सफलता प्राप्त न हुई और स्वामी जी अपने कार्य्य को पूर्ण रूप से करते रहे जिस का प्रभाव यह हुआ।

कि जो मनुष्य उपदेश सुनने जाते उन में से अनेकान् अपनी मूर्त्तियों को गृह और मन्दिरों से उठा २ कर गंगा की भेंट कर देते। बहुधा पुजारियों ने मन्दिर में ठाकुर सेवा को छोड़ अन्य प्रकार की नौकरी करली और शास्त्रार्थ में मूर्त्ति खण्डन के प्रबल प्रमाण सुन चुप हो जाते थे अथवा वहां से उठकर भाग जाते या कोई और जिस से अपनी प्रतिष्ठा बचाने का उपाय रचते। परंतु सचाई का प्रभाव उनकी आत्मा में अवश्य प्रवेश हो जाता था जिस के कारण अनेकान् पण्डित कहते थे कि महाराज का कहना ठीक है—हम तो आज से इस पाखण्ड का त्यागते हैं। बहुधा सेठ साहूकारों और जमींदारों ने अपने मंदिरों से ठाकुर महाराज को उठाकर नदियों में सिरा दिया। चक्रांत आदि तिलकधारियों ने तिलक लगाना छोड़ दिया, अनेकान् पुरुषों ने इन के उपदेशों से बड़े २ यज्ञ कराये और पाठशालायें खोलीं, राजा महाराजाओं ने आप की शिक्षा से अनेक विवाह करना छोड़ एक स्त्री व्रत को धारण किया, स्वामी जी की शिक्षाका फल उनके जीवनमें इतना नहीं हुआ बरन् विरोधियोंने उनकी शिक्षा की साफल्यता को देख पबलिक को विज्ञापन द्वारा सूचित किया कि जिनको स्वामी जी की शिक्षा से मूर्तिपूजा में अरुचि हो गई हो वह मूर्तियों को बाजार आदि में न फेंकें बरन् हमारे पास भेजदें, इस शिक्षा के कोलाहल को देख बड़े २ विद्वानों ने भी नानाप्रकार के ढोंग रचे, शास्त्रार्थों के द्वारा मूर्तिपूजा के स्थापन करने के बहुत यत्न किये और सम्पूर्ण देश के राजे महाराजे और सेठ साहूकारों के सहायक होने पर भी उत्तीर्ण न हुए और स्वामी दयानन्द जी ने अपने अखण्ड ब्रह्मचर्य और पूर्ण विद्या के बल से मूर्तिपूजा ही क्या बरन् वर्तमान समय की तीर्थ यात्रा, मृतक श्राद्ध, तर्पण, तिलक छाप पुराण और परमात्मा का अवतार लेना इत्यादि को मिथ्या सिद्ध कर दिया जिस से उन की शिक्षा का प्रभाव भारत वर्ष में बिजली की शक्ति के समान फैलगया, उन की शिक्षा से विद्वानों ही को लाभ नहीं हुआ बरन् अनपढ़ लोगों के हृदयों

में भी प्रकाश हो गया, चाहे मनुष्य आर्यसमाज के सभासद हों या न हों परन्तु मूर्तिपूजा की प्रतिष्ठा उन के मन से जाती रही, आर्य्यसमाज और स्वामी दयानन्द के विरोधी अब मूर्तिपूजा को परमेश्वर पूजा नहीं समझते, श्राद्ध, तर्पण का उन को विश्वास नहीं रहा, ईश्वर के अवतार को वह नहीं मानते, ब्राह्मण लोग स्वयं यह कहते हैं कि बीस वर्ष प्रथम जिस प्रकार मनुष्य मूर्तिपूजा, गंगास्नान, श्राद्ध, तर्पण किया करते थे वैसा नहीं करते केवल जगत् दिखलावा शेष रहगया है इन में श्रद्धा नहीं रही, कलियुग की प्रबलता है, इसी कारण ब्राह्मण वर्ण अन्य कार्यों के करने का उद्योग करते जान पड़ते हैं क्योंकि उन के हृदय में यह ज्ञान उत्पन्न हो गया है कि अब बिना विद्या के कार्य नहीं चल सकता।

स्वामी जी महाराज की शिक्षा से प्रथम लोग फारसी, अंग्रेजी पठन पाठन में लगे हुये थे परन्तु अब फारसी के स्थान पर संस्कृत होती जाती है और प्रारम्भ में बच्चों को हिन्दू व आर्य्य प्रथम देवनागरी की शिक्षा कराते हैं, यह एक बड़ी तबदीली है जिस में स्वामी जी के विरोधी भी सम्मिलित हैं।

इधर महर्षि के उपदेश के अनुसार आर्य्यसमाज के परिश्रम का फल **गुरुकुल कांगड़ी, गुरुकुल सिकन्दराबाद, गुरुकुल बदाऊं, गुरुकुल बरालसी और वैदिक पाठशाला गुजरानवाला है,** जहां ब्रह्मचर्य्य के साथ प्राचीन परिपाटी के अनुसार वेदादि शास्त्रों के पठन पाठन का प्रबन्ध हो रहा है, इस के अतिरिक्त **दयानन्द ऐंगलो वैदिक कालेज लाहौर, ऐंगलो संस्कृत हाईस्कूल अम्बाला, जालंधर, होशियारपुर, रावलपिंडी, ऐबटाबाद, मुलतान, वैदिक पाठशाला नरसिंहपुर, श्रीमद्दयानन्द ऐङ्गलो वैदिक हाई स्कूल अजमेर, संस्कृत हाई स्कूल जोबनेर, हाई स्कूल देहरादून इत्यादि** में संस्कृत और अंग्रेजी की शिक्षा पूर्ण रीति से होती है।

इधर सनातन धर्म सभा और महामण्डल सनातन कालिज और स्कूल खोलने में तत्पर हैं जिनमें संस्कृत की शिक्षा को विशेष ध्यान दिया जाता है।

स्त्रियों की शिक्षा पर भी आप का बड़ा प्रभाव हुआ, जिस समय स्वामी जी महाराज ने स्त्री शिक्षा पर कथन किया उस समय पुत्री पाठशालाओं का अभाव सा था और मनुष्य उनको शिक्षा का नाम सुन मुंह चढ़ाते थे, परन्तु अब वर्तमान समय में बड़े २ आर्यसमाजों में पुत्री पाठशालायें प्रचलित हैं और **जालंधर में महाविद्यालय और देहरादून में एक बड़ा स्कूल खुला है** जहां स्त्रियां ही शिक्षा देती और उनकी मैनेजरा स्त्रियां ही हैं। इसके

उपरान्त शिक्षक पुरुष हो या अशिक्षक चाहे आर्यसमाज का सभासद् हो या न हो परन्तु सब जहां अपने पुत्रों को संस्कृत और भाषा व अंग्रेजी के पढ़ाने की रुचि रखते हैं वहां उनको अपनी पुत्रियों के पढ़ाने की भी इच्छा हो गई है जिसके कारण सहस्रों पुत्रियां इन शालाओं में हम पढ़ते देखते हैं।

इसी भांति अनाथ रक्षा की ओर भी भारतवासियों का ध्यान उत्पन्न हो गया है, आर्यसमाजियों ने **अजमेर, बरेली, फीरोज़पुर, आगरा** आदि स्थानों में जो अनाथालय खोले हैं जहां उन के लालन पालन के साथ पठन पाठन इत्यादि भी कराया जाता है पबलिक बड़ी प्रसन्नता से उनको दान देकर उनकी सहायता कर रही है, क्योंकि पबलिक का विश्वास आर्य्य समाजियों पर अधिक हो गया है जिस देशोपकारक काम को यह अपने हाथ में लेते हैं उस पर अन्य देश वासियों का बड़ा भरोसा होता है, इस कारण वह दान देने आदि में भी अच्छे प्रकार सहायता देते हैं।

विवाह आदि संस्कारों में नवग्रह और गणेश महाराज की पूजा उठती चली जाती है मनुष्य निर्भय और बेधड़क होकर पौराणिक संस्कारों को करने से इंकार कर वेदोक्त संस्कार कराते हैं जिनमें बिरादरी और अन्य हिन्दू भाई प्रसन्न चित्त होकर सम्मिलित होते हैं, मृतक संस्कारों में जहां बिना मन्त्रों और चार पैसे के घी आदि से कपाल क्रिया की जाती थी, वहां अब तीस २ चालीस पचास रुपये के घृत और सुगंधित द्रव्योंसे पण्डितगणों के द्वारा दाह कर्म कराते हैं और अन्य क्रिया और कर्म जो पौराणिक रीति के होते थे जिनमें कट्टहाको मालामाल किया जाता था अनेक पुरुष इस अनुचित रीति को छोड़ते जाते हैं इसके अतिरिक्त जो करते हैं उनकी वैसी श्रद्धा नहीं रही क्योंकि वह जान गयेहैं कि कट्टहा जो अधिकांश अनाचारी हैं उनको देने से पाप होता है और माता पिता आदि को तो मिल ही नहीं सकता क्योंकि उनको अच्छे प्रकार ज्ञान हो गया है कि प्रत्येक जीव को अपने कर्मों का फल मिलता है न कि अन्य के कर्मों का फल। इस लिये करने वाले बहुत कम देते हैं और न कट्टहाजी के पैर आदि उस प्रेम से दाबते हैं इसी प्रकार प्रथम कट्टहाजी प्रत्येक बात पर बहुत कुछ धन लेते थे और तुकल कराई पर हाथ बांधते थे अब मुंह मांगा मिल जाता था तब तुकल खोलते थे अब वह समय आ गया कि सब मनुष्य जान गये कि सब मिथ्या लीला है, इस कारण कट्टहाजी पहिले की सी पंचातानी नहीं करते क्योंकि जब कट्टहाजी नहीं मानते तो फिर लोग कह देते हैं कि महाराज आर्य्यों का कहना ठीक है क्यों हैरान करते हो, लेना हो तो लो वरन् हम सब अनाथालय को भेजे देते हैं इस कारण वह बेचारे अब चूं भी नहीं करते, इसी पौराणिक पण्डित जो प्रथम आर्य्यों से बड़ी घृणा करते थे और उनके यहां नहीं जाते थे अब वह स्वयं ही प्रसन्न होकर यजमान से कहते हैं कि आप सामाजिक पण्डित को न बुलाइये हम ही संस्कारविधि के अनुसार कार्य करा देंगे नवग्रह इत्यादि की पूजा की कोई आवश्यकता नहीं।

प्रथम यात्रा होने पर जातिच्युत करते थे परन्तु अब कोई भी इसका नाम नहीं लेता वरन् सीधे साधे पण्डितगण अपने यजमानों से स्पष्ट कह देते हैं-यह वैदिक सिद्धान्त है और हम लोग पुराणों पर चलते हैं, न्यून अवस्था के विवाह के स्थान पर तरुण अवस्था पर विवाह होने की रीति की प्रथा पड़ती जाती है लड़के लड़कियों को नाई आदि के देखने के स्थान पर स्वयं पिता भाई आदि सम्बन्धी देखने को जाते हैं, जहां प्रथम धन को ही देखकर विवाह करते थे वहां अब गुण, कर्म, स्वभाव की भी देखा भाली होने लगी है प्रत्येक मनुष्य अपनी पुत्री को पढ़े लिखे हृष्ट पुष्ट आदि उत्तम स्वभाव वाले पुत्र को (वर को) पुत्री देना चाहता है, इसी भांति विवाह में बहुत बरात ले जाना, रंडी का नाच, बखेर आदि लज्जाहीन गीत गाने का जो प्रचार था वह भी सब बखेड़े धीरे २ उठते जाते हैं, अब लोग उत्तम २ गान करने वाली भजनमंडलियों के भजन सुनते हैं, बखेर के स्थान पर दान करना अच्छा जानते हैं। स्त्रियों के लज्जाहीन गीत गाने के स्थान पर उपदेश युक्त गीत गाये जाते हैं। स्वामी जी से प्रथम भारतवासी सभा, समाज, मुनादी के नाम को भी नहीं जानते थे परन्तु वर्तमान समय में भारत में सभाओं की भरमार हो रही है प्रति सप्ताह प्रातः काल व सायंकाल हजारों व लाखों मनुष्य समाज मन्दिरों में धर्म उपदेश सुनने जाते हैं, मेलों और उत्सवों पर बड़े व्याख्यान दाताओं के व्याख्यान सुनते हैं, आर्य्यसमाजें अपने वर्षोत्सव पर नगर कीर्त्तन करा सोते हुओं को जगा ईश्वर भक्ति का उपदेश कर रही हैं।

सच तो यह है कि अब संतानों में धर्म के खोज की रुचि उत्पन्न हो गई है सहस्रों मनुष्य प्रातः सायंकाल सन्ध्या करते हैं और मनुष्यों में नित्य कर्म करने की परिपाटी प्रति दिन बढ़ती जाती है, स्वामी दयानन्द की शिक्षा के विरोधी भी आर्य्य मिशन को अपना संरक्षक समझ जहां कहीं मुसलमान और ईसाई की प्रबलता होती है वहां लोग आर्य्य मिशन को बुलाकर शिक्षा कराते हैं कि जिससे उनकी शिक्षा का प्रभाव यकायक उतर जाता है क्योंकि वैदिक शिक्षा मनुष्य मात्र पर प्रकाशित कर दिया है कि वेद ही ईश्वरीय पुस्तक है इसके अनुसार कार्य करने ही से मुक्ति मिलती है।

अन्यथा सब मिथ्या प्रपञ्च हैं इस कारण वह लोग दयानन्द की शिक्षा अर्थात् आर्य्यसमाज के सहायक बन जाते हैं और महर्षि को शिक्षा के उपकार का धन्यवाद देते हैं।

प्यारे मित्रवर्गो! वर्तमान समय में स्वामी दयानन्द सरस्वती का प्राकृत शरीर उपदेश नहीं कर रहा उनके उपदेशयुक्त ग्रन्थ उन्हीं का काम संसार में कर रहे हैं जिससे प्रत्येक योग्य पुरुष को आशा है कि एक दिन ऐसा आवेगा कि समस्त संसार के मनुष्य ओ३म् रूपी झंडे के नीचे बैठ वेदों का प्रचार करते हुए संसार को स्वर्गधाम बनायेंगे जब ही उस महात्मा परोपकारी पूर्ण योगी अखण्ड ब्रह्मचारी के कार्य की पूर्ण सफलता होगी।

महर्षि की ग्रन्थ रचना ।

पाठकगणों पर विदित हो कि संसार में मनुष्यों को अपने विचारों के प्रचार के दो ही साधन हैं एक स्थान पर जाकर उपदेश करना द्वितीय पुस्तकाकार में प्रकाशित करना । सम्पूर्ण बुद्धिमान् ऋषि मुनि इन्हीं दोनों साधनों से संसार में उपदेश करते रहे हैं । प्राचीन समय में भी इस रीति से उपदेश का काम होता था, देखो महर्षि पाणिनि की अष्टाध्यायी, पतञ्जलि का योग दर्शन, तत्ववेत्ता महर्षियों के उपनिषद्, शतपथ आदि पुस्तकें उनके लेखबद्ध उपदेशों का ही फल है ।

ऋषि समय को छोड़ अंधकार के समय में यही दो साधन रहे, देखो बुद्ध ने इसी उपदेश के बल से धर्म के साधन संसार में प्रचलित किये, जिस में पचास करोड़ से अधिक मनुष्य सम्मिलित हैं । शंकर स्वामी, ईसा, मुहम्मद, डारविन इत्यादि ने वाचिक और लेखबद्ध उपदेश ही से काम लिया । इसी भांति महर्षि स्वामी दयानन्द के वाचिक उपदेश का फल आर्यसमाज है और लेखबद्ध का फल उनके रचित ग्रन्थ हैं ।

वाचिक उपदेश को मनुष्य केवल अपने जीवन में ही सुना सकते हैं और लेखबद्ध उपदेश शरीर के पञ्चतत्व प्राप्त होने पर भी उनके स्थान पर कार्य का काम करता है, वाचिक उपदेश उसी स्थान पर होता है जहां कि वह उपस्थित होता है, लेखबद्ध अन्यत्र भी । इस के उपरांत वाचिक उपदेश से वही मनुष्य लाभ उठाते हैं जो वहां उपस्थित होते हैं परंतु लेख में यह बातें नहीं वरन् सर्वत्र और सब पढ़ने वाले अपने अपने गृह और जंगल, और समुद्र और पर्वत के शिखर पर आनन्दपूर्वक विचार करते हुये पूर्ण लाभ प्राप्त करते हैं, इसी रीत के अनुसार महर्षि स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थ ही आज हमको उन का उपदेश देते हुए स्वस्ति और शान्ति का मार्ग दर्शा रहे हैं ।

आपने अपने जीवन में निम्नलिखित ग्रन्थ रचे ।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेद भाष्य, वेदांग प्रकाश, सत्यार्थप्रकाश, संस्कार विधि, पञ्च महायज्ञ विधि, आर्याभिविनय, आर्य उद्देश्य रत्नमाला, व्यवहार भानु, संस्कृत वाक्य प्रबोध, वेदान्त ध्वनि निवारण, अद्वैत मत खण्डन, गो करुणा निधि, वल्लभाचार्य मत खण्डन, भ्रमोच्छेदन, भ्रांति निवारण, पाखण्ड खंडन, स्वामी नारायणमत खंडन ।

इसके अनन्तर स्वामीजीने **सत्धर्म विचार अर्थात् शास्त्रार्थ काशी, प्रतिमापूजन विचार, शास्त्रार्थ हुगली, और शास्त्रार्थ मेला चांदापुर** भी पुस्तकाकार मुद्रित कराया था।

वैदिक यन्त्रालय का नियत होना।

जब स्वामी जी महाराज ने अपने प्रचार के साथ पुस्तक लिखने का कार्य भी आरम्भ कर दिया तो उनको उनके मुद्रित कराने और फैलाने के प्रबन्ध की भी आवश्यकता हुई जिस के प्रबन्ध करने से उनके प्रचार में अति हानि होने लगी। क्यों कि प्रेस वालों को बारम्बार पत्र लिखने आदि के कारण बहुत काल व्यर्थ जाता था और पुस्तक भी समय पर शुद्ध न मिलती थी। जब आर्य्य भाइयों ने इन उपरोक्त दोषों को जाना तो उस के निवारणार्थ मुरादाबाद समाज ने प्रथम १८ सितम्बर सन् १८७९ ई० को और द्वितीय बार २२ जनवरी सन् १८८० ईस्वी को एक विज्ञापन प्रकाशित किया कि स्वामी जी को अपनी रचित पुस्तकों के मुद्रित कराने में उन का बहुत सा समय व्यर्थ जाता है यदि यह समय भी पुस्तक रचना में ही लगाया जावे तो विशेष फल हो, इसलिये इस कार्य की पूर्ति के लिये एक यन्त्रालय वैदिक—प्रेस के नाम से खोल दिया जावे। तथा जिस को सब समाजों को धन से सहायता करना परम आवश्यक है इस पर मुन्शी आनन्दीलाल जी मन्त्री आर्य्य समाज मेरठ ने भी इस की पुष्टि में लिखा पढ़ी की, जिस पर समाजों ने बड़ी उदारता से सहायता की और माघ शुक्ला ८ बृहस्पतिवार सम्वत् १९३६ को काशी में लक्ष्मीकुण्ड पर श्रीयुत महाराजा विजयानगराधिपति के स्थान में वैदिक यन्त्रालय नियत किया गया और उस में उसी समय से वेद भाष्य जो प्रथम मिस्टर लाजरस साहिब बनारस और फिर जो बम्बई में छपता था इसी प्रेस में छपने लगा इस के उपरान्त फिर सब अन्य पुस्तकें यहां ही छपने और बिकने लगीं।

पाठक गणों! इस प्रेस के होजाने से स्वामी जी रचित ग्रन्थ इच्छानुसार मुद्रित होने लगे परन्तु, योग्य मैनेजरों के अभाव के कारण बनारस में उस का प्रबन्ध संतोषजनक न हुआ तब स्वामी जी ने इस प्रेस को इलाहाबाद राय बहादुर पण्डित सुन्दरलाल सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्नमेन्ट की रक्षा में भेज दिया जिन्हों ने कई मैनेजर नियत किये परन्तु सफलता न हुई। तब प्रयाग समाज के सभासदों की कमेटी के हाथ में दिया परन्तु स्वामी जी की मृत्यु के पश्चात् सन् १८९१ में यह यन्त्रालय परोपकारिणी सभा की आज्ञानुसार अजमेर बदल गया जिसका प्रबन्ध उक्तसभा तथा आर्यसमाज अजमेर द्वारा बड़ी उत्तमता से चल रहा है। जिसमें भी स्वामी जी रचित सम्पूर्ण ग्रन्थ छपते हैं। अनेक

ग्रन्थों की कई २ आवृत्ति भिन्न २ भाषाओं में भी छपी हैं और भी लाभदायक ग्रन्थ प्रकाशित होते रहते हैं।

सच पूछो तो इस यन्त्रालय ने संस्कृत ग्रन्थों के प्रचार के उपरान्त धर्म सम्बन्धी विचारों और देवनागरी भाषा के फैलाने में बहुत कुछ सराहनीय काम किया है।

ओ३म्

अथ विनयाष्टकम्

अद्वैतवादाति विजृम्भितान्तर्विद्विपक्षोत्तरदायकानाम्।
जयन्ति वाचोनिगमार्थभूताः श्रीमद्दयानन्दमुनीश्वराणाम्। १।

अर्थ-अद्वैत मत के वाद से अति विजृम्भित उन्नति को पहुंचा हुआ जिन का अन्तःकरण था, ऐसे विद्वान् विपक्षियों के उत्तरदाता श्रीमान् दयानन्द मुनीश्वर की वेदार्थमयी सरस्वती विजय को प्राप्त है ॥ १ ॥

न्यायोक्तिवैशेषिकजन्यबोधप्रभावमूकी कृतदाम्भिकानाम्।
जयन्ति वाचोनिगमार्थभूताः श्रीमद्दयानन्दमुनीश्वराणाम्। २।

अर्थ-न्याय शास्त्र की उक्ति और वैशेषिक के ज्ञान के प्रभाव से मूक कर दिया सब दाम्भिक पाषण्डियों को जिन्हों ने, ऐसे श्रीमान् दयानंद मुनीश्वर की निगमार्थमयी वाणी विजय को प्राप्त है ॥ २ ॥

श्रीभारतानेकमतप्रहन्तृवेदैकमान्यप्रथयाश्रुतानाम्।जयन्ति
वाचोनिगमार्थभूताः श्रीमद्दयानन्दमुनीश्वराणाम् ॥३ ॥

अर्थ-जो स्वतः प्रमाण वेदों को मानते थे ततः वेद द्वारा संसार के अनेक मतों का नाश करके जगत् में प्रसिद्ध हुए, ऐसे श्रीमान् दयानन्द मुनीश्वर की निगमार्थ वाणी विजयिनी है ॥ ३ ॥

सच्चिन्मुदद्वैतपरात्मनीशेदृढैर्मनोवाग्विभवैःश्रितानाम्।जयंति
वाचोनिगमार्थभूतः श्रीमद्दयानन्दमुनीश्वराणाम् ॥ ४॥

अर्थ-जो सच्चिदानन्द अद्वैत परब्रह्म ईश में मन वचन के (विभव) ऐश्वर्य से आश्रित हुये, ऐसे श्रीमान् दयानन्द मुनीश्वर की वेदार्थ प्रकाशिका वाणी विजयिनी है ॥ ४ ॥

अज्ञप्रसिद्धीकृतवेदमन्त्रव्याख्याः प्रदूष्यार्षमतानुगानाम् ।
जयन्तिवाचोनिगमार्थभूताः श्रीमद्दयानन्दमुनीश्वराणाम् ।५।

अर्थ जिन्हों ने अज्ञानी मनुष्यों की प्रसिद्ध की हुई वेद मन्त्रों की (व्याख्या) भाष्यों का खण्डन करके आर्षमत ऋषियों के मत से भाष्य रचा, ऐसे श्रीमान् दयानन्द मुनीश्वर की वेदभाष्य रूप वाणी जयवती है ॥ ५ ॥

वेदार्थ लोपान्ध निमग्न लोकज्ञान प्रदीपप्रदवाङ्मयानाम् ।
जयन्तिवाचोनिगमार्थभूताःश्रीमद्दयानन्दमुनीश्वराणाम् ।६।

अर्थ—वेदार्थ के लोप रूप अन्धकार में डूबे हुए लोक को ज्ञान रूप प्रदीप जिन के वचन हैं, ऐसे श्रीमान् दयानन्द मुनीश्वर की वेदार्थ भूत सरस्वती सर्वोत्कर्ष से वर्तमान है ॥ ६ ॥

वर्णान्गुणैः कर्म्मभिरानुमेयान्प्रदर्श्यसन्मार्गसुवर्तकानाम् ।
जयन्ति वाचो निगमार्थभूताःश्रीमद्दयानन्दमुनीश्वराणाम् ७।

अर्थ जो गुण कर्मों से अनुमान करने योग्य चार वर्णों को दिखाकर सन्माग के सम्यक् प्रकार प्रवर्त्तक हुए, ऐसे श्रीमान् दयानन्द मुनीश्वर की सरस्वतीश्रा से जय को प्राप्त है ॥ ७ ॥

पितुर्धनंयोग्यसुतालभन्तेऽखिलायवेदस्त्वितिबोधकानाम् ।
जयन्तिवाचोनिगमार्थभूताः श्रीमद्दयानन्दमुनीश्वराणाम् ।८ ।

अर्थ—जो पिता के धन के सभी योग्य पुत्र अधिकारी हैं इस वाक्य के बोधक हुये, ऐसे श्रीमान् दयानन्द सरस्वती जी मुनीश्वर की वेदार्थ मयी वाणी सर्वोत्कर्ष से विराजमान है ॥ ८ ॥

ओं—पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती यज्ञं वष्टुधियावसुः । ऋ० १ । १ । ६ । १० ॥

व्याख्या—हे वाक्यपते ! सर्व विद्यामय ! हमको आपकी कृपा से (सरस्वती) सर्व शास्त्रविज्ञानयुक्त वाणी प्राप्त हो । (वाजेभि) तथा उत्कृष्ट अन्नादि के साथ वर्तमान (वाजिनी०) सर्वं श्रेष्ठ विज्ञान युक्त, पवित्र करने वाली, सत्यभाषणमय, मङ्गलकारी वाणी आपकी प्रेरणा से प्राप्त होके आपके अनुग्रह से परमोत्तम बुद्धि के साथ वर्तमान (वसुः) निधि स्वरूप यह वाणी सर्व शास्त्र के जानने वाली और पूजनीयतम आप के विज्ञान की कामना युक्त सदैव हो-जिस से हमारी सब मूर्खता नष्ट हो और हम पाण्डित्य युक्त हों ।

॥ इति समाप्तश्चायंग्रंथः ॥

पाठकवृन्द ।

निम्न लिखित पुस्तकोंकी हम क्या प्रशंसा करें जब कि भारत वर्ष ही नहीं किन्तु विदेशी जन भी स्वयं मुक्तकन्ठ से इन की तारीफ़ कर रहे हैं ।

नारयणी शिक्षा अर्थात् गृहस्थाश्रम प्रथम भाग मूल्य १॥) डा० ॥=) द्वितीय भाग १) डा० ।=) पुराणतत्वप्रकाश तीन भाग २) डा० ।=) प्रेमधारा की० ॥) डा० ।) रत्नभंडार ।=) डा० ।) क्या हम रामायण पढ़ते हैं की० =) कलियुगी परिवार का एक दृश्य ॥) डा० ।) धर्मात्मा चाची और अभागा भतीजा ।-) आनन्दमयी रात्रि का स्वप्न =) गर्भाधानविधि ≡) वीर्य्यरक्षा =) सत्यनारायण की प्राचीन कथा =) यथार्थ शांतिनिरूपण ।) शांतिशतक =) नीत्युक्तस्त्रीधर्म ≡) स्मृत्युक्त स्त्री धर्म =) द्वैत प्रकाश -) संसारफल -) ईश्वर सिद्धि)॥ चित्रशाला)॥ बुद्धि अज्ञान की बातें -)॥ प्रेमपुष्पावली -)॥ भरतोपदेश)॥ सन्ध्या)॥ मित्रानन्द -)॥ भजन सारसंग्रह -)॥ स्त्रीज्ञानगजरा १ भाग)॥ द्वितीय भाग -)॥ भजन पचासा -) वर्णमाला)॥ आयुर्विचार -)॥ मौत का डर -)॥ हवन)॥ संध्यादर्पण -)॥

आदर्श जीवन-चरित्र ।

श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती-रायल ८ पेजी बड़ा साइज ३ चित्रों सहित की० १॥) डाकव्यय ।=) दशरथ =) राम =) लक्ष्मण ।=) भरत =)॥ युधिष्ठिर ।=) अर्जुन ≡) भीमसेन ≡) द्रोणाचार्य ≡) विदुर =) दुर्योधन ≡) धृतराष्ट्र ≡) पं० गुरुदत्त =) महा-महात्मा पूरणभक्त =)॥ महारानी मन्दालसा ।)॥

उत्तम ब्लाक द्वारा छपे मनोहर

चित्र ।

श्री १०८ स्वामी दयानन्द जी । श्री पं० लेखराम जी । श्री पं० गुरुदत्त जी । श्री महात्मा हंसराज जी । श्री महात्मा श्रद्धानन्द जी संन्यासी । मूल्य प्रत्येक चित्र का एक १ आना । महाराजधिराज पंचमजार्ज दम्पति सहित मूल्य =) परिवार सहित ≡) ।

यदि आप संसार को स्वर्गधाम बनाना चाहते हैं तो शिक्षा के सर्वोत्तम और प्रसिद्ध ग्रन्थ नारायणी शिक्षा अर्थात् गृहस्थाश्रम को पढ़िये।

अब तक २६२०० प्रतियाँ बिक चुकी हैं।

अब इसका १४ वां एडीशन नये ढंग और नये रूप में छपकर तय्यार है।

इसकी उत्तमता इतनी संख्या एवं इतने एडीशन के निकलने से ही विदित है, अब तक स्त्री-शिक्षा का कोई ग्रन्थ इतनी संख्या में नहीं निकला। विशेष रूपसे इसकी स्वयं प्रशंसा न कर केवल इतना कहना ही उचित समझते हैं कि यह एक पुस्तक ही गृहस्थी में रखने योग्य है। इसमें ५०० विषय और लगभग २००० बातों का वर्णन, अनेकान् सुयोग्य पवित्र-जीवन एवं विदुषी आदि गुणों से सुभूषित स्त्रियों के जीवनचरित्र भी हैं। गृह सम्बन्धी कोई ऐसा विषय नहीं जिसमें इसका आन्दोलन न किया गया हो। इससे हम कहते हैं कि इस से नकल एवं काट छांट कर लिखी गई अन्य पुस्तकों में व्यर्थ धन व्यय न कर इस असली और संसारोपयोगी पुस्तक का ही स्वयं पाठकर अपने मित्रों और कुटुम्बियों को दिखलाइये। ६०० रायल अठपेजी पृष्ठ होने, पर भी मूल्य १॥) डाक व्यय सहित २=)

नारायणीशिक्षा की बाबत विदेशियों की सम्मति।

श्री० एन निरञ्जनस्वामी फाइफ मेजर यूयशायर—

इसके पढ़ने से मेरी आत्मा को जितना आनन्द मिला वह किसी प्रकार नहीं लिख सकता, वास्तव में आपने गागर में सागर भरने का यत्न किया है। योग्य गृहस्थ आपकी इस पुस्तक को पढ़े बिना धन्यवाद दिये नहीं रह सकता।

श्री प० विदेशीलाल जी शर्मा—दर्बन (नेटाल अफ्रिका)

जिस तरह धातु में सुवर्ण, वृक्षों में आम, रसों में मिश्री, दुग्ध में घृत, मीठे में शहद, जीवों में मनुष्य, पुण्यों में ब्रह्मचर्य; प्रकाश में सूर्य श्रेष्ठ है वैसे ही आप की पुस्तक नारायणी शिक्षा सम्पूर्ण स्त्रियों के लिये उपयोगी है। मैं आशा करता हूं कि विचारशील पुरुष अवश्य इस अमूल्य पुस्तक से लाभ उठा कुटुम्बियों सहित आनन्द भोगने की चेष्टा करेंगे।

इसी प्रकार और भी प्रशंसा-पत्र आये हैं पर स्थानाभाव से प्रकाशित नहीं कर सकते।

भारत के गण्य मान्य सज्जन क्या कहते हैं—

श्री ०पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी, सम्पादक सरस्वतीप्रयाग

सरस्वती भाग १० संख्या ७ में प्रकाशित करते हैं कि "नारायणी शिक्षा–सम्पादक बाबू चिम्मनलाल वैश्य पृष्ठ संख्या ६१२। साचा बड़ा, कागज अच्छा, छपाई बम्बई के टाईप की, मूल्य सिर्फ १।)" इस इतनी सस्ती परन्तु उपयोगी पुस्तक का दूसरा नाम गृहस्थाश्रम शिक्षा है। पुस्तक कोई ३० भागों में विभक्त है। गृहस्थाश्रम से सम्बन्ध रखने वाली शिशुपालन, शरीर रक्षा, ब्रह्मचर्य, विवाह, पति पत्नी धर्म, नित्यकर्मादि कितनी ही बातों का इसमें वर्णन और विचार है। श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, पुराणादि से जगह २ पर विषयोपयोगी प्रमाण उद्धृत किये गये हैं। पुस्तक में सैकड़ों बातें ऐसी हैं जिनका जानना गृहस्थ के लिये बहुत जरूरी है। इस पुस्तक को लोगों ने इतना पसन्द किया है कि आज तक इसके ६ संस्करण हो चुके हैं।

श्रीमान् पं० विष्णुलालजी साहब शर्मा सबजज—

MY DEAR MUNSHI CHIMMAN LAL JI,

The *Narayani Siksha* is a library in itself, being a work of Cyclopedia information. No subject Theoretical or Practical which is useful to a house holder has been left untouched. The style is simple, yet impressive. I am not aware of a better book for females in Hindi, and am of opinion thet no Hindu family shuld be without a copy of your book.

श्रीमान् बाबू रामनारायण साहब तिवारी—

Dear sir,

I have read the Narayani Siksha or Grihast-Ashram compiled by you. I do not know of any other book in Hindi which gives in such a short compass everything that a Grihrstha or house holder shuld know besides, I find your book a valuable additeruinn to the literature for Hindu women It is a pleasure to see that the book is so cheap a lesson that other authors on popular subjectse might well learn from you. I think a book on Vedic principles should be as cheap as possible and do one will, I am sure grumble to spend one rupee and four annas more for the large and usful matters contained in your book.

श्रीयुत गोविन्दजी मिश्र ६५ । ३ बड़ाबाज़ार, कलकत्ता—

आपकी पुस्तकको पढ़कर मेरी आत्माको जितना आनन्द मिलाहै वह किसी प्रकार से लिखकर नहीं बतासकता । वास्तवमें आपने सागरको गागर में भरने का साहस किया है । गृहस्थाश्रम के आवश्यकीय प्रायः समस्त विषयोंका संग्रह किसी पुस्तक में सिवाय नारायणी शिक्षा के नहीं देखा । इस एक ही पुस्तक से मनुष्य अपना प्रयोजन पूर्ण रूप से गठन कर सकता है । ऐसी २ पुस्तकों की रचना प्रायः उच्च कक्षा की धार्मिक आत्माओं के द्वारा ही हुआ करती हैं।

श्री प्रतापनारायणसिंह जी, ग़ाज़ीपुर–

यह एक अति उत्तम पुस्तक है और प्रत्येक घरों में रखने लायक है । मेरा ऐसा विचार है कि हमारे भारतवासी स्त्री पुरुषों के लिये जो कि इसको एकबार भी पढ़लेंगे तो अति लाभदायक और उपयोगी होगी । मैं आप के इस परिश्रम और आप के इस अमूल्य समय के व्यतीत करने के लिये जो आपने हम भारतवासियों के लाभार्थ उठाया है, शुद्ध चित्त से प्रशंसा करता हूं।

इसके अतिरिक्त श्रीमान् राजा फतेहसिंह साहब बहादुर पुवायां, श्रीपण्डित शीतलप्रसादजी डिप्टी कलेक्टर, म० रामचन्द्रजी साहिब हास्पिटल असिस्टेन्ट सर्जन लखना बाबू कृपालसिंह जी डिप्टी इन्स्पेक्टर इन्दौर, बाबू बलदेवप्रसाद वकील व प्रधान कायस्थ कान्फ्रेन्स, बाबू मथुराप्रसाद साहिब सब इंजिनियर सीतापुर, बाबू जगदीश नारायणजी गहलोत हाउस जोधपुर, श्रीभारावरद्वारवीर शर्मा जोधपुर, पं० देवदत्तजी शर्मा आमघाट गाजीपुर, श्रीरामदयालुजी शाहपुरा, श्री० विश्वम्भर जी गुप्त राजा का रामपुर, श्रीराजेन्द्रनाथजी स्कूल फीरोज़ाबाद, बाबू शालिग्रामजी सुपरवाईज़र दफ्तर नहर मधुमानी मिर्जापुर, श्रीयुतगंगाप्रसाद जगन्नाथजी हलद्वानी, श्रीयुत शम्भुनारायणजी शर्मा कवि मातृभूमि, बा० उदय नारायण बलदेवप्रसादजी मैथिल दानसाह मोतीहारा, श्रीयुतमास्टर शिवप्रसाद जी वर्मा मुरादाबाद, मुंशी मालग्रामजी छपरा, बाबू मोहनसिंह जी साधूसिंहजी देहरादून, श्रीमहाशय वीरवर्मा स्वामी यन्त्रालय देहरादून, श्रीकालिकाप्रसादजी कनाईघाट (सिलहट) श्रीयुत मथुराम जी आचार्य तलवारा (होशियारपुर) श्रीयुत लालारामप्रसादजी बड़े व ज़ाहजहानपुर, श्रीयुत मंगलदेव शर्मा कोटला (आगरा) एवं सम्पादक श्रीमहाशय मुन्शीरामजी 'सद्धर्मप्रचारक' म० एडीटर आर्यावर्त दानापुर, मु०सम्पादक गोधर्मप्रकाश, म०सम्पादक भारतसुदशाप्रवर्तक आदि अनेक सभ्य पुरुषों के प्रशंसासूचक पत्र आ चुके हैं।

पुत्री उपदेश अर्थात् गृहस्थाश्रम के द्वितीयभाग

की बाबत कुछ सम्मतियां

डा० पूर्णचन्द्रजी B. S. C. & L. L B. उपमंत्री आर्यप्रतिनिधिसभा

वास्तव में पुत्री उपदेश कन्याओं और स्त्रियों के लिये अत्यन्त शिक्षापूर्ण पुस्तक है स्त्रियों के लिये जितनी बातें आवश्यक तथा उपयुक्त है उन पर शास्त्रों तथा नीतिज्ञों के वचन लिखकर उन को भली भांति समझाया है। बहुत सी बातें जो बहुधा स्त्रियां जानती भी हैं परन्तु उन के कारण तथा उपयोग से अनभिज्ञ हैं उन का साफ़ २ निर्णय इस पुस्तक में किया गया है यह एक इस पुस्तक में विशेष गुण है। लेखक महाशय का उद्योग सराहनीय है यदि यह पुस्तक विवाह के उपहार में तथा कन्यापाठशालाओं में पारतोषिक के रूप में दी जावे तो इस का वास्तविक उपयोग हो सकता है। कागज छपाई आदि अच्छी है। मूल्य १) डा० ।-)

श्री० सम्पादक महोदय 'प्रतिभा' सनातनधर्म प्रेस मुरादाबाद

"गृहस्थाश्रम जिन बातों से सुखद होता है इस पुस्तक में प्रायः उन सब बातों का थोड़ा बहुत वर्णन है-ब्रह्मचर्य की महिमा लेखक ने अच्छी तरह समझाई है। हृदय की पवित्रता और व्यवहार शुद्धि पर भी लेखक ने अपने ढंग पर खूब लिखा है। अपने देश की बहुत सी बातों का दूसरे देशों से मिलान करके अपने देश की हीनता दिखाई है जिसे पढ़कर अपनी अवस्था का बहुत कुछ ज्ञान हो जाता है ऐसे ही अनेक काम के विषयों की इस में चर्चा है पुस्तक लेखक आर्यसमाजी विचार के पुरुष हैं पर उन को इस पुस्तक से सब विचार की स्त्रियां और पुरुष भी लाभ उठा सकते हैं"

श्रीमती सम्पादिका स्त्रीदर्पण इलाहाबाद

"इस पुस्तक में लेखक ने अपनी पुत्री को उपदेश दिये हैं परन्तु वे सभी पुत्रियों क्या, उन की माताओं को भी पढ़ने योग्य हैं। सभी सांसारिक बातोंका निर्णय इन उपदेशों में है......पुस्तक अपने ढंग की अच्छी है सच्चे जीवन चरित्र आदि बहुत से हितकर विषयों के कारण स्त्री पुरुषों दोनों के काम की है"

श्री० पं० हरिशंकर मुरार व्यास अ० उपदेशक

पुत्री उपदेश अर्थात् गृहस्थाश्रम का द्वितीय भाग मैंने आद्योपान्त पढ़ा चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ा । सुन्दर लेख शक्ति, उच्चभाव और मनोहर वाक्य रचना बतला रही है कि लेखक का जीवन पवित्र है प्रत्येक घर में यदि इस ग्रन्थ का स्वाध्याय शुरू रहे तो भावी संतानों का जीवन सुधार अवश्य होगा''''''महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं का भाव उपरोक्त ग्रन्थ में जगह २ टपकते हैं'''यह ग्रन्थ बालक बालिकाओं दोनों के लिये उपयोगी है पुस्तक का कागज तथा छापा सुन्दर है । यह ग्रन्थ प्रत्येक घर की शोभा होना चाहिये ।

राष्ट्रीय शिक्षा की अनुपम एवं नवीन पुस्तक

रत्न भण्डार

को

देखिये दिखलाइये और धार्मिक क्षेत्र में संतानों को आगे बढ़ाइये।

"टेक्सबुककमेटी आगरा व अवध ने ४--१२--२० की बैठक में इस पुस्तक को लायब्रेरी में रखने और इनाम में देने को स्वीकार किया है"

इसके विषय में कतिपय सज्जनों की

सम्मतियां

सरस्वती—इस पुस्तक में ३५.४५० से भिन्न २ विषयों पर अच्छे २ पद्य उद्धृत किये गये हैं। पद्यों के नीचे उन का अर्थ भी सरल हिन्दी में लिख दिया गया है। पद्यों का चुनाव अच्छा हुआ है। पुस्तक सब के पढ़ने लायक है।

बा० नैपालसिंह जी प्रेन्सिपल राजाराम कालिज कोल्हापुर

यह पुस्तक बालक तथा बालिकाओं के लिये विशेष उपयोगी है।

बा० गंगासहाय जी असिस्टेन्टइन्स्पेक्टर स्कूल्स

कमिश्नरी रुहेलखण्ड

वा

पं० महेशीलाल जी डिप्टी इन्सपेक्टर स्कूल्स

ग्रन्थकर्ता ने इसमें अनुपम रत्न चुनकर देश की सराहनीय सेवा की है पुत्र पुत्रियों की शालाओं में पाठ कराने योग्य है। इत्यादि...मूल्य ।=) डा० व्य० ।) आना।

पुराणतत्वप्रकाश ॥

इसके लिये लोगोंकी सम्मतियां।

श्री १०८ स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी और स्वर्गवासी श्रीब्रह्मचारी नित्यानन्द जी सरस्वती—

इस पुस्तक के नाम से ही इस का रहस्य विज्ञ पाठकों को ज्ञात हो सका है मंदाशय'''जी की लेखशैली कैसी उत्तम होती है, इसका परिज्ञान इनके बनाये नारायणी शिक्षादि ग्रन्थों से पाठकों को अवश्य हो ही चुका है। पुराणों के पर्यालोचन की आवश्यकता थी, इस शुभ कार्य का आरम्भ भी उक्त महोदय द्वारा हो गया है। हम वाचकवृन्द से सानुनय साग्रह निवेदन करते हैं कि इस पुराणतत्व को मंगाकर इससे लाभ उठावें और ग्रन्थकर्ता महानुभाव के श्रमको सफल करें ताकि ग्रन्थकर्ता का उत्साह बढे और अन्य उत्तमोत्तम ग्रन्थ निर्माण द्वारा ग्रंथकर्ता वाचकवृन्द की सेवा कर सकें।

बा० फूलचन्द जी मेहरा मंत्री आ० स० नीमच—

आपका पु० स० म० नामक पुस्तक जैसा सुनते थे, वैसा ही पाया। इस बहुमूल्य पुस्तक में आप ने पुराणों का खण्डन ही नहीं किया किन्तु उस में "वेदप्रतिपादक" प्रकरण देकर पुस्तक को सर्वोपयोगी बना दिया है। पुस्तक क्या है मानों १८ पुराणों के स्वरूप देखने का दर्पण है। मू० २ अधिक नहीं है मैं आपके इस परोपकारी कार्य की प्रशंसा करता हुआ अनेकशः धन्यवाद देता हूं

सर्दारनी सदाकौर रसूलपुर वहरायच—

यह बहुत उत्तम तरीके में लिखी गई है। १८ पुराणों का निचोड़ इस में लिख दिया है। चूंकि लोगों को पौराणिक भाइयों से बहुत वास्ता पड़ता है, इस लिये सर्व साधारण वा आर्य भाइयों को एक एक पुस्तक अवश्य ही अपने पास रखनी चाहिये।

इसके अतिरिक्त बा० गुजरमल जी गुप्त भारतीभवन फीरोजाबाद, श्री० दुलीचन्द विशनपुर गोरखपुर, श्री कन्हैयालाल जी पटवारी रामलपुर मैनपुरी, आदि आदि अनेक महाशयों के प्रशंसायुक्त पत्र आ चुके हैं।

सरस्वतीन्द्र जीवन।

पढ़िये! लोग क्या कहते हैं?

श्री पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी, सम्पादक

सरस्वती, प्रयाग।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के जितने जीवनचरित्र प्रकाशित हो चुके हैं उन में से श्रीयुत लेखराम जी का उर्दू में लिखा हुआ जीवनचरित्र सर्वश्रेष्ट है। उसी के आधार पर यह सरस्वतीन्द्र जीवन लिखा गया है। आपने लेखराम जी की पुस्तक से प्रायः सारी मुख्य मुख्य घटनाओं की सामग्री उद्धृत करके इस पुस्तक की रचना की है। इसके सिवाय मास्टर आत्माराम जी तथा लाला

राधाकृष्णजी के लेखों से भी आपने सहायता ली है । पुस्तक में स्वामी जी के साधारण चरित्र के अतिरिक्त उनके शास्त्रार्थ, उन के धर्मोपदेश और उन के ग्रन्थ निर्माण आदि की भी बातें हैं । पुस्तक बड़े २ कोई ४०० पृष्ठों में समाप्त हुई है । टाइप अच्छा, कागज़ मोटा है । स्वामी जी, पं० लेखराम जी और पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी के हाफ़टोन चित्र भी पुस्तक में हैं । इस पर भी इतनी बड़ी पुस्तक का मूल्य सिर्फ १=) है । महात्मा जन चाहे जिस देश, जाति, धर्म और सम्प्रदाय के हों उन का चरित्र पढ़ने से कुछ न कुछ लाभ अवश्य ही होता है । जो ऐसा समझते हैं उन्हें स्वामी जी का चरित्र भी पढ़ना और अपने संग्रह में रखना चाहिये ।

श्री पं० विष्णुलाल जी एम० ए० सबजज

मैंने आपके छपाये सरस्वतीन्द्रजीवन को पढ़ा । पं० लेखराम जी स्वर्गवासी के संगृहीत चरित्रों को छोड़ शेष अब तक जितने छपे हैं उन से इस में अधिक हाल पाये । वास्तव में आपने उर्दू के सारगर्भित लेखों की (जिन के आनन्द से बिना उर्दू जानने वाले वञ्चित रहते थे) भाषा करके बड़ा उपकार किया है । मैं समझता हूं कि आप ने इस इतिहास के लिखने में श्रीस्वामी जी के कार्यकाल को यथाक्रम रक्खा है । पुस्तक की छपाई अति सुन्दर है और चित्र भी सर्वाङ्ग उत्तम हैं । मूल्य १=) अधिक नहीं है । मैं आपको इस कार्य्यपूर्ति का धन्यवाद देता हूं ।

श्रीमान् ठाकुर गिरवरसिंह साहिब पूर्वोक्त अवैतनिक उपदेशक श्रीमती आ० प्र० सभा संयुक्तप्रदेश आगरा व अवध—

मैंने मु० चिम्मनलाल जी वैश्य लिखित सरस्वतीन्द्र जीवन को देखा और ध्यान से पढ़ा और बहुधा स्थानों पर धर्मेन्द्रजीवन से मिलान किया तो जान पड़ा कि इस में निम्नलिखित बातें अधिक हैं जो बड़ी उपयोगी और आवश्यक हैं—

(१) काशी शास्त्रार्थ पर कई एक समाचार पत्रों की सम्मतियां ।

(२) कलकत्ता, हुगली, डुमरांव, सहारनपुर और शाहजहांपुर में बोध हुनर्या के प्रश्नों के यथावत् उत्तर ।

(३) उदयपुर में स्वामी दयानन्द जी की दिनचर्या ।

(४) महाराज उदयपुर को दिनचर्या का उपदेश ।

(५) जैनियों के सुप्रसिद्ध पं० आत्माराम जी साधू सिद्धकरण जी के प्रश्नों का भले प्रकार समाधान ।

(६) पादरी ग्रेसाहिब अजमेर और बम्बई में एक पादरी साहिब से धर्मचर्चा मसौदा में बा० विहारीलाल की ईसाई से प्रश्नोत्तर।

(७) आर्यसमाजोंसंदर्शनीसभाका सविस्तार वर्णन और उसके प्रश्नोंके उत्तर

(८) मौलवी मुहम्मदअहसन साहिब जालन्धरी मौलवी मुहम्मद कासिम साहिब, मौलवी मुहम्मद अब्दुलरहमान साहिब जज उदयपुर के शास्त्रार्थ।

(९) स्वामी जी की शिक्षा का फल क्या क्या हुआ।

इसकी भाषा सरल, प्रिय, चित्त को लुभाने वाली है जिस को स्त्रियां भी समझ सकती हैं। कागज उत्तम, स्याही और छापा श्रेष्ठ। तिसपर भी मुन्शीजी ने सर्व साधारण के सुभीते के लिये ४०० पृष्ठ होने पर भी मूल्य अत्यन्त स्वल्प १=) सजिल्द १॥) ही रक्खा है।

श्रीमान् पं० निरंजनदेव शर्मा उप० श्रीमती प्रतिनिधिसभा

मैंने इस जीवन को विचारपूर्वक पढ़ा, बड़ा ही रोचक है। इस पर भी भाषा सरल, अनेकानेक विषय इस में ऐसे हैं जो अभी तक नागरी के जीवन चरित्रों में नहीं छपे। कम पढ़े मनुष्य और स्त्रियां भी भले प्रकार समझ सकती हैं। इस की उत्तमता वास्तव में पढ़ने से ही प्रतीत होगी। सच तो यह है कि अनेक प्रकार से उत्तम और तीन मनोहर चित्रों सहित होने पर भी इस पुस्तक का मूल्य १=) सजिल्द १॥) है। अतः मैं आर्य पबलिक तथा अन्यान्य श्रेष्ठ पुरुषों से सिफारिश करता हूं कि एक एक जिल्द मंगाकर आप देख अपनी पुत्रियों, स्त्रियों, पुत्रों को अवश्य दिखलावें।

श्रीमान् पं० सदानन्द जी पेशकार तहसील किचहा जि० नैनीताल।

मैं आप के सरस्वतीन्द्रजीवन को देख हार्दिक धन्यवाद देता हूं, दरअसल यह पुस्तक अति सराहनीय है। तिस पर भी मूल्य बहुत ही सस्ता है।

प्रेमधारा।

श्री पं० गणेशप्रसाद जी, सम्पादक भारत सुदशाप्रवर्त्तक फर्रुखाबाद (यू० पी०)

यह पुस्तक नाविल के ढंग पर २२० पृष्ठ का है। इस को देख कुरीतियों के नष्ट करने वाले एवं पुस्तक बहुत उपयोगी और लाभदायक है। छपाई कागज उत्तम होने पर भी मूल्य ॥=) मात्र है।

श्रीयुत सम्पादक भास्कर (मेरठ)

प्रेमधारा स्त्री-शिक्षा की अत्युत्तम पुस्तक है जिस को .... ने प्रकाशित किया है। संवादरूप से बहुत उत्तम उत्तम शिक्षायें दी गई हैं। प्रत्येक नरनारी को अवश्य देखना चाहिये।

श्रीयुत सम्पादक नागरीप्रचारक लखनऊ—

प्रेमधारा स्त्रीजाति के उपकारार्थ नारायण निवासी बाबू ....ने प्रकाशित की है वा नर नारियों के लाभार्थ अनेकान उपदेश ग्रन्थ के रोचक तथा प्रबन्ध में दिये गये हैं, अवश्य ही इस को पढ़कर बालिका और महिलाओं का विशेष उपकार होगा। धर्ममार्ग सिखाने के निमित्त इस प्रकार के ग्रन्थों का प्रचार करना सरल उपाय है। ईश्वर प्रार्थना के सप्त श्लोक बहुत ही ललित दिये गये हैं। हम ग्रन्थकर्त्ता की उनके उत्तम और समाजसुधार के लिये यत्न करने के निमित्त बारम्बार प्रशंसा करते हैं।

श्रीमती हरदेवी जी धर्मपत्नी बा० रोशनलालजी—

बैरिस्टर ऐटला लाहौर-तथा सम्पादिका भारतभागिनी—

मैंने इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ा, स्त्री और कन्याओं को बड़े धार्मिक उपदेश मिलेंगे। यह पुस्तक बहुत ही प्रशंसा के योग्य है और विशेष कर आर्य कन्याओं के लिये तो पथ दर्शक तथा अमूल्य रत्न है।

बा० भूरालाल स्वामी असिस्टेन्ट स्टेशनमास्टर—

निम्बा हेड़ा।

मैंने आपकी बनाई हुई प्रेमधारा को पढ़ा, पढ़कर बड़ा चित्त प्रसन्न हुआ। ईश्वर ने आप को इसी योग्य बनाया है कि आप अपनी अमृतरूपी लेखनी से मनुष्यों की अज्ञानरूपी निद्रा को छिन्न कर रहे हैं। आप के उक्त निबन्ध को पढ़कर मुझ सा अज्ञानी इस के महत्व जताने व वर्णन करने में असमर्थ है। तो भी इतना ही कहूंगा कि यह सूर्य नर नारियों का फूट व लड़ाइयों के दूर करने की एक मात्र औषधी है और प्रत्येक गृह में रहने योग्य है।

श्रीयुत शिवलाल जी आनरेरी उपदेशक श्रीमद्दयानंद अनाथालय, अजमेर—

श्रीमान् परमानन्द ....का नमस्ते, आप की बनाई "स्त्रीभूषण उर्फ प्रेमधारा" देखी। यह नाविल के ढंग पर उत्तमोत्तम भजन व कहानियों और शिक्षाओं से भरी हुई है। वास्तव में जैसा इस का नाम है वैसी ही पुस्तक है। सचमुच प्रेमधारा है। मेरी सम्मती में प्रत्येक गृहस्थी स्त्री पुरुषों को इस की एक एक प्रति मंगवा कर अवश्य पढ़नी चाहिये। इसके अतिरिक्त गृहस्थाश्रम आदि सभी पुस्तकें देखने योग्य हैं।

स्वर्गीय श्री बा० बैजनाथ जी रिटायर्ड सबजज जनरल मंत्री वैश्य कान्फरेन्स. महाश्रम हृषीकेश—

"आप की पुस्तक स्त्रियों और कन्याओं के लिये बड़ी उपयोगी है, आशा है इस का बड़ा प्रचार होगा।

हमारे छोटे २ जीवनों की बाबत देखिये लोग क्या कहते हैं।

बाबू नन्दलालसिंह जी बी० एस० सी० एल. एल. बी.

दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत ये चारों जीवनचरित्र रूप से श्रीयुत मुं० चिम्मनलाल जी गुप्त ने प्रकाशित किये हैं, आर्य्य भाषा की सेवा जिस प्रकार मुंशी जी कर रहे हैं उसे प्रत्येक भाषाभाषी जानते हैं।

लालाजी के पुस्तकों का उद्देश्य मुख्यता बालक और बालिका एवं स्त्रियों का हित होता है, ये भी इसी विचार से लिखी गई है, इंगलिश में इस प्रकार की पुस्तकें निकालने का क्रम प्रचलित ही था परन्तु अब आर्य-भाषा में भी यही बात देख कर प्रसन्नता होती है। वास्तव में आदर्श पुरुषों के चरित्र का पाठकों के हृदयों पर बहुत प्रभाव है। विदुर, धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर, दुर्योधन ये चारों महाभारत के पात्रों के सम्बन्ध में लिखी गई हैं। महाभारत विस्तृत ग्रंथ को सम्पूर्णतया देखे बिना किसी भी व्यक्ति का पूरा हाल ज्ञात नहीं हो सकता, परन्तु उक्त ग्रन्थ को सम्पूर्ण देखना सहज काम नहीं, लेकिन यह कठिनता इन से दूर हो गई। चरित्र लेखक ने जहां अपने "नायकों" की प्रशंसा की है वहां तत्सम्बन्धी प्रत्येक घटना को ठीक एवं स्पष्टभी बहुतकुछ करने का ध्यान रक्खा है जो लेखक के लिये आवश्यक है। छपाई साफ़, मूल्य स्वल्प है।

श्रीयुत संपादक आर्य-मित्र, आगरा—

तिलहर के महाशय ...... जी गुप्त ने महात्मा विदुर, युधिष्ठिर, तपस्वी भरत जी के जीवनचरित्र लिखकर प्रकाशित किये हैं। इस प्रकार के ऐतिहासिक चरित्रों से आर्य-साहित्य को बहुत लाभ पहुंच सकता है। इनकी भाषा सरल और रोचक है, तिसपर मूल्य भी अति स्वल्प है। वास्तव में आपका यह प्रयत्न अत्यन्त प्रशंसनीय है।

श्रीयुत संपादक भास्कर मेरठ भाद्रपद ३—

तिलहर निवासी महाशय ...... ने इन जीवनों को लिख कर प्रकाशित किया है। इस तरह के ऐतिहासिक चरित्रों से आर्यभाषा के साहित्य को बहुत कुछ लाभ पहुंचने की सम्भावना है। आपका यह प्रयत्न श्लाघनीय है।

श्रीमान् सम्पादक भारतोदय ज्वालापुर।

तिलहर के मुन्शी ...... जी को प्रायः आर्य्यसमाज में सब ही जानते हैं। आपने अपने अनेक सामयिक पुस्तकों को प्रकाशित कर अच्छा 'मान' पाया है। आपकी नारायणी शिक्षा आदि प्रसिद्ध पुस्तकें ही हैं। अब आपने छोटे २ जीवन चरित्रों के प्रकाशित करने का क्रम बांधा है। इन छोटी और स्वल्प मूल्य वाली पुस्तकों से सर्व साधारण को अच्छा लाभ पहुंच सकता है। अतः यह प्रत्येक हिन्दु और आर्य घरोंमें अवश्य होनी चाहिये। लेकिन आपको **विज्ञापन** की सचाई जब ही मालूम होगी जब आप स्वयं इनकी प्रतियां मंगाकर देखेंगे।

ज़रा गौर से पढ़िये।

माननीय सज्जन प्रेमधारा के विषय में क्या कहते हैं।

सम्पादक भारत सुदशा प्रवर्तक-फर्रुखाबाद।

यह पुस्तक नाविल के ढंगपर लिखीगई है-इसके सारे लेख देश की कुरीतियों के नष्ट करने वाले होने से पुस्तक बहुत ही उपयोगी और लाभदायक है। मू० ।।।) आने मात्र है।

श्री० सम्पादक भास्कर मेरठ

प्रेमधारा स्त्री शिक्षा की अत्युत्तम पुस्तक है जिसको···ने प्रकाशित किया है-इसमें संवाद रूप से उत्तम २ शिक्षायें दी गई हैं-प्रत्येक नर नारी को अवश्य ही देखना चाहिये।

श्रीयुत सम्पादक नागरी प्रचारक लखनऊ—

प्रेमधारा स्त्री जाति के उपकारार्थ दालगञ्ज निवासी बाबू······ने प्रकाशित की है जो नर नारियों के लाभार्थ अनेकानेक उपदेशक ग्रंथ के रोचक तथा प्रसंग में दिये गये हैं, अवश्य ही इसको पढ़कर बालिका और महिलाओं का विशेष उपकार होगा। धर्म मार्ग सिखाने के निमित्त इस प्रकार के ग्रन्थों का प्रचार करना सरल उपाय है। ईश्वर प्रार्थना के सप्त श्लोक बहुत ही ललित दिये गये हैं। हम ग्रन्थकर्त्ता को उनके उत्तम और समाज सुधार के लिये यत्न करने के निमित्त वारम्बार प्रशंसा करते हैं।

श्रीमती हरदेवी जी धर्मपत्नी बा० रोशनलालजी—

पैरिस्टर ऐटला लाहौर-तथा सम्पादिका भारतभगनी—

मैंने इस पुस्तक को आद्योपांत पढ़ा, स्त्री और कन्याओं को बड़े धार्मिक उपदेश मिलेंगे। यह पुस्तक बहुत ही प्रशंसा के योग्य है और विशेष कर आर्य्य कन्याओं के लिये तो पथ दर्शक तथा अमूल्य रत्न हैं।

बा० भूरालालस्वामी असिस्टेंट स्टेशनमास्टर निंवाहेड़ा।

मैंने आपकी बनाई हुई प्रेमधारा को पढ़ा, पढ़कर बड़ा चित्त प्रसन्न हुआ। ईश्वर ने आपको इसी योग्य बनाया है कि आप अपनी अमूल्यरूपी लेखनी से मनुष्यों की अज्ञानरूपी निद्रा को छिन्न कर रहे हैं। आपके उक्त निबंध को पढ़कर मुझ सा अज्ञानी इसके महत्त्व जानने व वर्णन करने में असमर्थ है। तौभी इतना ही कहूंगा कि यह मूर्खा नर नारियों की फूट व लड़ाइयों के दूर करने की एकमात्र औषधी है। प्रत्येक गृह में रहने योग्य है।

श्रीयुत शिवलालजी आनरेरी उपदेशक श्रीमद्दयानन्द अनाथालय, अजमेर—

श्रीमान् परम मित्र.................जी नमस्ते आपकी बनाई "नारीभूषण उर्फ प्रेमधारा" देखी । यह नाविल के ढंगपर उत्तमोत्तम नवीन २ कहानियों और शिक्षाओं से भरी हुई है । वास्तव में जैसा इसका नाम है वैसी ही पुस्तक है । सचमुच प्रेमधारा है । मेरी सम्मति में प्रत्येक गृहस्थी स्त्री पुरुषों को इस की एक २ प्रति मंगवाकर अवश्य पढ़ना चाहिये । इसके अतिरिक्त गृहस्थाश्रम आदि सभी पुस्तकें देखने योग्य हैं ।—आदि—आदि—

अबाल वृद्ध वनिताओं के लिये उपयोगी

प्रियम्वदा देवी रचित

नवीन पुस्तकें ।

आनन्द मयी रात्रि का स्वप्न मू० ≈)

इसकी भाषा बड़ी सरल रसीली एवं मनोरञ्जक है—इसमें स्वर्गीय महात्माओं के अधिवेशन में स्त्रियों की उन्नति विषय पर देखने विचारने योग्य निबंध लिखा गया है, उपयोगिता देखने पर विदित होगी ।

धर्मात्मा चाची और अभागा भतीजा मू० ।=)

एक धर्मात्मा विदुषी चाची ने अपने कुटुम्बियों को बड़ी २ लाभकारी शिक्षायें दी हैं—ढंग उपन्यासी, रोचक खूब, चित्ताकर्षक ऐसी कि बिना समाप्त किये हाथ से न रक्खेंगे ।

कलियुगी परिवार का एक दृश्य मू०॥)

गृहस्थाश्रममें वर्तमानमें जो २ दृश्य अथवा अभिनय पाई देखनेमें आते हैं । उन सबका इसमें बड़ी खूबी के साथ खाका खींचा गया है पढ़ते हुये गृहाश्रम की वास्तविक दशा का चित्र आप के हृत्पलट पर अङ्कित हो जायगा—अधिक क्या लिखूं, आप कृपाकर एक २ प्रति मंगाकर देखिये और हमें भी अपनी संमतिसे सूचित कीजिये ।

कतिपय महानुभावों के इनके विषय में विचार कैसे हैं ।

सम्पादक नवजीवन इन्दौर वैशाख १९१३।

श्रीमती प्रियंवदा जी एक विदुषी आर्य्य महिला है । आप को उपन्यासी काल्पनिक भाषा लिखने का बहुत अभ्यास है—आपकी भाषा भी प्रभावमयी होती है—उपर्युक्त तीनों पुस्तकें आपने ही लिखी हैं आप के पवित्र हृदय और भोली बहिनों की सेवा के भावको पहचानने के लिये यह पुस्तकें पर्याप्त हैं—तीनों पुस्तकें जिस दृष्टिको लक्ष्यमें रखकर लिखी गई हैं वह बड़ी विशाल दृष्टि है।

बाबू नन्दलालसिंहजी B.S.C.L.L.B. उपमन्त्री आ० प्र० स० यू० पी०

प्रथम पुस्तक शिक्षा पूर्ण उपन्यास है मूर्खा पत्नियों के बहकाने से भाइयों का अलग २ होना चरित्र हीन होकर दुःख भोगना ससुराल के अपमान अंत में जेल से त्राण आदि अनेक चित्ताकर्षक घटनायें लिखी गई हैं। दूसरी पुस्तक में मरणोन्मुखी चाची के मुख से कथाओं के रूप में कई गृहस्थोपयोगी उपदेश दिये गये हैं तीसरी में स्त्री शिक्षा सम्बन्धी अनेक विचार स्वप्न के रूपमें प्रकट किये गये हैं हमारे विचार में ऐसी पुस्तकें पारितोषिक देनी चाहिये।

बाबू मिश्रीलाल बी० ए० एल० एल० बी० अलीगढ़।

पुस्तकों की लेखिका श्रीमान् लाला चिम्मनलालजी की सुयोग्य पुत्री है उक्त लाला जी का मान सहित्य एवं स्त्रियोपयोगी पुस्तकों के पाठकों से छिपा नहीं है हर्ष है कि लालाजी की पुत्री ने भी अपने पिता के अनुकरणीय मार्ग को ग्रहण किया है। पुस्तकें शिक्षाप्रद रोचक तथा मनोहर हैं. प्रारम्भ करने पर बिना अन्त किये छोड़ने को चित्त नहीं चाहता—गृहणियों और पुत्रियों को अवश्य ही दिखाना चाहिये।

श्री पण्डित भद्रदत्तशर्मा उपदेशक आर्य्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रांत

मैंने आपकी तीनों पुस्तकें साद्यांत पढ़ीं, वस्तुतः पुस्तकें बड़ी योग्यता पूर्वक लिखी गई हैं। स्त्रियों के लिये प्रत्येक घर में इन पुस्तकों का रहना अत्यंत आवश्यक है। परमात्मा तुम्हारी बुद्धि का और भी उत्तमतर विकाश करें।

देखिये—"कलियुगी परिवार" की बाबत भारत के प्रसिद्ध पत्र प्रताप

(कानपुर) भाग ८ संख्या ४० । २२–८–२१

क्या प्रकाशित होता है।

कलियुगी परिवार का एक दृश्य—लेखिका प्रियम्वदा देवी—

आकार बड़ा पृष्ठ संख्या १६५ मूल्य ८ आना। यह उपन्यास-पुञ्ज ग्रन्थ-माला की तीसरी पुस्तक है। लेखिका ने जिस ढंग से वर्तमान काल के एक परिवार का गार्हस्थिक चित्र खींचा है वह प्रशंसनीय है। पुस्तक पढ़ने पर पता चलता है कि स्त्रियों के पारस्परिक मत भेद तथा कलह के कारण स्वयं उन्हें तथा परिवार के अन्य व्यक्तियों को कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। 'सुमित्रा के उपदेश नामक' अन्तिम परिच्छेद बड़ा महत्व पूर्ण है, आज-कल की बालिकायें इस पुस्तक से बहुत कुछ सीख सकती हैं।

मिलने का पता—

चिम्मनलाल अदगुप्त

तिलहर जि० शाहजहाँपुर

महाशय !

ज़रा इधर भी तो ध्यान दीजिए ॥

जिस आरोग्यता के लिये आप बहुत सा धन खर्च करते हैं परन्तु उस की प्राप्ति के बदले दुःखों की भर मारही होती चली जाती हैं इसका एक मात्र कारण यही है कि आप अनपढ़ और नातरजवेकारों का विश्वास कर रोगों को दूर करने के बदले अपने घरों को रोगों का भण्डार बना रहे हैं इस लिये जो औषधालय पुराने हैं और पढ़े लिखे जिन के संचालक हैं हजारों रोगियों को जिन्होंने निरोग किया है उन्हीं का विश्वास कीजिये।

हमारे महेश औषधालय

में सन्निपातज्वर, शीतज्वर, जीर्णज्वर, खांसी, दमा, संग्रहणी, बवासीर आदि और स्त्रियोंके प्रबल रोग हिस्ट्रिया और सन्तान न होने के सम्पूर्ण रोगों के हजारों रोगी आराम पा चुके हैं। चिकित्सा जड़ी, बूटी और रसायन द्वारा की जाती है। किसी प्रकार का धोखा न देकर इलाज बड़ी सावधानता के साथ शर्तिया किया जाता है आवश्यकता पड़ने पर इस औषधालयकी हर एक मर्ज की दवाइयों की भी अवश्य परीक्षा कीजिये ॥

महेश औषधालय

तिलहर।

निवेदक—

ए० बी०बी०ए०बी०आर० शास्त्री

भद्रगुप्त वैश्य

प्रबन्धकर्ताध्यक्ष।

महेश औषधालय की प्रसिद्ध औषधियां ।

क्षुधावटी

बदहज़मी को दूरकर और पेट के समस्त रोगों को काफूर कर भूख लगाने वाली एक मात्र औषधि मू० ॥) डा० ।-)

माहेश्वरवटी

मस्तक की निर्बलता-हाथ पैरों की ऐंठन को दूर कर बल बढ़ाने वाली अद्भुत औषधि मू ॥) डा० ।-)

शिशुजीवन

बच्चों के समस्त रोगों को दूर कर मोटा करने वाली महौषधि मू० १) डा० ।=)

दंत मञ्जन

१ नं० ॥) २ नं० ।) डिब्बी

अंजन

१ नं० ४) तोला २ नं० २) तोला ३ नं० १) तोला ४ नं० ॥) तोला ।

जाड़ों में सेवन करने योग्य

सौभाग्य शुंठी पाक	६) रु० सेर
सुपारी पाक	८) रु० सेर
बादाम पाक	१०) रु० सेर
मूसली पाक	८) रु० सेर
नारायणी तैल	१२) रु० सेर
लाक्षादि तैल	१४) रु० सेर
लोहआसव	५) बोतल
कुमारी आसव	४) बोतल
अभयारिष्ट	५) बोतल

चन्द्रोदय १००) तोला स्वर्ण भस्म६०) रु० तोला चांदी भस्म ३) रु० तोला अभ्रकभस्म ४०) रु० तोला वंग ४) रु० तोला २ नम्बर २) रु०तोला कांति सार २०) रु० तोला बसंतमालती २०) तोला इनके अतिरिक्त और सब धातु उपधातु हमारे यहां सस्ते भाव में मिल सकेंगे ।

इनके अतिरिक्त समस्त रोगों की औषधियां भी हमारे यहां मिलती हैं ।

माल मिलने का पता—

चिम्मनलाल भद्रगुप्त

तिलहर जि० शाहजहांपुर